# दो शब्द

स्कन्द पुराण के इस द्वितीय खण्ड में "काशी-खण्ड" "अवन्ती खण्ड" और "रेवा खण्ड" का समावेश है। ये तीनों शैवमत के तीन प्रधान क्षेत्र हैं। काशी की महिमा और विशेषता तो सर्वत्र विदित है। शैव सिद्धान्त और संस्कृत विद्या का सर्व प्रधान केन्द्र होने के कारण वह समस्त देश में प्रसिद्ध है और भारत वर्ष के चारों कोनों के यात्री प्राचीन काल से वहाँ आते रहे हैं। संभवतः हिमालय से लेकर कन्या कुमारी तक और अटक से लेकर कामरूप देवी तक के दो हजार लम्बे-चौड़े प्रदेश में कोई ऐसा प्रसिद्ध नगर नहीं मिल सकता जो काशी से अधिक प्राचीन और भारतीय संस्कृति का प्रतिनिधित्व करने वाला हो। यद्यपि वेदों का आविर्भाव पंचनद प्रदेश में हुआ, पर उनका पठन-पाठन अध्ययन-अध्यापन, मनन मुख्यतः काशी में ही होता आया है और भारत भर के विद्यार्थी सदा से यहाँ आते रहे हैं।

काशी में शैव तीर्थों की गणना कर सकना कठिन है। प्रत्येक गली कूचे में शिव के अनेक मंदिर खड़े हैं और दशाश्वमेध, मणिकर्णिका, ज्ञान वापी, कपाल मोचन, त्रिलोचन आदि अनेक प्रसिद्ध तीर्थ हैं, जिनका वर्णन इस खण्ड में किया गया है। यद्यपि प्राचीन काल की काशी तथा वर्तमान काल में अनेकों बार लूटी और तोड़ी-फोड़ी गई काशी की स्थिति में बहुत कम अन्तर है तो भी 'स्कन्द पुराण' के "वाराणसी वर्णन से वहाँ का एक महत्व पूर्ण चित्र नेत्रों के सम्मुख उपस्थित हो जाता है। अब न पुराने समस्त तीर्थ—स्थल रह गये हैं और न वह भावना शेष रह गई है, तो भी काशी की महिमा अभी समस्त हिन्दू जगत में अक्षुण्ण है, इससे इनकार नहीं किया जा सकता।

अवन्तिका—वर्तमान उज्जैन नगरी भी प्राचीन भारत का एक ऐतिहासिक धार्मिक स्थान है। इसको महाराज विक्रमादित्य की राजधानी कहा जाता है, जिनके नाम के सम्वत् का हम प्रतिदिन उपयोग करते हैं।

"स्कन्द पुराण" की दृष्टि मे इस क्षेत्र का महत्त्व इतना अधिक है कि उसने यहाँ की क्षिप्रा नदी को संसार की समस्त नदियो मे शिरोमणि बतलाया है, जिसके दर्शन मात्र से समस्त पाप दूर होकर मनुष्य श्रेष्ठ गति पा लेता है। इस तीर्थ के अधिपति "महाकालेश्वर" की भी अत्यन्त महिमा है। इसके सिवाय अन्य स्थानो मे जो प्रसिद्ध तीर्थ हैं वे सब भी सूक्ष्म रूप मे यहाँ मौजूद हैं। समस्त देश मे काशी, प्रयाग, अमरकटक, भरत, केदार, करवीर, एकाम्रक, भद्रक आदि जितने प्रधान शैव क्षेत्र हैं, उन्ही मे महाकालेश्वर के महाकालवन की गणना की जाती है। यहाँ रह कर तप, उपासना करने से मनुष्य के समस्त पापो का क्षय होकर पुण्य-पथ का मार्ग दर्शन मिलता है। इस महा कालवन मे एक महाकालेश्वर शिव ही नही हैं। वहा कोटीश्वर, त्रिदशेश्वर, कपाल मोचन देव, कपिलेश्वर, हनुमत्केश्वर, पिप्पलाद, स्वप्नेश्वर, विश्वनोमुख, सोमेश्वर, वैश्वानरेश्वर, गणेश्वर, प्राणोश, दण्डपाणि, पुष्पदत्त दुर्वासेश्वर, कालेश्वर, कुटुम्बेश्वर, मखण्डेश्वर, वधिरेश, मात्रेश्वर, वाल्मीकेश्वर, सगमेश्वर, पिशाचेश्वर, विद्याधर तीर्थ, सोमवती तीर्थ, सौभाग्य तीर्थ, चक्रपाणि तीर्थ, सोम तीर्थ आदि नामो से इतने तीर्थ हैं, जिनकी गिनती का सुनना भी कठिन है। इसमे सन्देह नही कि अवन्तिका किसी समय मध्य भारत का सब से प्रमुख तीर्थ रहा है। आज कल भी हिन्दुओ के सबसे बडे धार्मिक समारोह "कुम्भ मेला" के चार प्रमुख केन्द्रो में से एक उज्जैन ( अवन्तिका ) भी है। 'स्कन्द पुराण' मे इसका वर्णन बडे विस्तार के साथ किया गया है।

रेवा खण्ड में नर्मदा तटवर्ती तीर्थों का वर्णन है। कई स्थानो पर पुराणकार ने नर्मदा की महिमा गंगा से बढकर बतलाई है और शैव मत के अनुयायियों की दृष्टि से यह असामयिक भी नही है। गंगा भी यद्यपि शिवजी की जटाओ से बहती हुई मानी गई है, फिर भी यह सब प्रथम विष्णु के चरणों को धोने के लिए प्रकट हुई थी। इस लिये उसमे विष्णु *की प्रधानता हो मानी जायगी। पर नर्मदा को शिवजी के पसीने से* उत्पन्न कहा गया है। माहात्म्य गंगा के तुल्य ही माना जाता है और उसके समीप वर्ती भूभाग मे हजारो तीर्थ अब भी स्थित हैं। नर्मदा की

स्तुति करते हुए समस्त मुनियों ने बड़े भक्ति भाव से कहा था।

"हे पुण्य जल के आश्रय वाली ! हे परम शुभे ! आपको हमारा नमस्कार हो ! आप विशुद्ध सत्त्व वाली और सुरों के द्वारा सेवित हैं। आप भगवान रुद्र के अंश से परम वरिष्ठ है, आपको हमारा नमस्कार है। हे वरों के प्रदान करने वाली देवि ! हे शिवे ! आपको प्रणाम है। दोनों लोकों में सौख्य के प्रदान करने वाली देवि ! आपतो अनेको भूतों के समुदायों को समाश्रय देने वाली और अनघ हैं, आपको हमारा नमस्कार है। आप समस्त सरिताओ मे श्रेष्ठ है। हे पाप हरे ! हे विचित्रते ! आप गन्धर्व राक्षस, उरगो के द्वारा सेवित अंग वाली हैं। हे सनातनि ! आप समस्त प्राणियों पर कृपा करने वाली और मोक्ष के प्रदान करने वाली है। आप हमारा कल्याण करें।"

रेवा खण्ड मे भी नारदेश्वर, अंगिरस तीर्थ, स्कन्द तीर्थ, कोटि तीर्थ, अग्नि तीर्थ, जमदग्न्य तीर्थ आदि बहुसंख्यक नर्मदा तट वर्ती स्थानो का माहात्म्य विस्तार पूर्वक वर्णन है। इसमे सन्देह नही कि इस पुराण मे तीर्थों का माहात्म्य पौराणिक अर्थवाद की प्रणाली से बड़ी रोचकता पूर्वक और बढा चढा किया गया है, जिससे सामान्य जनता की भक्ति उनके प्रति सुदृढ बनी रहे। साथ ही यह भी स्वीकार करना पडता है कि ये स्थान प्राकृतिक तथा परम्परागत दृष्टि से आत्म शुद्धि मे सहायक हैं, और जो शुद्ध भाव से उनका सेवन करेगा वह अवश्य कल्याण साधन कर सकेगा। पर खेद है कि इस समय स्वार्थी जनो ने धन कमाने के उद्देश्य से तरह-तरह के ढोंग फैलाकर वहाँ के वातावरण को दूषित कर दिया है, जिससे उनकी प्राचीन महिमा अधिकांश मे नष्ट हो गई है। इस स्थिति का सुधार हो और तीर्थ फिर से अपनी त्याग और तपस्यामय गरिमा को प्राप्त करें, इस उद्देश्य से हमने 'स्कन्द पुराण' मे वर्णित हजारो तीर्थों के सविस्तार वर्णन मे से इस प्रकार चुने हुये तीर्थों का वर्णन दिया है, जिससे पाठको के हृदय मे ऐसी ही पवित्र और परमार्थ युक्त भावनाओं का उदय हो।

—प्रकाशक

# विषय सूची

॥ रेवा खण्ड ॥

---

# स्कन्द पुराण

—(※)—

## ४४—नियम विधि माहात्म्य वर्णन

पितृणांतर्पणं कुर्याच्छ्रद्धायुक्तेन चेतसा ।
स्नानावसाने नित्यंवसुप्ते देवेमहाफलम् ॥१
सङ्गमेसरितां तत्र पितृन्संतर्प्य देवताः ।
जपहोमादिकर्माणि कृत्वा फलमनन्तकम् ॥२
गोविन्दस्मरणं कृत्वा पश्चात्कार्याः शुभाः क्रियाः ।
एष एव पितृदेवमनुष्यादिषु तृप्तिदः ॥३॥
श्रद्धाधर्मयुतांनाम स्मृतिपूतानिकारयेत् ।
कर्माणिसकलानीह चातुर्मास्येगुणोत्तरे ॥४
सत्सं गोद्विजभक्तिश्च गुरुदेवाग्नितर्पणम् ।
गोप्रदानं वेदपाठः सत्क्रियासत्यभाषणम् ॥५
गोभक्तिर्दानभक्तिश्चसदा धर्मस्य साधनम् ।
कृष्णेसुप्तेविशेषेण नियमोऽपिमहाफल ॥६
नियमः कादृशो ब्रह्मन् फलञ्च नियमेन किम् ।
नियमेन हरिस्तुष्टो यथा भवतितद्वद ॥७

श्री ब्रह्माजी ने कहा—श्री देवेश्वर के शयन करने पर स्नान के
र मे परम श्रद्धा से युक्त चित्त के द्वारा अपने पितृगणों का तर्पण नित्य
करना चाहिए—इसका महान फल हुआ करता है ॥१॥ सरिताओं
ंगम मे वहाँ पर पितृगण और देवों का तर्पण भली भाँति करके
· जप तथा होमादि कर्मों को करके मनुष्य अनन्त फलों की प्राप्ति
, करता है। भगवान श्री गोविंद का स्मरण करके पीछे अन्य शुभ
ाऐं करनी चाहिए। यह ही पितृ-देव और मनुष्य आदि में तृप्ति के

देने वाला है ॥२-३॥ इस गुणोत्तर चातुर्मास्य मे यहाँ पर धर्मयुत श्रद्धा और समस्त कर्मों को स्मृति से पूत करावे। सत्सङ्ग, द्विजों में भक्ति गुरुदेव और अग्नि का तर्पण—गोदान, वेदपाठ, सत्क्रिया, सत्य भाषण गो भक्ति, दान भक्ति, सदा ये सब धर्म के साधन हुआ करते हैं। भगवान् श्रीकृष्ण के शयन कर जाने पर विशेष रूप से नियम भी महान् फल वाले होते हैं। देवर्षि नारदजी ने कहा—हे भगवन्! नियम किस प्रकार का होता है? और उस नियम के द्वारा फल क्या हुआ करता है? जिस प्रकार से नियम से भी हरि भगवान तुष्ट हुआ करते हैं—यह कृपया हम को बतलाइये ॥४-७॥

नियमश्चक्षुरादीनांक्रियासुविविधासुच।
कार्योविधावतापुंसातत्प्रयोगान्महासुखम् ॥८
एतत्षड्वर्गहरणं रिपुनिग्रहणं परम्।
अध्यात्ममूलमेतद्धि परमं सौख्यकारणम् ॥९
तत्र तिष्ठन्तिनियतं क्षमासत्यादयोगुणः।
विवेकरूपिणं सर्वं तद्विष्णोःपरमंपदम् ॥१०
कृतं भवति यत्नीय कृतकृत्यत्वमत्र तत्।
स्यात्तस्य तत्पूर्वजाना येन ज्ञातमिदं पदम् ॥११
तन्मूहूर्तमपिध्यात्वा पापजन्मशतोद्भवम्।
भस्मसाद्याति विहितनिरञ्जननिषेवणात् ॥१२
प्रत्यहमद्धुवयस्य क्षुत्पिपासादिकःश्रमः।
सयोगीनियमीनित्यं हरौसुप्तेविशिष्यते ॥१३
चातुर्मास्ये नरो भक्त्या योगाभ्यासरतो न चेत्।
तस्य हस्तात्परिभ्रष्टममृतं नात्र संशयः ॥१४

श्री ब्रह्माजी ने कहा—क्षुर (उस्तरा) आदि की अनेक क्रियाओं मे नियम होता है। जो विद्या वाले पुरुष हैं उनको उसको करना चाहिए। उसके प्रयोग से महान् सुख समुत्पन्न होता है। इस षड्वर्ग का हरण शत्रुओं का परम निग्रहण होता है। यही अध्यात्म का मूल होता है और यही परम सौख्य का कारण हुआ करता है। वहाँ पर नियत रूप से क्षमा

और सत्य आदि समस्त सद्गुण स्थित रहा करते हैं। ये सब विवेक रूपी होते हैं और यही श्री भगवान् विष्णु का परम पद है। यज्ञीय अर्थात् यज्ञ कर्म का फल कृत होना है। यहां पर वह ही कृत कृत्यत्व (सफलता) है। उसके पूर्वजों का वह होता हैं। जिसने इस पद को भलीभांति जान लिया है। उस मुहूर्त मात्र भी ध्यान करके सौ जन्मों मे किया हुआ भी पाप भस्मसात् हो जाया करता है। भगवान् निरञ्जन के सेवन से यह सब विहित होता है। जिसका प्रतिदिन भूख-प्यास आदि धर्म संकुचित होता है वह योगी और नित्य ही नियमों का पालक है। भगवान् को सुप्त होने पर विशेष रूप से होता है। चातुर्मास्य मे नर भक्ति-भाव से यदि योग के अभ्यास मे रत नहीं होता है तो यही समझ लेना चाहिए कि उसके हाथ से अमृत परिभ्रष्ट हो गया है इसमे कुछ भी संशय नहीं है ॥८-१४॥

मनोनियमितं येन सर्वेच्छासु सदागतम् ।
तस्य ज्ञाने च मोक्षे च कारणं मन एव हि ॥१५
मनोनियमने यत्नः कार्य. प्रज्ञावतासदा ।
मनसा सुगृहीतेन ज्ञानाप्तिरखिला ध्रुवम् ॥१६
तन्मन. क्षमया ग्राह्यं यथावह्निश्च वारिणा ।
एकया क्षमया सर्वो नियम.कथितोबुधैः ॥१७
सत्यमेकं परो धर्मः सत्यमेकं परं तपः ।
सत्यमेकं परं ज्ञानं सत्ये धर्मः प्रतिष्ठितः ॥१८
धर्ममूलमहिंसा च मनसाता च चिन्तयन् ।
कर्मणा च तथावाचातत एतांसमाचरेत् ॥१९
परस्वहरणं चौर्यं सर्वदा सर्वमानुषैः ।
चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मदेवस्ववर्जनम् ॥२०
अकृत्यकरणं चैव वर्जनीयं सदाबुधैः ।
अनीहः सर्वकार्येषु यः सदा विप्रवर्तते ॥२१

जिसने सभी प्रकार की इच्छाओं मे जाने वाले मन को नियमित कर लिया है उसके ज्ञान मे और मोक्ष मे एक मात्र कारण मन ही होता

है जिसका नियम-नियन्त्रित कर लेना सर्वोपरि साधन माना गया है। अतएव प्रज्ञावान् पुरुष को अपने मन के नियमन करने में सदा ही प्रयत्न करना चाहिए। जब यह मन सुप्रहीन हो जाता है तो निश्चय ही पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो जाया करती है। जिस मन को क्षमा के द्वारा प्राप्त करना चाहिए जिस प्रकार से अग्नि को शान्ति जल से की जाती है और उस अग्नि पर काबू पाया जाता है। बुध पुरुषों ने एकमात्र क्षमा को ही सर्वश्रेष्ठ नियम कहा है। एक सत्य ही परम धर्म होता है और एक मात्र सत्य का परिपालन करना ही परम तप हुआ करता है। सत्य ही सर्वोत्तम ज्ञान है क्योंकि सत्य में ही धर्म प्रतिष्ठित रहा करता है। धर्म का मूल अहिंसा है, मनसे उसका चिन्तन करते हुए कर्म से और वचन के द्वारा इस अहिंसा का समाचरण करना चाहिए। पराये धन का अपहरण करना चोर कर्म है इसीलिये सब मनुष्यों कोसर्वदा और चातुर्मास्य में विशेष रूप से इसका वर्जन कर देना चाहिए। ब्राह्मण का और देवों के धन का वर्जन कर देवे। जो भी अकृत्य हैं उनका करना बुधों के द्वारा वर्जन करने के योग्य है। जो पुरुष सर्वदा ईहा से रहित होता है वह सर्वश्रेष्ठ हुआ करता है ॥१५-२१॥

स च योगी महाप्राज्ञः प्रज्ञाचक्षुरहं न धीः।
अहङ्कारो विषमिदं शरीरे वर्तते नृणाम् ॥२२
तस्मात्स सर्वदा त्याज्यः सुप्ते देवे विशेषतः।
अनीहयाजितक्रोधो जितलोभो भवेन्नरः ॥२३
तस्य पापसहस्राणि देहाद्यान्ति सहस्रधा।
मोहं मानं पराजित्य शमरूपेण शत्रुणा ॥२४
विचारेण शमोग्राह्यः सन्तोषेणतथाहितः।
मात्सर्यमृजुभावेन नियच्छेत्समुनीश्वरः ॥२५
चातुर्मास्ये दयाधर्मो न धर्मो भूतविद्रुहम्।
सर्वदा सर्वमासेषु भूतद्रोहं विवर्जयेत् ॥२६
एतत्पापसहस्राणां मूलं प्राहुर्मनीषिणः।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्या भूतदया नृभिः ॥२७

सर्वेपामेव भूनानां हरिर्नित्यं हृदि स्थितः ।
स एव हि पराभूतोयो भूतद्रोहकारकः ।।२८
यस्मिन् धर्मे दयानैव स धर्मोदूपितो मतः ।
दयाविना न विज्ञानं न धर्मज्ञानमेवच ।।२९
तस्मात्सर्वात्मभावेन दयधर्मः सनातनः ।
सेव्यः स पुरुषैनित्यं चातुर्मास्ये विशेपतः ।।३०।।

यह ही योगी महा प्रज्ञा से सुसम्पन्न होता है जिसको प्रज्ञा का चक्षु हुआ करता है और अहङ्कार की वृद्धि नहो होती है। मनुष्यो के शरीर मे यह अहङ्कार विप के ही तुल्य हुआ करता है। अतएव विशेप रूप से देव के सुप्त हो जाने पर उसे निश्चय रूप से त्याग देना चाहिए। ईहा के अभाव होने से मनुष्य क्रोध को जीतने वाला और लोभ पर विजय प्राप्त करने वाला हो जायगा ।।२२-२३।। उस व्यक्ति के सहस्रो पाप देह से सहस्रो टुकडे होकर चले जाया करते हैं। मोह और मान को शम रूपी शत्रु के द्वारा पराजित करके विचार के द्वारा शम का ग्रहण करना चाहिये तथा सन्तोप के द्वारा भी ग्रहण करे। ऋजुभाव से अर्थात् सरलता से मात्सर्य को वह मुनीश्वर नियन्त्रित करे। चातुर्मास्य मे क्षमा ही धर्म होता है। भूतो से विद्रोह करना धर्म नहीं होता है। सर्वदा ही सभी मासों मे भूतो के साथ द्रोह करना वर्जित कर देवे। मनीषीगण इसको सहस्रो पापो का मूल कहा करते हैं। इसीलिए समस्त प्रयत्नो से मनुष्यो को भूतो पर दया करनी चाहिए। समस्त प्राणियो के हृदय मे नित्य ही श्री हरि भगवान् स्थित रहा करते है। वह ही पराभूत होता है जो भूतो से द्रोह के करने वाला होता है। जिस धर्म मे दया नही होती है वह धर्म ही दोषयुक्त होता है। दया सर्व प्रधान है। इसके बिना न विज्ञान ही होता है और न धर्म का ही ज्ञान हुआ करता है। इसलिये सर्वात्म भाव से दया ही सनातन धर्म होता है। चातुर्मास्य मे विशेष रूप से मनुष्यो को उसी परम पुरुष की सेवा करनी चाहिये ।।२४-३०।।

———

## ४५—द्वादशाक्षरमहिमावर्णन

एकदा भगवान्रुद्रः कैलाश शिखरे स्थितः ।
दधार परमां लक्ष्मीमुमया सहितः किल ॥१
गणानां कोटयस्तिस्रस्तं यदा पर्यवारयन् ।
वीरबाहुर्वीरभद्रो वीरसेनश्च भृङ्गिराट् ॥२
रुचिस्तुष्टिस्तथानन्दीपुष्पदन्तस्तथोत्कटः ।
विकटः कण्टकश्चैव हरः केशो विघण्टकः ॥३
मालाधरः पाशधरः भृङ्गी च नरनस्तथा ।
पुण्योत्कटः शालिभद्रो महाभद्रो विभद्रकः ॥४
कणपः कालपः कालोघन गोरक्तलोचनः
विकटास्यो भद्रकश्च दीर्घजोह्वो विरोचनः ॥५
पारदो धनदो ध्वांक्षो हंसको नरकस्तथा ।
पञ्चशीर्षस्त्रिशीर्षश्च क्रोडदंष्ट्रो महाद्भुतः ॥६
सिंहवक्त्रो वृषहनुः प्रचण्डस्तुण्डिरेव च ।
एते चान्ये च बहवस्तदाभवसमीपगाः ॥७

महर्षि गालव ने कहा—एक समय पर भगवान् श्री रुद्रदेव कैलाश पर्वत की शिखर पर समवस्थित थे और उन्होने उमा देवी के सहित विराजमान होते हुए परम लक्ष्मी को धारण किया था । जिस समय मे तीन करोड गण उनके चारो ओर मे स्थित थे जिनमे परम प्रमुख गणों के नाम ये हैं, वीरबाहु, वीरभद्र, वीरसेन, भृङ्गिराट्, रुचि, तुष्टि, नन्दी, पुष्प दन्त, उत्कट, विकट, कण्टक, हर, केश, विघण्टक, मालाधर, पाशधर, भृङ्गी, नरन, पुण्योत्कट, शालिभद्र, महाभद्र, विभद्रक, कणप, कालप, काल, घनप, रक्त लोचन, विकटास्य, भद्रक, दीर्घजिह्व, विरोचन, पारद, धनद, ध्वांक्षी, हंसक, नरक, पञ्चशीर्ष, त्रिशीर्ष, क्रोडदंष्ट्र, महाद्भुत, सिंहवक्त्र, वृषहनु, प्रचण्ड, तुण्डि ये तथा अन्य भी बहुत से गण उनके समीप मे गमन करने वाले थे ॥१-७॥

महादेव जयेत्युच्चैर्भद्रकालीसमन्विताः ।
भूतप्रेतपिशाचानां समूहा यस्य वल्लभाः ॥८

अस्तुवंस्तं समीपस्था वसन्ते समुपागते ।
वनराजिर्विभातिस्म नवकोरकशोभिता ॥९

दक्षिणानीलसंस्पर्शः कवीनांसुखकृदभो ।
वियोगिहृदयाकर्पी किंशुकः पुष्पशोभितः ॥१०
द्वन्द्वादिविक्रियाभावं चिक्रीडुश्चसमन्ततः ।
तस्मिन्विगाढेसमये मनस्युन्मादकेतथा ॥११

नन्दी दण्डधरः सञ्ज्ञांदृष्ट्वाचक्रे हरोपरः ।
अलं चापलदोषेण तपः कुर्वन्तु भो गणाः ॥१२
तदा सर्वे वनमपि भूकाण्डजमगु. पुनः ।
गणास्तेतप आतस्थुर्दृष्ट्वा कान्ति वसन्तजाम् ॥१३

ततः सा विश्वजननी पार्वती प्राह शङ्करम् ।
इयं ते करगा नित्यमक्षमाला महेश्वरः ॥१४

ये सब भद्रकाली देवी के सहित महादेव प्रभु की जय हो, ऐसा उच्च स्वर से कह रहे थे जिसके परम प्रिय भूत, प्रेत और पिशाचों के समुदाय ही हुआ करते हैं ॥८॥ उनके समीप मे स्थित हुए वे सब वसन्त के समुपागत होने पर उन प्रभु का स्तवन कर रहे थे । समस्त वन की पक्तियाँ नवीन कोरकों (कलियों) से शोभित होकर विभावित हो रही थी । दक्षिण दिशा की ओर से आने वाला वायु कवियों को सुख देने वाला होरहा था । जो वियोगीजन थे उनके हृदय को समाकर्षित करने वाला था और किंशुक पुष्पों की परम शोभा से युक्त हो रहा था ॥९-१०॥ उस मन मे उन्माद उत्पन्न करने वाले विगाढ समय मे सभी ओर मे द्वन्द्वादि की विक्रिया के भाव की क्रीडा करने वाले दूसरे हर दण्ड के धारण करने वाले नन्दी ने देख कर सब को सावधान किया था, हे समस्त गणो ! चपलता के दोष को मत करो । सब तपश्चर्या करो । फिर सभी गण भूकाण्डज वन मे चले गये थे और वसन्त के द्वारा उत्पन्न की गई कान्ति को देख कर तपस्या करने मे समास्थित हो गये थे । इसके अनन्तर वह समस्त विश्व की जननी पार्वती देवी भगवान् शङ्कर से बोली-

हे महेश्वर ! यह आपके करकमल में रहने वाली अक्षों की माला है ॥१३-१४॥

त्वया किं जप्यतेदेव सन्देहभ्रति मे मनः ।
त्वमेकः सर्वभूतानामादिकृत्सकलेश्वरः ॥१५
न माता न पिता बन्धुस्तव जातिर्नकश्चन् ।
अहं तव परं किञ्चिद्वद्मि नास्तीति किञ्चन ॥१६
श्रमेण त्वं समायुक्तो श्वासोच्छ्वास परायणः ।
जपन्नपि महाभक्त्या दृश्यसेत्वं मयासदा ॥१७
त्वत्तः परतरं किञ्चिद्यत्त्वं ध्यायसिचेतसा ।
तन्मे कथय देवेश यद्यहं दयिता तव ॥१८
इति पृष्टस्तदा शम्भुरुवाच हरिसेवकः ।
हरेर्नामसहस्राणां सारं ध्यायामि नित्यशः ॥१९
जपामि राम नामाङ्कमवतारं तु सत्तमम् ।
चतुर्विंशतिसंख्याकान्प्रादुर्भावान्हरेर्गुणान् ॥२०
एतेषामपि यत्सारं प्रणवाख्यं महत्फलम् ।
द्वादशाक्षरसंयुक्तं ब्रह्मरूपं सनातनम् । २१

हे देव ! आपके द्वारा यह किस का जाप किया जाता है, मेरे मन में यह सन्देह होता है ? आप तो स्वयं ही समस्त प्राणियों में एक ही आदि स्वरूप हैं, सभी के ईश्वर हैं । आप का न तो कोई पिता है और न कोई माता ही है, न कोई बन्धु है, न जाति ही है । मैं तो आपसे पर किसी को भी नहीं जानती हूँ कि कोई अन्य भी आप से ऊपर है ॥१५-१६॥ आप श्रम से समायुक्त रहा करते हैं और श्वास, उच्छ्वास के करने में परायण रहा करते हैं । मेरे द्वारा सदा ही आप महा भक्ति से जाप ही करते हुए दिखलाई दिया करते हैं क्या आप से भी कोई परतर है जिसको कि आप चित्त से ध्यान किया करते हैं ? हे देवेश्वर ! यह आप मुझे कृपा कर के बतला दीजिए क्योंकि मैं तो आपकी प्राण प्रिया हूँ । इस तरह से पार्वती देवी के द्वारा पूछे गये श्री हरि के सेवक भगवान् श्री शम्भु ने कहा—श्री हरि भगवान् के सहस्रों नामों के सार का मैं नित्य ही ध्यान किया

करता हूँ। मैं श्री रामनामांक सर्वश्रेष्ठ अवतार का जाप किया करता हूँ। चौबीस संख्या वाले भगवान् श्री हरि के प्रादुर्भाव हुए हैं ऐसे श्री हरि के गुणों का जाप किया करता हूँ। इन सबका सार जो सार है वह प्रणव नाम वाला है और वह सनातन द्वादश अक्षरों से संयुक्त ब्रह्म का ही रूप है ॥१७-२१॥

अक्षरत्रयसम्बन्धं ग्रामत्रयसमन्वितम् ।
सबिन्दुं प्रणवं शश्वज्जपामि जपमालया ।२२
वेदसारमिदं नित्यं ह्यक्षरं सततोद्यतम् ।
निर्मलं ह्यमृतं शान्तं सद्रूपममृतोपमम् ॥२३
कलातीतं निर्विकारं निर्व्यापारं महत्परम् ।
विश्वाधारं जगन्मध्यं कोटिब्रह्माण्डबीजकम् ॥२४
जडं शुद्धक्रियं वाऽपि निरञ्जनं नियामकम् ।
यज्ज्ञात्वा मुच्यते क्षिप्रं घोरसंसारबन्धनात् ॥२५
ॐकारसहितं यच्च द्वादशाक्षरबीजकम् ।
जपन् पापकोटीनां दावाग्निस्त्वं प्रजायते ॥२६
एतदेव परं गुह्यमेतदेव परं महः ।
एतद्धि दुर्लभं लोके लोकत्रयविभूषणम् ॥२७
प्राप्यते जन्मकोटीभिः शुभाशुभविनाशकम् ।
एतदेव परं ज्ञानं द्वादशाक्षरचिन्तनम् ॥२८

तीन अक्षरों से सम्बद्ध, तीन ग्रामों से समन्वित, बिन्दु से युक्त प्रणव को ही मैं जाप करने की इस माला से निरन्तर जप किया करता हूँ। यह सततोद्यत अक्षर नित्य ही वेद का सार भूत है। यह परम निर्मल, अमृत, शान्त सद्रूप वाला, अमृत के ही समान, कलातीत, निर्विकार, निर्व्यापार, विश्व का आधार, परमहत् जगन्मध्य, कोटि ब्रह्माण्ड का बीज, जड, शुद्ध क्रिया वाला, निरञ्जन और नियामक है जिसका ज्ञान प्राप्त करके प्राणी इस परम घोर संसार के बन्धन से बहुत ही शीघ्र मुक्त हो जाया करता है ॥२२-२५॥ इस ॐकार के सहित जो द्वादश अक्षरों वाला बीजक है उसको जाप करने वाले को जो करोड़ों पापों को भस्म करने के लिये

दावाग्नित्व हो जाया करता है अर्थात् दावाग्नि के समान ही सब पापों का भस्म कर दिया करता है। यह ही सबसे अधिक गोपनीय एवं महान् है और सब से अधिक तेज है। यह इस लोक मे अत्यन्त दुर्लभ है तथा तीनो लोको का यह विभूषण है। यह शुभाशुभ का विनाश करने वाला करोड़ जन्मो मे प्राप्त किया जाता है। यह ही परम ज्ञान है कि द्वादश अक्षरो का चिन्तन किया जावे ॥२६-२८॥

चातुर्मास्ये विशेषेण ब्रह्मद चिन्तितप्रदम् ।
एतदक्षरज स्तोत्र यः समाश्रयते सदा ॥२९
मनसा कर्मणा वाचा तस्य नास्ति पुनर्भवः ।
द्वादशाक्षरसयुक्त चक्रद्वादशभूषितम् ॥३०
मासद्वादशनामानि विष्णोर्यो भक्तितत्परः ।
शालग्रामेषुतान्युक्त्वा न्यसेदघहराणि च ॥३१
दिवसे दिवसे तस्य द्वादशाहफल भवेत् ।
द्वादशाक्षरमाहात्म्य वर्णितु नैव शक्यते ॥३२
जिह्वासहस्र रपि च ब्रह्मणापिन वर्ण्यते ।
महामन्त्रोऽप्यय लोके जप्तो ध्यात.स्तुतस्तथा ॥३३
पापहा सर्वमासेषु चातुर्मास्ये विशेषतः ।
इद रहस्य वेदाना पुराणामनेकशः ॥३४
स्मृतीनामपि सर्वासा द्वादशाक्षरचिन्तनम् ।
चिन्तनादेव मर्त्याना सिद्धिर्भवति हीप्सिता ॥३५

चातुर्मास्य मे विशेष रूप से यह ब्रह्मज्ञान के प्रदान करने वाला और मन के सभी चिन्तित अभीष्टो के प्रदान करने वाला हुआ करता है। इस अक्षर से समुत्पन्न स्तोत्र का जो सदा समाश्रय किया करता है और मन, वाणी तथा कर्म के द्वारा इस का ध्यान रखता है उसका फिर इस ससार मे पुनर्जन्म नही होता है। द्वादश अक्षरों से सयुक्त और द्वादश चक्रो से यह भूषित है। जो भगवद्भक्ति मे परायण मनुष्य विष्णु के मास में इन द्वादश नामो को कहकर शालग्राम की सेवा मे अघो के हरण करने वालो को समर्पित कर देता है उसको दिवस-दिवस मे द्वादश दिन का फल हुआ

करता है। द्वादश अक्षरों का माहात्म्य ऐसा अद्भुत है कि यह वर्णन नहीं किया जा सकता है। जिस शेष के एक सहस्र जिह्वाऐं हैं उनके द्वारा वह भी नहीं वर्णन कर सकता है और चार मुखों वाले ब्रह्मा के द्वारा भी नहीं वर्णन किया जा सकता है। यह लोक मे महामन्त्र है। इस का किया हुआ जाप, ध्यान, स्तवन सभी मासों मे पापों का हनन करने वाला होता है। चातुर्मास्य मे इसका विशेष फल हुआ करता हैं यह वेदों का और अनेक पुराणों का तथा समस्त स्मृतियों का द्वादशाक्षर का चिन्तन करना परम रहस्य होता है। इसके केवल चिन्तन करने ही से मनुष्यों को ईप्सित सिद्धि हो जाया करती है ॥२९-३५॥

पुण्यदानेन जाप्येन मुक्तिर्भवति शाश्वती ।
वर्णैस्तथाश्रमैरेव प्रणवेन समन्वितः ॥३६
जपैर्ध्यानैः शुभपरं मोक्षं यास्यतिनिश्चितम् ।
शूद्राणाञ्चापि नारीणां प्रणवेन विवर्जितः ॥३७
प्रकृतीनां च सर्वासां न मन्त्रो द्वादशाक्षरः ।
न जपो न तपः कार्यं कायक्लेशाद्विशुद्धिता ॥३८
विप्रभक्त्या च दानेन विष्णुध्यायेन सिध्यति ।
तासां गंत्रो रामनाम ध्येयः कोट्यधिको भवेत् ॥३९
रामेति द्व्यक्षरजपः सर्वपापामनोदकः ।
गच्छंस्तिष्ठञ्छयानो वा मनुजोरामकीर्तनात् ॥४०
इहनिर्वृतिमायाति प्रान्ते हरिगणो भवेत् ।
रामेतिद्व्यक्षरो मन्त्रो मन्त्रकोटिशताधिकः ॥४१
सर्वासां प्रकृतीनाञ्च कथितः पापनाशकः ।
चातुर्मास्येऽस्य सम्प्राप्ते सोप्यनन्तफलप्रदः ॥४२
चातुर्मास्ये महापुण्ये जप्यते भक्तितत्परैः ।
देववन्निष्फलं तेषां यमलोकस्य सेवनम् ॥४३

पुण्य दानों से—जाप से शाश्वती मुक्ति हुआ करती है। सब वर्णों के द्वारा तथा समस्त आश्रमों के द्वारा प्रणव से युक्त जप, ध्यान से शुभ परायण लोग निश्चित मोक्ष को प्राप्त हो जाया करेंगे। प्रणव से रहित

इस मन्त्र का जाप शूद्र वर्ण वाले एवं नारीगण भी करके मोक्ष की प्राप्ति कर लिया करते हैं। सब प्रकृतियों का यह द्वादशाक्षर मन्त्र नहीं है। सबको इसका जप या तप नहीं करना चाहिए। काय क्लेश से विशुद्धिता प्राप्त करके विप्रों की भक्ति, दान और भगवान् श्री विष्णु के ध्यान से ही इसकी सिद्धि होती है। उन का तो केवल श्रीराम का नाम ही महा मन्त्र है। इसका ही ध्यान शेष सबको करना चाहिए। यह करोड़ों गुना अधिक हुआ करता है ।।३६-३९।। "राम"—इन दो अक्षरों का जाप समस्त पापों का अपमोदन करने वाला होता है। गमन करते हुए, स्थित रहते हुए, शयन करते हुए मनुष्य श्री राम नाम के कीर्तन से इस संसार में निर्वृत्ति को प्राप्त हो जाया करता है और अन्त में श्री हरि का पद प्राप्त होजाता है। 'राम'—यह दो अक्षरों वाला मन्त्र सैकड़ों करोड़ मन्त्रों से भी अधिक होता है। यह सभी प्रकृतियों वाले प्राणियों के लिये पापों का नाश करने वाला कहा गया है। यह भी चातुर्मास्य के प्राप्त होने पर अनन्त फलों का प्रदान करने वाला होता है ।।४०-४३।।

न रामादधिकं किञ्चित्पठनं जगती तले ।
रामनामाश्रया ये वै न तेषां यमयातना ।।४४
ये च दोषा विघ्नकरा मृतका विग्रहाश्चये ।
रामनाम्नैव विलयं यान्तिनात्र विचारणा ।।४५
रमते सर्वभूतेषु स्थावरेषु चरेषु च ।
अन्तरात्मस्वरूपेण यच्च रामेति कथ्यते ।।४६
रामेति मन्त्रराजोऽयं भयव्याधिविदूषकः ।
रणे विजयदश्चापि सर्वकार्यार्थसाधकः ।।४७
सर्वतीर्थफलप्रोक्तो विप्राणामपि कामदः ।
रामचन्द्रेति रामेति रामेति समुदाहृतः ।।४८
द्व्यक्षरो मन्त्रराजोऽयं सर्वकार्यकरो भुवि ।
देवाऽपि प्रगायन्ति रामनाम गुणाकरम् ।।४९

चातुर्मास्य के महान् पुण्यों वाले समय में भक्ति में परायण मनुष्यों द्वारा इसका जाप किया जाता है। उनको देवों के ही समान यमलोक

का सेवन निष्फल हुआ करता है। इस जगतीतल में श्रीराम के शुभ नाम से अधिक अन्य कुछ भी पठन करने का नहीं है। जो केवल श्री राम के परम शुभ नाम का ही समाश्रय लेलिया करते हैं उनको यम की यातना नहीं होती है। जो भी दोष हैं या विघ्नों के करने वाले हैं, मृतक तथा विग्रह हैं वे सभी श्री राम के नाम ही से विलय को प्राप्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नहीं है। यह श्रीराम समस्त प्राणियों में चाहे स्थावर हो या जङ्गम हो, अन्तरात्मा के स्वरूप से रमण किया करते हैं जो भी 'श्री राम' यह कहा जाया करता है। "श्री राम" यह भगवन्नाम ही महा मन्त्र राज है जो समस्त भयों और व्याधियों का विनाशक होता है। यही मन्त्रराज रण स्थल में भी विजय के प्रदान करने वाला होता है और समस्त कार्यों का साधन करने वाला है। यह समस्त तीर्थों का फल प्रदान करने वाला कहा गया है। यह विप्रों को भी कामनाओं का प्रदाता होता है जिस समय 'श्री राम चन्द्र', श्रीराम, 'श्रीराम', इस प्रकार से नाम का मुख से उच्चारण किया जाता है सब मनोरथ पूर्ण हो जाया करते हैं। यह केवल दो ही अक्षरों वाला मन्त्रराज है जो कि इस भूमण्डल में सभी कार्यों की सिद्धि कर देने वाला होता है। वन गुणों की खान 'श्रीराम' — इस नाम का देवगण भी गायन किया करते हैं—इतना महामहिमा से युक्त यह नाम है ॥४४-४६॥

तस्मात्त्वमपि देवेशिरामनाम सदा वद।
राम नाम जपेद्यो वै मुच्यते सर्व किल्बिषैः ॥५०
सहस्रनामज पुण्य रामनाम्नैव जायते।
चातुर्मास्ये विशेषेण तत्पुण्य दशधोत्तर ॥५१
हीनजातिप्रजातानां महद्दुर्हानि पानकम् ॥५
रामोऽह्यर्यविम्भमिदनमयम्वतेजमाव्याप्यजनान्तरात्मना।
पुनातिजन्मान्तरवानतानिस्थूलानिसूक्ष्माणिक्षणाच्चदग्धा ॥

इसलिये हे देवि! आप भी सदा श्रीराम के परम शुभ नाम का उच्चारण किया करो। जो भी कोई श्रीराम के शुभ नाम का जप किया करता है वह समस्त किल्विषों से मुक्त हो जाया करता है ॥५०॥

एक सहस्र अन्य भगवन्नामों के लेने से जो पुण्य-फल होता है वह इस एक ही 'राम'—इस नाम के मुख से उच्चारण करने पर हो जाया करता है। चातुर्मास्य में विशेष रूप से इसका दश गुना अधिक पुण्य होता है। जो हीन जातियों में जन्म ग्रहण करने वाले मनुष्य हैं उनके महान् पातक को यह दग्ध कर दिया करता है ॥५१-५२॥ यह श्री राम का परम पवित्र शुभ नाम इस समय विश्व को अपने तेज से व्याप्त करके जनों के अन्तरात्मा के द्वारा अन्य जन्मों के भी स्थूल एवं सूक्ष्म समस्त पातकों को एक ही क्षण में दग्ध कर के सबको पवित्र कर दिया करता है ॥५३॥

---

## ४६—पञ्चाक्षरमन्त्रमाहात्म्यवर्णन

ज्योतिर्मात्रस्वरूपाय निर्मलज्ञान चक्षुषे ।
नमः शिवाय शान्ताय ब्रह्मणे लिङ्गमूर्तये ॥१
आख्यातं भवता सूत विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।
समस्ताघहरं पुण्यं समासेन श्रुतञ्चनः ॥२
इदानीं श्रोतुमिच्छामो माहात्म्यं त्रिपुरद्विषः ।
तद्भक्तानाञ्च माहात्म्यमशेषाघहरम्परम् ॥३
तन्मन्त्राणाञ्च माहात्म्यं तथैव द्विजसत्तम !।
तत्कथायाश्चतद्भक्तेः प्रभावमनुवर्णनम् ॥४
एतावदेव मर्त्यानां परं श्रेयः सनातनम् ।
यदीश्वरकथायां वै जाता भक्तिरहैतुकी ॥५
अतस्तद्भक्तिलेशस्य माहात्म्यं वर्ण्यते मया।
अपि कल्पायुषा नाऽलं वक्तुं विस्तरतः क्वचित् ॥६
सर्वेषामपि पुण्यानां सर्वेषां श्रेयसामपि ।
सर्वेषामपि यज्ञानां जपयज्ञः परः स्मृतः ॥७

मङ्गलाचरण—ज्योति ही जिसका स्वरूप है तथा निर्मल ज्ञान के नेत्र वाले, परम शान्त स्वरूप से युक्त, लिंग की मूर्ति वाले ब्रह्म श्री शिव भगवान् की सेवा में नमस्कार समर्पित है ॥१॥ ऋषियों ने कहा—हे श्री

सूतजी ! आपने भगवान श्री विष्णु का परमोत्तम माहात्म्य का वर्णन किया जो समस्त पापों का हरण करने वाला है। हम सब ने संक्षेप मे उसका श्रवण किया है ॥२॥ अब हम सब त्रिपुरासुर के हन्ता श्री शिव का महात्म्य सुनना चाहते है। उनके भक्तो का माहात्म्य अशेष अघो का हरण करने वाला है। हे द्विज श्रेष्ठ ! उनके मन्त्रो का माहात्म्य, उनकी कथा और भक्ति प्रभाव का मनु वर्णन कीजिए। श्री सूतजी ने कहा—मनुष्यो का इतना यही परम सनातन श्रेय होता है कि उनकी ईश्वर की कथा मे बिना हेतु वाली भक्ति उत्पन्न हो जावे। इसीलिये उनकी भक्ति के लेश का माहात्म्य मेरे द्वारा वर्णन किया जाता है। इसका पूर्ण विस्तार से वर्णन तो एक कल्प की आयु मे भी कभी कहा नहीं जा सकता है। समस्त प्रकार के पुण्यो और सभी तरह के श्रेयो एवं सम्पूर्ण यज्ञो मे यह नाम का यज्ञ ही परम प्रमुख बताया गया है ॥३-७॥

तत्रादौ जपयज्ञस्य फलं स्वस्त्ययनं महत् ।
शैवं षडक्षरं दिव्यं मन्त्रमाहुर्महर्षयः ॥८
देवानां परमो देवो यथा वै त्रिपुरान्तकः ।
मन्त्राणां परमो मन्त्रस्तथा शैवः षडक्षरः ॥९
एष पञ्चाक्षरो मन्त्रो जप्तृणां मुक्तिदायकः ।
संसेव्यते मुनिश्रेष्ठैरशेषैः सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥१०
अस्यैवाक्षरमाहात्म्यं नालम्वक्तुं चतुर्मुखः ।
श्रुतयो यत्र सिद्धान्तं गताः परम निर्वृताः ॥११
सर्वज्ञः परिपूर्णश्च सच्चिदानन्दलक्षणः ।
स शिवो यत्र रमते शैवे पञ्चाक्षरे शुभे ॥१२
एतेन मन्त्रराजेन सर्वोपनिषदात्मना ।
लेभिरे मुनयः सर्वे परब्रह्म निरामयम् ॥१३
नमस्कारेण जीवत्वं शिवेऽत्र परमात्मनि ।
ऐक्यङ्गतमतोमन्त्रः परब्रह्ममयो ह्यसौ ॥१४

उसमे जप यज्ञ का फल महान् स्वस्त्ययन अर्थात् कल्याणकारी होता है। महर्षि गण छः अक्षर वाले शैव मन्त्र को ही परम दिव्य कहते हैं।

समस्त देवों में परम देव भगवान् त्रिपुरान्तक हैं उसी भाँति यह षडक्षर शैव मन्त्र सभी मन्त्रों मे प्रधान मन्त्र है। यह पाँच अक्षरों वाला मन्त्र ऐसा है कि जो इसका जप करने वाले पुरुष हैं उनको यह मुक्ति के देने वाला होता है। इसी लिये सिद्धि की आकांक्षा करने वाले समस्त श्रेष्ठ मुनियों के द्वारा इसका ससेवन किया जाया करता है ॥८-१०॥ इसी मन्त्र के अक्षर का माहात्म्य चतुर्मुख ब्रह्मा के द्वारा भी नहीं कहा जा सकता है। जिसमे सिद्धान्त को प्राप्त हुई श्रुतियाँ परम निवृत्त हो गई हैं। सबको जानने वाले, परिपूर्ण और घोर सत्, चित् एवं आनन्द के लक्षण वाले वह शिव स्वयं जिस पाँच अक्षरों से युत शुभ शैव मन्त्र मे रमण किया करते हैं। इस समस्त उपनिषदो के स्वरूप वाले मन्त्र राज के द्वारा सभी मुनियों ने निरामय परम ब्रह्म को प्राप्त किया था। इस परमात्मा *शिव से नमस्कार से जीवत्व ऐक्य को प्राप्त हुआ था अतएव यह मन्त्र* परब्रह्म मय है ॥११-१४॥

भवपाशनिबद्धानां देहिनां हितकाम्यया।
आहोंनमः शिवायेति मन्त्रमाद्य शिवः स्वयम् ॥१५
किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैः किं तीर्थैः किं तपोऽध्वरैः।
यस्योंनमः शिवायेति मन्त्रो हृदयगोचरः ॥१६
तावद्भ्रमन्ति संस्मरे दारुणे दुःखसंकुले।
यावन्नोच्चारयन्तीमं मन्त्रं देहभृतः सकृत् ॥१७
मन्त्राधिराजराजोऽयं सर्ववेदान्तशेखरः।
सर्वज्ञाननिधानश्च सोऽयश्चैव षडक्षरः ॥१८
कैवल्यमार्गदीपोऽयमविद्या सिन्धुवाडवः।
महापातकदावाग्निः सोऽयं मन्त्रः षडक्षरः ॥१९
तस्मात्सर्वप्रदो मन्त्रः सोऽयं पञ्चाक्षरः स्मृतः।
स्त्रीभिः शूद्रैश्च सङ्कीर्णैर्धार्यते मुक्तिकांक्षिभिः ॥२०
नास्यदीक्षान होमश्च न सस्कारो न तर्पणम्।
नकालोपदेशश्च सदाशुचिरयं मनुः ॥२१

भव के पाश में निरुद्ध देह धारियों के हितों की कामना से भगवान् शिव ने स्वयं आद्य मन्त्र "ॐ नमः शिवाय" यह मन्त्र कहा था। जिस पुरुष को "ॐ नमः शिवाय" यह मन्त्र हृदय गोचर होता है उस को अन्य बहुत से मन्त्रों से, तीर्थों से, तपश्चर्याओं से और अध्वरों से क्या प्रयोजन है? अर्थात् फिर किसी मन्त्रादि की आवश्यकता ही नहीं है। ये देहधारी तभी तक इस दारुण और अनेक दुःखों से सकुल संसार में भ्रमण किया करते हैं जब तक एक बार भी इस महामन्त्र का मुख से उच्चारण नहीं किया करते हैं। यह षडक्षर मन्त्र अन्य मन्त्रों के अधिराजों का भी राजा है। समस्त वेदान्तों का शिरोमणि है। सम्पूर्णज्ञान का निधान है। यह मन्त्र कैवल्य (मोक्ष) के मार्ग का प्रदीप है और अविद्या सिन्धु का वाडव है। यह मन्त्रराज महान् पातकों को दग्ध करने के लिये दावाग्नि के समान है। ऐसा ही महामहिमामय यह छै अक्षरों वाला मन्त्र है। इसी लिये सभी सुख के प्रदान करने वाला यह पञ्चाक्षर मन्त्र कहा गया है। जो भी मुक्ति की इच्छा रखने वाले स्त्रीगण शूद्र और सङ्कीर्ण जाति वाले प्राणी हैं उन सभी के द्वारा यह धारण किया जाता है। न तो इस मन्त्रराज की कोई दीक्षा होती है—न होम होता है—न कोई संस्कार ही होता है और न तर्पण हुआ करता है। इस मन्त्र का कोई विशेष काल भी नहीं होता है और न कोई उपदेश ही होता है। यह मन्त्र तो सदा ही शुचि रहा करता है ॥१५-२१॥

महापातकविच्छित्त्यै शिवइत्यक्षरद्वयम्।
अलं नमस्क्रियायुक्तो मुक्तये परिकल्पते ॥२२

उपदिष्टः सद्गुरुणा जप्तः क्षेत्रे च पावने।
सद्योयथेप्सितां सिद्धिं ददातीति किमद्भुतम् ॥२३

अतः सद्गुरुमाश्रित्य ग्राह्योऽयं मन्त्रनायकः।
पुण्यक्षेत्रेषु जप्तव्यः सद्यः सिद्धिं प्रयच्छति ॥२४

गुरवो निर्मलाः शान्ताः साधवो मितभाषिणः।
कामक्रोधविनिर्मुक्ताः सदाचारा जितेन्द्रियाः ॥२५

एतैः कारुण्यतो दत्तो मन्त्रः क्षिप्रं प्रसिद्धयति ।
क्षेत्राणि जपयोग्यानि समासात्कथयाम्यहम् ॥२६

प्रयागं पुष्करं रम्यं केदारं सेतुबन्धनम् ।
गोकर्णं नैमिषारण्यं सद्यः सिद्धिकरं नृणाम् ॥२७

अत्रानुवर्ण्यते सद्भिरितिहासः पुरातनः ।
असकृद्वा सकृद्वापि शृण्वतां मङ्गलप्रदः ॥२८

महान् पातकों के विच्छेद करने के लिये "शिव" ये दो अक्षर ही पर्याप्त होते हैं। और ये ही शिव दो अक्षर यदि नमस्क्रिया से युक्त हों अर्थात् 'नमः शिवाय' इस रूप में हो तो फिर यह मुक्ति के लिये परिकल्पित हो जाता है। यदि यह किसी सद्गुरु के द्वारा उपदिष्ट हो जावे और फिर किसी पावन क्षेत्र में इस का जाप किया जावे तो यही मन्त्र तुरन्त ही ईप्सित सिद्धियों के प्रदान कर दिया करता है—इसमें कुछ भी अद्भुतता नहीं है। इसीलिये किसी सद्गुरु के समाश्रय प्राप्त करके इस मन्त्रों में शिरोमणि मन्त्र को ग्रहण करना चाहिए। पुण्य क्षेत्र में ही इसका जाप करना चाहिए जिससे यह मन्त्र तुरन्त ही सिद्धि को प्रदान किया करता है। जो गुरु वृन्द निर्मल—परमशान्त—साधुवृत्ति वाले मितभाषण करने वाले—काम, क्रोध से विशेष रूप से निर्मुक्त-सदाचरण से सम्पन्न-इन्द्रियों को जीतने वाले हों। ऐसे गुरुगणों के द्वारा करुणा के भाव से उपदेश किया हुआ मन्त्र शीघ्र ही सिद्धि देने वाला होता है। अब हम मन्त्रों के जाप करने के योग्य क्षेत्रों का वर्णन संक्षेप से करते हैं ॥२२-२६॥ प्रयाग-रम्यपुष्कर-केदार-सेतुबन्ध-गोकर्ण-नैमिषारण्य ये क्षेत्र मनुष्यों को तुरन्त ही सिद्धि करने वाले होते हैं ॥२७॥ यहाँ पर एक परम पुरातन इतिहास सत्पुरुषों के द्वारा वर्णित किया जाता है। इसको अनेक बार या एकबार ही श्रवण करने वालों को यह मङ्गल प्रदान करने वाला होता है ॥२८॥

मथुरायां यदुश्रेष्ठो दाशार्ह इति विश्रुतः ।
बभूव राजा मतिमान्महोत्साहो महाबलः ॥२९

शास्त्रज्ञो नयवाच्छूरोधैर्यवानमितद्युति. ।
अप्रधृष्य सुगम्भीरः सग्रामेष्वनिवर्तित. ॥३० ॥
महारथो महेष्वासो नानाशास्त्रार्थ कोविदः ।
वदान्यो रूपसम्पन्नो युवा लक्षण सयुतः ॥३१
स काशिराजतनयामुपयेमे वराननाम् ।
कान्ता कलावतीना रूपशीलगुणान्विताम् ॥३२
कृतोद्वाह स राजेन्द्र सप्राप्य निजमन्दिरम् ।
रात्रौ ता शयनारूढा सङ्गमाय समाह्वयत् ॥३३
सा स्व भर्त्रा समाहूता बहुश प्रार्थिता सती ।
नवबन्ध मनस्तस्मिन्नचागच्छत्तदन्तिकम् ॥३४
सङ्गमाय यदा हूता नागता निजवल्लभा ।
बलादाहर्तु कामस्तामुदतिष्ठन्महीपति. ॥३५

मथुरा मे यदुओ मे श्रेष्ठ दाशार्ह विश्रुत था। यह महान् बल और उत्साह वाला बहुत ही मतिमान् राजा हुआ था। यह राजा शास्त्रो का ज्ञाता, नीति जानने वाला अति शूरवीर अमितयुक्ति से सम्पन्न-धैर्य वाला प्रधर्षण न करने के योग्य, परम गम्भीर और सग्रामो मे लौटकर न प्राने वाला था। यह महारथी—महान् धनुधारी और नाना शास्त्रो के अर्थों का कोविद था। यह भूपति परम दानशील रूप लावण्य से युक्त युवा और सभी सुलक्षणो से सम्पन्न था। उस राजा ने श्रेष्ठ सुन्दर मुख वाली काशिराज की पुत्री के साथ विवाह किया था। यह अत्यन्त कान्त और रूप तथा शील एव गुणो से अन्वित थी और इसका नाम कलावती था। विवाह करके वह राजेन्द्र अपने मन्दिर मे प्राप्त हो गया था। रात्रि मे शयन में समारूढ हुई उसको राजा ने सङ्गम करने के लिये अपने समीप बुलाया था। वह अपने स्वामी के द्वारा बुलाई भी गयी और बहुत बार उस से प्रार्थना भी की गयी थी किन्तु उसने उस सङ्गम करने के लिये अपने मन की इच्छा नही की थी और वह उस राजा के समीप मे भी नही गयी थी। जब सगम करने के लिये समाहूत होने पर भी अपनी वल्लभा को न समागत देखा तो उसको बलपूर्वक अपने

समीप में लाने की इच्छा वाला वह राजा स्वयं ही उठकर खड़ा हो गया था ॥२६-३५॥

मा मा स्पृश महाराज ! कारणज्ञां व्रतेऽस्थिताम् ।
धर्माधर्मौ विजानासि मा कार्षीः साहसं मयि ॥३६
यत्रचित्तप्रियेण भुक्तं यद्रोचते तु मनीषिणाम् ।
दम्पत्योः प्रीतियोगेन सङ्गमः प्रीतिवर्द्धनः ॥३७
प्रियं यदा मे जायेत तदा सङ्गस्तु ते मयि ।
का प्रीतिः किं सुखं पुंसां बलाद्भोगेन योषिताम् ॥३८
अप्रीतां रोगिणीं नारीमन्तर्वत्नीं धृतव्रताम् ।
रजस्वलामकामाञ्च न कामेत बलात्पुमान् ॥३९
प्रीणनं लालनं पोषं रञ्जनं मार्दवं दयाम् ।
कृत्वा वधूमुपगमेद्युवतीं मनाम्पतिः ।
युवती कुसुमे चैव विधेयं सुखमिच्छता ॥४०
इत्युक्तोऽपितयासाध्व्यासराजास्मरविह्वलः ।
बलादाकृष्यतां हस्तेपरिरेभेरिरंसया ॥४१

रानी ने कहा—हे महाराज ! आप मेरा स्पर्श न कीजिए क्योंकि मैं कारण को जानने वाली हूँ और व्रत में इस समय में समास्थित हूँ। आप तो स्वयं ही विज्ञ हैं और धर्म तथा अधर्म को भली भाँति जानते हैं। मेरे विषय में इस समय आप साहस न करिये ॥३६॥ मनीषियों को जो अच्छा लगता है वहीं पर प्रिय के द्वारा भोग किया गया है। दम्पति का प्रीति के योग से जो सङ्गम होता है वही प्रीति का वर्धन करने वाला हुआ करता है। जिस समय में मुझे प्रिय लगेगा उसी समय में मुझसे आपका संगम होगा। बलपूर्वक स्त्रियों के उपभोग करने से पुरुषों को क्या तो सुख प्राप्त होगा और दोनों में प्रीति ही होगी ॥३७-३८॥ पुरुष को चाहिए कि जो प्रीति रहित हो, रोगिणी हो, गर्भवती हो व्रत धारण करने वाली हो, रजस्वला हो और काम की वासना से रहित हो ऐसी स्त्री को बलपूर्वक संगम करने की इच्छा न करे ॥३९॥ प्रेम वाले पति को चाहिए कि भार्या का भली-भाँति

प्रीणन, लालन, पोषण, रञ्जन, मार्दव और दया की भावना करके ही युवती वधू के साथ उपगम करे। सुख की इच्छा रखने वाले पुरुष को चाहिए कि युवती में और कुसुम में ऐसा ही व्यवहार करे। इस प्रकार से उस साध्वी के द्वारा बहुत कुछ कहे जाने पर भी काम से विह्वल उस राजा ने रमण करने की इच्छा से बलपूर्वक उसको अपने समीप में हाथों से खींचकर परिरम्भण किया था। जैसे ही उस का स्पर्श ही केवल उसने किया था कि देखा कि वह सहसातप हुए लोहे के पिण्ड के समान थी और अपने आपको मानो जल-सी रही थी। राजा ने भय से विह्वल हो कर तुरन्त ही उसका त्याग कर दिया था ॥४०-४१॥

तांस्पृष्टमात्रांसहसातप्तायः पिण्ड सन्निभाम् ।
निर्दहन्तीमिवात्मानं तत्याज भयविह्वलः ॥४२
अहो सुमहदाश्चर्यमिदं दृष्टं तव प्रिये ।
कथमग्निसमं जातं वपुः पल्लवकोमलम् ॥४३
इत्यं सुविस्मतो राजा भीतः सा राजवल्लभा ।
प्रत्युवाच विहस्यैनं विनयेन शुचिस्मृता ॥४४
राजन्ममपुरा बाल्ये दुर्वासा मुनिपुङ्गवः ।
शैवी पञ्चाक्षरी विद्यां कारुण्येनोपदिष्टवान् ॥४५
तेन मन्त्रानुभावेन ममांगं कलुषोज्झितम् ।
स्प्रष्टुं न शक्यते पुम्भिः सपापैदवर्जितैः ॥४६
त्वया राजन्प्रकृतिनाकुलटागणिकादयः ।
मदिरास्वादनिरता निषेव्यन्ते सदास्त्रियः ॥४७
न स्नानं क्रियते नित्यं न मन्त्रो जप्यते शुचिः ।
नाराध्यते त्वयेशानः कथं मांस्प्रष्टुमर्हसि ॥४८
तां समाश्वास्य सुश्रोणि ! शैवी पञ्चाक्षरी शुभाम् ।
विद्याविध्वस्तपापोऽहं त्वयेच्छामि रतिं प्रिये ॥४९

राजा ने कहा—हे प्रिये ! मैंने आज तुम्हारा आपका यह आश्चर्य देखा है। आपका यह पल्लव के समान परम कोमल शरीर ऐसा अग्नि के समान कैसे इस समय हो गया है ? इस तरह से वह राजा बहुत ही

विस्मित हो गया था और भयभीत हो गया था। वह राज वल्लभा हँसकर शुचि स्मित वाली विनय के साथ इससे प्रति उत्तर देने लगी ॥४३-४४॥ रानी ने कहा—हे राजन्! पहिले मेरे बचपन में ही मुनियों में श्रेष्ठ दुर्वासाजी ने करुणा करके पञ्चाक्षरी शैवी विद्या का मुझे उपदेश दिया था। उस मन्त्र के ही अनुभाव से यह मेरा अंग कल्मषों से परित्यक्त हो गया है। इस मेरे अंग को पापों से युक्त पुरुषों के द्वारा जो कि मन्त्र वर्जित हैं स्पर्श नहीं किया जा सकता है। हे राजन्! आपने प्रवृत्ति से ही कुलटा और गणिका आदि का उपभोग किया है और सदा ही मदिरा के समास्वादन में आप निरत रहे हैं। न तो आप नित्य स्नान ही करते हैं और ना कभी पवित्र होकर आप के द्वारा मन्त्र का जाप ही किया जाता है। आप कभी ईशान प्रभु का समाराधन भी नहीं किया करते हैं तो आप ऐसे समाचरणों वाले होकर मुझे स्पर्श करने के योग्य कैसे हो सकते हैं? राजा ने कहा—हे सुश्रोणि! आप अब मुझे वह परम शुभ शैवी पञ्चाक्षरी विद्या बतलाइये। हे प्रिये! विद्या के द्वारा विध्वस्त पापों वाला होकर मैं तेरे के साथ रमण करने की इच्छा करता हूँ ॥४५-४९॥

नाहं तवोपदेशं वै कुर्यां मम गुरुर्भवान्।
उपातिष्ठ गुरुराजं गर्गं मन्त्रविदांवरम् ॥५०
इति सम्भाषमाणौ तौ दम्पती गर्गसन्निधिम्।
प्राप्य तच्चरणौ मूर्ध्ना ववन्दाते कृताञ्जली ॥५१
अथ राजा गुरुं प्रीतमभिपूज्य पुनः पुनः।
समाचष्ट विनीतात्मा रहस्यात्ममनोरथम् ॥५२
कृतार्थं मां कुरु गुरो सम्प्राप्तं करुणार्द्रधीः।
शैवीं पञ्चाक्षरीं विद्यामुपदेष्टुं त्वमर्हसि ॥५३
अज्ञाज्ञात यदाज्ञातं यत्कृतं राजकर्मणा।
तत्पापं येन शुध्येत तन्मन्त्रं देहि मे गुरो ॥५४
एवमभ्यर्थितो राज्ञा गर्गो ब्राह्मणपुङ्गवः।
तौ निनायमहापुण्यं कालिन्द्यास्तटमुत्तमम् ॥५५

तत्र पुण्यतरोर्मूले निषण्णोऽथ गुरुः स्वयम् ।
पुण्यतीर्थजले स्नातं राजानं समुपोषितम् ॥५६

प्राङ्मुखं चोपवेश्याथ नत्वा शिवपदाम्बुजम् ।
तन्मस्तके करं न्यस्य ददौ मन्त्रं शिवात्मकम् ॥५७

रानी ने कहा—मैं आपको उपदेश नही करूंगी, आप मेरे गुरु हैं। मन्त्रवेत्ताओ मे वरिष्ठ गर्ग मुनि गुरु के समीप मे उपस्थित होइये। सूत जी ने कहा—इस प्रकार से परस्पर मे सम्भाषण करते हुए वे दम्पती गर्ग मुनि के समीप मे प्राप्त हुए थे। वहाँ पहुचकर दोनों ने हाथ जोड़ कर उनके चरणो मे शिर के बल प्रणाम किया था। इसके अनन्तर राजा ने परम प्रसन्न हुए गुरुदेव की बारम्बार पूजा करके अत्यन्त विनीत भाव वाला होकर उसने एकान्त मे अपना मनोरथ उनसे कहा था। राजा ने कहा—हे गुरुदेव! आप तो करुणा से युक्त बुद्धि वाले हैं। आपकी सेवा मे सम्प्राप्त हुए मुझको कृतार्थ कीजिए। आप मुझे पञ्चाक्षरी शैवी विद्या का उपदेश करने के योग्य हैं। हे गुरुवर्य! राजकर्म से मैंने बिना जाना हुआ तथा ज्ञात भी जो भी कुछ पाप किया है वह जिसके भी द्वारा शुद्ध हो जावे वही मन्त्र का उपदेश अब मुझे आप कर दीजिये। इस प्रकार से राजा के द्वारा प्रार्थना किये गये ब्राह्मणों मे परम श्रेष्ठ गर्ग मुनि उन दोनो को महापुण्यमय कालिन्दी के उत्तम तट पर ले गये थे। वहाँ पर पुण्य तरु के मूल मे गुरु स्वयं बैठ गये थे, और उस राजा के मस्तक पर अपना कर कमल रखकर उस शिव स्वरूप मन्त्र को उसको दे दिया था ॥५०-५७॥

तन्मन्त्रधारणादेव तद्गुरोर्हस्तसंगमात् ।
निर्ययुस्तस्य वपुषो वायसाः शतकोटयः ॥५८

ते दग्धपक्षाः क्रोशंतो निपतन्तो महीतले ।
भस्मीभूतास्ततः सर्वे दृश्यन्तेऽस्मसहस्रशः ॥५९

दृष्ट्वा तद्वायसकुलं दह्यमानं सुविस्मितौ ।
राजा च राजमहिषी तं गुरुं पर्यपृच्छताम् ॥६०

भगवन्निदमाश्चर्यं कथं जातं शरीरतः ।
वायसानां कुलं दृष्टं किमेतत्साधु भण्यताम् ॥६१
राजन्भवसहस्रेषु भवता परिधावता ।
सञ्चितानि दुरन्तानि सन्ति पापन्यनेकशः ॥६२
तेषु जन्मसहस्रेषु यानि पुण्या निसन्ति ते ।
तेषामाधिक्यतःक्वापि जायते पुण्ययोनिषु ॥६३

उस शैव मन्त्र के धारण करने ही से और उनकी गुरुदेव के हाथ के संगम से ही उसने शरीर से सैकड़ों करोड़ कौए निकले थे । वे जले हुए पंखो वाले चीखते हुए तथा भूमि के तल में निपतित होते हुए सहस्रों ही भस्मी भूत होगये थे ऐसे दिखलाई दिये थे । उस वायसों के समूह को दग्धीभूत हुआ देखकर वे दोनों ही परम विस्मित हुए थे । तथा राजा और रानी दोनो ने ही उन श्री गुरुदेव से पूछा था—हे भगवन् ! यह परम आश्चर्य इस शरीर से कैसे हुआ है जो कि यह कौओं का समुदाय इस शरीर से समुत्पन्न हुआ, यह क्या मामला है, कृपया इसे आप भली भांति बतलाइये । श्री गुरुदेव ने कहा—हे राजन् ! आपने अपने सहस्रों जन्मों मे दौड लगाते हुए अनेक परम दुरन्त पाप सञ्चित किये थे । उन सहस्रों जन्मो मे जो कुछ तुम्हारे पुण्य थे उनको अधिकता से कहीं पुण्य योनियो मे जन्म लेते हैं ॥५८-६३॥

तथा पापीयसी योनिं क्वचित्पापेन गच्छति ।
साम्ये पुण्यान्ययोश्चैव मानुषीं योनिमाप्तवान् ॥६४
शैवी पञ्चाक्षरी विद्या यदा ते हृदयं गता ।
अघानां कोटयस्त्वत्तः काकरूपेण निर्गता ॥६५
कोटयो ब्रह्महत्यानामगम्यागम्य कोटयः ।
स्वर्णस्तेयसुरापानभ्रूणहत्यादिकोटयः ।
भवकोटिसहस्रेषु येऽन्ये पातकराशयः ॥६६
क्षणाद्भस्मीभवन्त्येव शैवेपञ्चाक्षरे धृते ।
आसंस्तवाद्य राजेन्द्र ! दग्धाः पातककोटयः ॥६७
अनया सह पूतात्मा विहरस्व यथासुखम् ।

इत्याभाष्य मुनिश्रेष्ठस्तंमन्त्रमुपदिश्य च ॥६८
ताभ्यां विस्मितचित्ताभ्या सहितः स्वगृहं ययौ ।
गुरुवर्यमनुज्ञाप्य मुदितौ तौ च दम्पती ॥६९
ततः स्वभवनं प्राप्यरेजतु.रम महाद्युती ।
राजादृढं समाश्लिष्य पत्नी चन्दनशीतलाम् ॥७०
संतोष परमं लेभे नि स्वा प्राप्य यथा धनम् ॥७१
अशेषवेदोपनिषत्पुराण शास्त्रावतंसोऽयमघान्तकारी ।
पञ्चाक्षरस्यैयमहाप्रभावोमयासमासात्कथितोवरिष्ठः ॥७२

तथा कहीं पर पाप से पापीयमी योनि को जाते ही जब पाप और पुण्य दोनों ही समान अवस्था मे प्राप्त हुए हैं तभी आपने इस मानुषी योनि को प्राप्त किया है ॥६४॥ यही पञ्चाक्षरी विद्या जिस समय मे आपके हृदय मे पहुची तो तुम्हारे जो करोड़ो पाप थे वे सब अब आपके शरीर से वायसो के रूप मे निकले पड़े हैं। इनमे करोडो ही तो ब्रह्म हत्या के पाप हैं और करोडो ही अगम्य स्त्रियो मे गमन करने के पाप है, स्वर्ण की चोरी, मदिरा-पान, हत्या आदि के भी करोडो पापो के समूह पाँच पचाक्षरी मन्त्र के धारण करते ही क्षण भर मे भस्मीभूत हो गये। हे राजन् ! आपके करोडो पातको के समुदाय दग्ध होगये। अब आप परम पवित्र हो गये है। आप अपनी इस भार्या के साथ सुखपूर्वक विहार कीजिए। यह कह कर उस श्रेष्ठ मुनि ने उस मन्त्र का उपदेश दिया। फिर विस्मित चित्त वाले इन दम्पत्ति के साथ अपने गृह को वे चले गये। वे दम्पति भी गुरुदेव की अनुज्ञा प्राप्त कर परम प्रसन्न हो गये। फिर वे दोनो अपने अपने भवन मे समागत होकर महान् द्युति और शोभा से सम्पन्न हुए। राजा ने फिर उस चदन के समान शीतल अपनी पत्नी का भली भांति आलिंगन किया। उसे परम संतोष हो गया, जैसे कोई दरिद्र धन को पाकर महान् सतुष्ट हो जाता है। यह पचाक्षरी महामन्त्र का महान् प्रभाव है, जो सम्पूर्ण दोषो के नाश के लिए उपनिषद तुल्य वरिष्ठ है,सबवेद,शास्त्र, पुराणो का भूषण रूप एव विपत्तियो काअन्त करने वाला है इस वरिष्ठ उपाख्यान को मैंने सक्षेप मे कहा है।६४-७२।

# स्कन्द पुराण

## काशी खण्ड

### ४७—तीर्थाध्याय वर्णन

भृगुसूत महाभाग कथांश्रु तिसहोदराम् ।
या वै हृदिनिधायेह पुरुषः पुरुषार्थभाक् ॥१
ततः श्रीदर्शनानन्दसुधाधाराधुनी मुनिः ।
अवगाह्य सपत्नीकः परांमुदमवाप सः ॥२
वह्निकुण्डसमुद्भूता सूतनिर्मलमानस ।
शृणुष्वैकं पुराविद्भिर्भाषितं यत्सुभाषितम् ॥३
परोपकरणं येषां जागर्तिहृदये सताम् ।
नश्यन्ति विपदस्तेषां सम्पदःस्युः पदे पदे ॥४
तीर्थस्नानर्नसा शुद्धिर्बहुनानैर्न तत्फलम् ।
तपोभिरुग्रं स्तन्नाप्यमुपकृत्या यदाप्यते ॥५
परोपकृत्यायोधर्मोधर्मोदानादिसम्भवः ।
एकत्रतुलितो धात्रा तत्रपूर्वोऽभवद्गुरुः ॥६
परिनिर्मथ्य वाग्जालं निर्णीतमिदमेव हि ।
नोपकारात्परो धर्मो नापकारादघ परम् ॥७

महामुनि श्री पाराशर्य जी ने कहा—हे सुत सूत ! आप तो परम महान् भाग वाले हैं। अब श्रुति की ही सहोदर एक कथा का श्रवण करो जिसको हृदय मे धारण करके पुरुष इस ससार मे परमार्थ को प्राप्त करने का अधिकारी हो जाया करता है। इसके उपरान्त वह मुनि अपनी पत्नी के सहित श्री दर्शन के आनन्द सुधा की धारा धुनि में . . करके परम मुद को प्राप्त हुए थे ॥१-२॥ हे वह्नि ! कुण्ड से

समुत्पन्न होने वाले । आपका मन परम निर्मल है । हे सूत ! पुरा वेत्ताओं के द्वारा भाषित एक जो सुभाषित है उसका आप श्रवण कीजिए । जिन सत्पुरुषों के हृदय मे परायो के उपकार करने का भाव सदा जागरूक रहा करता है उनके विपदायें नष्ट हो जाया करती हैं और उनको पद-पद मे सम्पदायें उपस्थित रहा करती हैं ॥३-४॥ अनेक तीर्थों म स्नान करने से वह उस प्रकार की बुद्धि समुत्पन्न नही होती है और बहुत से दानों से भी वैसी बुद्धि नहीं हुआ करती है और न ऐसा फल ही प्राप्त होता है । परम तप से भी वह प्राप्त नही होता जो दूसरो के उपकार के करने से प्राप्त किया जाया करता है । परायो के उपकार से जो धर्म होता है वह धर्म और दानादि अन्य सुकृत्यो से समुत्पन्न होने वाला धर्म इन दोनों को धाता ने एक ही स्थान मे रखकर तोला था तो इन दोनो म उपकार से होने वाला धर्म ही गुरु हुआ था । इसलिये समस्त वाणियों में जाल का परिमन्थन करके यही निर्णय किया गया है कि परोपकार से अधिक श्रेष्ठ अन्य कोई भी धर्म नही है और दूसरो के अपकार करने से अधिक कोई भी अन्य महान् अघ नही होता है ॥५-७॥

उपकर्तु रगस्त्यस्यजातमेनस्त्रिदशनम् ।
क्वताद्दक्काशिजदुःख क्वताद्दक्श्रीमुखेक्षणम् ॥८
करिकर्णाग्रचपलञ्जीवितविविधवसु ।
तस्मात्परोपकरणकार्यमेक विपश्चिता ॥९
यल्लक्ष्मीनाममात्राध्या नरो ना माति कुत्रचित् ।
साक्षात्समीक्ष्य ता लक्ष्मी कृतकृत्योभवन्मुनिः ॥१०
गच्छन् यदृच्छयासोथदूराच्छ्रीशैलमैक्षत ।
यत्रसाक्षान्निवसतिदेव श्रीत्रिपुरान्तक ॥११
उवाच वचन पत्नीतदाप्रीतमनामुनि ।
इहस्थितैवपश्य त्व कान्तेकान्ततर परम् ॥१२
श्रीशैलशिखरश्रीमदिदन्तत्र्यद्विलोक्नात् ।
पुनर्भवोमनुष्याणाभवेऽननभवेत्कर्हिचित् ॥१३

गिरिश्चतुरशीत्यायं योजनानां हि विस्तृतः।
सर्वलिङ्गमयो यस्मादतः कुयात्प्रदक्षिणम् ॥१४

उपकार करने वाले महामुनि अगस्त्य जो का यह निदर्शन हो गया है। उस जैसा काशिज दुःख कहाँ है और वैसा भी सुख का ईक्षण कहाँ है? हाथी के कान के अग्रभाग के समान चपल यह जीवित और धन है। इसलिये विद्वान पुरुष को एक परायो का उपकार करना चाहिए। जो लक्ष्मी के नाम मात्र की प्राप्ति से मनुष्य कही पर भी नही समाता है, वह मुनि साक्षात् उस लक्ष्मी का समीक्षण करके कृत कृत्य हो गये थे। गमन करते हुए उसने सद्‌इच्छा से दूर से ही उस शैल को देखा था जहाँ पर श्री त्रिपुरान्तक देव साक्षात् निवास किया करते हैं। उस समय मे प्रीतिपूर्ण मन वाले मुनि अपनी पत्नी से यह वचन बोले थे—यही पर स्थिति होती हुई आप काल मे परम कालान्तर को देखो। यही श्री शैल का वह शिखर है जो श्री वाला है और जिसके विलोकन करने से इस ससार में मनुष्यो का पुनर्जन्म कभी भी कही पर नही होता है। यह गिरि चौरासी योजनो के विस्तार वाला है। यह सर्व लिंगमय है इसीलिए इस की प्रदक्षिणा करनी चाहिये ॥८-१४॥

किञ्चिद्विज्ञप्तुमिच्छामि यद्याज्ञा स्वामिनो भवेत्।
ब्रूते हि याऽननुज्ञाता पत्या सा पतिता भवेत् ॥१५
कियक्तुकामादेवि ! त्वब्रूहितस्त्वमशङ्किता।
न त्वादृशीनावाक्यहिपत्युः खेदायजायते ॥१६
तत. पप्रच्छ सा देवी प्रणम्य मुनिमानता।
सर्वपाञ्च हितार्थाय स्वसन्देहापनुत्तये ॥१७
श्रीशैलशिखरं दृष्ट्वा पुनर्जन्मनविद्यते।
इदमेव हि सत्यञ्चेत्किमर्थं काशिरिष्यते ॥१८
आकर्णय वरारोहे!सत्यं पृष्टं त्वयामले !।
निर्णीतमसकृच्चैतन्मुनिभिस्तत्त्वचिन्तकैः ॥१९
मुक्तिस्थानान्यनेकानि कृतस्तत्रापि निर्णयः।
तानि ते कथयाम्यत्र दत्तचित्ता भव क्षणम् ॥२०

लोपामुद्रा ने कहा—मैं कुछ जानने की इच्छा करती हूँ यदि स्वामी की आज्ञा मुझे प्राप्त हो जावे। जो पति की आज्ञा न प्राप्त करके ही बोलती है वह नारी पतित हो जाया करती है ॥१५॥ अगस्त्य मुनि ने कहा—हे देवि ! आप क्या बोलने की इच्छा वाली हैं ? आप निःशङ्कित होकर ही तत्व को बोलिये। आप जैसी पत्नियों का वचन कभी भी पति को खेद करने वाला नहीं हुआ करता है। इसके पश्चात् परम विनत होकर उस देवी ने मुनि को सर्व प्रथम प्रणाम किया था और फिर पूछा था जो कि सभी के हित के लिये था और अपने हृदय में स्थित सन्देह को दूर करने के लिए भी था। लोपामुद्रा ने कहा—श्री शैल शिखर का दर्शन करके पुनर्जन्म नहीं होता है—यही बात यदि सत्य है तो फिर काशि को किसलिये चाहा जाया करता है ? अगस्त्य मुनि ने कहा—हे अमले—हे वरारोहे ! आपने सत्य ही पूछा है तो अब श्रवण करो—तत्वों के ज्ञाता मुनिगण ने इसका कितनी ही बार निर्णय किया है कि मुक्ति के तो अनेक स्थान है। उसमें भी निर्णय किया गया है। उनको मैं यहाँ पर कहता हूँ। आप क्षण भर के लिये दत्त चित्त (सावधान) हो जाओ ॥१६-२०॥

प्रथमं तीर्थं राजन्तु प्रयागाख्यं सुविश्रुतम्।
कामिकं सर्वतीर्थानां धर्मकामार्थ मोक्षदम् ॥२१
नैमिषञ्च कुरुक्षेत्रं गङ्गाद्वारमवन्तिका।
अयोध्या मथुरा चैव द्वारकाप्यमरावती ॥२२
सरस्वतीसिन्धुसङ्गो गङ्गासागरसङ्गमः।
कान्ती च त्र्यम्बकञ्चापि सप्तगोदावरीतटम् ॥२३
कालञ्जरं प्रभासश्च तथा बदरिकाश्रमः।
महालयस्तथोङ्कारक्षेत्रं वै पौरुषोत्तमम् ॥२४
गोकर्णो भृगुकच्छश्च भृगुतुङ्गश्च पुष्करम्।
श्रीपर्वतादितीर्थानि धारातीर्थं तथैव च ॥२५
मानसान्यपि तीर्थानि सत्यादीनि च वै प्रिये।
एतानि मुक्तिदान्येव नात्र कार्या विचारणा ॥२६

गयातीर्थञ्च यत्प्रोक्तं तत्पितृणां हि मुक्तिदम्।
पितामहानामृणतो मुक्तास्तत्तनया अपि ॥२७

सबसे प्रथम तीर्थों का राजा प्रयाग नाम वाला बहुत प्रसिद्ध है। यह सब तीर्थों का कामिक है अर्थात् चाहने वाला है एवं समस्त तीर्थों को इच्छार्थ पूर्ण करने वाला है तथा धर्मार्थ काम और मोक्ष का प्रदान करने वाला है। अब अन्य विशेष तीर्थों के नामों का विवरण दिया जाता है जो मुक्ति के प्रदाता हैं—नैमिष—कुरुक्षेत्र—गङ्गा द्वार—अवन्तिका—अयोध्या—मथुरा—द्वारका—अमरावती—सरस्वती—सिन्धुसङ्ग—गङ्गा सागर—सगम—काञ्ची—त्र्यम्बक—सप्त गोदावरी तट, कालञ्जर—प्रभास—बदरिकाश्रम—महालय—ओङ्कार क्षेत्र—पौरुषोत्तम क्षेत्र—गोकर्ण—भृगुकच्छ—भृगुतुग—पुष्कर—श्री पर्वत आदि तीर्थ—धारा तीर्थ—मानस आदि तीर्थ—हे प्रिये! सत्यादि तीर्थ—ये सभी तीर्थ मुक्ति देने वाले हैं—इस विषय में तनिक भी विचारणा नहीं करनी चाहिए। गया तीर्थ जो कहा गया है वह उसके पितृगणों को ही मुक्ति का देने वाला होता है। उनके पुत्र भी महान पितामहों के ऋण से मुक्त हो जाया करते हैं ॥२१-२७॥

मानसान्यपितीर्थानियान्युक्तानिमहामते।
कानिकानिचतानीहह्येतदाख्यातुमर्हसि ॥२८
शृणुतीर्थानिगदतोमानसानिममानघे।
येषुसम्यङ नरः स्नात्वाप्रयातिपरमांगतिम् ॥२९
सत्यं तीर्थं क्षमातीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः।
सर्वभूतदयातीर्थं तीर्थमार्जवमेवच ॥३०
दानतीर्थं दमस्तीर्थं सन्तोषस्तीर्थमुच्यते।
ब्रह्मचर्यं परंतीर्थं तीर्थञ्चप्रियवादिता ॥३१
ज्ञानतीर्थं धृतिस्तीर्थं तपस्तीर्थमुदाहृतम्।
तीर्थानामपि तत्तीर्थं विशुद्धिर्मनसः परा ॥३२
न जलाप्लुतदेहस्यस्नानमित्यभिधीयते।
सस्नातोयोदमस्नातः शुचिः शुद्धमनोमलः ॥३३

यो लुब्धः पिशुनः क्रूरोदाम्भिकोविषयात्मकः।
सर्वतीर्थेष्वपि स्नातः पापो मलिन एवमः ॥३४

सर्वाणी ने कहा—हे महामते ! मानस तीर्थ भी आपने जो बतलाए हैं वे कौन-कौन यहाँ पर से होते हैं—यह भी कृपा करके मुझे बतलाने के योग्य हैं ? महामुनि अगस्त्यजो ने कहा—हे अनघे ! बोलने वाले मुझसे आप उन मानस तीर्थों का भी श्रवण कर लीजिए जिनमें मनुष्य स्नान करके परमोत्तम गति को प्रयाण किया करता है। एक तो मानस तीर्थों में सत्य तीर्थ है—दूसरा क्षमा तीर्थ है और समस्त इन्द्रियों का निग्रह कर लेना यह भी एक महान् मानस तीर्थ है। सब प्राणियों पर दया का भाव सदा रखना तीर्थ है और सर्वदा कुटिलता रहित सीधापन (सरलता) रखना यह भी मानस तीर्थ होता है। दान तीर्थ है—दम (दमन करना) तीर्थ है और सदा मन में पूर्णतया सन्तोष की भावना को स्थिर भाव से रखना भी मानस तीर्थ कहा जाता है। पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य को धारण रखना सबसे परम तीर्थ होता है आठों प्रकारों से ब्रह्मचर्य के धारण करने का ही नाम ब्रह्मचर्य है केवल स्त्री से साक्षात् सगम ही नहीं करना ब्रह्मचर्य का परिपालन नहीं होता है। सब के साथ सदा प्रिय भाषण करना भी एक मानस तीर्थ होता है। ज्ञान रखना तीर्थ है—धैर्य रखना भी तीर्थ हैं और तपश्चर्या करना भी मानस तीर्थ होता है। इन समस्त बतलाये मानस तीर्थों में सबसे श्रेष्ठ एवं प्रमुख तीर्थ मन की शुद्धता है। केवल जल में डुबकियाँ लगाने वाले देह का स्नान नहीं कहा जाया करता वास्तव में वही स्नान किया हुआ है जो दमन से स्नान किया हुआ है और जिसके मन का मल शुद्ध है वही शुचि होता है। जो लुब्ध अर्थात् लोभ से परिपूर्ण है—पिशुन अर्थात् पीठ पीछे दूसरों की बुराई करने वाला या चुगली करने वाला है—जो क्रूर अर्थात् अत्यन्त कठोर निर्दयी है—जो दाम्भिक अर्थात् कायरपूर्ण दिखावा करने वाला है और जो विषयों में डूबा हुआ है वह भले ही सभी तीर्थों में क्यों न स्नान किया हुआ हो वह फिर भी महान् पापी है और मलिन ही रहा करता है ॥२८-३४॥

न शरीरमलत्यागान्नरो भवतिनिर्मलः ।
मानसे तु मले त्यक्ते भवत्यन्तः सुनिर्मलः ।।३५
जायन्ते च म्रियन्तेचजलेष्वेवजलौकसः।
न च गच्छन्तितेस्वर्गमविशुद्धमनोमलाः ।।३६
विषयेष्वतिसंरागो मानसोमल उच्यते ।
तेष्वेव हि विरागोऽस्यनैर्मल्यं समुदाहृतम् ।।३७
चित्तमन्तर्गतं दुष्टं तीर्थस्नानान्न शुद्ध्यति ।
शतशोऽथजलैर्धौतंसुराभाण्डमिवाशुचिः ।।३८
दानमिज्यातपः शौचंतीर्थसेवाश्रुतं तथा ।
सर्वाण्येतानितीर्थानियदिभावोननिर्मलः ।।३९
निगृहीतेन्द्रियग्रामोयत्रैवचवसेन्नरः ।
तत्रतस्य कुरुक्षेत्रं नैमिषंपुष्कराणिच ।।४०
ध्यानपूते ज्ञानजले रागद्वेषमलापहे ।
यः स्नाति मानसे तीर्थे स यातिपरमांगतिम् ।।४१
एतत्ते कथितं देवि ! मानसंतीर्थलक्षणम् ।
भौमानामपि तीर्थानांपुण्यत्वेकारणंशृणु ।।४२

केवल शरीर के इस ऊपरी मल के त्याग कर देने से मनुष्य निर्मल या शुचि नहीं हो जाया करता है। मन में रहने वाले मल के त्याग देने पर ही मनुष्य अन्दर से सुनिर्मल हुआ करता है। जलचारी जीव जल ही में समुत्पन्न होते हैं, जीवन में वहीं रहा करते हैं और अन्त में उस ही में उनकी मृत्यु भी हुआ करती है किन्तु वे विशुद्ध मनोमल वाले न होने के कारण कभी स्वर्ग लोक में नहीं जाया करते हैं। प्रथम तो ये जलचर तिर्यक योनि वाले ज्ञान से ही शून्य होते हैं फिर भी शुचिता के स्वरूप को ये कुछ जान ही नहीं सकते हैं। मानस मल उसी को कहा जाता है जो सांसारिक विषयों में अर्थात् इन्द्रियों के विभिन्न विषयों में अच्छी तरह से राग होता है। उन्हीं में विराग का होना मन की निर्मलता कही जाया करती है। यह अन्दर में छिपा रहने वाला चित्त अत्यन्त ही दुष्ट हुआ करता है। यह इस ऊपरी स्नान के कर लेने से कभी भी शुद्ध

नहीं हुआ करता है। सैंकडों बार जल से जैसे मदिरा का पात्र धो भी लिया जावे तो भी वह पवित्र न होकर अशुचि ही रहा करता है ॥३५-३८॥ दान-इज्या-तप-शौच-तीर्थाटन-श्रुत ये सभी तीर्थ ही होते हैं किन्तु भाव की प्रधानता है। यदि भाव शुद्ध नहीं है तो इनका कोई फल नहीं है। जिसने अपनी समस्त इन्द्रियों को पूर्णतया जीतकर अपने काबू में कर लिया है वह जहाँ पर भी कहीं निवास करे उसके लिए वही स्थल परम पवित्र कुरुक्षेत्र-नैमिष और पुष्कर है अर्थात् तीर्थ है। जो ध्यान से पवित्र ज्ञान रूपी जल में जो राग-द्वेष के मल का अपहरण कर देने वाला है मनुष्य स्नान किया करता है जिसको कि मानस तीर्थ कहते हैं वह पुरुष परमोत्तम गति को प्राप्त किया करता है। हे देवि! हमने आपके सामने यह मानस तीर्थ का समग्र लक्षण बतला दिया है। अब इन भूमि में रहने वाले तीर्थों का भी कारण सुन लो अर्थात् मानस तीर्थ ही सर्वोत्तम तीर्थ हैं तो इनकी रचना का क्या कारण है उसका भी अब श्रवण कर लो ॥३९-४२॥

यथा शरीरस्योद्देशाः केचिन्मेध्यतमाः स्मृताः।
तथापृथिव्यामुद्देशाः केचित्पुण्यतमाः स्मृताः ॥४३
प्रभावादद्भुताद्भूमेः सलिलस्य च तेजसा।
परिग्रहान्मुनीनाञ्चतीर्थानापुण्यतास्मृता ॥४४
तस्माद्भौमेषु तीर्थेषु मानसेषुचनित्यशः।
उभयेष्वपियः स्नातिसयाति परमागतिम् ॥४५
अनुपोष्य त्रिरात्राणि तीर्थान्यनभिगम्यच।
अदत्वा काञ्चनगाश्चदरिद्रोनामजायते ॥४६
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्ट्वा विपुलदक्षिणैः।
न तत्फलमवाप्नोति तीर्थाभिगमनेनयत् ॥४७
यस्यहस्तौ च पादौचमनश्चैव सुसंयतम्।
विद्यातपश्चकीर्तिश्चसतीर्थं फलमश्नुते ॥४८
प्रतिग्रहादुपावृत्तः सन्तुष्टो येनकेनचित्।
अहङ्कारविमुक्तश्च स तीर्थं फलमश्नुते ॥४९

जिस प्रकार से इस शरीर के कुछ उद्देश अर्थात् भाग परम पवित्र माने गये हैं। ठीक उसी भाँति से इस पृथ्वी के भी कुछ भाग परम पुण्य तम कहे गये हैं। इस भूमि के अद्भुत प्रभाव से—जल के विशेष तेज से और मुनि गणों के परिग्रहण करने से इन समस्त तीर्थों की पुण्यता बतलाई गई है। इसलिए भूमिगत तीर्थों का भी महत्व अवश्य ही होता है अतएव मानवों का कर्तव्य यह होना चाहिए कि इन भूमिगत तीर्थों में और साथ ही मानस तीर्थों में भी नित्य ही दोनों में स्नान करना चाहिए। इन दोनो ही प्रकार के तीर्थों में जो स्नान किया करता है वही मानव परम गति को प्राप्त होता है। तीर्थों में पहुंचकर जो तीन रात्रि तक उपवास नहीं करता है तथा वहाँ पर जाकर सुवर्ण दान एवं गोदान नहीं करता है वह पुरुष दरिद्र ही रहा करता है। अग्निष्टोम आदि यज्ञों से जिनमें बहुत अधिक दक्षिणा दी गई हो मनुष्य वह फल प्राप्त नहीं किया करता है जो तीर्थों के अभिगमन से फल होता है। जिसके दोनो हाथ, दोनो पैर और मन सुसंगत होता हैं वह विद्या—तप—कीर्ति और तीर्थों का फल प्राप्त किया करता है। प्रतिग्रह से उपावृत्त होने वाला अर्थात् दान न लेने वाला और जो भी कुछ मिल जावे उसी से सन्तुष्ट रहने वाला तथा अहंकार से रहित होता है वह तीर्थाटन के फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥४३-४६॥

अदम्भको निरारम्भोलब्धाहारोजितेन्द्रियः।
विमुक्तःसर्वसंगैर्यः सतीर्थं फलमश्नुते ॥५०
अकोपनोऽमलमतिः सत्यवादीदृढव्रतः।
आत्मोपमश्चभूतेषु स तीर्थं फलमश्नुते ॥५१
तीर्थान्यनुसरन् धीरः श्रद्धानः समाहितः।
कृतपापो विशुद्धयेत किंपुनः शुद्धकर्म कृत् ॥५२
तिर्यग्योनि न वै गच्छेत्कुदेशे नव जायते।
न दुःखी स्यात्स्वर्गभाक्च मोक्षोपायञ्च विन्दति ॥५३
अश्रद्धानः पापात्मानास्तिकोऽच्छिन्नसंशयः।
हेतुनिष्ठश्चपञ्चैतेनतीर्थ फलभागिनः ॥५४

तीर्थानिचययोक्तेनविधिनासञ्चरन्तिये ।
सर्वद्वन्द्वमहाधीरास्तेनराः स्वर्गभागिनः ॥५५
तीर्थयात्राञ्चिकीर्षुः प्राग्विधायोपोषणं गृहे ।
गणेशञ्च पितृन्विप्रान्साधून्शक्त्या प्रपूज्य च ॥५६

दम्भ से रहित-निरा आरम्भ वाला—बहुत हल्का और कम आहार करने वाला—इन्द्रियों को जीतने वाला और सब प्रकार के संगों से जो विमुक्त रहने वाला है वह भी तीर्थाटन करने का फल प्राप्त कर लिया करता है। जो बिना क्रोध वाला निर्मल मति वाला—सत्य भाषण करने वाला-दृढ़ व्रत वाला और समस्त प्राणियों में अपनी ही आत्मा के समान भाव रखने वाला जो मनुष्य हुआ करता है वह तीर्थ करने का पूर्ण पुण्य फल प्राप्त कर लिया करता है। तीर्थों का अनुसरण करता हुआ-धीरज वाला-श्रद्धा से समन्वित एवं परम समाहित जो मनुष्य होता है वह पापों के करने वाला भी विशुद्ध हो जाया करता है और जो शुद्ध कर्मों के करने वाला होता है उसके विषय में तो कहा ही क्या जावे ॥५०-५२॥ ऐसा जीव कभी भी तिर्यक योनि में नहीं जाया करता है और कभी कुदेश में भी उत्पन्न नहीं होता है। वह मनुष्य कभी दुःखित नहीं होता है तथा स्वर्ग लोक का भोक्ता एवं मोक्ष प्राप्त करने का उपाय पाया करता है ॥५३॥ जो श्रद्धा नहीं रखने वाला है तथा पापात्मा की और ईश्वर की सत्ता को नहीं मानने वाला नास्तिक—जिसका संशय छिन्न नहीं हुआ हो और जो हेतु में ही निष्ठा रखने वाला हो ऐसे ये पाँच प्रकार के आदमी कभी भी तीर्थों के फल के भागी नहीं होते हैं। जो यथोक्त विधि से तीर्थों का पर्यटन किया करते हैं और सभी प्रकार के द्वन्द्वों के सहने वाले एवं धीर होते हैं वे ही मनुष्य स्वर्ग के भागीदार हुआ करते हैं। जब कोई भी तीर्थ यात्रा करने की इच्छा वाला हो तो पहिले उसको घर में ही उपोषण करना चाहिए और विघ्न विनाशक भगवान गणेश का पूजन करें तथा पितृगण, विप्र वृन्द और साधुओं का पूजनार्चन करना चाहिये ॥५४-५६॥

कृतपारणकोहृष्टो गच्छेन्नियमधृक्पुनः ।
आगत्याभ्यर्च्यचपितृन्यथोक्तफलभाग्भवेत् ॥५७
नपरीक्ष्योद्विजस्तीर्थे त्वन्नार्थीभोज्यएवच ।
सक्तुभिः पिण्डदानञ्च चरुणापायसेनच ॥५८
कर्तव्यमृषिभिर्द्दष्टं पिण्याकेन गुडेन च ।
श्राद्ध तत्र प्रकर्तव्यमर्घ्यावाहनवर्जितम् ॥५९
अकालेप्यथवा काले तीर्थे श्राद्धञ्च तर्पणम् ।
अविलम्बेन कर्तव्यं नैव विघ्नं समाचरेत् ॥६०
तीर्थं प्राप्य प्रसङ्गेन स्नानं तीर्थे समाचरेत् ।
स्नानजं फलमाप्नोति तीर्थयात्राश्रितं न च ॥६१
नृणा पापकृतां तीर्थे पापस्य शमनं भवेत् ।
यथोक्तफलदं तीर्थं भवेच्छुद्धात्मनां नृणाम् ॥६२
षोडशांशं स लभते यः परार्थञ्च गच्छति ।
अर्द्धं तीर्थफलं तस्य यः प्रसंगेन गच्छति ॥६३

किये हुए उपवास का पारण करके नियमों को धारण कर परम हर्ष से सयुत होकर फिर तीर्थ यात्रा को गमन करे। वहाँ से आकर भी पुनः अपने पितृगण का अर्चन करे—तभी वह पुण्य फल का भागी हुआ करता है ।।५७।। तीर्थों में कभी भी किसी द्विज की परीक्षा न करे। जो भी अन्न का अर्थी हो उसको ही भोजन करा देना चाहिये। भोजन सत्तू से करावे तथा पिण्डदान भी सत्तू से करावे। और चरु एवं पायस के द्वारा करे। ऋषियों के द्वारा ■ पिण्याक एवं गुड से करना चाहिए। अर्घ्य और अवाहन से रहित वहाँ पर श्राद्ध भी करना चाहिए। काल हो अथवा अकाल हो मे तीर्थ मे श्राद्ध और तर्पं अविलम्ब से हो कर देवे और कभी भी इसमे विघ्न न करे। प्रसङ्ग वश भी यदि तीथ मे प्राप्त हो जावे तो वहा पर स्नान का समाचरण अवश्य ही करे। वह मनुष्य वहाँ पर स्नान का फल तो अवश्य ही प्राप्त कर लेगा किन्तु उसे तीर्थ यात्रा करने का फल नही प्राप्त होगा ॥५८-६१॥ पापो के करने वाले मनुष्यो के तीर्थ में पापो का शमन हो जाया करता है। तीर्थ जिस प्रकार

से पुण्य-फल का प्रदान करने वाला होता है वह श्रद्धा वाले मनुष्यों को ही होता है ॥६२॥ जो कोई दूसरों के लिए ही तीर्थों मे गमन किया करता है वह फल का सोलहवाँ अंश प्राप्त किया करता है। जो किसी अन्य कार्य के प्रसङ्ग से तीर्थ में पहुच जाता है उसको तीर्थ यात्रा का आधा फल ही प्राप्त हुआ करता है ॥६३॥

कुशप्रतिकृतिं कृत्वा तीर्थ वारिणि मज्जयेत् ।
मज्जयेच्च यमुद्दिश्य सोऽष्टमांशं लभेत वै ॥६४
तीर्थोपवासः कर्तव्यः शिरसो मुण्डनं तथा ।
शिरो गतानि पापानि यान्तिमुण्डनतोयतः ॥६५
यदह्नितीर्थं प्राप्तिः स्यात्ततोह्नः पूर्ववासरे ।
उपवासस्तु कर्तव्यः प्राप्ताह्नि श्राद्धदोभवेत् ॥६६
तीर्थ प्रसगात्तीर्थागमप्युक्तं त्वत्पुरो मया ।
स्वर्गसाधनमेवैतन्मोक्षोपायश्च वै भवेत् ॥६७
काशी कान्ती च मायाख्या त्वयोध्या द्वारवत्यपि ।
मथुरावन्तिका चैताः सप्तपुर्योऽत्र मोक्षदा ॥६८
श्रीशैलो मोक्षदः सर्वः केदारोपि ततोऽधिकः ।
श्रीशैलाच्चापि केदारात्प्रयागं मोक्षद परम् ॥६९
प्रयागादपितीर्थाग्र्यादविमुक्तं विशिष्यते ।
यथा विमुक्ते निर्वाण न तथाक्वाप्य संशयम् ॥७०

कुशा की एक प्रतिकृति बनाकर तीर्थ के जल मे मज्जित करा देवे। जिस उद्देश्य को लेकर उसका मज्जन करावे उसका अष्टमांश फल उसे प्राप्त हो जाया करता है। तीर्थ मे जाकर उपवास अवश्य ही करे और वहाँ पर मुण्डन भी करावे। मुण्डन के जल से शिर मे प्राप्त हुए समस्त पाप चले जाया करते हैं। जिस दिन मे तीर्थ की प्राप्ति होवे उस दिन के प्रथम दिन मे ही उपवास करना चाहिए और प्राप्त हो जाने वाले दिन मे श्राद्ध देने वाला होवे। इस तीर्थ यात्रा के प्रसंग में मैंने आपके आगे तीर्थों के अङ्ग का भी वर्णन कर दिया है। यही स्वर्ग का साधन होता है और मोक्ष प्राप्त करने का भी उपाय है। काशी,

कान्ती (काञ्ची), माया नामवाली (हरिद्वार), अयोध्या, द्वारवती (द्वारका), मथुरा, अवन्तिका (उज्जैन) ये सात पुरियाँ ऐसी हैं जो मोक्ष के प्रदान करने वाली होती हैं ॥६४-६८॥ श्री शैल सम्पूर्ण मोक्ष प्रदाता है। केदार गिरि उससे भी अधिक होता है। श्री शैल और केदार से भी परम मोक्ष का देने वाला प्रयाग हुआ करता है ॥६९॥ प्रयाग से भी अधिक जो कि समस्त तीर्थों मे अग्र है (उत्तम) होता है अविमुक्त तीर्थ हुआ करता है। जैसा इस अविमुक्त तीर्थ में निर्वाण होता है वैसा तो कहीं भी नहीं होता है—यह निःसन्देह है ॥७०॥

अन्यानि मुक्तिक्षेत्राणि काशीप्राप्तकराणि च ।
काशी प्राप्याऽपि मुच्येत नान्यथा तीर्थ कोटिभिः ॥७१
अत्रार्थे कथयिष्येऽहमितिहासं पुरातनम् ।
यथाविष्णुगणैरुक्तं द्विजाय शिवशर्मणे ॥७२
तीर्थाध्यायमिमं श्रुत्वा नरोनियतमानसः ।
श्रावयित्वा द्विजांश्चापि श्रद्धाभक्ति समन्विता ॥७३
क्षत्रियान्धर्मनिरतान्वैश्यान्सन्मार्गवर्तिनः ।
शूद्रान्द्विजेषु भक्तांश्च निष्पापो जायते द्विजः ॥७४

अन्य भी मुक्ति के क्षेत्र हैं और वे काशी के प्राप्त करा देने वाले होते हैं किन्तु काशी में तो प्राप्त होकर ही मानव मुक्त हो जाया करता है अन्यथा करोड़ो तीर्थों से भी नहीं होता है ॥७१॥ इस विषय में हम एक परम पुरातन इतिहास आपको कहेंगे जैसा कि भगवान् विष्णु के गणो ने शिव शर्मा द्विज से कहा था। इस तीर्थाध्याय को मनुष्य नियत मन वाला होकर श्रवण करता है तथा द्विजो को इसका श्रवण कराता है जो कि सुनने वाले श्रद्धाभक्ति से युक्त हो एवं धर्म में निरत क्षत्रियों को तथा सन्मार्ग में रहने वाले वैश्यो को और द्विजो में भक्ति रखने वाले शूद्रो को सुनाता है वह द्विज निष्पाप हो जाया करता है ॥७२-७४॥

## ४८—गायत्री महत्त्व वर्णन

गायत्रीमन्त्रतोयाढ्यं दत्तंयेनाञ्जलित्रयम् ।
कालेसवित्रेकिंनस्यात्तेनदत्तं जगत्त्रयम् ॥१
किंकिनसवितासूतेकालेसम्यगुपासितः ।
आयुरारोग्यमैश्वर्यं वसूनि स पशूनि च ॥२
मित्रपुत्रकलत्राणि क्षेत्राणि विविधानि च ।
भोगानष्टविधांश्चापि स्वर्गं चाप्यपवर्गकम् ॥३
अष्टादशसुविद्यासु मीमांसातिगरीयसी ।
ततोपितकशास्त्राणिपुराणे तेभ्य एव च ॥४
ततोपिधर्मशास्त्राणितेभ्योगुर्वीश्रुतिर्द्विज !।
ततोऽप्युपनिषच्छ्रेष्ठागायत्रीचततोधिका ॥५
दुर्लभासर्वमन्त्रेषु गायत्रीप्रणवान्विता ।
न गायत्र्याधिकं किञ्चित्त्रयीषु परिगीयते ॥६
नगायत्रीसमो मन्त्रोनकाशीसदृशीपुरी।
नविश्वेशसमलिङ्गं सत्यं सत्यं पुनः पुनः ॥७

महा महर्षि श्री अगस्त्य जी ने कहा—गायत्री मन्त्र से संयुत तीन जल की अञ्जलियाँ जिस पुरुष ने भगवान् सविता के लिये समय पर समर्पित करदी हैं उसने क्या त्रिभुवन को नहीं दे डाला है ? तात्पर्य यह है कि उसने सभी कुछ समर्पित कर दिया है । शास्त्र में बताये हुए समय पर भली भाँति उपासित सूर्यदेव क्या क्या नहीं प्रदान किया करते हैं अर्थात् सभी कुछ दे देते हैं । आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, धन, पशु, मित्र, पुत्र, कलत्र, विविध क्षेत्र, आठों प्रकार के भोग, स्वर्गलोक का निवास और अपवर्ग यह सभी प्राप्त होते हैं ॥१-३॥ अठारह विद्याओं में मीमांसा विद्या अत्यन्त बड़ी है । इस से भी अधिक गुरु तर्क शास्त्र हैं । उनसे भी अधिक पुराण हैं और उन से भी अधिक धर्म शास्त्र होते हैं और इनसे अधिक गुरु श्रुति है । हे द्विज ! श्रुतियों से भी अधिक गुरु उपनिषद् हैं और इनसे भी परम श्रेष्ठ गायत्री होती है । इससे अधिक कोई भी नहीं

है। प्रणव से समन्वित गायत्री सभी मन्त्रों में दुर्लभ है। त्रयी में अर्थात् वेद त्रयी में गायत्री से अधिक कुछ भी नहीं परिगीत किया जाता है ॥४-६॥ गायत्री के समान कोई अन्य मन्त्र नहीं है और काशी के समान अन्य कोई भी पुरी नहीं है। विश्वनाथ भगवान् तुल्य कोई भी शिव लिङ्ग नहीं है—यह पुनः पुनः पूर्णतया सत्य है—सत्य है ॥७॥

गायत्री वेदजननी गायत्रीब्राह्मणप्रसूः।
गातारं त्रायतेयस्माद्गायत्री तेन गीयते ॥८
वाच्यवाचकसम्बन्धोगायत्र्याः सवितुर्द्वयो.।
वाच्योसौ सविता साक्षाद्गायत्री वाचिका परा ॥९
प्रभावेणैवगायत्र्या क्षत्रियःकौशिकोवशी।
राजर्षित्वपरित्यज्यब्रह्मर्षिपदमीयिवान् ॥१०
सामर्थ्यं प्राप चात्युच्चरन्यद्भुवननिर्मणे।
किं किं न दद्याद्गायत्री सम्यगेवमुपासिता ॥११
न ब्राह्मणो वेदपाठान्न शास्त्रपठनादपि।
देव्यास्त्रिकालमभ्यासाद् ब्राह्मणः स्याद्धि नान्यथा ॥१२
गायत्र्येवपरविष्णुर्गायत्र्येव पर.शिवः।
गायत्र्येवपरोब्रह्मा गायत्र्येव त्रयी ततः ॥१३
देवत्रय सभगवानशुमाली दिवाकर.।
सर्वेषा महमाराद्धि. कालः कालप्रवर्तक ॥१४

यह गायत्री वेदों की जननी है। गायत्री ब्राह्मणों की प्रसूत करने वाली है। क्योंकि इसका जो गायन (जाप) करता है उसकी यह सुरक्षा (त्राण) किया करती है इसीलिये इसको गायत्री कहा जाता है। गायत्री और सविता इन दोनों का वाच्य-वाचक सम्बन्ध होता है। वाच्य तो भगवान् सविता देव हैं और गायत्री साक्षात् परा उनकी वाचिका होती है ॥८-९॥ इस गायत्री देवी के प्रभाव से ही वशी क्षत्रिय कौशिक (विश्वामित्र) राजर्षित्व का त्याग करके ब्रह्मर्षि के पद को प्राप्त हो गये थे ॥१०॥ दूसरा बहुत ऊँचा भुवन के निर्माण करने की भी उन्होंने सामर्थ्य प्राप्त करली थी। अच्छी भाँति से उपासना की की हुई

गायत्री देवी मनुष्य को क्या क्या नहीं दे दिया करती है ? अर्थात् सभी कुछ प्रदान कर देती है। वेदों के पाठ करने से ब्राह्मण नहीं बना करता है और शास्त्रों के पढ़ने से भी ब्राह्मण व नहीं आता है केवल तीनों कालों में गायत्री देवी की उपासना के अभ्यास से ही ब्राह्मण हुआ करता है अन्य किसी भी प्रकार से ब्राह्मणत्व नहीं माना है। यह गायत्री देवी ही परम विष्णु है और गायत्री ही परम शिव हैं—गायत्री ही परब्रह्म है तथा वेदत्रयी भी गायत्री ही होती है। वह भगवान् अंशुमाली दिवाकर देव देवत्रय अर्थात् तीनों देवों का स्वरूप तथा यह सभी तेजों का समूह है और काल का प्रवर्त्तक साक्षात् काल है ॥११-१४॥

अर्कमुद्दिश्य सततमस्मल्लोकनिवासिनः।
श्रुतिद्युदाहरन्तीमा सारासारविवेकिनः ॥१५
एषोहदेवः प्रदिशोनुसर्वाः पूर्वोह जातःस उ गर्भे अन्त.।
स एव जातः स जनिष्यमाण. प्रत्यङ् जनस्तिष्ठति सर्वतोमुख.॥
सदवमुपतिष्ठेरन् सौरैः सूक्तैरन्विता।
येनमन्त्यनते विप्रा विप्राभास्करसन्निभा. ॥१७
पुष्यार्केप्यथहस्तार्के मूलार्केप्यथवाद्विज।
उत्तरार्केऽथयत्कार्यं तत्फलत्येवनान्यथा ॥१८
पौर्णमास्यर्कं दिवसेथ स्नात्वाभास्करोदये।
दान होमजपकुर्यादर्चामर्कस्यचव्रतः ॥१९
श्रद्धावानेकभक्तश्च कामक्रोधविवर्जित।
सहाप्तरोभिर्द्युतिमान्सवसेदत्रभोगवान् ॥२०
अयनेविषुवेचापि षडशीतिमुखेषु वा।
विष्णुपधाञ्चये दद्युर्महादानानि सुव्रतः ॥२१

हमारे लोक के निवासी जन जो सार और असार के विवेकी हैं निरन्तर भगवान् सूर्य का उद्देश्य करके इस श्रुति का उदाहरण किया करते हैं ॥१५॥ यह ही देव सब दिशा-प्रदिशाओं में है। यह ही सबसे पूर्व में उत्पन्न हुए हैं, यह ही अन्दर गर्भ में है, यह ही उत्पन्न हुए हैं और

यह ही अनिष्यमाण हैं, यह ही मनुष्यों के पीछे और सभी ओर मुख करने वाला स्थित है ॥१६॥ सदा ही अतन्द्रित होते हुए सौर ( सूर्य सम्बन्धी ) सूक्तों के द्वारा उपस्थान करना चाहिए। जो विप्र यहाँ पर भगवान् सूर्य को नमन किया करते हैं वे विप्र भास्कर के ही समान तेज वाले हुआ करते हैं। हे द्विज ! पुष्यार्क में अथवा हस्तार्क में, मूलार्क में या उत्तरार्क में जो भी कुछ किया जाता है वह ही फल देने वाला होता है अन्यथा कुछ भी फल नहीं देता है ॥१७-१८॥ रविवार के दिन पौष मास में जो सूर्योदय के समय पर स्नान करके दान, होम और जाप किया करता है तथा सुन्दर व्रत वाला सूर्य देव का अर्चन करता है उसे परम श्रद्धा वाला, एक ही समय में भोजन करने वाला तथा काम, क्रोधादि रहित रहता है। वह यहाँ पर समस्त भोगों वाला होकर अप्सराओं के साथ निवास किया करता है। और अत्यन्त द्युति से युक्त होता है। अयन में, विषुव में अथवा षडशीति मुखों में जो विष्णुपदों में महान् व्रत वाले दान दिया करते हैं वे वैकर्त्तन लोक में वास किया करते हैं ॥१९-२१॥

तिलाञ्जुह्वति माज्याश्च ब्राह्मणान् भोजयन्ति च।
पितृनुद्दिश्य च श्राद्धं ये कुर्वन्ति विपश्चितः।।२२
महापूजाञ्च ये कुर्यु महामन्त्राञ्जपन्ति च।
तेऽत्र वैकर्तने लोके विकर्तनसमप्रभाः।।२३
न दरिद्रा न दुःखार्ता न व्याधिपरिपीडिताः।
संक्रमेष्वर्कभक्ता ये नविरूपा न दुर्भगाः॥२४
संक्रमेषु न यैर्दत्तं न स्नातंतीर्थवारिषु।
विशेषहोमो न कृताकपिलाज्याप्लुतैस्तिलैः॥२५
ते दृश्यन्ते प्रतिद्वारं विहीननयनाननाः।
देहिदेहीति जल्पन्तो देहिनः सपटच्चराः।२६
समंकृष्णलकेनापि यो दद्यात्काञ्चनं कृती।
सूर्यग्रहे कुरुक्षेत्रे सवसेदत्र पुण्यभाक्॥२७

जो उपर्युक्त अवसरों में घृत के सहित तिलों का हवन किया करते हैं, ब्राह्मणों को भोजन कराते हैं और जो विद्वान् पुरुष अपने पितृगण का उद्देश्य लेकर श्राद्ध किया करते हैं। जो कोई महापूजा करते हैं तथा महा मन्त्रों का जाप किया करते हैं वे इस वैकर्त्तन लोक में विकर्त्तन ( सूर्य ) के समान प्रभा से सुसम्पन्न होकर निवास करते हैं। वे लोग कभी भी दरिद्र नहीं होते हैं और न कभी दुःखों से आर्त्त तथा व्याधियों से पीड़ित ही हुआ करते हैं। सक्रमण काल में अर्थात् सूर्य की संक्रान्ति के समय में जो सूर्य देव की भक्ति किया करते हैं वे न तो कभी विरूप ही होते हैं और न दुर्भाग्य वाले ही हुआ करते हैं ॥२२-२४॥ जिन्होंने सक्रान्ति में कभी कुछ भी दान नहीं किया है और तीर्थों के जल में स्नान नहीं किया है तथा कोई विशेष होम भी कपिला के घृत से प्लुत तिलों से नहीं किया है वे प्रत्येक द्वार पर नयन और आनन से विहीन होकर दिखलायी दिया करते है। ऐसे लोग सपटच्चर होते हुए, "हम को कुछ दो" ऐसा कहते हुए देहधारी घूमा करते हैं। जो कोई कृती कृष्णलक के समान भी सूर्य ग्रहण में कुरुक्षेत्र में सुवर्ण का दान करता है वह परम पुण्यात्मा इस लोक में आकर निवास किया करता है ॥२५-२७॥

सर्वगङ्गासमन्तोय सर्वेब्रह्मसमाद्विजा. ।
सर्वदय स्वर्णसमराहुग्रस्ते दिवाकरे ॥२८
दत्त जप्त हुतं स्नातं यत्किञ्चित्समदनुष्ठितम् ।
भानूपरागेश्राद्धादि तद्वेतुवं ध्नसन्निधेः ॥२९
रविवारे सक्रमश्चेदुपरागोऽथवा भवेत् ।
तदा यदर्जित पुण्य तदिहाक्षयमाप्यते ॥३०
भानुवारो यदा षष्ठ्या सप्तम्यामथ जायते ।
तदायत्सुकृत कर्म कृतन्तदिह भुज्यते ॥३१
हसो भानुः सहस्राशुस्तपनस्तापनोरविः ।
विकर्तनो विवस्वाश्च विश्वकर्मा विभावसु. ॥३२
विश्वरूपो विश्वकर्ता मार्तण्डो मिहिरोऽशुमान् ।
आदित्यश्चोष्णगुः सूर्योऽर्यमा ब्रध्नोदिवाकरः ॥३३

द्वादशात्मा सप्तहयोभास्करोऽहस्करः खगः ।
सूरःप्रभाकरः श्रीमाँल्लोकचक्षुर्ग्रहेश्वरः ॥३४
त्रिलोकेशो लोकसाक्षी तमोऽरिः शाश्वतः शुचिः ।
गभस्तिहस्तस्तीव्रांशुस्तरणिः सुमहोरणिः ॥३५

दिवाकर भगवान् के राहु के द्वारा ग्रस्त होने के अवसर पर सभी जल गङ्गा के समान होता है और सभी द्विज ब्रह्मा के सदृश हुआ करते हैं तथा सभी कुछ दान में दी हुई वस्तु सुवर्ण के ही तुल्य होती है । दान दिया हुआ, जाप किया हुआ, हवन, स्नान, और जो कुछ भी सद् अनुष्ठान होता है एवं श्राद्ध आदि सभी सूर्य के ग्रहण के समय में ब्रध्न सन्निधि का हेतु हुआ करता है । अर्थात् यह सभी ब्रध्न के समीप में पहुँचाने वाला होता है । रविवार के दिन में संक्रमण हो अथवा ग्रहण उस समय में जो पुण्य का अर्जन होना है वह यहाँ पर अक्षय होकर प्राप्त किया जाता है । षष्ठी या सप्तमी तिथि में रविवार हो तो उस समय में जो भी कुछ सुकृत का अर्जन किया गया है वह यहीं पर भोगा जाया करता है ॥२८-३१॥ अब सत्तर भगवान् भास्कर नामों का उल्लेख किया जाता है—हंस, भानु, सहस्रांशु, तपन, तापन, रवि, विकर्त्तन विवस्वान, विश्वकर्म्मा, विभावसु, विश्वरूप, विश्वकर्त्ता, मार्त्तण्ड, मिहिर, अंशुमान्, आदित्य, उष्णगु, सूर्य, अर्यमा, ब्रध्न, दिवाकर, द्वादशात्मा, सप्तहय, भास्कर, अहस्कर, खग, सूर, प्रभाकर, श्रीमान्, लोक चक्षु, ग्रहेश्वर, त्रिलोकेश, लोकसाक्षी, तमोऽरि, शाश्वतः, शुचि, गभस्ति हस्त, तीव्रांशु, तरणि, सुमहोरणि, ॥३२-३५॥

द्युमणिर्हरिदश्वोऽर्को भानुमान्भयनाशनः ।
छन्दोश्वोवेदवेद्यश्चभास्वान्पूषा वृषाकपिः ॥३६
एकचक्ररथो मित्रो मन्देहारिस्तमिस्रहा ।
दैत्यहा पापहर्त्ता च धर्मो धर्मप्रकाशकः ॥३७
हेलिकश्चित्रभानुश्चकलिघ्नस्तार्क्ष्यवाहनः ।
दिक्पतिःपद्मिनीनाथःकुशेशयकरोहरिः ॥३८
धर्मरश्मिर्दुर्निरीक्ष्यश्चण्डांशुः कश्यपात्मजः ।
एभिः सप्ततिसंख्याकैः पुण्यैः सूर्यस्य नामभिः ॥३९

प्रणवादिचतुर्थ्यन्तैर्नमस्कारसमन्वितैः ।
प्रत्येकमुच्चरन्नाम दृष्ट्वा दृष्ट्वा दिवाकरम् ॥४०
विगृह्यपाणियुग्मेन ताम्रपात्रं सुनिर्मलम् ।
जानुभ्यामवनीं गत्वा परिपूर्यजलेन च ॥४१
करवीरादिकुसुमैरक्तचन्दनमिश्रितैः ।
दूर्वांकुरैरक्षतैश्चनिक्षिप्तैः पात्रमध्यतः ॥४२
दद्यादर्घ्यमनर्घ्यायसवित्रेध्यानपूर्वकम् ।
उपमौलि समानीय तत्पात्रं नान्यदृङ्‌मना ॥४३
प्रतिमन्त्रं नमस्कुर्यादुदयास्तमये रविम् ।
अनया नाम सप्तत्या महामन्त्ररहस्यया ॥४४

द्युमणि, हरिदश्व, अर्क, भानुमान, भयनाशन, छन्दोऽश्व, वेदवेद्य, भास्वान्, पूषा, वृषाकपि, एकचक्र रथ, मित्र, मन्देहारि, तमिस्रहा, दैत्यहा, पापहर्ता, धर्म, धर्म प्रकाशक, हेलिक, चित्रभानु, कलिघ्न, तार्क्ष्य वाहन, दिक्पति, पद्मिनीनाथ, कुशेशयकर, हरि, धर्मरश्मि, दुर्निरीक्ष्य, चण्डांशु, कश्यपात्मज, ये कुल सत्तर संख्या वाले परम पुण्यमय भगवान् सूर्य के नाम हैं। इनमें प्रत्येक नाम के पहिले प्रणव लगाकर चतुर्थी विभक्ति सूय क सभी नामों के आगे जोड कर 'नम' इस नमस्कार वाचक शब्द को जोड देवे। यथा 'ॐ सूर्याय नम'। इसी भाँति उपरि कथित प्रत्येक नाम को उच्चरित करते हुए दिवाकर देव का बारम्बार दर्शन करे। सुन्दर एवं निर्मल जल से युक्त ताम्र पात्र को दोनों हाथों में ग्रहण करे और दोनों घुटनों से भूमि में जाकर जल से परिपूरित करे। करवीर आदि के पुष्पों से मिश्रित, रक्त चन्दन से मिश्रित, दूर्वांकुर, और अक्षत निक्षिप्त किये हों ऐसे उस पात्र के मध्य से अनर्घ्य सविता देने के लिये ध्यान पूर्वक अर्घ्य देना चाहिए। मस्तक के समीप पर्यन्त उस पात्र को ले कर ही अन्य और दृष्टि तथा मन को न लेजाकर अर्घ्य देना चाहिए ॥३६-४४॥

एवं कुर्वन्नरो जातु न दरिद्रोनदुःखभाक् ।
व्याधिभिर्मुच्यतेघोरैरपिजन्मान्तरार्जितैः ॥४५

विनौपधैर्विनावैद्यैर्विना पथ्यपरिग्रहैः ।
कालेन निधनं प्राप्तःसूर्यलोके महीयते ॥४६
इत्येकदेशः कथितो भानुलोकस्य सत्तम ।
महातेजो निधेरस्य को विशेषमवर्त्यहा ॥४७

इसी रीति से प्रत्येक उपर्युक्त मन्त्र के द्वारा उदय और अस्त के समय मे रविदेव को नमस्कार करना चाहिए । यह सूर्यदेव के शुभ नामों को सप्तति है इससे जो कि महामन्त्र के रहस्य से समन्वित है मनुष्य को प्रतिदिन ही नमस्कार करना चाहिए । ऐसा करने वाला मनुष्य कभी दरिद्री और दुखों के भोगने वाला नहीं हुआ करता है । जन्मान्तरों की अर्जित व्याधियो से भी वह मुक्त होजाया करता है । इन व्याधियों से छुटकारा पाने के लिये किसी ओषधि, वैद्य तथा पथ्यपरिग्रह आदि की आवश्यकता ही नहीं हुआ करती है । जब उनका अन्त समय आता है तो मृत्यु प्राप्त करके वह सूर्य लोक में ही प्रतिष्ठित हुआ करता है । हे सत्तम ! भानु लोक का यह एक देश तुम्हारे सामने वर्णित कर दिया है । यह महा तेज का निधि है । इसकी क्या विशेषता जानते हो ॥४५-४७॥

## ४८— मणि कर्णिकाख्यानवर्णन

प्रसन्नोऽस्मियदिस्कन्द!मयिप्रीतिरनुत्तमा ।
तत्समाचक्ष्वभगवंश्चिरंयन्मेहृदिस्थितम् ॥१
अविमुक्तमिदक्षेत्रं कदारभ्य भुवस्तले ।
परां प्रथितिमापन्नं मोक्षदञ्चाभवत्कथम् ॥२
कथमेपा त्रिलोकीड्या गीयते मणिकर्णिका ।
तत्राऽऽसीत्किम्पुरा स्वामिन्यदा नाऽमरनिम्नगा ॥३
वाराणसीतिकाशीति रुद्रावासइतिप्रभो !।
अवा। नामधेयानि कथमेतानि सा पुरी ।
आनन्दकानन रम्यमविमुक्तमनन्तरम् ॥४
महाश्मशान इतिचकथ ख्यातंशिखिध्वज !।
एतदिच्छाम्यह श्रोतुं सन्देहंमेऽपनोदय ॥५

प्रश्नभारोयमतुलस्त्वया यः समुदाहृतः ।
कुम्भयोनेऽमुमेवार्थमप्राक्षीदम्बिकाहरम् ॥६
यथा च देवदेवेन सर्वज्ञेन निवेदितम् ।
जगन्मातुः पुरस्ताच्च तथैव कथयामि ते ॥७

महामहर्षि प्रवर श्री अगस्त्य जी ने कहा—हे स्कन्द देव ! आप यदि मुझ पर परम प्रसन्न हैं और मुझ में आपकी उत्तम प्रीति विद्यमान है तो हे भगवन् ! मेरे हृदय में बहुत समय से स्थित उसको हो कहिए कि यह अविमुक्त क्षेत्र इस भूमि के तल में कब लेकर आरम्भ हुआ है और यहाँ पर परम प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ है तथा यह मोक्ष के प्रदान करने वाला कैसे हो गया है ? इसमें यह त्रिलोकी की ईड्य ( स्तवन करने के योग्य मणिकर्णिका कैसे गायी जाती है ? क्या पहिले भी वहाँ पर जब कि यह अमर नदी ( गङ्गा ) नहा थी यह विद्यमान थी ? हे स्वामिन् ! हे विभो ! वाराणसी, काशी, और रुद्रावास ये नाम इस महापुरी ने कैसे प्राप्त किये थे ? आनन्द कानन इसके अनन्तर रम्य अविमुक्त और महा श्मशान ये सब नाम भी हे शिखिध्वज ! किस प्रकार से भूमण्डल में विख्यात हुए हैं—यह सभी मैं श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ । आप मेरे सन्देह का अपनोदन ( निवारण ) करिये । श्री स्कन्द देव ने कहा—आपने यह महान् भारी प्रश्नो का समुदाय कर डाला है । हे कुम्भयोने ! अम्बिका माता ने भगवान श्री शम्भु से भी यही प्रश्न पूछा था । देवों के देव सर्वज्ञ प्रभु ने जिस प्रकार से निवेदित किया था उन जगत की माता के समक्ष मे इसका उत्तर अर्पित किया था ठीक वैसा ही उत्तर मैं भी आप को बतलाता हूँ ॥१-७॥

महाप्रलयकाले च नष्टे स्थावरजंगमे ।
आसीत्तमोमयं सर्वमनर्कग्रहतारकम् ॥८
अचन्द्रमनहोरात्रमनग्न्यनिलभूतलम् ।
अप्रधानं वियच्छून्यमन्यतेजोविवर्जितम् ॥९
द्रष्टृत्वादिविहीनञ्च शब्दस्पर्शसमुज्झितम् ।
व्यपेतगन्धरूपञ्च रसत्यक्तमदिङ्मुखम् ॥१०

इत्थं सत्यन्धतमसि सूचीभेद्ये निरन्तरे।
तत्सद्ब्रह्मे ति यच्छ्र त्यासदेकं प्रतिपाद्यते ॥११
अमनोगोचरोवाचां विषयं न कथंचन।
अनामरूपवर्णञ्च नस्थूलं नच यत्कृशम् ॥१२
अह्रस्वदीर्घमलघुगुरुत्वपरिवर्जितम्।
न यत्रोपचयः कश्चिन्तथा चापचयोपिच ॥१३
अभिधत्त सचकितं यदस्तोति श्रुतिःपुनः।
सत्य ज्ञानमनन्तञ्च यदानन्दं परं महः ॥१४

जिस समय में महा प्रलय का काल उपस्थित हो गया था और यह स्थावर तथा जङ्गम जगत सभी नष्ट हो गया था उस समय मे यहाँ सर्वत्र अन्धकारमय ही था। न तो सूर्य था और न ग्रह एवं तारकों का ही मण्डल विद्यमान रहा था। चन्द्र, अग्नि, अनिल, भूतल और अहो रात्रि कुछ भी नहीं था। बिना प्रधान वाला अन्य तेज से विवर्जित यह शून्य निगत था। इसके द्रष्टा मे भी यह विहीन था एवं शब्द, स्पर्श से समुज्झित था। गन्ध रूप, रस, दिशा इन सब से रहित था। इस प्रकार के सूचीभेद्य अर्थात् अत्यन्त गहरे निरन्तर रहने वाले सत्यमन्ध तम मे वह एक सद् ब्रह्म था जिसका श्रुति के द्वारा प्रतिपादन किया जाता है। वह मन, वाणी का किसी भी प्रकार से गोचर विषय नहीं था। उसका कुछ भी नाम, रूप और वर्ण नहीं था। वह न तो स्थूल ही था और न कृश था। वह ह्रस्व, दीर्घ, लघु, गुरु सबसे वर्जित था। न तो जिसमे कुछ भी उपचय था और न कोई भी अपचय हो था। श्रुति बहुत ही चकित हो कर यही कहती थी कि कुछ है जो सत्य स्वरूप, अनन्त, ज्ञानरूप, परम आनन्द रूप एक तेज है ॥८-१४॥

अप्रमेयमनाधारमविकारमनाकृति।
निर्गुण योगिगम्यञ्च सर्वव्याप्येककारणम् । १५
निर्विकल्पं निरारम्भं निर्मायं निरुपद्रवम्।
यस्येत्थं सविकल्प्यन्ते सञ्ज्ञाः संज्ञोदितस्यवं ॥१६

तस्यैकलस्य चरतोद्वितीयेच्छाभवत्किल ।
अमूर्त्तेनस्वमूर्तिश्च तेनाकल्पिस्वलीलया ॥१७
सर्वैश्वर्यगुणोपेतासर्वज्ञानमयी शुभा ।
सर्वगा सर्वरूपा च सर्वदृक्सर्व कारिणी ॥१८
सर्वैकवन्द्या सर्वाद्या सर्वदा सर्वसङ्कृतिः ।
परिकल्प्येति तां मूर्तिमीश्वरीं शुद्धरूपिणीम् ॥१९
अन्तर्दधे पराख्यं यद् ब्रह्म सर्वगमव्ययम् ॥२०

श्रुति भी यही कहती है कि वह ब्रह्म अप्रमेय, आधार से रहित, अविकार, बिना आकृति वाला, निर्गुण, उपद्रवों से हीन, योगियों के द्वारा ही जानने के योग्य, सर्व व्याप्य, एक मात्र कारण रूप, निर्विकल्प, निरारम्भ, माया से शून्य ऐसा ही वह है जिसके विषय में इसी प्रकार से अनेक विकल्प होते हैं ये ही उसको संबोधित की संज्ञाऐं हैं । इस भाँति एक कल उसके सञ्चरण करते हुए उसी में एक स्वयं ही दूसरी इच्छा समुत्पन्न हुई थी और उस अमूर्त्त ने अपनी एक मूर्ति अपनी ही लीला से कल्पित की थी जो कि सब ऐश्वर्य और समग्र गुणों से समुपेत थी तथा सर्व ज्ञान मयी, शुभा, सर्वत्र गमन करने वाली, सर्वरूपा, सर्वदृक् और सब कुछ करने वाली थी । वह सभी के द्वारा वन्द्यमाना, सबकी आद्या और सर्वदा सर्व संकृति रूपा थी । ऐसी उस शुद्ध रूप वाली ईश्वरी उस मूर्ति की कल्पना करके वह सर्वग अव्यय ब्रह्म जो पराख्य है अन्तर्हित होगये थे ।।१५-२०।।

अमूर्त्तं यत्पराख्यं वैतस्यमूर्तिरहं प्रियें ।।
अर्वाचीनपराचीना ईश्वरं मां जगुर्बुधाः ॥२१
ततस्तदेकलेनापि स्वैरं विहरतामया ।
स्वविग्रहात्स्वयं सृष्टास्वशरीरानपायिनी ॥२२
प्रधान प्रकृतित्वाञ्चा मायागुणवतीपराम् ।
बुद्धितत्त्वस्यजननीमाहुर्विकृतिवर्जिताम् ॥२३
युगपच्च त्वयाशक्त्यासाकंकालस्वरूपिणा ।
मयाऽद्य पुरुषेणैतत्क्षेत्रंचापिविनिर्मितम् ॥२४

साशक्तिःप्रकृतिःप्रोक्तासतुमानीश्वरःपरः ।
ताभ्याञ्चरममाणाभ्यांतस्मिन्क्षेत्रेघटोद्भव ॥२५
परमानन्दरूपाभ्यां परमानन्दरूपिणी ।
पञ्चक्रोशपरीमाणे स्वपादतलनिर्मिते ॥२६
मुने! प्रलयकालेऽपि न तत्क्षेत्रंकदाचन ।
विमुक्तं हि शिवाभ्यां यदविमुक्तं ततोविदुः ॥२७
न यदा भूमिवलयं न यदाऽपां समुद्भव !।
तदा विहर्तुं मीशेन क्षेत्रमेतद्विनिर्मितम् ॥२८

हे प्रिये ! जो पराख्य इसका अमूर्त रूप था उसकी मूर्त्ति ही मैं हूँ । अर्वाचीन और पराचीन बुधगण मुझको ही ईश्वर कहकर गान किया करते हैं । इसके उपरान्त एक कल और स्वतन्त्र रूप से विहार करते हुए मैंने अपने ही विग्रह से अपने ही शरीर वाली, अनपायिनी प्रधान प्रकृति आपको जो माया और परा गुणवती हैं सृजन किया था । आपको बुद्धि तत्त्व की जननी एवं विकृति से रहित कहते है । एक साथ शक्तिरूपिणी आपके साथ काल रूपी आद्य पुरुष मैंने पापों से रहित यह क्षेत्र विशेष रूप से निर्मित किया है ॥२१-२४॥ भगवान् स्कन्द देव ने कहा—वही शक्ति प्रकृति कही गयी है और पुरुष पर ईश्वर कहे गये हैं । हे घटोद्भव उन दोनों के उस क्षेत्र में सञ्चरण करते हुए जो कि परम आनन्द के स्वरूप वाले हैं उस परमानन्द रूप वाले पाँच कोस के परिमाण से युक्त, अपने ही पाद तल के द्वारा निर्मित यह क्षेत्र है । हे मुने ! वह क्षेत्र प्रलय काल में भी जबकि सभी का विलय होजाया करता है शिव और शिवा से विमुक्त नहीं हुआ करता है अतएव वह "अविमुक्त" इस नाम से प्रख्यात हो गया है । हे जल से समुत्पन्न होने वाले ! जिस समय में यह भूमि मण्डल भी नहीं था उसी समय में ईश्वर ने विहार करने के लिये इस क्षेत्र का निर्माण किया है ॥२५-२८॥

इदं रहस्यं क्षेत्रस्य वेदकोऽपि न कुम्भज ।
नास्तिकाय न वक्तव्यंकदाचिच्चर्मचक्षुषे ॥२९

श्रद्धालवे विनीताय त्रिकालज्ञानचक्षुषे ।
शिवभक्तायशान्ताय वक्तव्यञ्चमुमुक्षवे ॥३०
अविमुक्तं तदारम्य क्षेत्रमेतदुदीर्यते ।
पर्यङ्कभूतं शिवयोर्निरन्तरसुखास्पदम् ॥३१
अभावः कल्प्यते मूढैर्यदा च शिवयोस्तयोः ।
क्षेत्रस्यास्य तदाभावः कल्प्यो निर्वाणकारिणः ॥३२
अनाराध्यमहेशानमनवाप्यचकाशिकाम् ।
योगाद्युपायविज्ञोऽपिननिर्वाणमवाप्नुयात् ॥३३
अस्यानन्दवनं नाम पुराऽकारिपिनाकिना ।
क्षेत्रस्यानन्दहेतुत्वादविमुक्तमनन्तरम् ॥३४
आनन्दकन्दबीजानामंकुराणि यतस्ततः ।
ज्ञेयानि सर्वलिङ्गानि तस्मिन्नानन्दकानने ॥३५
अविमुक्तमिति ख्यातमासीदित्थं घटोद्भव !।
तथा पाख्याम्यथ मुने ! यथाऽऽसीन्मणिकर्णिका ॥३६

हे कुम्भज ! इस क्षेत्र के इस रहस्य को कोई भी नहीं जानता है। जो धर्म पशु वाला नास्तिक हो उसके आगे इस परम गोपनीय रहस्य को कभी भी नही कहना चाहिए ! जो श्रद्धालु हो, परम विनीत हो, त्रिकाल के ज्ञान की चक्षु वाला जो हो, शिव के परम भक्त, शान्त और जो मुक्ति प्राप्त करने का इच्छुक हो उसको ही यह कहना चाहिए। तभी से आरम्भ करके यह क्षेत्र अविमुक्त इस नाम से कहा जाया करता है। यह शिव और शिवा इन दोनों का पर्य्यङ्क के समान ही है और निरन्तर सुख का पदपद होता है ॥२६-३१॥ जिस समय में मूढ़ों के द्वारा उन दोनों शिव और शिवा का अभाव कल्पित किया जाता है उसी समय में निर्वाण देने वाले इस क्षेत्र का अभाव कल्पना करने के योग्य होता है ॥३२॥ महेश्वर प्रभु की आराधना न करके और काशी पुरी में न पहुँच कर जो उपायों का विज्ञ भी योग से ही निर्वाण पद को प्राप्त नहीं किया करता है ॥३३॥ पिनाकी भगवान् ने ही पहिले इसका आनन्दवन यह नाम रखा था क्योंकि यह क्षेत्र आनन्द का हेतु होता था। इसके अनन्तर

इसका नाम अविमुक्त रक्खा गया था। जहाँ-तहाँ पर आनन्द कन्द बीजों के अंकुर वहाँ पर जानने चाहिए। उस आनन्द कानन में सभी लिङ्ग जानने के योग्य हैं। हे घटोद्भव! इस प्रकार से यह अविमुक्त इस नाम से विख्यात हुआ था। हे मुने! और मणिकर्णिका जिस तरह से हुआ था उसको भी मैं कहता हूँ ॥३४-३६॥

प्रागानन्दवने तत्र शिवयोरममाणयोः।
इच्छेत्यभूत्कलशज! सृज्यः कोऽप्यपरः किल ॥३७
यस्मिन्न्यस्ते महाभारे आवां स्वःस्वैरचारिणौ।
निर्वाणश्राणन कुर्वः केवलं काशिशायिनाम् ॥३८
स एव सर्वं कुरुते स ए व परिपाति च।
स एव संवृणोत्यन्ते सर्वैश्वर्यनिधिःसच ॥३९
चेतःसमुद्रमाकुञ्च्यांचिन्ताकल्लोलदोलितम्।
सत्त्वरत्नतमोग्राहंरजोविद्रुमवल्लितम् ॥४०
यस्य प्रसादात्तिष्ठावः सुखमानन्दकानेन।
परिक्षिप्तमनोवृत्तौ बवहिचिन्तातुरे सुखम् ॥४१
संप्रधार्येतिस विभुःसर्वं तश्चिस्स्वरूपया।
तया सहजगद्धात्र्याजगद्धाताऽथधूर्जटिः ॥४२
सव्ये व्यापारयाञ्चक्रे दृशमङ्गे सुधामुचम्।
ततः पुमानाविरासीदेकस्त्रैलोक्यसुन्दरः ॥४३

हे कलशज! पहिले उस आनन्द वन में दोनों शिवा और शिव के रमण करते हुए उनको ऐसी इच्छा हुई थी कि कोई दूसरा स्थल भी सृजन करना ही चाहिए। जिस पर समस्त भार न्यस्त करके हम दोनों स्वच्छन्द चरण करने वाले हो जावें। हम केवल काशी में शयन करने वालों को ही निर्वाण का प्रदान किया करेंगे ॥३७-३८॥ वह ही सब कुछ किया करते हैं और वह ही परिपालन किया करते हैं। वही अन्त समय में सबका संवरण किया करते हैं और वह सभी ऐश्वर्यों के निधि हैं। यह चित्त समुद्र के समान है जो कि चिन्ता रूपिणी तरङ्गों से दोलित रहा करता है। सत्त्वगुण की जो भावनायें उसमें विद्यमान हैं वही रत्न के

समान है और तमोगुण का प्रभाव ही इसमें भयानक ग्राह हैं तथा रजोगुण के बिन्दुओं से यह पल्लित रहा करता है। ऐसे इस चित्त को प्राकुञ्चित करके जिसके प्रसाद से उस आनन्द कानन में सुखपूर्वक स्थित रहें। चिन्ता से आतुर परिक्षिप्त मनोवृत्ति में सुख कहाँ हो सकता है? उन प्रभु ने यह सम्प्रधारण करके जगत् के धाता विभु धूर्जटि भगवान् ने चिरस्वरूप वाली उस जगत की धात्री के साथ सभी ओर से अपने सव्य अंग में सुधा का स्रवण करने वाले नेत्र व्यापार वाला किया था। इसके पश्चात् एक पुरुष जो त्रैलोक्य में परम सुन्दर था आविर्भूत अर्थात् प्रकट हुआ था ॥३९-४३॥

शान्तः सत्त्वगुणोद्रिक्तो गाम्भीर्यजितसागरः ।
तथा च क्षमयायुक्तो मुनेऽलब्धोपमोऽभवत् ॥४४
इन्द्रनीलद्युतिःश्रीमान्पुण्डरीकोत्तमेक्षणः ।
सुवर्णाकृतिसुच्छायदुकूलयुगलावृतः ॥४५
लसत्प्रचण्डदोर्दण्डयुगलद्वयराजितः ।
उल्लसत्परमामोदनाभीह्रत्कुशेशयः ॥४६
एकःसर्वगुणावासस्त्वेक.सर्वकलानिधिः ।
एकःसर्वोत्तमोयस्मात्ततोय.पुरुषोत्तमः ॥४७
ततो महान्तं तं वीक्ष्य महातहिमभूषणम् ।
महादेव उवाचेदं महाविष्णुर्भवाच्युत ॥४८
तव नि.श्वसितं वेदास्तेभ्यः सर्वमवेष्यसि ।
वेददृष्टेन मार्गेण कुरु सर्वं यथोचितम् ॥ ९
इत्युक्त्वा तं महेशानो बुद्धितत्त्वस्वरूपिणम् ।
शिवया सहितो रुद्रो विवेशाऽऽनन्दकाननम् ॥५०

हे मुनिवर! वह पुरुष परम शान्त स्वरूप वाला सत्व गुण से उद्रिक्त—गम्भीरता से सागर को भी जीत लेने वाला तथा क्षमा से युक्त अलब्ध उपमा वाला था ॥४४॥ इन्द्रनील मणि के समान उसके अंग की द्युति थी, श्री से सम्पन्न पुण्डरीक के तुल्य उत्तम नेत्रों वाला—सुवर्ण के समान जाज्वल्यमान आकृति वाला सुन्दर कान्ति से सम्पन्न

और दो वस्त्रों से समावृत था। शोभा से युक्त एवं प्रचण्डदोर्दण्ड (बाहुयुगल) से वह विराजमान था। उल्लसित परम आमोद से नाभि रूपी ह्रद में कुशेशय होने वाला था अर्थात् शयन करने वाला था। यह एक ही थे और समस्त सद्गुणों का आवास स्थान थे। यह एक ही समस्त कलाओं के निधि थे। यह एक ही सबसे उत्तम थे। इसी कारण से यह पुरुषोत्तम हुए थे। इसके अनन्तर उनकी महती महिमा से भूषित एवं महान् देखकर श्री महादेव यह बोले—हे अच्युत! आप महा विष्णु हो जाइये। ये वेद सब आपका ही निःश्वसित हैं। उन से आप सभी कुछ जान लेंगे। वेद के द्वारा दृष्ट जो मार्ग है उसी मार्ग के द्वारा आप सब यथोचित् करिए। महेश्वर प्रभु बुद्धि तत्त्व के स्वरूपधारी उनसे यह कह कर भगवान रुद्र फिर शिवा के साथ आनन्द कानन में प्रवेश कर गये थे ॥४४-५०॥

ततःसभगवान्विष्णुर्मौलावाज्ञा निधायच।
क्षणध्यानपरोभूत्वा तपस्येवमनोदधौ ॥५१
खनित्वा तत्रचक्रेणरम्यां पुष्करिणीहरिः।
निजाङ्गस्वेदसन्दोहैःसलिलैस्तामपूरयत् ॥५२
समा.सहस्रं पञ्चाशत्तप उग्रञ्चचार सः।
चक्रपुष्करिणीतीरे तत्र स्थाणुसमाकृतिः ॥५३
ततःसभगवानीशो मृडान्यासहितोमृडः।
दृष्ट्वाज्वलन्तंतपसा निश्चलंमीलितेक्षणम् ॥५४
तमुवाच हृषीकेश मौलिमान्दोलयन्मुहु।
अहो महत्त्व तपसस्त्वहोधैर्यं च चेतसः ॥५५
अहो अनिन्धनो वह्निर्ज्वलत्येष निरन्तरम्।
अलं तप्त्वा महाविष्णो! वरं वरय सत्तम! ॥५६
मृडस्याऽऽम्रेडितमिदं प्रत्यभिज्ञायाभाषितम्।
उन्मीलितदृगम्भोजः समुत्तस्थौ चतुर्भुजः ॥५७

इसके अनन्तर भगवान् विष्णु ने अपने मस्तक पर प्रभु शिव की आज्ञा को धारण करके एक क्षण भर ध्यान में समास्थित होकर फिर

तपश्चर्या करने ही मे अपना मन स्थिर किया था। श्री हरि ने अपने सुदर्शन चक्र के द्वारा वहाँ पर एक सुरम्य पुष्करिणी का खनन करके अपने अंगो से प्रवहमान स्वेद के जल से उसको परिपूर्ण कर दिया था ॥५१-५२॥ फिर उन्होने पचास सहस्र वर्षों तक अत्यन्त उग्र तपस्या की थी। उस चक्र पुष्करिणी के तट पर वहाँ पर एक स्थाणु (सूखे हुए काष्ठ का ठूंठल) के समान आकृति वाले मृडाली के सहित भगवान ईश मृड ने तप से जलते हुए—निश्चल नेत्र मूंदे हुए इनको देखा था। उस समय मे बारम्बार मस्तक को हिलाते हुए भगवान शिव भगवान हृषीकेश से कहा—ओहो! इस तपश्चर्या की कैसी अद्भुत महिमा है तथा इस तपस्वी के चित्त का धैर्य भी कैसा विलक्षण है। ओ हो! बड़े ही आश्चर्य की बात है कि बिना ही ईंधन के यह अग्नि निरन्तर जलती रहा करती है। हे महा विष्णो! अब आप तप मत करिये। यह आपकी पर्याप्त तपस्या हो चुकी है। हे सत्तम! आप मुझसे वरदान माँग लीजिए ॥५३-५६॥ यह तो भगवान् शम्भु का ही कथन है—ऐसा उस भावित को पहिचान कर चतुर्भुज प्रभु अपने कमल के समान नेत्रों को खोलकर खड़े हो गये थे ॥५७॥

अन्यत्रकृत्वापापानि बहूनिसुमहान्ति च।
अश्रद्दधानोऽतत्त्वज्ञो यत्र च विपद्यते ॥५८
महिमन्यनभिज्ञोपिक्षेत्रस्यास्यजनार्दन!।
तस्ययागतिरुद्दिष्टा ता निशामय सुव्रत!॥५९
पञ्चक्रोशीप्रविशतस्तस्यपातकसन्ततिः।
बहिरेव प्रतिष्ठेत नान्तर्नविशते क्वचित् ॥६०
भयाद् बहिः स्थितायाञ्च तस्य पातकसन्ततौ।
त्रिशूलपाशपाणीना गणाना सीमचारिणाम् ॥६१
प्रवेशमात्रादनघः सर्वैरेनोभिरुज्झितः।
सस्नायमणिकर्णिकयापुण्यंप्राप्नोत्यनुत्तमम् ॥६२
सर्वतीर्थेषुसस्नानाद्यत्पुण्यंसमवाप्यते।
तत्पुण्यमाप्यतेसम्यमणिकर्ण्येकमज्जनात् ॥६३

भगवान शिव ने कहा–अन्य स्थल में बड़े से बड़े बहुत से पापों को करके श्रद्धा भाव न रखने वाला और तत्वों का ज्ञान नहीं रखने वाला पुरुष यदि यहाँ पर विपन्न होता है। हे जनार्दन ! इस क्षेत्र की महिमा का अनभिज्ञ भी हो तो उसकी जो गति अदृष्ट होती है हे सुव्रत ! उसको श्रवण करो। इस पच कोसी में प्रवेश करते हुए ही उसके पातकों की सन्तति बाहिर ही खड़ी रहा करती है और कहीं पर भी वह उसके अन्दर प्रवेश नहीं किया करती है। भय से बाहिर ही स्थित हुई उसके पातकों की सन्तति रहती है। क्योंकि त्रिशूल हाथों में लेकर सीमा में सञ्चरण करते रहने वाले गण वहाँ रहा करते हैं उन्हीं का भय पातकों को रहा करता है। मनुष्य के प्रवेश मात्र के करने ही से समस्त पापों से वह परित्यक्त हो जाया करता है और अनघ होकर फिर उस मणिकर्णिका में भली भाँति स्नान करके अति उत्तम पुण्य को प्राप्त कर लिया करता है। समस्त तीर्थों में स्नान करने से जो पुण्य-फल प्राप्त किया जाता है उतना ही महान पुण्य-फल मणिकर्णिका में एक ही बार स्नान करने से प्राप्त किया जाता है ॥५८-६३॥

विधिस्नातस्त्रसस्नायमृद्गोमयकुशादिभिः ।
स्वशाखावारुणैर्मन्त्रै र्वापाभार्घदभकैः ॥६४

सर्वतीर्थेषुयत्पुण्यसर्वदानेषुयत्फलम् ।
मणिकर्णीविधिस्नातःश्रद्धयातदवाप्नुयात् ॥६५

अश्रद्धयापियःस्नातोमणिकर्ण्यांविधानतः ।
सोऽपिपुण्यमवाप्नोतिस्वर्गप्राप्तिकरंपरम् ॥६६

श्रद्धया विधिवत्स्नात्वा कृत्वा देवादितर्पणम् ।
तिलर्व्रीहियवैः सम्यक्सर्वयज्ञफलं लभेत् ॥६७

श्रद्दधानोविधिस्नातः कृतसर्वोदकक्रियः ।
जपन्देवान्समभ्यर्च्य सर्वमन्त्रफलं लभेत् ॥६८

स्नात्वामौनेन विश्वेशदर्शनान्नियतेन्द्रियः ।
सर्वव्रतकृतं श्रेयोलभेद्वाचयमः शिवे ॥६९

स्नाने देवार्चने जप्ये मलमूत्रविसर्जने ।
मौनं कुर्यात्प्रयत्नेन दन्तधावनहोमयोः ॥७०

उस मणिकर्णिका मे विधि पूर्वक भली भाँति स्नान करना चाहिए, मृत्तिका, गोमय, कुश आदि से तथा अपनी शाखा के धारण मन्त्रों के द्वारा दूर्वा, अपामार्ग और डाभ से शास्त्रोक्त विधान के अनुसार ही वहाँ पर स्नान करे । अन्य समस्त तीर्थों मे जो स्नानादि करने का पुण्य-फल होता है तथा सम्पूर्ण दानो मे जो पुण्य होता है वही पुण्य मणिकर्णिका मे विधि पूर्वक स्नान करने से और श्रद्धा के साथ स्नान करने से प्राप्त कर लिया जाता है । मणिकर्णिका मे बिना श्रद्धा की भावना के भी जो विधि के सहित स्नान कर लेता है वह भी पुण्य प्राप्त कर लिया करता है जोकि परम स्वर्ग लोक की प्राप्ति कराने वाला होता है । श्रद्धा से विधि पूर्वक स्नान करके देवादि का तर्पण तिल, बर्हि और जो से करे तो वह मनुष्य भली-भाँति सभी यज्ञों के करने का फल प्राप्त किया करता है । नियत इन्द्रियो वाला पुरुष मौन होकर स्नान करे और फिर श्री विश्वनाथ भगवान् के दर्शन करे तो हे शिवे ! वह मौनी समस्त व्रतो के पुण्य एवं श्रेय को पा लेता है । श्रद्धा वाला पुरुष सविधि स्नान करके और सम्पूर्ण जल की क्रिया करके जाप करता हुआ देवो का अर्चन करे तो समस्त मन्त्रो के फल को पा लिया करता है । मौन रहने की बहुत बड़ी महिमा है । स्नान मे, देवो के अर्चन मे, जाप करने मे, मल-मूत्र के त्याग करने मे तथा दाँतून करने मे और होम करने के अनन्तर मे प्रयत्न पूर्वक मौन रहने का ही अभ्यास रखना चाहिए ॥६४-७०॥

विश्वेश्वरं समभ्यर्च्य सूपचारं विधानतः ।
यावज्जीवं शिवार्चायाः फलमाप्नोति वं सकृत् ॥७१
दत्त्वाऽल्पमपि देवेशिन्यायेनोपार्जितंधनम् ।
अविमुक्तेमहक्षेत्रे न दरिद्रोभवेत्क्वचित् ॥७२
विविधंधनमावर्ज्ययोऽविमुक्ते न यच्छति ।
संप्राप्यनिधनंमूढोऽन्यत्रशोचतिसर्वदा ॥७३

रम्याणि यानि रत्नानि गोगजाश्वाम्वराण्यपि ।
कृतानि तानि श्रेयोर्थमविमुक्तनिवासिनाम् ।।७४
विश्वेशप्रीणनार्थायधनंनिधनमेववा ।
न्यायेनकाश्यांयःकुर्यात्सधन्यःसचधर्मवित् ।।७५
योऽसौ विश्वेश्वरो देवः काशीपुर्यामुमे ! स्थितः ।
लिङ्गरूपधरः साक्षान्ममश्रेयास्पदं हितम् ।।७६

समस्त पूजनोपचारों के द्वारा श्री विश्वेश्वर प्रभु का विधान के साथ समभ्यर्चन करना चाहिए। जब तक जीवित रहे तब तक एक बार के ही शिवार्चन का फल प्राप्त किया करता है ।।७१।। हे देवेशि ! न्याय से उपार्जित धन का बहुत थोड़ा सा भी भाग दान करके उस अविमुक्त क्षेत्र में फिर कभी वह मनुष्य दरिद्र नहीं हुआ करता है ।।७२।। अनेक प्रकार के धन को प्राप्त करके भी जो मूढ़ इस अविमुक्त क्षेत्र में दान नहीं देता है वह मूढ़ मृत्यु प्राप्त करके फिर अन्यत्र सर्वदा ही शोच किया करता है। जो रम्य रत्न हैं तथा गौ, गज, अश्व और वस्त्र आदि हैं वे सब अविमुक्त में निवास करने वालों के श्रेय के लिये ही किए गये हैं। श्री विश्वनाथ भगवान् के प्रसन्न करने के ही लिये यह धन तथा निधन है। न्यायपूर्वक जो काशी में इसका उपयोग किया करता है वही पुरुष परम धन्य है और वह ही मनुष्य धर्म का ज्ञाता है। हे उमे ! जो यह विश्वनाथ देव काशी-पुरी में लिङ्ग के स्वरूप को धारण करके स्थित हैं वह साक्षात् मेरा स्वरूप है और परम श्रेय के आस्पद होते हैं ।।७३-७६।।

अविमुक्तं महत्क्षेत्रपञ्चक्रोशपरीमितम् ।
ज्योतिर्लिङ्गं तदेकंहिज्ञेयंविश्वेश्वराभिधम् ।।७७
एकदेशस्थितमपियथामार्तण्डमण्डलम् ।
दृश्यते सर्वगं सर्वैःकाश्यांविश्वेश्वरस्तथा ।।७८
निष्प्रत्यूहेन योगेन नानाजन्मार्जितेन च ।
यत्फल लभ्यतेऽन्यत्र तत्काश्यां त्यजतस्तनुम् ।।७९
तप्त्वा तपांसि सर्वाणि बहुकालं जितेन्द्रियैः ।
यत्फलं लभ्यतेऽन्यत्र तत्काश्यामेकरात्रतः ।।८०

अक्षेत्रमहिमज्ञोऽपि श्रद्धाहीनोऽपि कालतः ।
काशीप्रवेशादनघोऽमृतत्वं लभते मृतः ॥८१
कृत्वाप्येनांसि चोग्राणि कालात्प्राप्याथ काशिकाम् ।
त्यक्त्वा तनुं प्रसादान्मे मामेव प्रतिपद्यते ॥८२
विना मम प्रसादं वै कः काशीं प्रतिपद्यते ।
विना ब्रध्नं विशालाक्षि दिनकृत्क इहोच्यते ॥८३
अप्राप्य काशीं कोदेवि! निरन्तरसुखं लभेत् ।
ब्रह्माद्याः प्राकृतैः पाशैर्यतो बद्धा निरन्तरम् ॥८४

यह अविमुक्त एक परम महान् क्षेत्र है जो पाँच कोश के परिमाण में स्थित है और यह श्री विश्वनाथ नाम वाले प्रभु एक ही ज्योतिर्लिङ्ग जानने चाहिए। एक ही देश में स्थित जिस तरह से यह मार्तण्ड मंडल सब के द्वारा सर्वत्र गमन करने वाला दिखलाई दिया करता है वैसे ही काशी में यह भगवान विश्वनाथ प्रभु हैं। निर्विघ्न योग के द्वारा जो कि अनेक जन्मों में अर्जित किया गया है जो भी शुद्ध फल अन्यत्र प्राप्त होता है वह केवल काशीपुरी में निवास करके शरीर के त्यागने से ही मिल जाया करता है ॥७७-७९॥ इन्द्रियों को जीत कर के बहुत काल पर्यन्त समस्त तपश्चर्याओं का तपन करके अन्य स्थल में मनुष्यों के द्वारा जो पुण्य-फल प्राप्त किया जाता है वह समस्त काशीपुरी में एक रात्रि के ही निवास करने से प्राप्त हो जाया करता है ॥८०॥ इस महाक्षेत्र की महिमा को न जानने वाला भी और श्रद्धा से रहित भी उस पुण्यकाल से काशी में प्रवेश करने ही से निष्पाप हो जाया करता है और वहाँ पर मृत्यु प्राप्त करके अमृतत्व को प्राप्त कर लेता है ॥८१॥ महान् उग्र पापों को करके भी कोई कालवश काशीपुरी को प्राप्त कर लेता है और वहीं पर शरीर का त्याग करता है तो वह मेरे प्रसाद से मुझ को ही प्राप्त कर लिया करता है ॥८२॥ बिना मेरी कृपा के कौन काशी पुरी को प्राप्त कर सकता है अर्थात् मेरे प्रसाद के हुए बिना कोई भी काशी पुरी को प्राप्त ही नहीं कर सकता है जिस तरह से हे विशालाक्षि! यहाँ पर सूर्य के बिना दिनकृत् कौन कहा जाया करता है? ॥८३॥ हे देवि!

काशी को प्राप्त न करके निरन्तर सुख कौन प्राप्त कर सकता है ? अर्थात् कोई भी नहीं करता है क्योंकि यहाँ सभी प्राकृत पाशों से निरन्तर बद्ध हैं ॥८४॥

चतुर्विंशतिभिः पाशैस्त्रिगुणैः क्रियया दृढैः ।
कण्ठे बद्धा विमुच्यन्ते कथं काशीं विना जनाः ॥८५
बहूपसर्गो योगोऽस्य कृच्छ्रसाध्यन्तपो हियत् ।
योगाद् भ्रष्टस्तपोभ्रष्टो गर्भक्लेशसहः पुनः ॥८६
कृत्वाऽपि काश्यां पापानि काश्यामेव म्रियेत चेत् ।
भूत्वा रुद्रपिशाचोऽपि पुनर्मुक्तिमवाप्स्यति ॥८७
काश्यां मृतानां जन्तूनांदैवात्पापकृतामपि ।
न पातोनरकेतेपातेषा घास्ताहमेवयत् ॥ ८८
कायं विज्ञाय सापाय स्मृत्वा गर्भस्य वेदनाम् ।
त्यक्त्वा राज्यमपि प्राज्यं सेव्या काशी निरन्तरम् ॥८९
अतर्कितसमभ्येत्य यमदूना सुदारुणा. ।
बद्ध्वापाशैर्हनिष्यन्तिक्षिप्रकाशीतत श्रयेत् ॥९०
नपापेभ्यो भययत्र नभययत्रवं यमात् ।
न गर्भवासभीर्यत्र ता काशी को न सश्रयेत् ॥९१
अद्यप्रात परश्वोवामरणप्राप्यमेव च ।
यावत्कालविलम्बोऽस्तितावत्काशीसमाश्रयेत् ॥९२
प्राप्ते तु मरणे पुंसा पुनर्जन्म पुनर्मृति. ।
अपुनर्भवभूमि च तस्मात्काशी श्रयेद्बुधः ॥९३

चौबीस पाशों से जो कि त्रिगुणों की क्रिया से अत्यन्त दृढ हैं। सभी मनुष्य इनसे कण्ठ मे बद्ध रहा करते हैं ये काशी के बिना कैसे विमुक्त हो सकते हैं ? अर्थात् नही होते हैं ॥८५॥ यह योग बहुत उप सर्गों वाला होता है अर्थात् इसमे अत्यधिक विघ्न बाधाएं हुआ करती हैं और तपश्चर्या जो होती है वह बहुत कष्टो के द्वारा साध्य होती है। योग से भ्रष्ट हो जावे और तप से जो भ्रष्ट हो जाता है वह फिर गर्भ के क्लेशों का

सहन करने वाला बनता है अर्थात् उसका पुनर्जन्म होता है ॥८६॥ काशी पुरी में रहकर भी पापों को करके भी जो काशी पुरी में ही अपने प्राणों का त्याग किया करता है वह रुद्रदेव का पिशाच होकर भी पुनः मुक्ति को प्राप्ति किया करता है ॥८७॥ काशीपुरी में मृत हुए जन्तुओं के यदि वे दैववश पाप करने वाले भी हों तो उनका पतन नरक में नहीं होना है क्योंकि उनका शासक भी मैं ही होना हूँ। अपायों से युक्त इस शरीर को समझ कर और गर्भगत वेदना का ज्ञान करके अर्थात् स्मरण करके परम विशाल राज्य को भी त्याग करके निरन्तर काशीपुरी का ही सेवन करना चाहिए ॥८८-८९॥ अनकित के समीप में आकर सुदारुण यमराज के दूत पाशों से बाँधकर हनन करेंगे। इसलिये बहुत शीघ्र ही काशीपुरी का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए। काशी में मृत्यु प्राप्त होजाने पर दुबारा न जन्म ही होता है और न मृत्यु ही होती है। जहाँ पर पापों से कोई भी भय नहीं होता है और न यमराज के द्वारा दण्ड प्राप्त करने का ही फिर भय रहा करता है। वहाँ पर गर्भ में वास करने का भी भय नहीं रहता है ऐसी उस काशी का कौन मूढ़ है जो आश्रय ग्रहण न करेगा। यह काशीपुरी तो अपुनर्भव की भूमि है। इसलिये बुध पुरुष का कर्त्तव्य है कि उस काशीपुरी का सेवन करे ॥९०-९३॥

पुत्रक्षेत्रकलत्राख्या त्यक्त्वा माया हि वैष्णवीम्।
भवान्तरेऽनेकरूपाम्भवघ्नी काशिका श्रयेत् ॥९४
दूरं मे मरणं युवाहमधुना धार्य्यं न चित्ते स्विति
श्रोतव्यो निभृतं कृतान्तमहिषग्रैवेयघण्टारवः।
नैकट्यात्प्रकटोत्कटश्रमघटामप्राप्य हित्वा द्रुतं।
जीर्णां पर्णकुटी ततः पद्रुमतिर्गच्छेत्पुरी धूर्जटेः ॥९५
अगस्त्यस्य पुरःसूत! कथयित्वा कथामिमाम्।
सर्वपापप्रशमनी पुन.स्कन्दउवाचह ॥९६

पुत्र, क्षेत्र और कलत्र नाम वाली वैष्णवी माया का त्याग करके भवान्तर में अनेक रूप वालो और भव का नाश करने वाली काशीपुरी का सेवन करना चाहिए। भगवान् स्कन्द ने कहा—मेरा मरण अभी

बहुत दूर है और अभी मैं युवा हूं, ऐसा चित्त में कभी भी धारण नहीं करना चाहिए चुप-चाप यमराज के वाहन महिष (भैंसा) के गले मे बँधे हुए घण्टा की ध्वनि सुननी चाहिए । निकटता में प्रकट उत्कट धरा को पाकर ही शीघ्र त्याग करके पटुमति वाले पुरुष को धूर्जटि भगवान् की पुरी काशी मे जीर्ण पर्णकुटी का ही निवास ग्रहण करना चाहिए । भगवान व्यास देव ने कहा—हे सूत ! अगस्त्य के आगे इस कथा को जो समस्त पापो का प्रशमन करने वाली है यह कह कर फिर भगवान् स्कन्द ने कहा था ॥६४-६६॥

---

## ५०—गङ्गामहिमावर्णन एवं दशहरास्तोत्रकथन

वाराणसीतोप्राथतं यथा चानन्दकाननम् ।
तथा च कथयामीहदेवदेवेन भाषितम् ॥१
निशामयमहाबाहो ! विष्णो त्रैलोक्यसुन्दर ! ।
प्राप्तं वाराणसीत्याख्यामविमुक्तं यथा तथा ॥२
निर्दग्धान्सागराञ्छ्रुत्वा कपिलक्रोधवह्निना ।
अश्वमेधाश्वसंयुक्तान्पूर्वजान् स्वान् भगीरथः ॥३
सूर्यवंशे महातेजा राजा परमधार्मिकः ।
आरिराधयिषुर्गङ्गां तपसे कृतनिश्चयः ॥४
हिमवन्तं नगश्रेष्ठममात्यन्यस्तराज्यधूः ।
जगाम यशसां राशिरुद्दिधीर्षुः पितामहान् ॥५
ब्रह्मशापाग्निनिर्दग्धान्महादुर्गतिगानपि ।
विना त्रिमार्गगां विष्णो ! को जन्तूंस्त्रिदिवं नयेत् ॥६

भगवान् श्री स्कन्द ने कहा—यह जिस प्रकार से आनन्द कानन वैसे ही वाराणसी, इस नाम से भी प्रथित है और मैं उसी भाँति से देवों के देव के द्वारा भाषित को कहता हूं । श्री ईश्वर ने कहा—हे महान् बाहुओ वाले ! हे विष्णो ! हे त्रैलोक्य में परम सुन्दर ! अब आप यह सुनाइये कि जैसे यह अविमुक्त क्षेत्र वारणसी इस नाम को प्राप्त हुआ है ।

राजा भगीरथ ने कपिल मुनि के क्रोध की अग्नि से अश्वमेध यज्ञ के अश्व से समन्वित अपने पूर्वजों को सगर के पुत्रों को निर्दग्ध सुनकर यह सूर्य वंश में महान् तेजस्वी और परम धार्मिक राजा हुआ था। इसने गङ्गा की आराधना करने की इच्छा वाला होकर तप करने के लिये निश्चय किया था ॥१-४॥ इसने अपने मन्त्रियों पर समग्र राज्य का भार छोड़कर फिर यह पर्वतों में परम श्रेष्ठ हिमालय पर सुन्दर यशों का समुदाय स्वरूप राजा भगीरथ अपने पितामहों का उद्धार करने की इच्छा वाला होकर तप करने के लिये चला गया था। हे विष्णो! ब्रह्म शाप से भस्मसात् हुए महान् दुर्गति वाले उन सगर के सुतों को त्रिमार्गगा (गङ्गा) के बिना किसकी सामर्थ्य है जो स्वर्ग में पहुँचा सके ॥५-६॥

ममैव सापरामूर्त्तिस्तोयरूपा शिवात्मिका।
ब्रह्माण्डानामनेकानामाधार. प्रकृति. परा ॥७
शुद्धविद्यास्वरूपा च त्रिशक्ति करुणात्मिका।
आनन्दामृतरूपा च शुद्ध धर्मस्वरूपिणी ॥८
यामेतां जगतां धात्रीं धारयामि स्वलीलया।
विश्वस्य रक्षणार्थाय परब्रह्म स्वरूपिणीम् ॥९
त्रैलोक्ये यानितीर्थानि पुण्यक्षेत्राणि यानि च।
सर्वत्र सर्वे ये धर्माः सर्वे यज्ञा. सदक्षिणा ॥१०
तपांसि विष्णो! सर्वाणि श्रुति सांगा चतुर्विधा।
अहं च त्वञ्च कश्चापि देवतानां गणाश्च ये ॥११
पुरुषार्थाश्च सर्वे वैशक्तयो विविधाश्च याः।
गङ्गायां सर्व एवैते सूक्ष्मरूपेण सस्थिताः ॥१२
सस्नात सर्वतीर्थेषु सर्वक्रतुषु दीक्षित.।
चीर्ण सर्वव्रत. सोपि यस्तु गङ्गां निषेवते ॥१३
तपांसि तेन तप्तानि सर्वदानप्रदः स च।
स प्राप्तयोगनियमो यस्तु गङ्गां निषेवते ॥१४

यह गङ्गा मेरी ही एक जल के स्वरूप वाली दूसरी मूर्ति है जो शिवात्मिका ही है। यह अनेकों ब्रह्माण्डों की आधार और परा प्रकृति है।

यह शुद्ध विद्या के स्वरूप वाली, तीन शक्तियों से युक्त, कल्याणात्मिका, आनन्दामृत के रूप वाली एवं शुद्ध धर्म के स्वरूप वाली है। जिस इसको समस्त जगतों की धात्री को मैं अपनी लीला ही से धारण किया करता हूँ। इस पर ब्रह्म के स्वरूप वाली को मैं विश्व की रक्षा करने के ही लिये धारण किया करता हूँ। इस त्रिलोकी में जो भी तीर्थ हैं तथा पुण्य के क्षेत्र हैं, सर्वत्र सब जो धर्म हैं तथा दक्षिणा से युक्त यज्ञ हैं और हे विष्णो! समस्त जो तप हैं तथा अंगों के सहित सब चारों प्रकार के वेद हैं, मैं और आप और कोई भी, देवताओं के गण जो हैं, समस्त पुरुषार्थ तथा विविध शक्तियाँ ये सभी इस गङ्गा में सूक्ष्म रूप से संस्थित रहा करते हैं। जो पुरुष श्री गङ्गा देवी का सेवन करता है उसने सम्पूर्ण योग के नियमों को प्राप्त कर लिया है और उन सभी तपों का भी तपन कर लिया है तथा वह सभी दानों का प्रदाता होगया है ॥७-१४॥

सर्वं वर्णाश्रमेभ्यश्च वेदविद्भ्यश्च ये तथा ।
शास्त्रार्थपारगेभ्यश्च गङ्गास्नायी विशिष्यते ॥१५
मनोवाक्कायजैर्दोषैर्दुष्टो बहुविधैरपि ।
वीक्ष्य गङ्गां भवेत्पूतः पुरुषो नात्र संशयः ॥१६
कृते सर्वत्र तीर्थानि त्रेतायां पुष्करम्परम् ।
द्वापरे तु कुरुक्षेत्रं कलौ गङ्गैव केवलम् ॥१७
पूर्वजन्मान्तराभ्यासवासनावशतो हरे ! ।
गङ्गातीरे निवासः स्यान्मदनुग्रहतः परात् ॥१८
ध्यानं कृते मोक्षहेतुस्त्रेतायां तच्च वै तपः ।
द्वापरे तद्द्वयं यज्ञाः कलौ गङ्गैव केवलम् ॥१९
यो देहपतनाद्यावद्गङ्गातीरं न मुञ्चति ।
न हि वेदान्तविद्योगी ब्रह्मचर्यं कलौ यदा ॥२०
कलौ कलुषचित्तानां परद्रव्याभिगामिनाम् ।
विधिहीनक्रियाणाञ्च गतिर्गङ्गा विना न हि ॥२१

समस्त वर्णों और सभी आश्रमों से तथा वेदों के वेत्ताओं से और शास्त्रों के पूर्ण पारगामी विद्वानों से भी गङ्गा में स्नान करने वाला पुरुष

विशिष्ट हुआ करता है ॥१५॥ मन-वाणी और काया से समुत्पन्न दोषों से जो कि बहुत से प्रकार के होते हैं दुष्ट पुरुष भी गंगा का दर्शन प्राप्त करके ही पवित्र हो जाया करता है—ऐसा केवल गंगा के दर्शन मात्र का प्रभाव होता है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। कृतयुग में सर्वत्र तीर्थ है—त्रेता युग में पुष्कर ही परम तीर्थ है। द्वापर युग में कुरुक्षेत्र सर्व शिरोमणि तीर्थ माना गया था और अब कलियुग में केवल गंगा ही सर्वोपरि विराजमान प्रमुख तीर्थ है। हे हरे! पूर्व जन्मों के अभ्यास से जो वासना है उसी के वश में यदि गंगा के तट पर निवास प्राप्त हो जावे तो यह मेरा ही परम अनुग्रह है। कृतयुग (सत्ययुग) में ध्यान की ही मुख्यता थी। त्रेता में तपश्चर्या प्रधान मानी गई थी। द्वापर में ये दोनों ही तथा यज्ञों का यजन प्रधान माने गये थे और अब इस घोर कलियुग में जब कि ध्यान तप और यज्ञों का होना ही नितान्त असावश्यक सा है केवल इस उद्धार के लिये गंगा ही सब कुछ है। जो मनुष्य देह के पतन होने के समय तक गंगा के तट का त्याग नहीं करता है वह वेदान्त का ज्ञाता योगी है और सदा ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन करने वाला है। कलियुग से कलुषित चित्त वाले तथा पराये धन के पाने में रति रखने वाले—विधि तथा क्रिया से सर्वथा हीन पुरुषों की केवल एक गंगा ही उद्धार करने वाली होती है। यह न हो तो ऐसे पुरुषों का कल्याण ही नहीं हो सकता है ॥१६-२१॥

अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नो दुर्विचिन्तितम् ।
न गांगेतिजपनात्तानि नोपविशन्ति हि ॥२२
गंगा हि सर्वभूतानामिहामुत्र फलप्रदा ।
भावानुरूपतो विष्णो सदा सर्वजगद्धिता ॥२३
यज्ञदानतपोयोग जपाः सनियमायमाः ।
गंगासेवामहस्रांशं न लभन्ते कलौ हरे ! ॥२४
किमष्टांगेन योगेन किं तपोभिः किमध्वरैः ।
वास एव हि गंगायां ब्रह्मज्ञानस्य कारणम् ॥२५

अपि दूरस्थितस्यापि गंगामाहात्म्य वेदिन. ।
अयोग्यस्यापि गोविन्द ! भक्त्या गंगा प्रसीदति ॥२६

श्रद्धाधर्मः परः सूक्ष्मः श्रद्धाज्ञानम्परन्तपः ।
श्रद्धास्वर्गश्च मोक्षश्च श्रद्धया सा प्रसीदति ॥२७

अज्ञानरागलोभाद्यैः पुंसां सम्मूढचेतसाम् ।
श्रद्धा न जायते धर्मे गंगाया च विशेषत. ॥२८

अलक्ष्मी—कालकर्णी—दुःस्वप्न—दुर्विचिन्तन अर्थात् बुरे विचार "गङ्गा-गङ्गा" इसके नामों का इस प्रकार से जाप करने से ये सब समीप में ही नहीं ठहरा करते हैं। अर्थात् इनका कोई भी बुरा प्रभाव नहीं होता है। यह गङ्गा समस्त प्राणियों को इस लोक में और परलोक में दोनों ही जगह पर फल प्रदान करने वाली होती है। हे विष्णो ! भावों के अनुसार यह सदा ही सम्पूर्ण जगत् के हितों के करने वाली है। हे हरे ! यज्ञ—दान—तप—योग—जप—नियम और यम ये सब गंगा के सेवन के सहस्र अंश के बराबर भी इस कलियुग में नहीं होते हैं। इस आठो अंगो वाले योग के साधन से क्या लाभ है ? अत्युग्र तपश्चर्याओं के करने से भी क्या प्रयोजन है तथा यज्ञों के यजन से भी क्या सिद्धि होती है। इन सबके द्वारा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति हो जाती है जो कि आत्मोद्धार का हेतु है सो वह ब्रह्मज्ञान तो गङ्गा तट पर निवास करते ही हो जाया करता है क्योंकि यह निवास ही उसका कारण होता है। हे गोविन्द ! गंगा नदी से बहुत दूर में भी स्थित हो तथा गंगा के माहात्म्य का ज्ञाता हो और सभी प्रकार से योग्यता से हीन भी हो तो भी गंगा अपनी भक्ति से ही प्रसन्न हो जाया करती हैं और उस भक्त का कल्याण किया करती है। यह श्रद्धा का भाव ही सर्वोपरि धर्म्म होता है। यह परम सूक्ष्म है। श्रद्धा ही ज्ञान है घोर परम तप है। श्रद्धा का बड़ा महत्व है। यही स्वर्ग है और मोक्ष भी है। इसी श्रद्धा से वह गंगा प्रसन्न हो जाती है। अज्ञान ( ज्ञान का सर्वथा न होना )—राग अर्थात् सांसारिक जड़ चेतन वस्तुओं में ममत्वपूर्ण आसक्ति—लोभ आदि से

सम्मूढ़ चित्त वाले पुरुषों की श्रद्धा कभी भी धर्म में नहीं हुआ करती है तथा गङ्गा में तो विशेष रूप से नहीं हुआ करती है ॥२२-२८॥

बहिः स्थितं जलं यद्वन्नारिकेलान्तरे स्थितम् ।
तथा ब्रह्माण्डबाह्यस्थं परब्रह्माम्बु जाह्नवी ॥२९
गंगालाभात्परो लाभः क्वचिदन्योन विद्यते ।
तस्माद्गंगामुपासीत गंगैव परमः पुमान् ॥३०
शक्तस्य पण्डितस्यापि गुणिनो दानशीलिनः ।
गंगास्नानविहीनस्य हरे ! जन्म निरर्थकम् ॥३१
वृथा कुलं वृथा विद्या वृथा यज्ञा वृथा तपः ।
वृथा दानानि तस्येह कलौ गंगा न यो भजेत् ॥३२
गुणवत्पात्रपूजायांन स्याद्वैतादृशं फलम् ।
यथा गंगाजलस्नान पूजने विधिना फलम् ॥३३
ममतेजोऽग्निगर्भे यं मम वीर्याति संवृता ।
दाहिका सर्वदोषाणां सर्वपापविनाशिनी ॥३४
स्मरणादेव गंगायाः पापसङ्घात पञ्जरम् ।
शतधा भेदमायाति गिरिर्वज्रहतो यथा ॥३५

बाहिर में स्थित यह गंगा का जल उसी भाँति है जिस तरह से नारियल के अन्दर जल रहा करता है । उसी प्रकार से इस ब्रह्माण्ड के बाहिर में स्थित यह परब्रह्मरूपी जल वाली गंगा है । गंगा की प्राप्ति के समान अन्य कोई भी परम लाभ संसार में नहीं है । इसीलिए गंगा की उपासना अवश्य ही करनी चाहिए । यह गंगा ही साक्षात् परम पुरुष है । समुच्चपदाधिरूढ इन्द्र ही क्यों न हो—चाहे महान पण्डित हो—अनेक सद्गुणों से युक्त भी हो और दान देने के स्वभाव वाला भी हो यदि ऐसा भी कोई गंगा के स्नान से हीन है तो उसका जन्म ही निरर्थक हो जाता है । जो इस कलियुग में गंगा का सेवन नहीं किया करता है उसको कुल-विद्या—यज्ञ - तप और दान सभी वृथा हैं । किसी भी गुण गण सम्पन्न पात्र की पूजा में भी उस प्रकार का फल नहीं होता है जैसा कि विधि के सहित गंगा के जल में स्नान और उसके पूजन में फल प्राप्त हुआ करता ॥

है। यह गंगा मेरे तेज की अग्नि का गर्भस्थ है और यह मेरे ही वीर्य से प्रति संवृत है। यह सभी दोषों के दाह करने वाली और समस्त पापों को विनाश कर देने वाली है। केवल गंगा का स्मरण ही करने से पापों के संघात का पञ्जर सैकड़ों टुकड़े होकर भिन्न हो जाया करता है जिस तरह से वज्रपात के होने से पर्वत टुकड़े-टुकड़े हो जाया करते हैं ॥२६-३५॥

गंगा गच्छति यस्त्वेको यस्तु भक्त्याऽनुमोदयेत् ।
तयोस्तुल्यं फलं प्राहुर्भक्तिरेवात्र कारणम् ॥३६
गच्छंस्तिष्ठञ्जपन्ध्यायन् भुञ्जञ्जाग्रत स्वपन्वदन् ।
यः स्मरेत्सततं गंगां स हि मुच्येत बन्धनात् ॥३७
पितृनुद्दिश्य यो भक्त्या पायसं मधुसंयुतम् ।
गुडसर्पिस्तिलैः सार्धं गंगाम्भसि विनिक्षिपेत् ॥३८
तृप्ता भवन्ति पितरस्तस्य वर्षशतं हरे ।
यच्छन्ति विविधान्कामान्परितुष्टाः पितामहाः ॥३९
लिंगे सम्पूजिते सर्वमर्चितं स्याज्जगद्यथा ।
गंगास्नानेन लभते सर्वतीर्थफलं तथा ॥४०
गंगायां तु नरः स्नात्वायोलिंगं नित्यमर्चति ।
एकेन जन्मनमुक्ति परां प्राप्नोति स ध्रुवम् ॥४१
अग्निहोत्रंच यज्ञाश्च व्रतदान तपांसि च ।
गंगायां लिंगपूजायाः कोटयंशेनापिनोसमाः ॥४२
गंगां गन्तुं विनिश्चित्य कृत्वा श्राद्धादिकं गृहे ।
स्थितस्य सम्यक्सङ्कल्पात्तस्य नन्दन्ति पूर्वजाः ॥४३

एक तो गंगा नदी में स्नान करने को जाया करता है और एक भक्ति की भावना से उसका अनुमोदन करता है उन दोनों का समान ही पुण्य फल हुआ करता है क्योंकि यहाँ पर भक्ति ही एक मुख्य कारण होता है। गमन करते हुए-स्थित रहते हुए-नाम का जाप करते हुए-ध्यान करते हुए-भोजन करते हुए-जागते-सोते और बातचीत करते हुए जो निरन्तर गंगा का स्मरण किया करता है वह सांसारिक बन्धन से

मुक्त हो जाया करता है ॥३६-३७॥ अपने पितृगण का उद्देश्य लेकर जो कोई भी पुरुष भक्तिपूर्वक मधु से समन्वित पायस गुड़-घृत और तिलों से युक्त करके गंगा के जल में निक्षिप्त किया करता है हे हरे! उनके पितृगण सौ वर्ष तक तृप्त हो जाया करते हैं। पितामह आदि जब पूर्णतया परितुष्ट हो जाते हैं तो अनेक प्रकार की कामनाओं को पूर्ण कर दिया करते हैं। शिव लिंग का पूजन कर लेने पर जगत् में सभी का समर्चन हो जाया करता है जिस प्रकार से गंगा केवल स्नान कर लेने से समस्त तीर्थों का पुण्य फल प्राप्त हो जाया करता है। जो मनुष्य नित्य ही गंगा में स्नान करके शिवलिंग का समर्चन किया करता है वह एक ही जन्म में परा मुक्ति का लाभ निश्चय ही प्राप्त कर लिया करता है। अग्निहोत्र –यज्ञ–व्रत–दान–तप ये सब गंगा में स्नान और शिव लिंग का अर्चन के करोड़ भाग के बराबर भी नहीं हुआ करते हैं। गंगा पर आने का निश्चय करके घर में श्राद्धादिक करके सम्यक् रीति से सङ्कल्प करके जो स्थित रहता है उसके पूर्व उसका बड़ा भारी अभिनन्दन किया करते हैं ॥३८-४३॥

पापानि च रुदन्त्याशुहा क्वयास्यामहत्यलम् ।
लोभमोहादिभिः सार्द्धं मन्त्रयन्ति पुनः पुनः ॥४४

यथानगंगायात्रेयं तथा विघ्नं प्रकुर्महे ।
गंगागतोयथाचेय न उच्छित्ति विधास्यति ॥४५

गृहाद्गंगावगाहार्थं गच्छतस्तु पदे पदे ।
निरासानियजन्त्येव पापान्यस्य शरीरतः ॥४६

पूर्वजन्मकृतैः पुण्यैस्त्यक्त्वा लोभादिकं हरे ! ।
व्युदस्य सर्वविघ्नौघान् गंगां प्राप्नोति पुण्यवान् ॥४७

अनुषंगेन मौल्येन वाणिज्येनापि सेवया ।
कामासक्तोऽपि वा मर्त्यो गंगास्नातो दिवं व्रजेत् ॥४८

अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहनोहि यथा दहेत् ।
अनिच्छयापि सस्नाता गंगा पाप तथा दहेत् ॥४९

दिव्यौषधैर्यथा रोगा लोभेन च यथा गुणाः ।
यथा ग्रीष्मोष्मसम्पत्तिरगाधह्रदमज्जनात् ॥६१
तूलशैलः स्फुलिंगेन यथा नश्यति तत्क्षणात् ।
तथा दोषाः प्रणश्यन्ति गंगाम्भः स्पर्शनाद् ध्रुवम् ॥६२
क्रोधेन च तपो यद्वत्कामेन च यथा मतिः ।
अनयेन यथा लक्ष्मीर्विद्यमानेन वै यथा ॥६३
दम्भकौटिल्यमायाभिर्यथा धर्मो विनश्यति ।
तथा नश्यन्ति पापानि गंगाया दर्शनेन तु ॥६४

सिद्धियाँ–सिद्धियों के चिन्ह–अनेक स्पर्श लिंग प्रासाद जो रत्नों से रचित हैं एवं चिन्तामणि गण भी ये सभी कलियुग के कल्मषों से भीत होकर गंगा के ही जल के अन्दर स्थित रहा करते हैं। अतएव अभीष्टों की सिद्धियों के प्रदान करने वाली गंगा का इस कलियुग में भली भाँति सेवन करना ही चाहिये ॥५७-५८॥ सूर्योदय के होने पर अन्धकारों की भाँति–वज्रपात के भय से पर्वतों के समान—गरुड के भय से सर्पों के सदृश–वातों से आहत मेघों के तुल्य–जैसे तत्व ज्ञान से मोह और सिंह को देखकर मृग दूर भाग जाया करते हैं ठीक उसी प्रकार से समस्त पाप भी गंगा के दर्शन मात्र करने से क्षण भर में ही क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं। जिस तरह से दिव्य औषधियों से रोग–लोभ से सद्गुण और ग्रीष्म की ऊष्म सम्पत्ति किसी अगाध ह्रद के जल में मज्जन करने से नष्ट हो जाया करती है। तूलका (रुई का विशाल ढेर जो एक पर्वत के ही समान होता है अग्नि के एक ही स्फुलिंग (पतिंगा) से क्षण भर में नष्ट हो जाया करता है उसी तरह से गंगा के जल के स्पर्श मात्र करने ही से एक ही क्षण में निश्चय ही समस्त दोष नष्ट हो जाया करते हैं। क्रोध करने से जैसे तप और काम से मति–अनय के विद्यमान होने से लक्ष्मी –दम्भ और कौटिल्य की माया से धर्म नष्ट हो जाया करता है ठीक उसी भाँति गंगा के दर्शन से ही सब पाप विनष्ट हो जाते हैं ॥५९-६४॥

मानुष्यं दुर्लभं प्राप्य विद्युत्सम्पातचञ्चलम् ।
गंगां यः सेवते सोऽत्र बुद्धः पारंपरंगतः ॥६५

विधूतपापा ये मर्त्याः परंज्योतिः स्वरूपिणीम् ।
सहस्रसूर्यप्रतिमां गंगां पश्यन्ति ते भुवि ॥६६

साधारणाम्भ सा पूर्णां साधारण नदीमिव।
पश्यन्ति नास्तिका गंगां पापोपहृतलोचनाः ॥६७

संसारमोचकश्चाहं जनानामनुकम्पया ।
गंगातरंगरूपेण सोपानं निर्ममे दिवः ॥६८

सर्वे एव शुभः कालः सर्वोदेशस्तथाशुभः ।
सर्वो जनो दानपात्रं श्रीमती जाह्नवी तटे ॥६९
यथाऽश्वमेधो यज्ञानां नगानां हिमवान्यथा ।
व्रतानांञ्च यथा सत्य दानानाम भयं यथा ॥७०

इस परम दुर्लभ मनुष्य का जीवन प्राप्त करके जो कि बिजली के समान अतीव चञ्चल है जो गंगा का यहाँ सेवन किया करता है वह ही मनुष्य सचेत है और बुद्धि के पर पार को प्राप्त हुआ अर्थात् बहुत ही बुद्धिमान होता है। जो मनुष्य अपने पापों का विधूनन कर देते हैं वे ही मनुष्य इस भूलोक मे परम ज्योति स्वरूपिणी और सहस्रों सूर्यों के प्रतिमा वाली इस गंगा का दर्शन प्राप्त किया करते हैं। पापों से उपहृत नेत्रों वाले नास्तिक लोग ही इस गंगा को साधारण जल से परिपूर्ण एक मामूली नदी की ही भाँति देखा या समझा करते हैं। जनों के ऊपर अनुकम्पा करके मैं संसार से मोचन कराने वाला हूँ। और मैंने गंगा के तरंगों के स्वरूप मे ही स्वर्गलोक मे जाने के लिए सीढ़ियों का निर्माण कर दिया है। श्री मती गंगा के तट पर सभी काल परम शुभ होता है तथा सभी देश शुभकारी हैं और वहाँ पर सभी जन दान के योग्य पात्र हुआ करते हैं। जिस तरह समस्त यज्ञों मे अश्वमेध समस्त पर्वतों मे हिमवान्—सब व्रतों मे सत्य का व्रत सम्पूर्ण दानों में अभय का दान उत्तम माना जाता है ॥६९-७०॥

प्राणामश्च तपसां मन्त्राणां प्रणवो यथा ।
धर्माणामप्यहिंसा च काम्यानां श्रीर्यथा वरा ॥७१

यथात्मविद्याविद्यानां स्त्रीणां गौरी यथोत्तमा ।
सर्वदेवगणानाञ्च यथा त्व पुरुषोत्तम ॥७२
सर्वेषामेव पात्राणां शिवभक्तो यथा वरा ।
तथा सर्वेषु तीर्थेषु गंगा तीर्थं विशिष्यते ॥७३
हरे ! यश्चावयोर्भेदं न करोति महामतिः ।
शिवभक्त सविज्ञेयो महापाशुपतश्च सः ॥७४
पापपांसुमहावात्या पापद्रुम कुठारिका ।
पापेन्धनदवाग्निश्च गंगेय पुण्यवाहिनी ॥७५
नानारूपाश्च पितरो गाथा गायन्ति सर्वदा ।
अपि कश्चित्कुलेऽस्माकं गंगास्नायी भविष्यति ॥७६
देवर्षीन्परिसन्तर्प्य दीनानाथाश्च दुःखितान् ।
श्रद्धया विधिना स्नात्वा दास्यते सलिलाञ्जलिम् ॥७७
अपि नः स कुले भूयाच्छिवे विष्णौ च साम्यदृक् ।
तदालयकरोभक्तया तस्य सम्मार्जनादिकृत् ॥७८

जिस तरह से समस्त तपों मे प्राणायाम, सब मन्त्रो मे प्रणव, सब धर्मों में अहिंसा, सब काम्य पदार्थों में वरा श्री सर्वोत्तम मानी जाती है । जैसे सब विद्याओ मे आत्म विद्या, स्त्रियो मे गौरी उत्तम होती है । हे पुरुषोत्तम ! समस्त देवों मे जैसे आप सर्वश्रेष्ठ देव हैं समस्त पात्रों मे भगवान् शिव का भक्त श्रेष्ठ होता है । उसी प्रकार से सम्पूर्ण तीर्थों मे गङ्गा का तीर्थ विशिष्ट तीर्थ होता है । हे हरे । जो महा मति पुरुष हम और आप इन दोनो मे भेद का भाव नहीं रखता है वही शिव का भक्त जानना चाहिए और वही महा पाशुपत होता है । पाप रूपी पांसु ( धूलि कण ) के लिये महा वात्या अर्थात् जोरदार आँधी, पापों के द्रुमो को काटने वाली कुल्हाडी तथा पाप रूपी ईंधन के लिये दावाग्नि यह परम पुण्य वाहिनी गंगा है । अनेक रूपो वाले पितृगण सर्वदा गाथा का गायन किया करते हैं कि हमारे भी कुल में कोई ऐसा गंगा का परम भक्त गंगा मे स्नान करने वाला जन्म लेगा जो देवो को और ऋषियों को सन्तृप्त करके दीन, अनाथ और दुःखियो को श्रद्धा से विधि पूर्वक गंगा में स्नान

करके जलाञ्जलि देगा ? वे पितर लोग यह कहा करते हैं कि कभी कोई ऐसा भी उत्पन्न होगा जो शिव तथा विष्णु भगवान् मे समान भावना रखे तथा भक्ति से उनके मन्दिर का निर्माण करावे और उस देवालय मे सम्मार्जन आदि करे ।।७१-७८।।

अकामोवासकामोवातिर्यग्योनिगतोऽपिवा ।
गङ्गायां यो मृतो मर्त्योनरकंस न पश्यति ।।७९
तीर्थमन्यत्प्रशसन्ति गङ्गातीरेस्थिनाश्च ये ।
गङ्गा न बहुमन्यन्ते ते स्युर्निरयगामिनः ।।८०
मा चत्वा चैवयोद्वेष्टि गङ्गा च पुरुषाधमः ।
स्वकीयैः पुरुषैः सार्थं स घोरं नरकं व्रजेत् ।।८१
षष्टिगणसहस्राणि गङ्गा रक्षन्ति सर्वदा ।
अभक्तानाञ्च पापाना वासेविघ्नम्प्रकुर्वते ।।८२
कामक्रोधमहामोह लोभादिनिशितैः शरैः ।
घ्नन्ति तेषा मनस्तत्र स्थितिंचापनयन्ति च ।।८३
गङ्गा समाश्रयेद्यस्तु स मुनिः स च पण्डितः ।
कृतकृत्यः सविज्ञेय पुरुषार्थ चतुष्टये ।।८४

किसी भी कामना से युक्त हो अथवा कामना से रहित हो या किसी भी तिर्यक् योनि मे रहने वाला हो जो प्राणी गङ्गा तट के समीप मे अपने प्राणो का परित्याग किया करता है वह फिर कभी भी नरक का मुख नही देखा करता है । जो मनुष्य गंगा के तीर पर स्थित होकर अन्य तीर्थों की प्रशंसा किया करते हैं और गंगा को विशेष महत्व वाली नही मानते हैं वे निश्चय ही नरक मे गामी हुआ करते है । जो कोई मुझ को या आपको द्वेष-भाव से देखता है वह पुरुषो मे महान् अधम ही हुआ करता है । ऐसा प्राणी अपने पितरो के सहित अतीव घोर नरक मे गमन किया करता है । साठ सहस्र गण सर्वदा गंगा की रक्षा किया करते हैं और जो भक्त नही होते हैं या पापी होते हैं उनके वहाँ पर निवास करने में महान विघ्नो को किया करते हैं । काम, क्रोध, महा मोह और लोभ आदि पैने शरो से उनके मन का हनन किया करते है और उनकी

स्वयंव्यापारयामास रक्षार्थं शशिशेखरः।
अनुज्ञातप्रवेशानां विश्वेशेन कृपावता ॥२२
ते प्रवेशम्प्रयच्छन्ति नान्येषाहि कदाचन ।
इत्यर्थेकथयिष्येऽहमितिहासम्पुरातनम् ।
आश्चर्यकारिपरम काशीभक्तिप्रवर्धनम् ॥२३

एक महान् दुष्कृतो वाला भी भार के वहन करने वाला पुरुष काशी में उत्तर वहा गंगा को प्राप्त करके हेला ही से अपने शरीर का त्याग करके भी विष्णु भगवान् के परमपद को प्राप्त हो गया था। यम, इन्द्र और अग्नि जिनमे प्रमुख थे ऐसे देवगण मुक्तिपथ के उन्मुखो को देखकर सभी सब का समालोकन करके पहिले इस पुरी की रक्षा किया करते थे। सन्मति का खण्डन करने वाली महाशिरूपा असि की प्राप्त करके देवों ने दुष्टो के प्रवेश को रोकने वाली धुनी का निर्माण किया था। वही पर क्षेत्र के समागत विघ्नो का निवारण करने वाली वरणा की रचना की थी। सुरों ने दुराचारियो की सुप्रवृत्ति को निवृत्ति करने वाली वरणा को असि दक्षिणोत्तर दिग्भाग मे किया था। क्षेत्र की मोक्ष के निक्षेप की रक्षा करके ही वे निर्वृ ति को प्राप्त हुए थे। क्षेत्र के पश्चात् दिग्भाग मे शशिशेखर भगवान् ने स्वयं रक्षा के लिये देहलिवि नायक को नियुक्त किया था। कृपालु विश्वनाथ के द्वारा जिनके प्रवेश की अनुज्ञा प्राप्त हो जाती थी उनके प्रवेश को ही वे होने देते हैं और दूसरों का नहीं होने दिया करते हैं। इस अर्थ मे मै एक पुरातन इतिहास कहूँगा जो परम आश्चर्य करने वाला और काशी की भक्ति के बढ़ाने वाला है ॥१६-२३॥

काश्या प्रवेशं प्राप्याऽपि तदस्थीनि घटोद्भव !।
विना वैश्वेश्वरामाज्ञाम्बहिर्यातानि तत्क्षणात् ॥२४
एवकाश्यप्रविश्यापिपापीधर्मानुषङ्गतः ।
नक्षेत्रफलमाप्नोनिर्बहिर्भवति तत्क्षणात् ॥२५
तस्माद्विश्वेश्वराज्ञैवकाशीवासेऽत्र कारणम् ।
असिश्चवरणायत्र क्षेत्ररक्षाकृतो कृते ॥२६

वाराणसीतिविख्याता तदारम्यमहामुने !!
असेश्चवरणायाश्च संगमं प्राप्याकाशिका ॥२७

वाराणसीह करुणामयदिव्यमूर्त्ति
रुत्सृज्य यत्र तु तनुं तनुभृत्सुखेन ।
विश्वेशदिङ्महसि यत्सहसा प्रविश्य
रूपेण ता वितनुताप्पदवीं दधाति ॥२८

जातो मृतो बहुषु तीर्थवरेषुवरेत्वं
जन्तो! न जातु तव शान्तिरभूनिमज्ज्य ।
वाराणसी निगदतोहं मृतोऽमृतत्वं
प्राप्याऽधुना मम बलात्स्मरशासनःस्याः ॥२९

अन्यत्र तीर्थ सलिले पतितो द्विजन्मा
देवादिभावमयते न तथा तु काश्याम् ।
चित्रं यदत्र पतितःपुनरुत्थिति न
प्राप्नोति पुल्कसजनोऽपिकिमग्रजन्मा ॥३०

किसी प्रकार से काशी में प्रवेश प्राप्त करके भी हे घटोद्भव ! उसकी अस्थियाँ विश्वेश्वरी आज्ञा के बिना उसी क्षण में बाहिर चली जाया करती हैं । इस प्रकार से कोई प्राणी धर्म के अनुषङ्ग से काशी में प्रवेश प्राप्त करके भी उस पुण्य क्षेत्र के फल को प्राप्त नही किया करता है और उसी क्षण में बाहिर हो जाता है । इसलिये इस काशीपुरी के निवास करने में श्री विश्वनाथ भगवान् की आज्ञा ही मुख्य कारण है जहाँ पर असि और वरणा ये दोनों क्षेत्र की रक्षा करने वाली कर दी गयी हैं ॥२४-२६॥ हे महामुने ! तभी से आरम्भ करके यह पुरी "वाराणसी"—इस नाम से विख्यात हो गई है । यह काशी असि और वरणा इन दोनों का सङ्गम प्राप्त करने वाली हुई है । यहाँ पर यह वाराणसी करुणामय दिव्य मूर्ति है । जहाँ पर देहधारी सुखपूर्वक अपने देह का उत्सर्ग करके सहस विश्वनाथ की दिशा के तेज में प्रवेश करके रूप से उस वितनुता की पदवी को धारण किया करता है ॥२७-२८॥

हे जन्तो ! तू बहुत-से श्रेष्ठ तीर्थों में उत्पन्न हुआ और मृत्युगत भी हुआ है किन्तु कभी भी निभञ्जन करके तुझे शान्ति नहीं हुई है। वाराणसी कहती है यहाँ पर मृत हुआ अब अमृतत्व की प्राप्ति करके मेरे बल से स्मरशासन अर्थात् शिव हो जावेगा। अन्य तीर्थ जलमें पतित होकर द्विजन्मा देवादि के भाव को प्राप्त होता है इस काशी पुरी में उस प्रकार की बात नहीं है। यह एक अत्यन्त विचित्र बात है कि यहाँ पर एक बार पतित हुआ फिर उत्थान को ही नहीं प्राप्त किया करता है चाहे कोई पुल्कसजन भी क्यों-नहीं फि' अग्रजन्मा (ब्राह्मण) की तो बात ही क्या है ॥२९-३०॥

सैषा परो संसृतिरूपपारावारस्यपारम्प्रहापुरारिः ।
यस्यां परं पौरुषमर्थ मिच्छन्सिद्धिप्रयेस्पौरपरम्परां सः ॥३१

तीर्थान्तराणि मनुजःपरितोऽवगाह्य
हित्वा तनुं कलुषितां दिवि दैवतं स्यात् ।
वाराणसीपरिसरे तु विसृज्य देहं
सन्देहभाग्भति देहदशाप्तयेऽपि ॥३२

वाराणसीसमरसीकरणाहतेऽपि
योगादयोगिजनतां जनतापहन्त्री ।
तत्तारकं श्रवणगोचरतां नयन्ती
तद्ब्रह्म दर्शयति येन पुनर्भवो न ॥३३

वाराणसीपरिसरे तनुमिष्टधात्री
धर्मार्थ कामनिलयामहहा विसृज्य ।
इष्टं पदं किमपि हृष्टतरोऽभिलष्य
लाभोऽस्तु मूलमपि नो यदवाप शून्यम् ॥३४

अ!! काशिवासिजनता ननु वञ्चिताऽभूद्
भालेविलोचनवता वनितार्धभाजा ।
आदाय यत्सुकृतभाजनमिष्टदेहं
निर्वाणमात्रमपवर्जयता पुनर्भू ॥३५

पुरहा पुरारी की यह ऐसी पुरी है जो संसार रूपी सागर का परला पार या तटरूप है जिस पुरी में परम पौरुष अर्थ की इच्छा करता हुआ यह पौरपरम्परा सिद्धि को प्राप्त करा देता है ॥३१॥ मनुष्य दूसरे तीर्थों का सभी ओर से अवगाहन करके इस कलुषित शरीर का त्याग करके दिवलोक में देव हो जाया करता है। इस वाराणसी के परिसर में तो अपने देह का त्याग करके फिर देह दशा की प्राप्ति के लिये भी सन्देह भाक् हो जाया करता है। यह वाराणसी योग के बिना भी समर सीकरों से अयोगी जनों के तापों का हनन करने वाली है। यह उस तारक मन्त्र का श्रवणों का गोचर कराती हुई उस ब्रह्म का दर्शन करा दिया करती है जिससे फिर दूसरा जन्म ही नहीं हुआ करता है। इस वाराणसी के परिसर में समस्त अभीष्टों का जनन करने वाले और धर्म—अर्थ—काम का निलय स्वरूप शरीर का त्याग करके, अहहा! बड़े ही हर्ष की बात है कि परम हृष्ट होकर किसी भी अभीष्ट पद की इच्छा करके उसका लाभ होता है और मृत को भी प्राप्त कर लेता है जिसको कि शून्य नहीं प्राप्त हुआ है। परम सुकृत का भाजन इस इष्ट देह को लेकर पुनर्जन्म के अप वर्णन करने वाले प्रभु ने निर्वाण मात्र ही प्रदान किया है अनितार्थ का भजन करने वाले विलोचन धारी के द्वारा निश्चय ही काशी के निवास करने वाली जनता वञ्चित हो गई है ॥३२-३५॥

वाराणसीस्फुरदसीमगुणैकभूमिः
यत्र स्थितास्तनुभृतःशशिभृत्प्रभावात् ।
सर्वे गले गरलिनोऽक्षिभुजो ललाटे
वामार्धवामतनवोऽतनवस्ततोऽन्ते ॥३६
आनन्दकाननमिदं सुखदं पुरव
तत्रापि चक्रसरसीमणिकर्णिकाऽय ।
स्वःसिन्धुसंगतिरथोपरमास्पदञ्च
विश्वेशितुः किमिह तन्नविमुक्तये यत् ॥३७
वाराणसीह वरणासिसरिद्विरिक्षा
सम्भेदखेदजननी द्युनदी लसच्छ्रीः ।

विश्रामभूमिरचलामलमोक्षलक्ष्या
हैना विहाय किम् सीदति मूढजन्मः ॥३८
किं विस्मृत त्वहह गर्भजमामनस्यं
कान्तान्तदूतकृतवन्धननाडनञ्च ।
शम्भोरनुग्रहपरिग्रहलभ्य काशी मूढो
विहाय किम् याति करस्थमुक्तिम् ॥३९
तीर्थान्तराणि कलुषाणि हरन्तिसद्य.
श्रेयो ददत्यपि बहु त्रिदिवं नयन्ति ।
पानावगाहनविधानतनुप्रहाणं
वाराणसी तु कुरुते बत मूलनाशम् ॥४०
काशीपुरीपरिसरे मणिकर्णिकाया
त्यक्त्वा तनुन्तनुभृतस्तनुमाप्नुवन्ति ।
भाले विलोचनवती गलनीललक्ष्मी
वामार्धबन्धुरवधूं विधुरायरोधाः ॥४१
ज्ञात्वा प्रभावमतुलं मणिकर्णिकाया
यःपुद्गलन्त्यजति चाशुचि पूयगन्धि ।
स्वात्मावबोधमहसा सहसा मिलित्वा
कल्पान्तरेष्वपि स नैव पृथक्त्वमेति ॥४२

यह वाराणसी स्फुरित असीम गुणो की एक ही भूमि है जहाँ पर शशिधर के प्रभाव से शरीरधारी स्थित रहा करते हैं। सब गरल धारण करने वाले गले मे हैं—ललाट मे अक्षि युग है और वामार्ध मे सुन्दर शरीर वाले हैं किन्तु अन्त मे फिर वे सब तनुरहित होते हैं। यह आनन्द कानन पहले ही सुख प्रदान करने वाला है उसमे भी चक्र सर मणिकर्णिका है। स्वर्ग नदी की सगति से यह विश्वनाथ का परमास्पद हो गया है। यहाँ पर ऐसा धया है जो विमुक्ति के लिए न. दो. अर्थात् सभी विमुक्ति देने वाले हैं ॥३६-३७॥ यहाँ पर वाराणसी वरणाअसि सरिताओ से परम वरिष्ठ है और सम्भेद के खेद की जननी देव नदी शोभा से सुसम्पन्न है। अचल और अमल मोक्ष की लक्ष्मी से युक्त यह विश्राम

की भूमि है। ऐसी इस पुरी का त्याग करके यह मूढ जन्तु क्यों दुःख पाया करता है। क्या तू हे जन्तो! गर्भ मे उत्पन्न कष्ट को भूल गया है? और क्या तूने यमराज के दूतों के द्वारा बन्धन और ताडना को भुला दिया है? तू महान् मूढ है कि भगवान शम्भु के अनुग्रह से काशीपुरी को प्राप्त करके हाथ मे स्थित मुक्ति का त्याग करके क्यों जा रहा है? ॥३८-३९॥ अन्य समस्त तीर्थ कलुषों का हरण किया करते हैं और तुरन्त ही श्रम प्रदान किया करते हैं और बहुतों को स्वर्ग मे भी पहुँचा दिया करते हैं परन्तु यह वाराणसी जल पान-अवगाहन-विश्राम पूर्वक देह त्याग के द्वारा मूल का ही नाश कर दिया करती है ॥४०॥ काशी पुरी के परिसर में मणिकर्णिका मे देहधारी देह का त्याग करके दूसरा ही कलेवर प्राप्त किया करते हैं जो कि भाल में विलोचन वाला होता है और जिसके कण्ठ मे नीलिमा की शोभा हुआ करती है तथा वामार्ध भाग मे जिसके सुडौल शरीर वाली वधू है और त्रिपुरावरोध युक्त है। तात्पर्य यह है कि शिव का सा ही शरीर प्राप्त हो जाया करता है ॥४१॥ मणिकर्णिका मे अतुल प्रभाव को जान जो अशुचि और पूरा गन्धीर पुद्गल का त्याग करता है वह अपने आत्मा के प्रबोध के तेज से सहसा मिलकर कल्पान्तरो मे भी पृथकता को प्राप्त नही होता है ॥४२॥

रागादिदोषपरिपूरमनोहृषीकाः
काशीपुरीमतुलदिव्यमहाप्रभावाम् ।
ये कल्पयन्त्यपरतीर्थसमा समन्ता
ते पापिनो न सहतं परिभाषणीयम् ॥४३

वाराणसी स्मरहरप्रियराजधानी
त्यक्त्वा कुतो व्रजसि मूढ! दिगन्तरेषु ।
प्राप्याप्याजाद्यसुलभां स्थिरमोक्षलक्ष्मी
लक्ष्मी स्वभावचपलाकिमु कामयेथाः ॥४४

विद्याधनानि सदनानि गजाश्वभृत्याः
स्रक्चन्दनानि वनिताश्च नितान्तरम्याः ।

स्वर्गोऽप्यगम्य इह नोद्यमभाजि पुंसि
वाराणसी त्वसुलभा शलभादिमुक्तिः ॥४५
धात्रा धृतानि तुलया तुलनामवेतु
वैकुण्ठमुख्यभुवनानि च काशिका च ।
तान्युद्ययुलंघुतयान्यगियं गुरुत्वात्तस्थौ
पुरीह पुरुपार्थ चतुष्टयस्य ॥४६
काशीपुरीमधिवसन्हि नरो नरोऽपि
ह्यारोप्यमाण इस मान्य इवेकरुद्र ।
नानोपसर्गजनितसर्गजदु.खभारैः
कर्मापनुद्य स विशेत्परमेशधाम्नि ॥४७
स्थिरापायंकायव्जननमरणक्लेशनिलय
विहायास्याकाश्यामहहपरिगृह्णीतनकुतः ।
वपुस्तेजोरूप स्थिरतरपरानन्दसदनं
विमूढोऽसौ जन्तुः स्फुटितमिव काश्य विनिमयन् ॥४८

रागादि दोषो से परिपूर्ण मन और इन्द्रियो वाले जो लोग इस अतुल एवं दिव्य महान् प्रभाव वाली काशी को दूसरे ही तीर्थों के समान यदि कल्पित किया करते हैं वे महा पापी हुआ करते हैं उनके साथ भाषण भी नही करना चाहिए। हे मूढ ! यह वाराणसी कामदेव को भस्म कर देने वाले भगवान् शिव की परम प्रिय राजधानी है। इसका परित्याग करके दिगन्तरो मे कहाँ गमन कर रहा है ? इस प्रकाशाद्य के सुलभ इस महालक्ष्मी को प्राप्त करके भी जो स्थिर मोक्ष के प्रदान करने वाली लक्ष्मी है फिर उस स्वभाव से चपल लक्ष्मी को प्राप्त करने की क्यों कामना किया करता है ? विद्या-धन-सदन-गज-अश्व-भृत्य-स्रक्-चन्दन प्रयत्न सुरम्य वनिताएँ और स्वर्ग भी उद्यम शील पुरुष को अगम्य नही है किन्तु यह वाराणसी असुलभा है जहाँ पर शलभ आदि की भी मुक्ति हो जाया करती है। एक बार धाता ने तुलना का परिज्ञान प्राप्त करने के लिए तुला मे (तराजू) वैकुण्ठ मुख्य जिनमे है ऐसे समस्त भुवनो को और काशीपुरी को रक्खा था तो वे सब भुवन जिनमें वैकुण्ठ भी था लघु हुए

थे और पुरुषार्थ चतुष्टय की यह काशीपुरी गुरुत्व से युक्त सिद्ध हुई थी। काशीपुरी मे अधिवास करने वाला मनुष्य भी यहाँ पर आरोग्यमाण एक रुद्र के ही समान मान्य हुआ करता है। अनेक उपसर्गज और सर्गज दुःखो के भारो के कर्मों का अवलोकन करके वह परमेश के धाम मे प्रवेश किया करता है और वहाँ पर ही निवास करता है। इस काशीपुरी मे स्थिर अपायो वाले और जनन तथा मरण के क्लेशों का निवास स्थान का त्याग करके उसे क्यों नही ग्रहण करते हो। बहुत तेज के स्वरूप वाले और स्थिर तर परानन्द के सदन को यह महामूढ जन्तु फूटे हुए काँती के पात्र से बदल सा रहा है ॥४३ ४६॥

अहो! लोक.शोक किमिह सहते हन्त हतधीः।
विपद्द्वारैःसारैर्नियतनिधनैर्ध्वंसितधनैः ॥५०
क्षितौ सत्यां काश्यां कथयति शिवो यत्र निधने।
श्रुतौ किञ्चिद् भूयः प्रविशति न येनोदरदरीम् ॥५१
काशिवासिनि जने वनेचरे द्विस्त्रिभुज्यपि समीरभोजने।
स्वैरचारिणिजितेन्द्रिये-प्यहोकाशिवासिनिजनेविशिष्टता ॥५२
नाऽस्तीह दुष्कृतकृतां सुकृतात्मना वा।
काचिद्विशेषगतिरन्तकृता हि काश्याम् ॥५३
बीजानि कर्मजनितानि यदूपराया।
नाङ्कुरयन्ति हरदृग्ज्वलितानि तेषाम् ॥५४
शशका मशका बका.शुकाः कलविङ्काश्च वृकाः कजम्बुकाः।
तुरगोरगवानरा नरा गिरिजे! काशिमृताः परामृतम् ॥५५
अरुद्ररुद्राक्षफणीन्द्रभूषणास्त्रिपुण्ड्रचन्द्रार्धधरा धरा गताः।
निरन्तरकाशिनिवासिनोजनागिरीन्द्रजेपारिषदाममतामम ॥५६

बहुत ही आश्चर्य और खेद की बात है—यह लोक शोक का इस संसार मे क्यों सहन कर रहा है ? अत्यन्त ही दुःख है कि यह हत बुद्धि वाला मनुष्य विपदाओ के द्वार रूप–निश्चित मृत्यु से युक्त और ध्वसित धन वाले सारो से यह रात दिन विपत्तियो को सहता ही रहा करता है जबकि इस भूमि मे काशीपुरी जैसा क्षेम विद्यमान है जहाँ साक्षात् शिव

विराजमान रहते हुए यह कहा करते हैं कि काशी मे निधन हो जाने पर वे कान मे कुछ मर्यात् तारक मन्त्र कह दिया करते हैं जिसके प्रभाव से वह पुन: माता की उदर दरी मे प्रवेश ही नहीं किया करता है मर्यात् पुनः उसको गर्भ मे निवास करने की यन्त्रणाऐं नहीं सहनी होती हैं ॥५०-५१॥ काशी मे वास करने वाले मनुष्य वन मे चरण करने वाला हो—दूसरे तीसरे दिन में भोजन करने वाला हो या समीर (वायु) का ही भोजन करके जीवित रहने वाला हो—स्वतन्त्रता से विचरण करने वाला हो, जितेन्द्रिय हो तो उस काशीपुरी के निवास करने वाले पुरुष में विशिष्टता हुआ करती है। काशी में जिनका मरण होता है वे चाहे दुष्कृत करने वाले हों या सुकृतात्मा हो उनकी कोई भी विशेष गति यहाँ पर नहीं होती है। जिस तरह से ऊपर भूमि मे बोये हुए भी बीज अंकुरित नहीं होते हैं उसी तरह से उनके कर्मों से जनित बीजों का भगवान् शम्भु की दृष्टि से भस्म हो जाने पर कोई भी अंकुर नहीं रहा करता है ॥५२-५४॥ द्राक-मशक-बक-शुक-कलविंक-वृक=जम्बुक-तुरग—उरग—वानर और नर हे गिरिजे! काशी मे मृत्युगत होने पर ये सभी पशु मृनत्व को प्राप्त हो जाया करते हैं। हे गिरीन्द्रजे! रुद्र रुद्राक्ष और फणीन्द्रों से भूषण तथा त्रिपुण्ड्र भस्मच-डधारी इस भूमि मे स्थित काशी के निवासी मेरे पार्षद ही माने गये हैं ॥५५-५६॥

यावन्न एव निवसन्ति च जन्तवोऽत्र
मात्राजन्स्थल चरा भ्रपजम्बुवाद्या।
तावन्न एवमदनुग्रहरुद्रदेहा
देहात्यता नमधिगम्य मयि प्रविष्टा ॥५७
ये तुवर्णपयो रुद्रा दिवि देवशरीरिणाः।
यातेपयोन्तरिक्षे ये ये भुव्यन्नेपव. प्रिये! ॥५८
रुद्रा दनदनप्राच्यवाचीप्रत्यगुदक् स्थिताः।
ऊर्ध्वदिक्प्राच्य ये रुद्राःपठयन्ते वेदवादिभि. ॥५९
अगद्गुपाताग्महस्राणि ये रुद्रा अधिभूतले।
नागयॅन्तोऽभिरा कास्यां जन्तवो रुद्रमपिद. ॥६०

रुद्रावासस्ततःप्रोक्तमविमुक्तं घटोद्भव !।
यस्मात्समर्च्य काशिस्थान्वर्णान्वर्णेतराश्रमान् ॥६१
श्रद्धयेश्वरबुद्धया च रुद्रार्चाफलभाङ्नरः ॥६२

इस काशी मे जितने भी जन्तु निवास किया करते है वे जलचारी हों या स्थल पर रहने वाले हो जो कि ऋष जम्बुक आदि हैं वे सब के सब उतने ही मेरे अनुग्रह से रुद्र देहा देहावसान को प्राप्त करके मुझ मे ही प्रविष्ट हो जाया करते हैं। जो वर्षपव रुद्र हैं जो दिवलोक मे देव कीर्तित किये गये हैं—जो वातेपव अन्तरिक्ष मे है और हे प्रिये ! जो इस भूमण्डल मे अन्मेपव हैं। प्राचीअवाची (पूर्व-पश्चिम)—प्रत्यक् और उदक् (दक्षिण-उत्तर) दिशाओ मे दश-दश रुद्र स्थित होते हैं। वेद वादियों के द्वारा जो ऊर्ध्व दिशा मे स्थित रुद्र पढ़े जाया करते हैं और जो असख्यात सहस्रो इस भूतल के मध्य मे रुद्र है उन सबसे अधिक रुद्र स्वरूप वाले जन्तु काशी मे हैं। हे घटोद्भव ! यह काशी रुद्रो का आवास स्थल है इसीलिए इसको अविमुक्त कहा गया है। इसी कारण से काशी मे स्थित वर्णों का और वर्णेतर आश्रमो का भली भाँति अर्चन करके चाहे वह श्रद्धा से किया जावे अथवा ईश्वर की बुद्धि से किया जावे मनुष्य रुद्र की अर्चा का पुण्य फल प्राप्त करने का अधिकारी होजाया करता है ॥५७-६२॥

श्मशब्देनशवः प्रोक्तःशान शयनमुच्यते ।
निर्वचन्ति श्मशानार्थं मुने!शब्दार्थकोविदाः ॥६३
महान्त्यपि च भूतानि प्रलयेसमुपस्थिते ।
शेरतेऽत्र शवा भूत्वा श्मशानंतुततोमहत् ॥६४
अप्सु भूरिह लये लयं व्रजेदाप और्वंवदनोग्रकन्दरे ।
मातरिश्वनि महातनूनपाद्व्योम्नि संक्षयति वै सदागतिः ॥६५
व्योम चापि लयमेत्यहङ्कृतौ साऽपि षोडशविकारसयुता ।
लीयते महति बुद्धिसञ्ज्ञके ह्या! महान्प्रकृतिमध्यगो भवेत् ॥६६
सा गुणत्रयमयी च निर्गुणन्त पुमासमवगुह्य तिष्ठति ।
पञ्चविंशतिः नमः पर. पुमान्देहगेहपतिरेपजीवकः ॥६७

श्रावयित्वा द्विजान्सम्यक् शिवलोकेमहीयते ।
अतःपरं कलशज! किशुश्रूषतिद्वद ॥७४
काशीकथा कथ्यमाना ममाऽपि परितोषकृत् ॥७५

ब्रह्मा—हरि और रुद्र से वर्जित यह प्राकृत प्रलय कहा जाता है। उस पुरुष को यह काल मूर्ति पर ईश्वर हेला ही से कलन किया करता है। वह ही बुधों के द्वारा महा विष्णु–इस शुभ नाम से पुकारे जाया करते हैं और उनको महादेव कहा करते है। वह अन्त-आदि और मध्य से रहित —श्री के स्वामी शिव है और वह ही पार्वती के पति हैं। ये हर इन दैनन्दिन प्रलय मे अर्थात् दिनो दिन मे होने वाली प्रलय में अपनी पुरी को त्रिशूल की कोटि मे समुत्क्षिप्त करके संवर्त महास्थि भूषण प्रभु धारण किया करते हैं। तभी से यह काशी काल के काल से वर्जित है। भगवान् स्कन्द ने कहा–हे द्विज ! इस पुरी के कई शुभ नाम हैं–वाराणसी—काशी —रुद्रावास–महाश्मशान और आनन्द कानन कहे गये हैं। यही देवों के देव भगवान् शम्भु ने देवी के आगे कहा था। पहिले जिस प्रकार से विष्णु के सामने कहा गया था और मैंने जो उसी भांति श्रवण किया था वही मैंने काशी में उत्पन्न होने वाला महान् रहस्य आपके सामने कह दिया था। इस परम पुण्यमय अध्याय का पाठ करके महापातकों का नाश हो जाता है। द्विजों को इस अध्याय का भली भांति श्रवण कराकर शिवलोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है। हे कलशज ! इससे आगे आप क्या सुनना चाहते है–यह मुझे बतलाइए। यह कथ्यमान काशी की कथा मुझको भी महान् परिताप के करने वाली होती है ॥६८-७५॥

---

## ५२—ज्ञानवापीमाहात्म्यवर्णन

स्कन्द ! ज्ञानोदतीर्थस्य माहात्म्यं वद साम्प्रतम् ।
ज्ञानवापीं प्रशसन्ति यतः स्वर्गौकसोऽप्यलम् ॥१
घटोद्भव महाप्राज्ञ ! शृणु पापप्रणोदिनीम् ।
ज्ञानवाप्याः समुत्पत्तिं कथ्यमानां मयाधुना ॥२

अनादिसिद्धे संसारे पुरा देवयुगे मुने ! ।
प्राप्तः कुतश्चिदीशानश्चरन्स्वैरमितस्ततः ॥३

न वर्षन्ति यदा श्राणि न प्रावर्तन्त निम्नगाः ।
जलाभिलाषो न यदास्नानपानादिकर्मणि ॥४

क्षारस्वादूदयोरेव यदासीज्जल दर्शनम् ।
पृथिव्या नरसचारे वर्तमाने क्वचित्क्वचित् ॥५

निर्वाणकमलाक्षेत्रं श्रीमदानन्दकाननम् ।
महाश्मशानं सर्वेषां बीजानां परमूषरम् ॥६
महाशयनसुप्तानां जन्तूनां प्रतिबोधकम् ।
संसारसागरावर्तपतज्जन्तुतरण्डकम् ॥७

महा महर्षि श्री अगस्त्यजी ने कहा—हे श्री स्कन्दजी ! अब आप कृपया ज्ञानोद तीर्थ का माहात्म्य कहिए । इसको ज्ञानवापी कहकर प्रशंसा किया करते हैं जो कि स्वर्ग लोक मे निवास करने वाले देवों को भी दुर्लभ है । श्री स्कन्द भगवान् ने कहा—हे घटोद्भव ! आपकी प्रज्ञा तो बहुत ही अधिक है । अब मेरे द्वारा वर्णित इस पापों को हटाने वाली ज्ञानवापी के माहात्म्य का श्रवण कीजिए । हे मुने ! इस अनादि सिद्ध संसार मे पहिले देवयुग मे इधर-उधर सचरण करते हुए भगवान् शम्भु कही से यहाँ पर प्राप्त होगये थे । जिस समय मे मेघ नही बरसते थे, नदियाँ नही बहन किया करती थीं और जिस काल मे स्नान पानादि कर्मों मे कही पर भी जल का अभिलाप ही नही था । जिस समय मे खारी स्वाद वाले जल का ही दर्शन था । पृथिवी मे कही कही पर मनुष्यो के सचार मे ऐसी ही दशा विद्यमान थी । निर्वाण कमला का क्षेत्र, श्रीमान आनन्द कानन, महा श्मशान समस्त बीजो का परम ऊपर क्षेत्र होरहा था । महा शयन मे सुप्त हुए जन्तुओं का प्रति बोध कराने वाला इस संसार सागर के आवर्त्त में पड़े हुए जन्तुओ का तरण्डक यह क्षेत्र था ॥१-७॥

यातायातातिसंखिन्न जन्तुविश्राममंडपम् ।
अनेकजन्मगुणितकर्मसूत्रच्छिदाक्षुरम् ॥ ८

सच्चिदानन्दनिलयम्परब्रह्म रसायनम् ।
सुखसन्तानजनकम्मोक्षसाधनसिद्धिदम् ॥९
प्रविश्य क्षेत्रमेतत्स ईशानो जटिलस्तदा ।
लसत्त्रिशूल विमल रश्मिजालसमाकुलः ॥१०
आलुलोके महालिंग वैकुण्ठपरमेष्ठिनो ।
महाहमहमिकायां प्रादुरास यदादितः ॥११
ज्योतिर्मयीभिर्मालाभिः परितः परिवेष्टितम् ।
वृन्दैर्वृन्दारकर्षीणां गणानाञ्च निरन्तरम् ॥१२
सिद्धानां योगिनांस्तोमैरर्च्यमानं निरन्तरम् ।
गीयमानं चगन्धर्वै. स्तूयमानं च चारणैः ॥१३
अंगहारैरप्सरोभिः सेव्यमानमनेकधा ।
नीराज्यमानं सततन्नागीभिर्मणिदीपकैः । १४

इस संसार में गमनागमन से अच्छी तरह खिन्न हुए जन्तुओं का विश्राम करने का मण्डप, अनेक जन्मों में संचित किये हुए कर्मों के छेदन करने वाले छुरा के समान, सत्, चित् और आनन्द का निलय, परब्रह्म का रसायन स्वरूप, सुख और सन्तति का जनक और मोक्ष के साधन की सिद्धि को प्रदान करने वाला यह क्षेत्र है जिस समय में भगवान् शम्भु ने जो माथे पर जटाऐं धारण कर रहे थे, हाथ में शोभित त्रिशूल की विमल किरणों के जाल से समाकुल उन भगवान् शिव का स्वरूप था। जिस समय में आदि में वैकुण्ठ परमेष्ठियों का यह महा लिङ्ग दिखलाई दिया था और महाऽहमहमिका से अर्थात् मेरा ही सबसे आगे हो, इस भावना से प्रादुर्भूत हो रहा था। उस समय में यह सभी ओर ज्योतिर्मयी मालाओं से परिवेष्टित था। देवों और ऋषियों के समूहों तथा गणों के द्वारा निरन्तर समर्चित था। सिद्ध, योगी आदि के समुदायों से निरन्तर पूज्यमान हो रहा था। गन्धर्वों के द्वारा गीयमान और चारणों के द्वारा स्तूयमान हो रहा था। यह महालिंग अनेक प्रकारों से अप्सराओं के अङ्गहारों के द्वारा सेव्यमान था और नागिनियों की फणा में रहने वाली

मणियो के दीपों के द्वारा नीराज्यमान हो रहा था अर्थात् नागिनियाँ अपनी मणियों के दीपों से आरती कर रही थी ॥८-१४॥

विद्याधरीकिन्नरीभिस्त्रिकालं कृतमंडनम् ।
अमरीचमरीराजिवीज्यमानमितस्ततः ॥१५
अस्येशानस्य तल्लिगं दृष्टेच्छेत्य भवत्तदा ।
स्नपयामि महल्लिगं कलशैःशीतलैर्जलैः ॥१६
चखान त्रिशूलेन दक्षिणाशोपककंठतः ।
कुण्डं प्रचण्डं वेगेन रुद्रोरुद्रवपुर्धरः ॥१७
पृथिव्यावरणाम्भोसि निष्क्रान्तानि तदा मुने !।
भूप्रमाणाद्दशगुणैर्येरियं वमुधावृता ॥१८
तैर्जलैः स्नापयाञ्चके त्वस्पृष्टैरन्यदेहिभिः ।
तुषारैर्जाड्य विधुरैर्जञ्जपूकौघहारिभिः ॥१९
सन्मनोभिरिवात्यच्छैरनच्छैर्व्योमवर्मवत् ।
ज्योत्स्नावदुज्ज्वलच्छायैः पावनैः शम्भुनामवत् ॥२०

विद्याधरी और किन्नरियो के द्वारा तीनों कालो में उस महालिंग का अलङ्करण और मण्डन किया जा रहा था । देवाङ्गनाओं की चमरियों के समूह से इधर-उधर बीज्यमान था अर्थात् दोनों ओर चमर-डुराये जा रहे थे । इस ईशान के उस लिंग को देख कर इनकी भी इच्छा ऐसी उस समय में समुत्पन्न होगई थी कि इस महालिंग का शीतल जल से परिपूर्ण कलशों से स्नपन कराऊँ । उसी समय में दक्षिण दिशा के समीप में भगवान शम्भु ने अपने त्रिशूल के द्वारा खनन किया था । रुद्र वपु के धारण करने वाले रुद्र देव ने बड़े वेग से एक परम प्रचण्ड कुंड तयार करदिया था । हे मुने ! उस समय मे पृथिवी के आवरण जल निकले थे । यह वसुधा भूप्रमाण से दशगुने जलों से समावृत होगई थी । पापों के समूहों का हरण करने वाले, अन्य देह धारियो के स्पर्श से रहित, तुषार और जाड्य विधुर उन जलों से स्नपन कराया था । ये जल सत्पुरुषों के मन की भाँति स्वच्छ थे तथा व्योम मार्ग के तुल्य अनच्छ थे, चाँदनी के

समान अत्यन्त उज्ज्वल कान्ति वाले थे एवं भगवान् शम्भु के नाम के सदृश परम पावन थे ॥१५-२०॥

पीयूषवत्स्वादुतरैः सुखस्पर्शैर्गवाङ्गवत् ।
निष्पापधीवद्गम्भीरैस्तरलैः पापिशर्मवत् ॥२१
विजिताब्जमहागन्धैः पाटलामोदमोदिभिः ।
अदृष्टपूर्वलोकानां मनोनयनहारिभिः ॥२२
अज्ञानतापसं तप्तप्राणिप्राणैकरक्षिभिः ।
पञ्चामृतानां कलशैः स्नपनातिफलप्रदैः ॥२३
श्रद्धोपस्पर्शि हृदयलिंगस्तिमयहेतुभिः ।
अज्ञानतिमिरार्कार्भैर्ज्ञानदाननिदायकैः ॥२४
विश्वभर्तुरुमास्पर्शसुखाति सुखकारिभिः ।
महावभृथसुस्नान महाशुद्धि विधायिभिः ॥२५
सहस्रधारैः कलशैः स ईशानोघटोद्भवैः ।
सहस्रकृत्वः स्नपयामास सहृष्टमानसः ॥२६
ततः प्रसन्नो भगवान्विश्वात्माविश्वलोचनः ।
तमुवाच तदेशान रुद्र रुद्रवपुर्धरम् ॥२७
तव प्रसन्नोऽस्मीशान कर्मणाऽनेन सुव्रत ।
गुरुणानन्य पूर्वेण ममाति प्रीतिकारिणा ॥२८
ततस्त्वं जटिलेशान ! वरं ब्रूहि तपोधन ।
अदेयं न तवास्त्यद्य महोद्यमपरायण ॥२९

यह जल अमृत के समान स्वाद वाला, गौ के अङ्ग के सदृश सुख स्पर्श से युक्त, निष्पाप बुद्धि के समान गम्भीर और पापी के शर्म की भाँति तरल था। विजित अब्ज के समान महान् गन्ध वाला, पाटल के आमोद से आमोदित जो पहिले कभी भी नहीं देखे गये ऐसे लोकों के मन और नेत्रों के हरण करने वाले वे जल थे। अज्ञान तापस को सतत प्राणियों के प्राणों की रक्षा करने वाले, फलप्रद पचामृत के कलशों के द्वारा स्नपन से अति पुण्य-फल को देने वाले थे। श्रद्धा के उपस्पर्श करने वाले हृदय के लिंगस्तिमय के हेतु, अज्ञान रूपी अन्धकार का निवारण करने के लिये

सूर्य के समान, ज्ञान के दान को देने वाले, विश्व के भरण करने वाले स्वामी और उमा देवी के स्पर्श से सुखातिसुखकारी, महान् अवभृथ के सुन्दर स्नान से होने वाली शुद्धि के विधायक, सहस्र धाराओं वाले कलशों के द्वारा हे घटोद्भव ! भगवान् शम्भु ने सहस्रवार संप्रहृष्ट मन वाले होते हुए स्नपन कराया था। इसके अनन्तर विश्वलोचन, विश्वात्मा भगवान् परम प्रसन्न हुए थे। फिर रुद्र के वपु को धारण करने वाले ईशान उन रुद्र से बोले—हे ईशान ! मैं आपसे प्रसन्न हूँ। हे सुव्रत ! आपके इस कर्म से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ है। यह आपका कर्म महान् गुरु है और ऐसे पहिले अन्य किसी ने भी नहीं किया है। यह मेरी अत्यन्त प्रीति का करने वाला है। हे जटिलेशान् ! हे महान् तपोधन ! आप कोई भी वरदान माँगलो। आज इस समय मे मुझे आप से इतनी प्रसन्नता हुई कि कुछ भी अदेय नही है अर्थात् चाहे जो कुछ भी माँगोगे सो देदूँगा क्योंकि आप इस महान उद्यम मे परायण हो रहे हैं ।।२१-२६।।

यदि प्रसन्नो देवेश ! वरयोग्योऽस्म्यहं यदि ।
तदेतदतुलं तीर्थं तव नाम्नास्तु शङ्कर ! ।।३०
त्रिलोक्यां यानि तीर्थानि भूर्भुवःस्वः स्थितान्यपि ।
तेभ्यो खिलेभ्यस्तीर्थेभ्यः शिवतीर्थमिदं परम् ।।३१
शिवं ज्ञानमिति ब्रूयुः शिवशब्दार्थचिन्तकाः ।
तच्च ज्ञानन्द्रवीभूतमिह मे महिमोदयात् ।।३२
अतो ज्ञानोदनामैतत्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
अस्य स्पर्शमात्रेण सवपापैः प्रमुच्यते ।।३३
ज्ञानोदतीर्थसंस्पर्शादश्वमेघफलं लभेत् ।
स्पर्शनाचमनाभ्याञ्च राजसूयाश्वमेधयोः ।।३४
फलगुतीर्थे नरः स्नात्वा सन्तर्प्य च पितामहान् ।
यत्फलं समवाप्नोति तदत्रश्राद्धकर्मणा ।।३५

ईशान ने कहा—हे देवेश ! यदि आप मुझ पर परम प्रसन्न हैं और मैं यदि यह दान देने के योग्य आप का पात्र बन गया हूँ तो हे शङ्कर ! यह आपके ही शुभ नाम से एक अतुल, अनुपम तीर्थ हो जावे। भगवान्

विश्वेश्वर ने कहा—इस त्रिलोकी में जो भी भू र्भुवः स्वः में स्थित भी तीर्थ हैं उन समस्त तीर्थों से यह शिव तीर्थ परम शिरोमणि तीर्थ होगा ॥३०-३१॥ 'शिव'— इस शब्द के अर्थ के चिन्तन करने वाले लोग शिव को ज्ञान ही कहा करते हैं। वही ज्ञान द्रवीभूत हो गया है और यहाँ पर मेरी महिमा के उदय होने से ही हुआ है। अतएव यह तीर्थ ज्ञानोद नाम से ही त्रैलोक्य में विश्रुत होगा। इसके स्पर्श मात्र से ही मनुष्य समस्त प्रकार के घोर पापों से भी मुक्त होजाया करता है। इस ज्ञानोद तीर्थ के सस्पर्श मात्र से ही मानव अश्वमेध यज्ञ के फल को प्राप्त कर लेता है। स्पर्शन और आचमन से राजसूय यज्ञ और अश्वमेध दोनों का फल प्राप्त कर लिया करता है। गया में फल्गुतीर्थ मे स्नान करके तथा अपने पितरों का भली भाँति तर्पण करके जो पुण्य फल प्राप्त किया करता है। वह ही फल यहाँ पर श्राद्ध कर्म करने से प्राप्त हो जाया करता है ॥३२-३५॥

गुरुपुष्यासिताष्टम्यां व्यतीपातो यदा भवेत्।
तदात्र श्राद्धकरणाद्गयाकोटिगुणं भवेत् ॥३६
यत्फलं समवाप्नोति पितृन्सन्तर्प्य पुष्करे।
तत्फलं कोटिगुणितं ज्ञानतीर्थे तिलोदकैः ॥३७
सन्निहत्यां कुरुक्षेत्रे तमोग्रस्ते विवस्वति।
यत्फलं पिण्डदानेन तज्ज्ञानोदे दिने दिने ॥३८
पिंडनिर्वपणं येषां ज्ञानतीर्थे सुतैः कृतम्।
मोदन्ते शिवलोके ते यावदाभूतसंप्लवम् ॥३९
अष्टम्याञ्चचतुर्दश्यामुपवासी नरोत्तमः।
प्रातः स्नात्वाऽथ पीताम्भस्त्वन्तर्लिगमयो भवेत् ॥४०
एकादश्यामुपोष्यात्रप्राश्नातिचुलुकत्रयम्।
हृदयेतस्य जायन्ते त्रीणिलिंगान्यसंशयम् ॥४१
ईशानतीर्थे यः स्नात्वा विशेषात्सोमवासरे।
सन्तर्प्य देवर्षि पितृन्दत्त्वादानं स्वशक्तितः ॥४२
ततः समर्च्य श्रीलिंगं महासंभारविस्तरैः।
अत्रापि दत्त्वा नानार्थान्कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥४३

गुरुवार से युक्त शुक्ल पक्ष की पुष्य समान्वित अष्टमी तिथि मे जब व्यतीपात हो उस समय मे यहाँ पर श्राद्ध करने से गया मे किये गये श्राद्ध से करोड गुना फल प्राप्त होता है। उसी फल को पुष्कर मे पितृगण का सन्तर्पण करके प्राप्त किया करता है। वही फल ज्ञान तीर्थ मे तिलोदक के द्वारा करने पर करोड गुना हो जाया करता है ॥३६-३७॥ सन्निहति मे कुरुक्षेत्र में विवस्वान् के तमोग्रस्त होने पर अर्थात् उपराग के अवसर मे पिण्डो के दान से जो फल प्राप्त हुआ करता है वही फल ज्ञानोद मे दिन-दिन मे होता है। जिनके पुत्रो ने इस ज्ञान तीर्थ मे पिण्डो का निर्वपण किया है वे सब शिव लोक मे जब तक भूत सप्लव होता है तब तक आनन्द का लाभ प्राप्त किया करते हैं। अष्टमी तिथि मे और चतुर्दशी तिथि मे उपवास करने वाला श्रेष्ठ पुरुष प्रातःकाल मे स्नान करके इसके जल का पान करता है वह अन्तर्लिङ्गमय ही हो जाया करता है ॥३८-४०॥ एकादशी तिथि मे उपवास करके यहाँ पर जो तीन चुल्लू जल का अशन किया करता है उसके हृदय मे बिना किसी सशय के तीन लिङ्ग उत्पन्न हो जाया करते हैं। इस ईशान तीर्थ में विशेष रूप से सोमवार के दिन मे स्नान करके अपने पितृगणो को और देव तथा ऋषियो का भली भाँति तर्पण करके अपनी शक्ति के अनुसार दान दिया करता है और इसके अनन्तर महान् सम्भार से युक्त विस्तार वाले उपचारों के द्वारा श्री लिङ्ग का अर्चन किया करता है और यहाँ पर भी नाना अर्थों को देकर मनुष्य कृतकृत्य हो जाता है ॥४१-४ ॥

उपास्य सन्ध्या ज्ञानोदे यत्पाप काललोपजम् ।<br>
क्षणेनतदपाकृत्य ज्ञानवान् जायते द्विजः ॥४४<br>
शिवतीर्थ मिदं प्रोक्त ज्ञानतीर्थ मिद शुभम् ।<br>
तारकाख्यमिद तीर्थ मोक्षतीर्थ इद ध्रुवम् ॥४५<br>
स्मरणादपि पापौघो ज्ञानोदस्य क्षयेद्ध्रुवम् ।<br>
दर्शनात्स्पर्शनात्स्नानात्पानाद्धर्मादि सम्भवः ॥४६<br>
डाकिनीशाकिनीभूतप्रेतवेतालराक्षसा. ।<br>
ग्रहाः कूष्माण्डझोटिगा. कालकर्णी शिशुग्रहा. ॥४७

ज्वरापस्मारविस्फोट द्वितीयकचतुर्थका: ।
सव प्रशममायान्ति शिवतीर्थ जलेक्षणात् ॥४८

ज्ञानोदतीर्थ पानीयैर्लिङ्ग यः स्नापयेत्सुधीः ।
सर्वतीर्थोदकैस्तेन ध्रुवं संस्नापितम्भवेत् ॥४९

इस ज्ञानोदक तीर्थ में संध्या की उपासना करके मनुष्य काल के लोप से समुत्पन्न पाप को एक ही क्षणमात्र में दूर करके द्विज ज्ञानवान् हो जाया करता है। यह शिव तीर्थ कहा जाता है और इस शुभ तीर्थ को ज्ञान तीर्थ भी कहा गया है। इस तीर्थ का नाम तारक तीर्थ भी है और यह तीर्थ निश्चित रूप से मोक्ष के देने वाला मोक्ष तीर्थ है। पापों का समुदाय इस ज्ञानोद तीर्थ के स्मरण करने ही से निश्चय क्षय को प्राप्त हो जाया करता है। इसके दर्शन से, स्पर्शन से, स्नान से और पान से धर्म आदि की समुत्पत्ति हुआ करती है ॥४४-४६॥ डाकिनी, शाकिनी, भूत, प्रेत, वेताल, राक्षस, ग्रह, कूष्माण्ड, झोटिङ्ग, काल कर्णी, शिशुग्रह, ज्वर, अपस्मार, विस्फोट, द्वितीयक और चतुर्थक अर्थात् चौथैया-ज्वर—ये सभी शिव तीर्थ के जल के ईक्षण (दर्शन) से प्रशम को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥४७-४८॥ जो सुधी पुरुष इस ज्ञानोद तीर्थ के जल से लिंग स्नपन कराया करता है उसने मानों समस्त तीर्थों के जल से ही निश्चित रूप से स्नपन करा दिया है अर्थात् अन्य सभी तीर्थों के जल से स्नान का पुण्य फल प्राप्त उसे हो जाया करता है ॥४९॥

ज्ञानरूपोऽहमेवात्र द्रवमूर्ति विधाय च ।
जाड्यविध्वंसनंकुर्यां कुर्यां ज्ञानोपदेशनम् ॥५०

इति दत्त्वावरान्छम्भुस्तत्रैवान्तरधीयत ।
कृतकृत्यमिवात्मान सोऽप्यमंस्तत्रिशूलभृत् ॥५१

ईशानो जटिलो रुद्रस्तत्प्राश्य परमोदकम् ।
अवाप्तवान् पर ज्ञानं येन निर्वृतिमाप्तवान् ॥५२

अलक्षा मोक्षलक्ष्मीर्या वेदान्ते परिपठ्यते ।
विमुक्तये सतां सेषा श्रीमती मणिकर्णिका ॥५३

मरणं मङ्गलं यत्र सफलं यत्र जीवितम् ।
स्वर्गस्तृणायते यत्र सैषा श्रीमणिकर्णिका ॥५४
यत्र सम्पत्तिसम्भारान्विश्राण्य नियनेच्छया ।
यतिव्रतं समालम्ब्य तिष्ठते मूलकन्दभुक् । ५५
यत्र त्रिमार्गगां गङ्गां मार्गमाणो मृतान्हरः ।
स्वमौलि वालचन्द्रेण मुक्तिमार्गं प्रदर्शयन् ॥५६

यहाँ पर इस तीर्थ मे ज्ञान रूप वाला मैं ही हूँ और द्रव मूर्ति धारण करके मैं जडता का विध्वंस किया करता हूँ तथा ज्ञान का उपदेश भी दिया करता हूँ ॥५०॥ ये इस प्रकार से भगवान् शम्भु वरदान प्रदान करके वही पर अन्तर्धान हो गये थे। वह त्रिशूल धारण करने वाले भी अपने आपको परम कृत कृत्य मानने लगे थे ॥५१॥ ईशान जटाधारी रुद्रदेव ने उस परम पुण्यमय जलका पान करके परमोत्कृष्ट ज्ञान की प्राप्ति की थी जिससे वह निर्वृति को प्राप्त हो गये थे ॥५२॥ मलक्ष्मी के साथ जो मोक्ष लक्ष्मी वेदान्त में पढ़ी जाया करती है। वह यह श्रीमती मणिकर्णिका सत्पुरुष को विमुक्ति के लिये होती है। जहाँ पर मरना भी परम मंगल होता है और जहाँ पर जीवित भी सफल होता है। जहाँ का ऐसा प्रबल पुण्य का प्रभाव होता है कि स्वर्ग भी उसके सामने एक तुच्छ तिनके समान होता है ऐसी यह श्री मणिकर्णिका है। जहाँ पर सम्पत्ति के सम्भारों को विश्राणित करके नियन की इच्छा से यति के व्रत का समालम्बन करके मूल और कन्दो को उपभोग करके स्थित रहा करता है। यहाँ पर त्रिमार्गों मे गमन करने वाली गगा का अन्वेषण करते हुए भगवान् हर मृतो को अपने मस्तक मे स्थित बाल चन्द्र के द्वारा मुक्ति के मार्ग का प्रदर्शन कराया करते हैं ॥५३-५६॥

ससारं यत्र दुर्वारं प्रतारयति शङ्करः ।
मृता अप्यमृतायन्ते कर्णधारायतो नराः ॥५७
ससारसारपदवी यत्र स्याददवीयसी ।
कर्णे जपान्महेशानात्करुणावरुणालयात् ॥५८

अनेकभवसम्भूत प्रभूत सुकृतैर्नरा ।
कर्णे जपं-भव यत्र लभन्ते ते भवापहम् ॥५९
स्वीकृत्य क्षेत्रसंन्यासं यद्बलेन महाधियः ।
तृण कृतान्तं मन्यन्ते सेयं मणिकर्णिका ॥६०
तृणीकृत्य निजं देहं यत्र राजर्षिसत्तमः ।
हरिश्चन्द्रः सपत्नीको व्यक्रीणाद् भूरियं हिसा ॥६१
अभिलष्यन्ति यत्रत्यमपिवैकुण्ठवासिनः ।
सैकतं मृदुलं तल्पं सैषा श्रीमणिकर्णिका ॥६२
अनेकजन्मजनितकर्मसूत्रनियन्त्र॰ म् ।
उन्मुच्य यत्रमुक्ताः स्युः सैषा श्रीमणिकर्णिका ॥६३

यह संसार अतीव दुर्वार है और भगवान् शङ्कर इससे तार दिया करते हैं। इस मणिकर्णिका धार का ऐसा महान प्रभाव है कि मरे हुए भी नरा अमृत हो जाया करते हैं। देव स्वरूप बन जाते हैं और मोक्ष के अधिकारी हो जाया करते हैं। जहाँ पर ससार के सार की पदवी अदवीयता होती है। कार्य में जप के प्रभाव से करुणा के सागर महेशान से संसार से मुक्त हो जाया करते हैं किन्तु मनुष्य जहाँ पर भव के अपहर। करने वाले कर्ण मे जप करने वाले भव अनेक जन्मों मे समुत्पन्न बहुत से सुकृतो से ही प्राप्त किया करते है। महान बुद्धिशाली लोग जिसके बल से क्षेत्र सन्यास को स्वीकार करके यम राज को एक तुच्छ तिनके के समान ही माना करते हैं यह ऐसी श्रीमणिकर्णिका है। जहाँ पर राजर्षियों मे परम श्रेष्ठ हरिश्चन्द्र ने अपने देह को तृण के तुल्य समझ कर पत्नी के सहित बेच डाला था, यह वह ही परम पावन भूमि है ॥५७-६१॥ जहाँ के परम मृदु बालुका की शय्या को वैकुण्ठ मे निवास करने वाले भी चाहा करते हैं वही यह मणिकर्णिका है ॥६२॥ अनेक जन्मो मे समुत्पन्न कर्मों के सूत्र के निमन्त्रण का उन्मोचन कर जहाँ पर मनुष्य मुक्त होजाया करते हैं वही यह मणिकर्णिका है ॥६३॥

सत्यलोकेऽपि ये लोकास्तेऽर्थयन्ति निरन्तरम् ।
या महोदीर्घनिद्रार्थं सेय श्रीमणिकर्णिका ॥६४

अय हि स कुलस्तम्भो यत्र श्रीकालभैरवः ।
क्षेत्रपापकृतः शास्ति दर्शयंस्तीव्रयातनाम् ॥६५
अन्यत्र विहितम्पापं नश्येत्काशीनिरीक्षणात् ।
काश्यां कृताना पापाना दारुणे यन्तु यातना ॥६६
कपालमोचन तीर्थमेतत्तदपि पावनम् ।
कपालं पतित यत्र विधे भैरवपाणितः ॥६७
ऋणत्रयाद्विमुच्यन्ते यत्र स्नाता नरोत्तमाः ।
तीर्थं विशुद्धिजनकं तदेतदृणमोचनम् ॥६८
प्रणवाख्य परं ब्रह्म यत्र नित्य प्रकाशते ।
स पञ्चायतनोपेत ॐकारेशोऽयमद्भुतः ॥६९
अश्च उश्चमकारश्च नादो विन्दुश्च पञ्चमः ।
पञ्चात्मकं परं ब्रह्म यत्र नित्य प्रकाशते ॥७०

जो लोग सत्य लोक में भी रहा करते हैं वे भी निरन्तर इसकी याचना किया करते हैं। जिसको वीर्थ निद्रा के लिये चाहते है वही यह भी मणिकणिका है ॥६४॥ यह सकुल स्तम्भ श्री कालभैरव जहाँ पर क्षेत्र मे पाप करने वालों पर शासन किया करते हैं और तीव्र यातना को दिखाया करते हैं,अन्यत्र किया हुआ पाप काशी के निरीक्षण ही से नष्ट होजाते हैं। किन्तु काशी मे रहकर जो पाप किये जाते हैं उनकी यातना अत्यन्त दारुण होती है। एक वहाँ पर कपाल मोचन नाम वाला तीर्थ है और वह भी परम पावन होता है, जहाँ पर भैरव के हाथ से विधाता का कपाल गिर गया था। जिस तीर्थ में स्नान किये हुए नरोत्तम तीनो प्रकार के ऋणों से मुक्त हो जाया करते हैं। इसी लिये विशुद्धि का उत्पन्न करने वाला यह ऋण मोचन तीर्थ है। प्रणव नाम वाला परम ब्रह्म जहाँ पर नित्य ही प्रकाश किया करता है। वह पञ्चायतन से युक्त अद्भुत ॐकारेश होता है। अकार,उकार,मकार,नाद और पाँचवा बिन्दु इस तरह से यह पञ्चात्मक अर्थात् पाँच के स्वरूप वाला परम ब्रह्म जहाँ पर नित्य ही प्रकाश किया करता है ॥६५-७०॥

एषा मत्स्योदरी रम्या यस्स्नातो मानवोत्तमः ।
मातुर्जातूदरदरीं न विशेदेष निश्चयः ॥७१
त्रिलोचनो यं भगवान्कुर्यादिव त्रिलोचनम् ।
निजभक्तं कृपायुक्तस्त्वपि देशान्तरस्थितम् ।।७२
असौ कामेश्वरो देवो यः कामान्पूरयेत्सताम् ।
दुर्वासाअपियत्रापनिजकाममहोदयम् ॥७३
स्वयंलीनो महेशोत्र सभक्तकामसमृद्धये ।
तस्मात्स्वर्लीनसञ्ज्ञास्य देवदेवस्य शूलिनः ॥७४
वाराणस्यां महादेवो यः पुराणेषु पठ्यते ।
क्षेत्राभिमानी भगवांस्तत्प्रासादोऽप्यद्भुतः ॥७५
असौ स्कन्देश्वरोदेवः श्रद्धयायद्विलोकनात् ।
आजन्मब्रह्मचर्यस्य फलमाप्नोति मानवः ॥७६
विनायकेश्वरश्चाय सर्वसिद्धिप्रदायकः ।
यत्सेवया प्रणश्यन्ति नृणां सर्वे विनायकाः ॥७७

यह मत्स्योदरी है जो बहुत ही रम्य है और जिसमें स्नान किया हुआ परम श्रेष्ठ मानव फिर अपनी माता के उदर रूपिणी गुफा में कभी प्रवेश ही नहीं किया करता है यह परम निश्चित बात है अर्थात् निश्चय पूर्वक फिर उसका मोक्ष हो जाने के दूसरा जन्म ही इस संसार में नहीं हुआ करता है ॥७१॥ परमकृपा से युक्त भगवान् त्रिलोचन फिर अपने भक्त को चाहे वह किसी भी सुदूर देश में ही स्थित क्यों न हो उसे त्रिलोचन ही बना दिया करते हैं ॥७२॥ यह कामेश्वर देव हैं जो सत्पुरुषों के कामों का परिपूर्ण कर दिया करते हैं जहाँ पर दुर्वासा ऋषि भी अपनी कामनाओं के महान् उदय को प्राप्त हो गया था ॥७३॥ यहाँ पर अपने भक्त की कामनाओं की समृद्धि के लिये भगवान महेश्वर स्वयं ही लीन रहा करते हैं। इसी कारण से इन देवों के देव भगवान् शूली की 'स्वर्लीन'—यह संज्ञा होती है ॥७४॥ वाराणसी में महादेव हैं जो पुराणों में पढ़े जाया करते हैं वह क्षेत्र के पूर्ण अभिमान रखने वाले भगवान् हैं उनका प्रसाद यह अत्यन्त अद्भुत होता है ॥७५॥ यह

स्कन्देश्वरदेव है । श्रद्धा से जिनका दर्शन करने से मानव आजन्म ब्रह्मचर्य धारण करने के फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥७६॥ यह विनायकेश्वर हैं जो समस्त प्रकार की सिद्धियों के प्रदान करने वाले हैं जिनकी सेवा करने से मनुष्यों के सभी विनायक नष्ट हो जाया करते हैं अर्थात् फिर उनको कोई भी विघ्न नहीं हुआ करते हैं ॥७७॥

इय वाराणसी देवी साक्षान्मूर्त्तिमयी शुभा ।
यस्या विलोकनात्पुंसा भूयो नो गर्भसम्भवः ॥७८
पार्वतीश्वरलिङ्गस्य महदायतन त्विदम् ।
यत्र नित्य महेशानो गौर्यासह विमुक्तिदः ।७९
एप भृङ्गीश्वर. श्रीमान्महापातकनाशन. ।
जीवन्मुक्तोऽभवद् भृङ्गी यस्य लिङ्गस्य सेवया ॥८०
चतुर्वेदेश्वरश्चैप चतुर्वेदधरो विधिः ।
लभेद्यद्वीक्षणाद्विप्रो वेदाध्ययनज फलं ।।८१
यज्ञैः सस्थापितञ्चैतल्लिङ्गं यज्ञेश्वराभिदम् ।
यदर्चनाल्लभेन्मर्त्यः सर्वयागफलं महत् ।।८२
पुराणेश्वरनामैतल्लिङ्गमष्टादशाङ्गुलम् ।
अष्टादशाना विद्यानास्यादाधारोयदीक्षणात् ॥८३
धर्मशास्त्रेश्वरश्चाय स्मृतिभिश्च प्रतिष्ठितः ।
स्मृत्यध्ययनजम्पुण्य यद्विलोकनतो भवेत् ॥८४

यह वाराणसी देवी हैं जो परम शुभ मूर्तिमयी साक्षात् देवी हैं जिनके दर्शन का एक बार ही झोका ले लेने पर पुन. गर्भवास मे रहने की कोई भी सम्भावना ही नहीं रहा करती है ॥ ८॥ पार्वतीश्वर लिंग का यह महान आयतन है । जहाँ पर नित्य ही महेशान प्रभु गौरी देवी के साथ विमुक्ति को प्रदान करने वाले विराजमान रहा करते हैं ॥७९॥ यह इस क्षेत्र में श्रीमान् भृङ्गीश्वर भगवान हैं जो महान महापातकों के नाश करने वाले हैं जिस लिंग की सेवा से भृंगी जीवन्मुक्त हो गये थे ॥८०॥ यहाँ पर यह चतुर्वेदेश्वर भगवान् हैं जो चारों वेदों के धारण करने वाले विधाता स्थित रहा करते हैं जिनके दर्शन करने से ही विप्र वेदों के

अध्ययन से समुत्पन्न फल को प्राप्त कर लिया करता है ॥८१॥ यह लिंग यज्ञों के द्वारा संस्थापित किया गया है जो यज्ञेश्वर नाम वाले हैं जिनके अर्चन से मनुष्य सम्पूर्ण भागों के महान फलों को प्राप्त कर लिया करता है ॥८२॥ यहाँ पर यह एक पुराणेश्वर नाम वाला अठारह अंगुल के प्रमाण वाला लिंग है जिनके केवल दर्शन ही करने से अष्टादश विधाओं का पूर्ण आधार मनुष्य हो जाया करता है। यहाँ पर यह एक धर्मशास्त्रेश्वर प्रभु भी है जो स्मृतियों के द्वारा प्रतिष्ठित किये गये हैं। स्मृतियों के अध्ययन से उत्पन्न होने वाला पुण्य उनके दर्शन मात्र से ही प्राप्त हो जाया करता है ॥८३-८४॥

---

## ५३—योगाख्यान वर्णन

वेदानुवचनं ज्ञात्वा ब्रह्मचर्यं तपो दमः।
श्रद्धोपवासः स्वातन्त्र्यमात्मनो ज्ञानहेतवः ॥१
स हि सर्वैर्विजिज्ञास्य आत्मैवाश्रम वर्तिभिः।
श्रोतव्यस्त्वथमन्तव्यो द्रष्टव्यश्च प्रयत्नतः ॥२
आत्मज्ञानेन मुक्तिः स्यात्तच्च योगादृतेन हि।
स च योगश्चिरं कालमभ्यासादेव सिध्यति ॥३
नारण्यसश्रयाद्योगो न नाना ग्रन्थ चिन्तनात्।
न दानैर्नव्रतैर्वापि न तपोभिर्नवा मखैः ॥४
न च पद्मासनाद्योगो न वा घ्राणाग्रवीक्षणात्।
न शौचेन न मौनेन न मन्त्राराधनैरपि ॥५
अभियोगात्सदाभ्यासात्तत्रैव च विनिश्चयात्।
पुनः पुनरनिर्वेदात्सिध्येद्योगो न चान्यथा ॥६

वेदों के अनुवचन को जानकर ब्रह्मचर्य–तप–दम–श्रद्धा–उपवास और स्वातन्त्र्य आत्मा के ज्ञान के हेतु हैं ॥१॥ समस्त आश्रमों में रहने वाले लोगों के द्वारा आत्मा ही जानने के योग्य है अर्थात् आत्मज्ञान प्राप्त करना ही सर्वोपरि होता है। अतएव प्रयत्नपूर्वक आत्मा को श्रवण

करना चाहिए—उसका ही मनन करना चाहिए और उस आत्मा का दर्शन प्राप्त करना चाहिए ॥२॥ इसी आत्मा के ज्ञान से मुक्ति हुआ करती है और वह भी योग के विना नहीं होती है तथा वह योग चिर काल तक अभ्यास करने से ही सिद्ध हुआ करता है ॥३॥ केवल अरण्य में अपना आश्रय बना लेने मात्र से योग की सिद्धि नहीं हुआ करती है और अनेक ग्रन्थों के चिन्तन करने से भी योग सिद्ध नहीं हुआ करता है। दानों से—व्रतों से–तपश्चर्याओं से और मखों से भी योग की सिद्धि नहीं है ॥४॥ यह योग पद्मासन बाँधकर बैठने से भी सिद्ध नहीं होता और नासिका के अग्र भाग के देखने से भी योग की संसिद्धि नहीं होती है। शौच, मौन व्रत, और मन्त्रों के समाराध आदि से यह योग सिद्ध नहीं होता है ॥५॥ अभियोग से अर्थात् सभी ओर मन को हटाकर एक निष्ठ उसकी वृत्ति के करने से–निरन्तर उसका ही अभ्यास करने से पूर्ण रूप से निश्चय करने से तथा बारम्बार निर्वेद से ही इस योग की सिद्धि हुआ करती है अन्य किसी भी प्रकार से यह कभी भी सिद्ध नहीं होता है ॥६॥

आत्मक्रीडस्यसतत सदात्म मिथुनस्य च ।
आत्मन्येव सुतृप्तस्य योगसिद्धिर्नदूरत ॥७
अनात्मव्यतिरेकेण द्वितीय यो न पश्यति ।
आत्मारामः स योगीन्द्रो ब्रह्मीभूतो भवेदिह ॥८

सयोगस्त्वात्ममनसोर्योग इत्युच्यते बुधै. ।
प्राणापानसमायोगो योग इत्यपि केचन ॥९
विषयेन्द्रियसयोगो योग इत्यप्य पण्डितैः ।
विषयासक्तचित्ताना ज्ञान मोक्षश्च दूरतः ॥१०

दुर्निवारा मनोवृत्तिर्यावत्सा न निवर्तते ।
किवदन्त्यपि योगस्य तावन्नेदीयसी कुत. ॥११
वृत्तिहीन मन कृत्वा क्षेत्रज्ञे परमात्मनि ।
एकीकृत्य विमुच्येन योगयुक्त स उच्यते ॥१२

बहिर्मु खानि सर्वाणि कृत्वाख्यान्यन्तराणि वै ।
मनस्येवेन्द्रियग्राम मनश्चात्म नियोजयेत् ॥१३
सर्वभावविनिर्मुक्तं क्षेत्रज्ञ ब्रह्मणि न्यसेत् ।
एतद्धयानचयोगश्च शेपोऽन्यो ग्रन्थविस्तर. ॥१४

निरन्तर अपनी आत्मा के ही साथ क्रीडा करने वाले का और सदा आत्मा के ही साथ जोडा बनाये रखने वाले का तथा अपनी आत्मा मे ही सुतृप्त रहने वाले को याग की सिद्धि दूर नही रहा करती है ॥७॥ जो अपनी आत्मा के अतिरिक्त दूसरे अन्य किसी को कही पर भी नहीं देखा करता है वही आत्मा राम अर्थात् आत्मा मे रमण करने वाला योगीन्द्र और ब्रह्मीभूत है । आत्मा और मन के साथ मे सयोग होने का ही नाम बुध पुरुषो के द्वारा योग कहा जाता है । कुछ विद्वानो के द्वारा प्राण वायु और अपान वायु के संयोग को भी योग कहा जाया करता है ॥८-९॥ जो अपण्डित हैं उनके द्वारा विषयेन्द्रिय सयोग भी योग कहा गया है । सिद्धान्त यह है कि जो विषयों में समासक्त चित्त वाले पुरुष हैं उनको ज्ञान और योग तथा मोक्ष बहुत दूर की वस्तु है तात्पर्य यह है कि उनको यह हो ही नही सकता है । यह मन की वृत्ति बहुत ही दुर्निवारण किये जाने वाली है और जब तक यह निवृत्त नही होती हैं तब तक इस योग की किम्वदन्ती भी सन्निकट नही होती है । इस मन को वृत्तियो से हीन करके उस क्षेत्रज्ञ परमात्मा मे एकीकरण करके जो विमुक्त होता है वही योग युक्त कहा जाता है ॥१०-१२॥ आकाश के अन्तर सब को बहिर्मुख करके और इन्द्रियो के समुदाय को मनमे ही निहित करे और फिर उस मन को आत्मा मे योजित कर देना चाहिए ॥१३॥ सब भावो से विनिर्मुक्त उस क्षेत्र को ब्रह्म मे न्यस्त कर देवे । बस, इतना ही ध्यान और योगशास्त्र है । शेष अन्य जो इस विषय मे लिखा या कहा गया है वह सभी ग्रन्थो का विस्तार मात्र है । सार एवं तत्व की वस्तु तो केवल इतना ही होता है ॥१४॥

यन्नास्ति सर्वलोकेषु तदस्तीति विरुध्यते ।
कथ्यमानं तदन्यस्य हृदयेनावतिष्ठते ॥१५

स्वसंवेद्य हि तद्ब्रह्म कुमारी स्त्रीसुखं यथा ।
अयोगीनैतद्वेत्ति जात्यन्ध इव वर्तिकाम् ॥१६
नित्याभ्यसनशीलस्य स्वसंवेद्यं हि तद्भवेत् ।
तत्सूक्ष्मत्वादनिर्देश्य परं ब्रह्म सनातनम् ॥१७
क्षणमप्येकमुदक मथानस्थिरतामियात् ।
वाताहतं यथाचित्तं तस्मात्तस्य न विश्वसेत् ॥१८
अतोऽनिलं निरुन्धीत चित्तस्यस्थैर्य हेतवे ।
मरुन्निरोधनार्थाय षडङ्गं योगमभ्यसेत् ॥१९
आसन प्राणसरोधः प्रत्याहारश्च धारणा ।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि भवन्ति षट् ॥२०
आसनानीह तावन्ति यावन्त्यो जीवयोनयः ।
सिद्धासनमिदं प्रोक्तं योगिनो योगसिद्धिदम् ॥२१

जो समस्त लोको मे नही है यह है ऐसा जो कथन है वही विशुद्ध होता है । यह ग्रन्थ का कथ्यमान हृदय मे कभी भी अवस्थित नही हुआ करता है ॥१५॥ जिस प्रकार से कुमारी स्त्री का सुख होता है उसी प्रकार से वह ब्रह्म स्वसंवेद्य ही होता है अर्थात् उसके आनन्द का अनुभव अपने ही द्वारा करने के योग्य हुआ करता है । जो योगी नहीं वह उस ब्रह्मानन्द को कभी भी नही जानता है जिस तरह से जन्मान्ध पुरुष वर्तिका का ज्ञान नही रखता है । जो नित्य ही अभ्यास करने के स्वभाव वाला होता है उसी को स्वयं वह जानने के योग्य होता है । वह परब्रह्म इतना सूक्ष्म है कि उस सनातन का निर्देश नही किया जा सकता है । जिस प्रकार से वायु से आहत जल एक क्षण भी यथा स्थान पर स्थिर नही रहा करता है उसी भाँति ठीक इस मानव के चित्त की दशा हुआ करती है । अतएव इस महा चंचल चित्त का कभी भी विश्वास नही करना चाहिए । इसीलिए इस चित्त की स्थिरता के लिए प्राण वायु का निरोध करे अर्थात् प्राणायाम करना चाहिए । इस वायु के निरोध करने के लिए षडङ्ग (छै अगो वाले) योग का अभ्यास करे ॥१६-१९॥

छै अङ्ग ये हैं-आसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान और

समाधि—ये ही योग के छै अंग हुआ करते हैं ॥२०॥ यहाँ पर उतने ही आसन होते हैं जितनी ये जीव योनियाँ हुआ करती हैं। योगी के याग की सिद्धि को प्रदान करने वाला यह सिद्धासन कहा गया है ॥२१॥

एतदभ्यसनान्नित्यं वष्मंदाढर्य मवाप्नुयात् ॥२२
दक्षिणं चरणं न्यस्य वामोरूपरि योगवित्।
याम्योरूपरि वाम च पद्मासनमिदं विदुः ॥२३
कराभ्यां धारयेत्पश्चादगुष्ठौ दृढबन्धवित्।
भवेत्पद्मासनाभ्यासादभ्यासाद् दृढविग्रहः ॥२४
अथ बाह्यासने यस्मिन्सुखमस्योपजायते।
स्वस्तिकादौ तदभ्यास्य योगं युञ्जीत योगवित् ॥२५
न तोय वह्नि सामीप्ये न जीर्णारण्य गोष्ठयोः।
नदं शमशकाकीर्णे न चैत्येन च चत्वरे ॥२६
केशभस्म तुषाङ्गारकीकसादि प्रदूषिते।
नाभ्यसेत्पूतिगन्धादौ न स्थाने जन संकुले ॥२७
सर्वबाधाविरहिते सर्वेन्द्रियसुखावहे।
मनः प्रसादजनने सधूपामोदमोदिते ॥२८

इसके नित्य अभ्यास करने से कर्म को दृढता को प्राप्त हुआ करता है ॥२२॥ योग के वेत्ता पुरुष को चाहिए कि अपने दाहिने चरण को बाँये ऊरु के ऊपर रक्खे और याम्य ऊरु के ऊपर बाँये चरण को रक्खे —इसी प्रकार से स्थिति बनाकर बैठने के आसन को पद्मासन कहा करते हैं। दृढ बन्ध के वेत्ता को पीछे दोनों अगूठों को हाथों से पकड़ना चाहिये। इस प्रकार के बाँधे हुए पद्मासन के अभ्यास से दृढ़ विग्रह वाला हो जाया करता है। इसके अनन्तर जिस बाह्यासन में इस अभ्यासी को सुख उत्पन्न हो जाता है। फिर स्वस्तिकादि में उसका अभ्यास करके योग के जानने वाले पुरुषों को योग का युञ्जन करना चाहिए ॥२३-२५॥ अब योगाभ्यास करने मे निषिद्ध स्थलों को बताते हैं—जल के और अग्नि के समीप में कभी योगाभ्यास न करे। किसी जीर्ण (टूटे-फूटे पुराने) मकान में—जंगल में और गोष्ठ मे भी योगाभ्यास नहीं करना

चाहिये। जो स्थान दश और मशको से घिरा हुआ हो उसमे—चैत्य (श्मशान) मे—चत्वर (खुले आंगन) मे तथा केश, भस्म, तुषाङ्गार तथा कीकस आदि से दूषित स्थान मे और दुर्गन्ध दोष वाले स्थल मे एव जनों से समाकीर्ण जगह मे कभी योग का अभ्यास नही करना चाहिए। सभी प्रकार की विघ्न-बाधाओं से रहित—सभी इन्द्रियों को सुख देने वाले तथा मन को प्रसन्नता देने वाले और माला, धूप आदि से परम सुगन्धित स्थान मे योग का अभ्यास करे ॥२६-२८॥

नातितृप्तः क्षुधार्तो न नविण्मूत्र प्रबाधितः।
नाध्वखिन्नो न चिन्तार्तो योगं युञ्जीत योगवित् ॥२९
ऊरुस्थोत्तानचरणः सव्ये न्यस्योत्तरं करम्।
उत्तान किञ्चदुन्नम्य वक्त्र विष्टभ्य चोरसा ॥३०
निमीलिताक्षः सत्वस्थो दन्तैर्दन्तान्न संस्पृशेत्।
तालुस्थाचलजिह्वश्च सम्वृतास्यः सुनिश्चल. ॥३१
सन्नियम्येन्द्रियग्राम नाति नीचोच्छ्रितासनः।
मध्यमचोत्तमचाथ प्राणायाममुपक्रमेत् ॥३२
चलेऽनिलेचल सर्व निश्चले तत्र निश्चलम्।
स्थाणुत्वमाप्नुयाद्योगी ततोऽनिल निरुन्धनात् ॥३३
यावद्देहे स्थितः प्राणोजीवित तावदुच्यते।
निर्गते तत्र मरणं ततः प्राण निरुन्धयेत् ॥३४
यावद्बद्धो मरुद्देहे यावच्चेतोनिराश्रयम्।
यावद्दृष्टिभ्रुवोर्मध्ये तावत्काल भय कुतः ॥३५

अब अभ्यासी को स्वय कैसा होना चाहिये जब कि वह अभ्यास का प्रारम्भ करे—यह बतलाया जाता है—योग के ज्ञाता को योग का युञ्जन करने के समय अत्यन्त तृप्त नही होना चाहिये—क्षुधा से वह आर्त्त न हो तथा मल-मूत्र के उत्सर्ग करने की बाधा से युक्त न हो—मार्ग गमन के खेद से वह युक्त न हो अर्थात् श्रान्त न हो और किसी भी चिन्ता से ग्रस्त न होवे। ऐसी परम नितान्त शान्त अवस्था मे अवस्थित होकर ही योगाभ्यास करना चाहिए। ऊरु मे स्थित उत्तान चरण वाला सव्य में

उत्तर करके रखकर कुछ ऊंचा उनमित होकर उरःस्थल से मुख को निस्तब्ध करे और आँखें मूंदकर सत्व में समवस्थित होकर दाँतो को दाँतो से स्पर्श नही करना चाहिए। तालु मे स्थित अचल जिह्वा वाला होकर मुख बन्द करके एक दम सुश्चल हो जावे। अपनी समस्त इन्द्रियो पर पूर्ण संयम रखकर रहे। आसन जो बैठने का हो वह न तो अधिक ऊंचा हो और न ज्यादा नीचा होवे। फिर मध्यम और उत्तम प्राणायाम करने का उपक्रम करना चाहिये। इस वायु से चचल होने पर सभी चलायमान होते हैं और जब यह निश्चल हो जाता है तो सब कुछ निश्चल हो जाया करते हैं। अनिल के अर्थात् प्राण वायु के निरोध करने पर सबका निरोध हो जाने से योगी स्थाणुता को प्राप्त हो जाता है। सूखे हुए पेड के मूल भाग को जो जमीन मे कटे या उखड़े वृक्ष का होता है वही स्थाणु है। जब तक इस शरीर मे प्राण स्थित रहता है तभी तक इस देह को जीवित कहा जाता है। इस प्राण वायु के शरीर से निकल जाने पर ही मरण होता है अतएव प्राणो का निरोध करना चाहिये। जब तक यह वायु इस देह मे बद्ध है और जिस समय तक चित्त निराश्रय होता है तथा जब तक भौंहो के मध्य मे दृष्टि है तभी तक काल का भय कैसे हो सकता है अर्थात् ऐसी अभ्यास की दशा में कोई भी काल का भय होता ही नही है ॥२६-३५॥

कालसाध्वसतो ब्रह्मा प्राणायामं सदाचरेत् ।
योगिनः सिद्धिमापन्नाः सम्यक् प्राणनियन्त्रणात् ॥३६
मन्दोद्वादशमात्रस्तु मात्रालघ्वक्षरामता ।
मध्यमो द्विगुणः पूर्वादुत्तमस्त्रिगुणस्ततः ॥३७
स्वेदं कम्पं विषादं च जनयेत्क्रमशस्त्वसौ ।
प्रथमे न जयेत्स्वेदं द्वितीयेन तु वेपथुम् ॥३८
विषादं हि तृतीयेन सिद्धः प्राणोऽथ योगिनः ।
भवेत्क्रमात्सन्निरुद्धः सिद्धः प्राणोऽथ योगिना ।
क्रमेण सेव्यमानोऽसौ नयते यत्र चेच्छति ॥३९

हृदाग्निरुद्धप्राणोऽयं रोमकूपेषु निःसरेत् ।
देहं विदारयत्येष कुष्ठादिजनयत्यपि ॥४०

इस दारुण काल के भयसे भीत होकर ही ब्रह्माजी प्राणायाम का सदाचरण करते हैं। योगीजन भली भाँति प्राण वायु का नियन्त्रण करके ही सिद्धि को प्राप्त हुए हैं ॥३६॥ मन्द प्राणायाम उसे कहा जाता है जो द्वादश मात्रा वाला होता है और मात्रा लघु अक्षर वाली मानी गयी है। मध्यम प्राणायाम इस मन्द से दुगुना अर्थात् चौबीस मात्रा वाला होता है तथा उत्तम प्राणायाम तिगुना हुआ करता है। इसमे छत्तीस मात्राऐं होती हैं। यह प्राणायाम क्रम से स्वेद—कम्प और विषाद को उत्पन्न किया करता है। प्रथम में स्वेद पर जय प्राप्त करे। द्वितीय से वेपथु (कम्पन) को जीते और तीसरे से विषाद पर जय प्राप्त करे तभी योगी का प्राण सिद्ध होता है। योगी के द्वारा क्रम से सन्निरुद्ध प्राण सिद्ध हुआ करता है। क्रम से इसका सेवन किया जावे तो यह सेव्य भाव होकर वहीं पर योगी को पहुँचा दिया करता है जहाँ भी वह जाना चाहता है। दूर से निरुद्ध किया हुआ यह प्राणवायु रोमो के छिद्रों से निकलने लगता है। यह फिर देह को विदीर्ण करा दिया करता है और कुष्ठ आदि रोगों को भी उत्पन्न करा दिया करता है ॥३७-४०॥

दृढासनो यथाशक्ति प्राणं चन्द्रेण पूरयेत् ।
रेचयेदथ सूर्येण प्राणायामोऽयमुच्यते ॥४५
स्रवत्पीयूषधारौघं ध्यायंश्चन्द्रसमन्वितम् ।
प्राणायामेन योगीन्द्रः सुखमाप्नोति तत्क्षणात् ॥४६
रविणा प्राणमाकृष्य पूरयेदोदरी दरीम् ।
कुम्भयित्वाशनैःपश्चाद्योगीचन्द्रेणरेचयेत् ॥४७
ज्वलज्ज्वलनपुञ्जाभं शीलयन्नुष्मगुं हृदि ।
अनेन याम्यायामेन योगीन्द्रः शर्मभाग्भवेत् ॥४८
इत्थं मासत्रयाभ्यामादुभयायामसेवनात् ।
सिद्धनाडीगणो योगी सिद्धप्राणोऽभिधीयते ॥४९

क्रम से ही इसका प्रस्थापन करना चाहिए जैसे जंगली हाथी को क्रम पूर्वक ही प्रस्थापित किया जाया करता है। वन में रहने वाला हाथी अथवा गज का शत्रु क्रम से ही मृदुता को प्राप्त हुआ करते हैं ॥४१॥ वह फिर अपने ऊपर शासन करने वाले के निर्देश किया करता है और फिर उसके आदेश का उल्लंघन नहीं किया करता है, ठीक उसी भाँति यह हृदय स्थल में स्थित रहने वाला प्राण वायु है जो योगी के द्वारा योग के अभ्यास से क्रम पूर्वक गृहीत होता है और जब शनैः२ यह सेव्यमान हो जाया करता है तो फिर पूर्ण विश्वास को प्राप्त कर लिया करता है। यह छत्तीस अगुल के परिमाण वाला हुन बाहिर प्रयाण किया करता है। सव्यापसव्य मार्ग से प्रयाण करने से ही यह प्राण कहा जाया करता है। जिस समय में सम्पूर्ण नाड़ी चक्र अनाकुल होता हुआ शुद्धि को प्राप्त होता है तभी उस समय में प्राण के निरोध करने में योग समर्थ हुआ करता है। आसन पर दृढता से बैठकर यथा-शक्ति चन्द्र के द्वारा प्राण को पूरित करना चाहिए। सूर्यस्वर से प्राण वायु का रेचन करें—यही प्राणायाम कहा जाता है। योगीन्द्र को प्राणायाम के द्वारा स्रव करने वाले अमृत की धारा का समूह चन्द्र से समन्वित का ध्यान करते हुए वह उसी क्षण में सुख की प्राप्ति किया करता है। सूर्य के द्वारा प्राणों का समाकर्षण करके उदर ही दरी को

पूरित करना चाहिए फिर कुम्भन करके अर्थात् प्राणवायु को रोककर के बहुत ही धीरे २ पीछे यांगी को चन्द्र के द्वारा अर्थात् बाँये स्वर के द्वारा रेचन करना चाहिए। देदीप्यमान अग्नि के पुञ्ज की आभा के समान आभा वाले उग्मगु को हृदय में शीलन करते हुए इस याम्यायाम से योगीन्द्र कल्याण का अधिकारी होता है। इस प्रकार से तीन माम के अभ्यास से उभय याम (प्रहर) तक सेवन करने से जिसके नाड़ियों का गण सिद्ध हो जाता है वह योगी सिद्ध प्राण वाला कहा है ॥४२-४६॥

यथेष्टं धारणं वायोरनलस्य प्रदीपनम्।
नादाभिव्यक्तिरारोग्यं भवेन्नाडी विशोषनात् ॥५०
प्राणोदेहगतोवायुरायामस्तन्निबन्धनम्।
एकश्वाससयीमात्रा प्राणायामो निरुच्यते ॥५१
प्राणायामेऽधमेधर्मः कम्पो भवति मध्यमे।
उत्तिष्ठेदुत्तमे देहो बद्धपद्मासनो मुहुः ॥५२
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्प्रत्याहारेण पातकम्।
मनोधैर्यं धारणया ध्यानेनेश्वरदर्शनम् ॥५३
समाधिना लभेन्मोक्षं त्यक्त्वा धर्मं शुभाशुभम्।
आसनेन वपुर्दाढ्यं षडङ्गमिति कीर्तितम् ॥५४
प्राणायामद्विषट्केन प्रत्याहार उदाहृतः।
प्रत्याहारैर्द्वादशभिर्धारणा परिकीर्तिता ॥५५
भवेदीश्वरसङ्गत्यै ध्यानं द्वादशधारणम्।
ध्यानद्वादशकेनैव समाधिरभिधीयते ॥५६

नाड़ियों के विशोधन से जिस तरह वायु के इष्ट का धारण होता है और अनल का दीपन होता है, बाद को अभिव्यक्ति—आरोग्य होते हैं। प्राणवायु देह में गत होता है उसका निबन्धन ही आयाम होता है और एक श्वासमयी मात्रा प्राणायाम कहा जाता है। अधम प्राणायाम में धर्म होता है—मध्यम प्राणायाम में कम्प होता है और उत्तम प्राणायाम में बद्ध पद्मासन वाला यह देह बार २ ऊपर को उठता है। प्राणायामों के द्वारा दोषों को दग्ध करना चाहिए। प्रत्याहार के द्वारा

पातकों का दाह करें। धारणा के द्वारा मन को धैर्य देवे और ध्यान के द्वारा ईश्वर का दर्शन करना चाहिए। समाधि के द्वारा मोक्ष प्राप्त करें और शुभ तथा अशुभ धर्म का त्याग कर देवे। आसन के द्वारा शरीर की दृढ़ता होती है। इस प्रकार से यह षडङ्ग योग का वर्णन कर दिया गया है। बारह प्राणायामों से प्रत्याहार उदाहृत किया गया है। बारह प्रत्याहारों से धारणा कही गई है। ईश्वर की सगति के लिये द्वादश धारणाओं का ध्यान होता है अर्थात् ध्यान में बारह धारणाऐं हुआ करती हैं। बारह ध्यानों के द्वारा समाधि होती है। इसी को समाधि कहा जाता है ॥५० ५६॥

समाधेः परतो ज्योतिरनन्तं स्वप्रकाशकम् ।
तस्मिन्दृष्टे क्रियाकाण्डं यातायातं निवर्त्तते ॥५७
पवने व्योमसम्प्राप्ते ध्वनिरुत्पद्यते महान् ।
घण्टादीनाम्प्रवाद्यानां ततः सिद्धिरदूरतः ॥५८
प्राणायामेन युक्तेन सर्वव्याधिक्षयो भवेत् ।
अयुक्ताभ्यासयोगेन सर्वव्याधिसमुद्भवः ॥५९
हिक्काश्वासश्च कासश्च शिरः कर्णाक्षिवेदना ।
भवन्ति विविधा दोषाः पवनस्य व्यतीक्रमात् ॥६०
युक्तं युक्तं त्यजेद्वायुं युक्तं युक्तञ्च पूरयेत् ।
युक्तं युक्तञ्च बध्नीयादित्थं सिध्यति योगवित् ॥६१
इन्द्रियाणां हि चरितां विषयेषु यदृच्छया ।
यत्प्रत्याहरणं युक्त्या प्रत्याहारः स उच्यते ॥६२
प्रत्याहरति यः स्वानिकूर्मोऽङ्गानीवसर्वतः ।
प्रत्याहृति विज्ञानेन सस्याद्विगतकल्मषः ॥६३

समाधि से परे स्व प्रकाशक अनन्त ज्योति होती है और उस ज्योति के दर्शन प्राप्त कर लेने पर सम्पूर्ण क्रिया काण्ड और यातायात निवृत्त हो जाया करता है ॥५७॥ पवन के व्योम में सम्प्राप्त हो जाने पर महान् ध्वनि उत्पन्न हुआ करती है। यह ध्वनि घण्टा आदि प्रवाद्यों की होती है फिर उससे निकट ही में सिद्धि होती है ॥५८॥ युक्त प्राणायाम से समस्त

व्याधियों का क्षय होजाता है किन्तु अयुक्त योग के अभ्यास भाग से सब व्याधियों की समुत्पत्ति हो जाया करती है ।।५६।। वायु के व्यतिक्रम के होने से हिचकी, श्वास, खाँसी, शिर दर्द, कानों में पीड़ा और आँखों का दर्द ऐसे अनेक दोष हो जाया करते हैं ।।६०।। युक्त युक्त वायु का त्याग करे और युक्त-युक्त ही इसको पूरित करना चाहिए तथा युक्त-युक्त ही इसका बन्धन करे, इसी प्रकार से योग के वेत्ता की सिद्धि हुआ करती है ।।६१।। यदृच्छा से विषयों में इन्द्रियों के सञ्चरण करने पर जो उनका युक्ति से प्रत्याहरण किया जाता है वही प्रत्याहार कहा जाता है ।।६२।। जो अपनी समस्त इन्द्रियों को सभी ओर से कछुए के द्वारा अपने अङ्गों के समान प्रत्याहरण किया करता है और प्रत्याहरण के विधान से जो वह प्रत्याहरण होता है । ऐसा प्रत्याहरण करने वाला पुरुष विगत कल्मष हो जाया करता है अर्थात् उसके सभी पाप क्षीण होजाते हैं ।।६३।।

नाभिदेशेवसेद्भानुस्तालुदेशे च चन्द्रमाः ।
वर्षत्यधोमुखश्चन्द्रोग्रसेदूर्ध्वमुखोरविः ।।६४
करणन्तच्चकर्तव्यं येन सा प्राप्यते सुधा ।
ऊर्ध्वं नाभिरधस्तालुरूर्ध्वं भानुरधः शशी ।।६५
करणं विपरीताख्यमभ्यासादेव जायते ।।६६
काकचञ्चुवदास्येन शीतलं शीतलं पिबेत् ।
प्राणं प्राणविधानज्ञो योगी भवति निर्जरः ।।६७
रसनां तालुविवरे निधायोर्ध्वमुखोऽमृतम् ।
धयन्निर्जरताङ्गच्छेदाषण्मासान्न संशयः ।।६८
ऊर्ध्वजिह्वः स्थिरो भूत्वा सोमपानं करोति यः ।
मासार्धेन न सन्देहो मृत्युञ्जयति योगवित् ।।६९
सम्पीड्य रसनाग्रेणराजदन्तबिलं महत् ।
ध्यात्वासुधामयी देवी षण्मासेनकविर्भवेत् ।।७०

नाभि देश मे भानु का निवास होता है और तालु देश में चन्द्रमा रहा करता है । चन्द्रमा अधोमुख होकर वर्षा किया करता है और सूर्य ऊर्ध्व मुख वाला होकर ग्रसता है । उस करण को करना चाहिए जिससे

सुधा की प्राप्ति को जाया करे। ऊर्ध्व में नाभि है और अधो भाग मे चन्द्रमा है। विपरीताख्य करण अभ्यास से ही हुआ करता है ॥६४-६६॥ काक (कौआ)की चञ्चु के समान मुख से शीतल-शीतल प्राण का पान करे। प्राण के विधान का ज्ञाता योगी निर्जर ( देवता ) अर्थात् वृद्धता से रहित हो जाया करता है ॥६७॥ तालु के छिद्र में रसना को रखकर ऊर्ध्वमुख वाला होकर अमृत का चयन करते हुए निर्जरता को छै मास मे ही प्राप्त हो जाता है, इसमे कुछ भी संशय नहीं है। जो ऊपर की ओर जिह्वा करके स्थिर होकर सोम का पान किया करता है वह योग का वेत्ता अर्द्ध मास मे ही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर लिया करता है, इस मे लेश मात्र भी सन्देह नहीं है। महान् शोभित अङ्गुलि को रसना के अग्र भाग से सम्पीडित करके सुधामयी देवी का ध्यान करके छैमास मे ही कवि होजाया करता है ॥६८-७०॥

अमृतापूर्णदेहस्य योगिनोद्वित्रिवत्सरात् ।
ऊर्ध्वं प्रवर्तते रेतो ह्यणिमादिगुणोदयम् ॥७१
नित्यं सोमकलापूर्णं शरीरं यस्य योगिनः ।
तक्षकेणापिदष्टस्यविष तस्य न सर्पति ॥७२
आसनेन समायुक्तः प्राणायामेन संयुतः ।
प्रत्याहारेण सम्पन्नो धारणामथवाम्यसेत् ॥७३
हृदये पञ्चभूताना धारण यत् पृथक् पृथक् ।
मनसो निश्चलत्वेन धारणासाभिधीयते ॥७४
हरितालनिभा भूमिं लकारां मवेवसम् ।
चतुष्कोणां हृदि ध्यायेदेपास्यात् क्षितिधारणा ॥७५
कण्ठेऽम्बुतत्त्वमर्धेन्दु निभं विष्णुसमन्वितम् ।
वकारबीज कुन्दाभ ध्यायम्बुजयेदिति ॥७६
तालुस्थमिन्द्रगोपाभ त्रिकोणं रेफसंयुतम् ।
रुद्रेणाधिष्ठितं तेजोध्यात्वावह्निजयेदिति ॥७७
वायुस्तत्त्वं भ्रुवोर्मध्ये वृत्तमञ्जनसंनिभम् ।
यम्बीजमोशदेवत्यं ध्यायन्वायुं जयेदिति ॥७८

योगाभ्यास करने वाले योगी के इस अमृत से परिपूर्ण देह का रेत ऊर्ध्व भाग को प्रवृत्त हो जाया करता है और फिर अणिमा आदि अष्ट सिद्धियों के गुणों का उदय हो जाता है ।।७१।। जिस योगी का नित्य ही सोम की कला से परिपूर्ण शरीर होता है उसको यदि साक्षात् स्वयं तक्षक सर्प भी दंशन करे तो भी उस में विष का सर्पण नहीं होता है । आसन से समायुक्त, प्राणायाम से संयुत, प्रत्याहार से सुसम्पन्न होता हुआ धारणाका अभ्यास करना चाहिए । हृदय में पाँचों भूतों का पृथक्-पृथक् जो धारण करना है और वह भी मन के परम निश्चलता के भाव से किया जाता है । इसीलिये इसको धारणा कहा जाता है ।।७२-७४।। हरि ताल के तुल्य लकार और सवेदस चतुष्कोण भूमि का हृदय में ध्यान करे, यही क्षिति की धारणा कही जाती है । कण्ठ में अर्ध चन्द्र के समान विष्णु से समन्वित अम्बु (जल) का तत्त्व है । वकार उसका बीज है और वह कुन्द के पुष्प की आभा के सदृश आभा वाला है, इस भाँति अम्बु का ध्यान करना चाहिए । इसी से वह अम्बु के ऊपर जय प्राप्त करे ।।७५-७६।। तालु में स्थित इन्द्र गोप के समान आभा वाला, त्रिकोण और रेफ किसी आभा से युक्त, रुद्र देव के द्वारा अधिष्ठित तेज का ध्यान करके वह्नि का जीतना चाहिए ।।७७।। वायु तत्त्व को दोनों भौंहों के मध्य भाग में अञ्जन के सदृश वृत्ताकार ध्यान करे जिसका सबीज है और ईश देव से वह अधिष्ठित है—इसी रीति से ध्यान करते हुए वायु पर जय प्राप्त करे ।।७८।।

आकाशञ्चमरीचिवारिसदृश यद्ब्रह्मरन्ध्रस्थित
यन्नाथेन सदाशिवेन सहित शान्त हकाराक्षरम् ।
प्राण तत्र विनीय पञ्चघटिक चिन्तान्वित धारये
देषा मोक्षकपाटनपटुः प्रोक्ता नभोधारणा ।।७९

स्तम्भनीप्लावनी चैव दहिनी भ्रामणीतथा
शमनीचभवन्त्येताभूतानापञ्चधारणाः ।

ध्येचिन्तायां स्मृतो धातुश्चिन्तातत्त्वे सुनिश्चला
एतद्ध्यानमिह प्रोक्तं सगुण निर्गुणद्विधा ।।८०

सगुणंवर्णभेदेन निर्गुणंकेवलम्मतम् ।
समन्त्रं सगुण विद्धि निर्गुणं मन्त्रवर्जितम् ॥८१
अन्तश्चेतो बहिश्चक्षुरवस्थाप्य सुखासनम् ।
समत्वञ्चशरीरस्यध्यानमुद्रातिसिद्धिदा ॥८२
नाश्वमेधेन तत्पुण्यं नच वै राजसूयतः ।
यत्पुण्यमेकध्यानेन लभेद्योगी स्थिरासनः ॥८३
शब्दादीनाञ्च तन्मात्रा यावत्कर्णादिषु स्थिता ।
तावदेव स्मृतं ध्यानं स्यात्समाधिरतःपरम् ॥८४
धारणा पञ्चनाडीका ध्यानं स्यात्षष्ठिनाडिकम् ।
दिनद्वादशकेन स्यात्समाधिरिह भण्यते ॥८५

आकाश तत्व मरीचि के वारि का तुल्य है जो ब्रह्म रन्ध्र में स्थित है जिसका नाथ भगवान् सदाशिव है उन्हीं के सहित वह रहता है। परम शान्त उसका स्वरूप है तथा हकाराक्षर उसका बीज है जिससे वह सयुत है। वहाँ पर पाँच घडी तक प्राण को लेजाकर ध्यान से युक्त होता हुआ धारणा करे। यह मोक्ष के कपाटों के पाटन करने में परम कुशल नभ की धारणा कही गई है ॥७६॥ इस रीति से स्तम्भनी, प्लावनी, दहिनी, भ्रामणी और शमनी नामों वाली भूतों की पाँच धारणाऐं हुआ करती हैं। ध्यै चिन्ता के अर्थ में धातु कहा गया है अतएव यह चिन्तन करने में सुनिश्चित होती है। इसीलिये यह ध्यान कहा गया है। यह सगुण का ध्यान और निर्गुण का ध्यान दो प्रकार का होता है ॥८०॥ सगुण वर्ण भेद से कहा गया है और निर्गुण का ध्यान केवल माना गया है। सगुण ध्यान मन्त्र के सहित होता है और निर्गुण का ध्यान मन्त्र से वर्जित होता है। चित्त को अन्तर्मुख और चक्षु को बहिर्मुख अवस्थापित करके सुखासन और शरीर का समत्व जो होता है यही ध्यान की मुद्रा अत्यन्त सिद्धि को प्रदान करने वाली होती है ॥८१-८२॥ उस पुण्य को अश्वमेध यज्ञ से तथा राजसूय यज्ञ से भी मनुष्य प्राप्त नहीं कर सकता है जिस पुण्य को स्थिर आसन वाला होकर एक ध्यान से ही प्राप्त कर लिया करता है

।।८३।। शब्दादि की तन्मात्रा जब तक कर्णादि मे स्थित है तभी तक उसको ध्यान कहा गया है। इसके पश्चात् तो फिर समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाया करती है ।।८४।। धारणा पञ्च नाडी वाली होती है और ध्यान साठ नाडियो वाला होता है। समाधि बारह दिन की होती है— यहाँ पर ऐसा ही कहा जाता है ।।८५।।

जलसैन्धवयो: साम्यं यथा भवति योगत: ।
तथात्ममनसोरैक्यंसमाधिरिहभण्यते ।।८६
यदासक्षीयते प्राणो मानसञ्च प्रलीयते ।
तदा समरसत्वं यत्ससमाधिरिहोच्यते ।।८७
यत्सनत्वंद्वयोरत्र जीवात्मपरमात्मनो:।
स नष्टसर्वसङ्कल्प: समाधिरभिधीयते ।।८८
नात्मानन्नपरं वेत्ति न शीतं नोष्ममेव च ।
समाधियुक्तो योगीन्द्रोनसुखंन सुखेतरत् ।।८९
काल्यते नैवकालेन लिप्यते नैव कर्मणा ।
भिद्यते न चशस्त्रास्त्रं योगीयुक्त.समाधिना ।।९०
युक्ताहारविहारश्च युक्तचेष्टोहि कमसु ।
युक्तनिद्रावबोधश्च योगीतत्वं प्रपश्यति ।।९१

जिस प्रकार से जल और सैन्धव का साम्य योग से होता है उसी रीति से आत्मा और मन का योग अर्थात् एकता का हो जाना ही यहाँ पर समाधि कही जाती है ।।८६।। जिस समय मे प्राण संक्षीण हो जाता है और मानस प्रलीन होजाया करता है उसी समय मे समरसता होती है जिसको यहाँ पर समाधि कहा जाया करता है ।।८७।। जो जीवात्मा और परमात्मा दोनो का यहाँ पर समत्व होजाता है और जिस मे सभी संकल्प नष्ट होजाया करते हैं उसी अवस्था का नाम यहाँ पर समाधि कहा जाता है ।।८८।। समाधि मे निरत हुआ योगी न तो आत्मा का ज्ञान उसे रहता है और न पर को ही यह जानता है—शीत और उष्ण का भी उसे ज्ञान नही होता है। समाधि मे युक्त योगी को सुख तथा दु:ख का भी कुछ ज्ञान नही रहा करता है। वह समाधिस्थ योगी काल से काल्यायमान

नहीं होता है और कर्म से भी लिप्त नहीं करता है। शस्त्रों से भी उसका भेदन नहीं किया जा सकता है। समाधि से युक्त रहने वाले योगी का ऐसा ही अद्भुत प्रभाव होता है ॥८६-९०॥ जो योगी युक्त आहार और विहार वाला होता है तथा कर्मों मे भी युक्त चेष्टाओं वाला रहा करता है एवं युक्त निद्रा तथा उच्च बोध से युत है वही योगी तत्व का साक्षात्कार किया करता है ॥९१॥

तत्वविज्ञानम नन्दम्ब्रह्मब्रह्मविदोविदुः।
हेतुदृष्टान्तरहित वाङ्मनोम्णमगोचरम् ॥९२
तत्र योगी निरालम्बे निरातङ्के निरामये।
षडङ्गयोगविधिना परेब्रह्मणि लीयते ॥९३
यथा घृते घृत क्षिप्त घृतमेव हि तद्भवेत्।
क्षीरेक्षीर तथा योगी तत्रतन्मयता व्रजेत् ॥९४
अनसं जातपानीयैर्विदध्यादङ्गमर्दनम्।
त्यजेत्कटुष्ण लवणं क्षीरभोजी सदा भवेत् ॥९५
ब्रह्मचारी जितक्रोधो जितलोभो विमत्सरः।
अब्दमित्थं सदाभ्यासात्स योगीति निगद्यते ॥९६
महामुद्रा नभोमुद्रामुड्डीयानञ्जलन्धरम्।
मूलबन्धन्तुयोवेत्तिसयोगीयोगसिद्धिभाक् ॥९७
शोधननाडीजालस्य घटनञ्चन्द्रसूर्ययोः।
रसाना शोषणसम्यङ्महामुद्राभिधीयते ॥९८

ब्रह्म के वेत्ता लोग हेतु और दृष्टान्त से रहित, मन वाणी के अगोचर, विज्ञान और आनन्द स्वरूप ब्रह्म तत्व को जानते हैं वहीं पर योगी निरालम्ब, निरातङ्क, निरामय परब्रह्म मे षडङ्ग योग की विधि से लीन हो जाया करता है। जिस प्रकार से घृत में क्षिप्त हुआ घृत वह घृत ही हो जाया करता है कोई भी दोनो में भेद नही रहा करता है और इसी तरह से क्षीर मे क्षिप्त क्षीर हो हुआ करता है और तन्मयता को प्राप्त हो जाया करता है। बिना आलस्य के जात जलों से अङ्गों का योगी को मर्दन करना चाहिए। योगी को उष्ण, लवण का त्याग कर देना चाहिए और

सब क्षीर का भोजन करने वाला रहना चाहिए। जो सदा ब्रह्मचारी, क्रोध पर विजय प्राप्त करने वाला, लोभ को जीत लेने वाला, मत्सरता से रहित होकर एक वर्ष पर्यन्त सदा अभ्यास करने से वह व्यक्ति योगी कहा जाया करता है। जो महामुद्रा, नभो मुद्रा, उड्डीयान, जलन्धर और मूलबन्ध को भली-भाँति जानता है वही योगी योग की सिद्धि का पूर्ण अधिकारी हुआ करता है। नाड़ियों के जाल का शोधन और चन्द्र-सूर्य दोनों का घटन, रसों का शोषण जिसमें हुआ करता है वही महामुद्रा कही जाया करती है ॥६२-६८॥

योनिं वामाङ्घ्रिणाऽऽपीड्य कृत्वा वक्षस्थले हनुम् ।
हस्ताभ्यां प्रसृतम्पादं धारयेद्दक्षिणं चिरम् ॥९९
प्राणेन कुक्षिमापूर्य चिरं संरेचयेच्छनैः ।।
एषप्रोक्ता महामुद्रा महाघौघविनाशिनी ॥१००
चन्द्रांगे तु समभ्यस्य सूर्यांगे पुनरभ्यसेत् ।
यावत्तुल्या भवेत्सख्या ततो मुद्रां विसर्जयेत् ॥१०१
नहि पथ्यमपथ्यं वा रसाःसर्वेऽपिनीरसाः ।
अपिघोरं विषम्पीतम्पीयूषमिवजीर्यति ॥१०२
क्षयकुष्ठगुदावर्तगुल्माजीर्णपुरोगमाः ।
तस्य दोषाः क्षयं यान्ति महामुद्राञ्चयो भासेत् ॥१०३
कपालकुहरेजिह्वाप्रविष्टाविपरीतगा ।
भ्रुवोरन्तर्गतादृष्टिर्मुद्रा भवति खेचरी ॥१०४
न पीडयते शरोघेण न च लिप्येत कर्मणा ।
बाध्यते न स कालेन यो मुद्रां वेत्ति खेचरोम् ॥१०५

वाम चरण से योनि का सम्पीडन करके और वक्षःस्थल में ठोड़ी लगा कर दोनों हाथों से प्रसृत दक्षिण पैर को चिरकाल तक धारण करना चाहिए ॥६६॥ प्राण से कुक्षि को आपूरित करके चिरकाल पर्यन्त शनैः शनैः भली-भाँति रेचन करे। इसी को महामुद्रा कहा गया है जो कि महान् अघों के ओघ का विनाश करने वाली होती है। इसी प्रकार से ...ग में भली-भाँति अभ्यास करके फिर सूर्याङ्ग में अभ्यास करना

चाहिए । जब तक तुल्य संख्या हो तब तक करे फिर मुद्रा का विसर्जन कर देना चाहिए ।।१००-१०१।। न तो कोई पत्थर ( हितकर भोजन) है और न कुछ अपथ्य ही हैं । सभी रस भी नीरस हो जाते हैं । घोर विष भी पिया जावे और उसे पीयूष की ही भाँति जीर्ण कर जाता है । क्षय, कुष्ठ, उदावर्त, गुल्म और अजीर्ण जिनमे प्रमुख हैं इन समस्त व्याधियों के दोष उस योगाभ्यासी के क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं जो महामुद्रा का अभ्यास किया करता है । कपाल के कुहर मे जिह्वा प्रविष्ट हुई हो और अविपरीत गमन करने वाली हो तथा दृष्टि दोनो भौंहों के अन्तर्गत हो ऐसी इस मुद्रा को खेचरी मुद्रा कहते हैं । जो इस खेचरी मुद्रा को जानता है वह रोगो के समुदाय से पीड़ित नही होता है और न कर्म से ही लिप्त हुआ करता है, उसको काल के द्वारा भी बाधा नही दी जाया करती है ।।१०२-१०५।।

चित्त चरति खे यस्माज्जिह्वा चरति खेगता ।
तेनैषा खेचरीनाम मुद्रासिद्धैर्निषेविता ।। ०६
यावद्बिन्दु स्थितो देहे तावन्मृत्युभय कुत. ।
यावद् बद्धा नभोमुद्रा तावद् बिन्दुर्नगच्छति ।।१०७
उड्डीनकुरुतेयस्वोदहोरात्र महाखग. ।
उड्डीयानन्ततः प्रोक्त तत्र बन्धो विधीयते ।।१०८
जठरेपश्चिम तानगाभेरुध्वञ्चधारयेत् ।
उड्डीयानो ह्ययम्बन्धो मृत्योरपिभय त्यजेत् ।।१०९
बध्नातिहिशिराजालमधोगामिनभोजलम् ।
एपजालन्धरोबन्ध.कण्ठेदु खौघनाशनः ।।११०
जालन्धरे कृतेबन्धे कण्ठसङ्कोचलक्षणे ।
न पीयूषपतत्यग्नौ न च वायुः प्रधावति ।।१११
पार्ष्णिभागेन सम्पोड्ययोनिमाकुञ्चयेद्गुदम् ।
अपानमूर्ध्वमाकृष्यमूलबन्धोविध यते ।।११२
अपानप्राणयोरैक्ये क्षयो मूत्रपुरोषयो. ।
युवा भवतिवृद्धोऽपि सततम्मूलबन्धनात् ।।११३

खेचरी मुद्रा के अभ्यास करने वाले पुरुष का चित्त तो आकाश में सचरण किया करता है और आकाश मे गई हुई जिह्वा भी संचरण किया करती है इसी कारण से इस मुद्रा का नाम खेचरी पड गया है और यह मुद्रा सिद्धो के द्वारा निषेवित हुआ करती है ॥१०६॥ जब तक इस देह मे बिन्दु स्थित रहा करता है तब तक मृत्यु का भय कहाँ है अर्थात् मौत का भय होना ही नही है। जब तक नभोमुद्रा बद्ध होती है तब तक बिन्दु नही जाया करता है ॥१०७॥ जो महान् खग अहोरात्र उड्डीन को किया किया करता है इसी कारण से इस मुद्रा को उड्डीयान नाम से कहा गया है। वहीं पर बन्ध किया जाता है ॥१०८॥ उदर मे पश्चिम नाम को नाभि के ऊर्ध्व भाग मे धारण करना चाहिए। यही उड्डीयान बन्ध होता है जिसे मृत्यु के भी भय को त्याग देना चाहिए ॥१०९॥ अधोगामी नभो जल शिराओ के जाल को बाँध लिया करता है। यही जालन्धर बन्ध होता है जो कण्ठ मे दुःखो के ओघ का नाश करने वाला है ॥११०॥ कण्ठ के सकोच लक्षण वाले जालन्धर बन्ध के करने पर न तो पीयूष अग्नि मे गिरा करता है और न वायु ही प्रधावन करता है ॥१११॥ पार्ष्णि भाग से योनि को सम्पीडित करके गुद को आकुञ्चित करना चाहिए। अपान वाल को ऊर्ध्व भाग की ओर आकर्षित करना चाहिए। यही मूल बन्ध निहित किया जाता है ॥११२॥ अपान वायु और प्राण वायु इन दोनो की एकता हो जाने पर मूत्र तथा मल का क्षय हो जाया करता है। जो कोई भी वृद्ध भी होता है तो वह युवा होजाया करता है यदि निरन्तर इस मूल बन्ध के करने का ऐसा महान् प्रभाव होता है ॥११३॥

इतियोगः समाख्यातो मयातेद्विविधो मुने !।
सपड गः समुद्रश्च मुक्तयेशम्भुभाषितः ॥११४
यावन्नेन्द्रियवैकल्य यावद्व्याधिर्न बाधते ।
यावत्कालविलम्बोऽस्ति तावद्योगरतो भवेत् ॥११५
उभयोर्योगयोर्मध्येकाशीयोगोऽयमुत्तमः ।
काशीयोगंसमभ्यस्यप्राप्नुयाद्योग मुत्तमम् ॥११६

आधिव्याधिसहायिन्या जरया मत्युलिंगया ।
काल निकटतो ज्ञात्वा काशीनाथं समाश्रयेत् ॥११७

हे मुने ! इस प्रकार से मैंने यह योग दो प्रकार का आपको बतला दिया है । यही योग छै अङ्गो वाला होता है और उपयुक्त मुद्राओं से भी समन्वित हुआ करता है । भगवान् शम्भु ने इसी योग को मुक्ति की प्राप्ति करने के लिये कहा है ॥११४॥ जिस समय तक इन इन्द्रियों मे विकलता की प्राप्ति नही होती है अर्थात् ये विषयो के ग्रहण करने मे असमर्थ नही होती है और जब तक इस शरीर को व्याधियो के द्वारा बाधा नही होती है तथा जब तक कराल काल का विलम्ब है अर्थात् मृत्यु का समय प्राप्त नही होता है तभी तक मनुष्य को योग के अभ्यास करने मे रत हो जाना चाहिए ॥११५॥ इन दोनों प्रकार के योगो के मध्य मे यह काशी का योग श्रेष्ठतम होता है । इस काशी में योग का अभ्यास करके उत्तम योग को प्राप्त करना चाहिए । आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि शारीरिक रोग ) जिस की सहायता करने वाली हैं ऐसी वृद्धता बुढ़ापा ) मे जो कि मृत्यु के समीप मे होने का एक सकेत है अपने अन्त काल को सन्निकट मे ही जानकर भगवान् काशी के स्वामी श्री विश्वनाथ का समाश्रय ग्रहण करना चाहिए ॥११६-११७॥

---

## ५४—दशाश्वमेधमाहात्म्यवर्णन

गभस्तिमालिनि गते काशी त्रैलोक्यमोहिनीम् ।
पुनश्चिन्तामवापोच्चैर्मन्दरस्थोमुनेहर ॥१
नाद्याप्यायान्ति योगिन्यो नाद्याप्यायाति तिग्मगु ।
प्रवृत्तिरपि मे काशजाभिन्नमप्यन्तदुर्लभा ॥२
भिन्नभिन्न यत्काशी मदीयमपि मानसम् ।
निर्मल चञ्चलयति गणना मेऽन्तरे गुरु ॥३
क्षणादपि महं कार्य त्रिजगज्जित्वर हरा ।
अहो काशाभिलाषोऽत्यमामेयदनुत्तरम् ॥४

काशीप्रवृत्तिमन्वेष्टुं कम्वा प्रहिणुयामितः ।
ज्ञातुं कएवनिपुणो यतः स चतुराननः ॥५
इत्याहूय विधातारं बहुमानपुरःसरम् ।
तत्रोपवेश्य श्रीकण्ठः प्रोवाच चतुराननम् ॥६
योगिन्यः प्रं पिता.पूर्वंप्रे पितोऽथपहस्रगुः ।
नाद्यापितेनिवर्तन्तेकाश्याः कमलसम्भव ॥७

भगवान् श्री स्कन्द ने कहा—हे मुनिवर ! त्रैलोक्य को मोहित करने वाली काशी पुरी में गभस्ति नामी भगवान् भास्कर के जाने पर मन्दरगिरि पर समवस्थित भगवान् हर पुनः बड़ी भारी चिन्ता को प्राप्त हो गये थे कि आज तक भी योगिनियाँ नहीं आनी हैं और अभी तक तिग्मगु भी नहीं आया है। बड़ी विचित्र बात है कि मेरी काशीपुरी की प्रवृत्ति भी अत्यन्त दुर्लभ है ॥१-२॥ यहाँ पर यह बड़ा विचित्र है कि यह काशीपुरी मेरे निश्चल मन को भी चञ्चल बना रही है तो फिर दूसरे देवों की तो विचारों की गिनती ही क्या है ? मैंने तीनों जगतों पर विजय प्राप्त कर लेने वाले कामदेव को भी बहुत ही शीघ्र तीसरे नेत्र के द्वारा दग्ध कर दिया था। अहो ! बड़े आश्चर्य की बात है कि यहाँ पर यह काशी की अभिलाषा मुझको ही अधिक सता रही है। इस काशी की प्रवृत्ति की खोज करने के लिये यहाँ से मैं किस के पास जाऊँ। इसके जानने के लिये कौन ऐसा निपुण हो सकता है। हाँ, वह एक चतुरानन (ब्रह्म) ही हो सकते हैं। इस लिये उन्होंने विधाता का समाह्वान किया था। बहुमान पूर्वक ब्रह्माजी को वहाँ पर विठलाकर भगवान् श्री कण्ठ ने चतुरानन ब्रह्मा जी से पूछा था—हे भगवान् ! मैंने पहिले तो योगिनियों को भेजा था और इनके भेजने के पश्चात् सहस्रांशु को प्रेषित वहाँ पर किया था। हे कमल से समुत्पत्ति वाले ब्रह्माजी ! काशीपुरी से वे सब अभी तक भी वापिस लौटकर नहीं आये हैं ॥३-७॥

सामगुत्सुकयेत्काशी लोकेश ममसानसम् ।
प्राकृतस्यजनस्येव चञ्चलाक्षीवकाचन ॥८

मन्दरेऽत्र रतिर्मे न भृशं सुन्दरकन्दरे ।
अनच्छतुच्छपानीये नक्रस्येवाल्पपल्वले ।।९
नानाधिष्टतथामां स तापोहालाहलोद्भवः ।
काशीविरहजन्माऽत्र यथामामतिबाधते ।।१०
शीतरश्मिः शिरस्थोऽपिवर्षन्पीयूषसीकरैः ।
काशीविश्लेषजंतापंनाहोगमयितुं प्रभुः ।।११
विधेविधेहि मे कार्यं मार्यधुर्य महामते । ।
याहिकाशीमितस्तूर्णं यतस्व च ममेहि ते ।।१२
ब्रह्मंस्त्वमेवतवेत्सिकाशीत्यजनकारणम् ।
मन्दोपिनरत्रजेत्काशींकिमुयोवेत्तिकिञ्चन ।।१३
अथैवंकिंनगच्छेयं काशीब्रह्मन्स्वमायया ।
दिवोदास स्वधर्मस्थं नतूल्लंघितुमुत्सहे ।।१४

हे लोकेश । यह काशी पुरी मेरे भी मन में बडी उत्सुकता समुत्पन्न किया करती है जैसे कोई चञ्चल नेत्रों वाली स्त्री प्रकृति (साधारण) मनुष्य के हृदय को चंचल कर दिया करती है । इस सुन्दर कन्दराओं से समन्वित इस मन्दराचल पर भी मेरे मन मे अधिक रति नही होती है । जैसे मटमैले तुच्छ जल वाले छोटे पोखरों मे नक्र के मन को पूर्ण आनन्द की प्राप्ति नहो करती है । मैंने जो सागर मन्थन मे निकले हुए हलाहल का पान किया था उसका ताप भी मुझे उतनी बाधा नही पहुचाता है जैसा कि यह काशीपुरी के वियोग से समुत्पन्न ताप मुझे अर्थात् मेरे मन को अत्यन्त सन्ताप दे रहा है । मेरे मस्तक पर शीतल किरणो वाला चन्द्र भी साक्षात् विराजमान रहता है जो कि सदा पीयूष के सीकरो के द्वारा वृद्धि मेरे ऊपर करता रहता है किन्तु वह भी काशीपुरी के विरह से उत्पन्न होने वाले सन्ताप का शमन करने मे समर्थ नही हो रहा है ।।८-११।। हे विधाता ! हे आर्यो मे परम श्रेष्ठ ! आप तो महान् मति से सुसम्पन्न हैं । इस समय मे मेरे इस कार्य को कर दीजिए । यहां से आप काशीपुरी को चले जाइये और अत्यन्त ही शीघ्र मेरे हित के सम्पादन करने के लिये यत्न कीजिएगा । हे ब्रह्मन् !

काशी के त्याग का कारण आप ही भली भाँति जानते हैं। कोई मन्द से भी मन्द पुरुष काशी पुरी का त्याग नहीं किया करता है और जो कुछ भी उसकी महिमा का ज्ञाता है उसकी तो बात ही क्या है अर्थात् वह तो कभी उसे त्याग ही नहीं सकता है। आज ही अभी भी हे ब्रह्मन्! अपनी माया से काशी को क्यों न गमन कर लूँ ? किन्तु अपने धर्म में स्थित दिवोदास का उल्लंघन करने का मैं उत्साह नहीं कर पाता हूँ ॥१२-१४॥

विधेसर्वविधेयानित्वमेवविदधोसियत् ।
इतिचेतिचवक्तव्यंस्वय्यपार्थमतोऽखिलम् ॥१५
अरिष्टं गच्छपन्थास्ते शुभोदर्को भवत्वलम् ।
आदायाऽऽज्ञां विधिमूर्ध्नि ययौ वाराणसीं मुदा ॥१६
सितहंसरथस्तूर्णं प्राप्यवाराणसी पुरीम् ।
कृतकृत्यमिवात्मानममन्यत तदात्मभूः ॥१७
हंसयानफलं मेऽद्य जातं काशीसमागमे ।
काशीप्राप्तौयतः प्रोक्ता अन्तरायाः पदे पदे ॥१८
इतिधातुरभूदद्यमदृक्शोप्राप्यमान्वयः ।
स्पष्टं दृष्टिपथं प्राप्ता यदेवाऽऽनन्दवाटिका ॥१९
स्वयमिञ्चतियामादिभःस्वाभि.स्वर्गतरङ्गिणी ।
यत्रानन्दमयावृक्षायत्रानन्दमयाजनाः ॥२०
निविशन्ति सदा काश्यां फलान्यानन्दवन्त्यपि ।
सर्वानन्दभूः काशी सर्वानन्दद.शिवः ॥२१

हे विधे ! आप ही समस्त कर्त्तव्य कर्मों को किया करते हैं इसी हेतु से आपको ऐसा मे यह कहा जा रहा है, क्योंकि आपके विषय में सभी कुछ अरिष्ट अपार्थ ही होता है। आप गमन कीजिए। आपका मार्ग शुभ फलदायक होवे। उस समय में ब्रह्माजी ने भगवान् शम्भु की आज्ञा को मस्तक पर धारण करके बहुत ही प्रसन्नता के साथ वे वाराणसी पुरी को चले गये थे ॥१५-१६॥ श्वेत हंस का रथ बहुत ही शीघ्र वाराणसी पुरी में प्राप्त हो गया था। उस समय में वाराणसी में पहुँच कर

ब्रह्माजी ने अपने आपको परम कृत कृत्य की ही भाँति माना था। ब्रह्माजी ने मन मे विचार किया था कि मुझे दस हसों के यान का वास्तविक फल आज ही प्राप्त हुआ है कि मेरा इस काशी पुरी मे सुन्दर समागम हो गया है क्योंकि इस काशी पुरी की प्राप्ति करने मे कदम-कदम मे बहुत से विघ्न कहे गये हैं। यह दृशि धातु मेरे दृष्टि की सार्थकता प्राप्त करके ही ठीक सफल हुई है क्योंकि यह आनन्द की वाटिका आज स्पष्ट रूप से मेरी दृष्टि के मार्ग मे प्राप्त हो गई है, अर्थात् मैंने अपने नेत्रों से काशी पुरी का दर्शन प्राप्त करके नेत्रों के पाने का फल एवं सार्थक्य पालिया है। यह वाराणसी ऐसी पुरी है जिसका स्वर्ग तरङ्गिणी स्वयं अपने परम पावन जल से सिञ्चन किया करती है। यह ऐसी नगरी है जहाँ पर सभी वृक्ष भी आनन्द से परिपूर्ण होते है और जहाँ पर याजनन करने वाले भी आनन्दमय जीवन व्यतीत किया करते हैं। काशीपुरी मे सदा आनन्द वाले भी फल विःशेष रूप से प्रवेश किया करते हैं। काशी सदा ही आनन्द की भूमि है और सदा ही आनन्द के प्रदान करने वाले प्रभु शिव है ॥१७-२१॥

आनन्दरूपाजायन्ते तेनकाश्याहिजन्तवः।
चरणौ चरितु वित्तस्तावेव कृतिनामिह ॥२२
चरणौविचरेतायौ विश्वभर्तृ पुरीभुवि।
तावेव श्रवणौ श्रोतु सम्विदाते बहुश्रुतौ ॥२३
इहश्रुतिमता पुंसायाभ्या काशीश्रुतासकृत्।
तदेवमनुतेसर्वमनस्विहमनस्विनाम् ॥२४
येनानुमन्यतेचैषा काशीसर्वप्रमाणभूः।
वृद्धिवर्ध्यति सा सर्वमिहन्नुद्धिमतां सताम्।
ययंतद्धूर्जटेर्धाम ध्रुवं स्वत्रिपयीकृतम् ॥२५
वरं तृणानि धान्यानि तानि वात्याहतान्यपि।
काश्या यान्यापतन्तीह न जनाः काश्यदर्शनाः ॥२६
अद्यमेसफलञ्चायुः परार्धद्वयसम्मितम्।
यस्मिन्सतिमयाप्रापिदुष्प्रापाकाशिकापुरी ॥२७

अहोमेधर्मसम्पत्तिरहोमेभाग्यगौरवम् ।
यदद्राक्षिषमद्याहं काशीं सुचिरचिन्तिताम् ॥२८

इसी कारण से जो आनन्द के स्वरूप वाले जन्तु होते हैं वे ही काशी पुरी में जन्म ग्रहण किया करते हैं। यहाँ पर परम कृती पुरुषों के ही चरण संचरण करने के अधिकारी होते हैं। इस विश्व के भर्त्ता की पुरी की भूमि में जो चरण विचरण करते हैं वे ही चरण सार्थक हैं वे ही यथार्थता में श्रवण हैं और बहुश्रुत हैं जो काशी पुरी की महिमा का श्रवण किया करते हैं। जिन कानों से एक बार भी काशी का श्रवण किया है वे ही वास्तव में पुरुषों के सफल कान हैं। यहाँ पर मनस्वियों का वह ही मन सब कुछ माना जाता है जिसके द्वारा यह सबका प्रमाण रूपी काशी मान्य समझी जाया करती है। बुद्धिमान सत्पुरुषों की वही बुद्धि सब कुछ समझो या ज्ञान रखती है जिसके द्वारा भगवान धूर्जटि के इस धाम को अपने ज्ञान का विषय बनाया गया है। वे तृण और धान्य भी परम धन्य हैं जो वायु से समाहत होकर यहाँ काशी में समायतन किया करते हैं और वे कुछ भी नहीं हैं जिन्होंने इस काशी पुरी का कभी दर्शन तक भी नहीं किया है ॥२२-२६॥ आज ही मेरी यह परार्द्ध द्वय से समित आयु सफल हुई है जिसके होते हुए मैंने अपनी इस लम्बी अवस्था में आज इस दुष्प्राप्य काशीपुरी को प्राप्त कर लिया है। ब्रह्माजी ने अपने दिल में अपने सौभाग्य की सराहना करते हुए कहा कि ये धर्म का कितना विशाल वैभव है और मेरे इस भाग्य का कैसा महान गौरव है कि मैंने आज इस समय में चिरकाल से चिन्तित काशी पुरी का दर्शन प्राप्त कर लिया है ॥२७-२८॥

अद्य मेस्वतपोवृक्षो मनोरथफलैरलम्
शिवभक्तयम्बुनासिक्तः फलितोऽतिबृहत्तरैः ॥२९
मयाप्यद्यापिबहुधा सृष्टिः सृष्टिवितन्वता ।
परमन्यादृशीकाशीस्वयंविश्वेशनिर्मिता ॥३०
इहि हृष्टमनावेधा दृष्ट्वा वाराणसीं पुरीम् ।
वृद्धब्राह्मणरूपेण राजानमभ्यददर्शह ॥३१

जलार्द्राक्षतपाणिश्चस्वस्त्युक्त्वापृथिवीभुजे ।
कृतप्रणामोराशाय भेजेतद्दत्तमासनम् ॥३२
कृतमानोनृपतिना सोम्युत्थानासनादिभिः ।
विप्रोव्यजिज्ञपद्भूपं पृष्टागमनकारणम् ॥३३
भूपालबहुकालीनोऽस्म्यहमत्रचिरन्तनः ।
त्वन्तुमांनैवजानासिजानेत्वांहिरिपुञ्चतम् ॥३४
परःशतामयादृष्टाराजानोभूरिदक्षिणा ।
विजितानेकसंग्रामा यायजूकाजितेन्द्रियाः ॥३५
विनिष्कृतारिषड्वर्गाः सुशीलाः सत्त्वशालिनः ।
श्रुतस्य पारदृश्वानो राजनीतिविचक्षणाः ॥३६

आज मेरे तप रूपी वृक्ष के मनोरथ रूपी फल पर्याप्त रूप से प्राप्त हो गये हैं। यह तपोवृक्ष शिव की भक्ति रूपी जल से सिक्त होकर अति विशाल फलों से फलित हुआ है। मैंने सृष्टि का विस्तार करते हुए अनेक प्रकारों से समन्वित सृष्टि की रचना की थी किन्तु यह मन्याद्गी काशीपुरी का निर्माण स्वयं भगवान् विश्वनाथ के ही द्वारा किया गया है। इस प्रकार से परम हर्षित मन वाले ब्रह्माजी ने उस वाराणसी पुरी का दर्शन करके एक अत्यन्त वृद्ध ब्राह्मण के रूप से राजा को जाकर देखा था ॥२९-३१॥ जल से आर्द्र अक्षत हाथों में ग्रहण करने वाले उनने राजा को 'स्वस्ति'—यह कह कर आशीर्वाद दिया था और राजा के द्वारा किया हुआ प्रणाम प्राप्त करके इसके अनन्तर राजा के द्वारा दिये हुए आसन पर बैठ गए थे नृपति के द्वारा उनका बहुत अधिक सम्मान किया गया था और राजा ने स्वयं उत्थान करके आसन आदि इनको समर्पित किया था। जब विप्र से राजा ने आगमन कारण पूछा तो उन्होंने राजा को विज्ञापित किया था ॥३२-३३॥ ब्राह्मण ने कहा—हे भूपाल ! मैं बहुत काल का हूँ और यहाँ पर मैं चिरकाल से निवास करने वाला हूँ। आप तो मुझको नहीं जानते हैं किन्तु मैं आपको भली भाँति जानता हूँ और उस रिपु को भी जानता हूँ। मैंने सैकड़ों से भी अधिक राजाओं को देखा है जो बहुत अधिक दक्षिणा देने वाले हुए

हैं और जिन्होंने अनेक संग्रामों में विजय प्राप्त की है तथा जो याजक और जितेन्द्रिय हुए हैं। ऐसे नृपों को मैंने देखा है जिन्होंने अपने काम क्रोध लोभ मोह मद मात्सर्य—इन ६ शत्रुओं को विनिष्कृत कर दिया है। जो परम सुशील—सत्वशाली—श्रुत के पारदृष्टा और राजनीति के ज्ञान में परम विचक्षण थे ॥३४-३६॥

दयादाक्षिण्यनिपुणाः सत्यव्रतपरायणाः ।
क्षमयाक्षमयातुल्यागाम्भीर्यजितसागराः ॥३७
जितरोषपरमाशूरा. सौम्यसौन्दर्यभूमयः ।
इत्यादिगुणसम्पन्नाः सुसञ्चितयशोधनाः ॥३८
परं द्वित्रा.पवित्रामेराजर्षे तव सद्गुणाः ।
तेष्वेषु राजसु मम प्रायशो न दृशं गताः ॥३९
प्रजानिजकुटुम्बस्त्वं त्वन्तु भूदेवदैवतः ।
महातपःसहायस्त्वं यथानान्ये तथानृपाः ॥४०
धन्योमान्योऽसि च सतां पूजनीयोऽसि सद्गुणः ।
देवानपिदिवोदास! त्वत्त्रासान्न विमार्गगाः ॥४१
किं नः स्तुत्या तव नृप! द्विजा नामस्पृहावताम् ।
किं कुर्मस्त्वद् गुणग्रामाः स्तावकान्नः प्रकुर्वते ॥४२

हे राजन् ! मैंने ऐसे भी बहुत से राजाओं को देखा है जो दया और दाक्षिण्य में निपुण थे—सत्य व्रत के पालन में परायण थे—पृथ्वी के समान क्षमा से युक्त थे और गम्भीरता तो उनमें ऐसी थी कि जिन्होंने अपने गाम्भीर्य गुण से सागर को भी जीत लिया था ॥३७॥ मैंने ऐसे नृपों को भी देखा है जिन्होंने रोष के वेग को भी जीत लिया था—परम शूरवीर थे—सौम्यता और सौंदर्य की भूमि थे। इत्यादि गुणों से सुसम्पन्न और भली भाँति सञ्जित यश रूपी धन वाले थे। हे राजर्षे ! किन्तु आपके जो सद्गुण हैं वैसे दो-तीन ही पवित्र सद्गुण थे। उन राजाओं में मेरी प्रायः दृष्टि नहीं गई थी। आप तो अपनी प्रजा को अपना कुटुम्ब ही मानने वाले हैं और आप तो इस भूमण्डल के देवता हैं। आप महान् तप की सहायता वाले हैं और नृप उस प्रकार के नहीं हैं जैसे

आप हैं। आप परम धन्य और सत्पुरुषों के मान्य एवं सद्गुणों से पूजनीय हैं। हे दिवोदास ! देवगण भी आपके त्रास से बिमार्ग में गमन करने वाले नहीं होते है ॥३८-४१॥ हे नृप ! आपकी स्पृहा रखने वाले हमारे द्विज सदा स्तुति करने के योग्य हैं। बदर करें ! आपके गुणों के समुदाय हमको आपका स्तवन करने वाले बना रहे हैं ॥४२॥

गोष्ठीतिष्ठस्त्विय तावत्प्रस्तुतं स्तौमि साम्प्रतम् ।
यष्टुकामोऽस्म्यहं राजस्त्वां सहायमतो वृणे ॥४३
त्वया राजन्वती चेयमवनिः सर्वर्धिभाजनम् ।
अहं चास्तिधनो राजन्! न्यायोपात्तमहाधनः ॥४४
इयञ्चराजधानी ते कर्मभूमावनुत्तमा ।
यस्या कृतानांकार्याणा सम्वर्तेऽपि न संक्षयः ॥४५
सञ्चितं यद्धनं पुम्भिर्नयसन्मार्गगामिभिः ।
तत्काश्यां विनियुज्येत क्लेशायेतरथा भवेत् ॥४६
महिमानं परं काश्या. कोऽपिवेदन भूपते! ।
ऋतेत्रिनयनाच्छम्भोः सर्वज्ञानप्रदायिनः । ४७
मन्ये धन्यतरोऽसि त्वं बहुजन्मशतार्जितैः ।
सुकृतैः पासि यत्काशीं विश्वभर्तुः परां तनुम् ॥४८

यहाँ पर यह गोष्ठी उस समय तक रहे मैं इस समय में जब तक आपका स्तवन करता हूँ। हे राजन् ! मै यजन करने की इच्छा वाला हूँ अतएव मैं आप की सहायता का वरण करता हूँ। यह भूमि जो समस्त ऋद्धियों का भाजन (आधार) है वह आपही के द्वारा राजन्वती है है। हे राजन् ! आप न्याय से उपात्त महान् धन वाले हैं और मौन ही आपका बड़ा धन है। आपकी यह राजधानी इस कर्मभूमि भूमण्डल में परम श्रेष्ठ है जिस मे किये हुए कार्यों का सम्वर्त में भी कभी क्षय नहीं हुआ करता है। न्याय के मार्ग के गमन करने वाले पुरुषों के द्वारा जो धन संचित किया गया है उस धन का काशीपुरी मे ही विनियोग करना चाहिए अन्यथा वह क्लेश के लिए हुआ करता है ॥४३-४६॥ हे भूपते ! इस काशीपुरी की बहुत बड़ी महिमा है जिसको कोई भी नहीं जानता

है। यदि कोई इसकी महिमा को जानते हैं तो केवल सम्पूर्ण ज्ञान के प्रदान करने वाले तीन नेत्रों के धारी शम्भु ही जानते हैं। मैं तो यही मानता हूँ कि आप अधिक धन्य हैं और आपके बहुत से सैंकड़ों जन्मों के अर्जित पुण्यों से ही यह सौभाग्य आपको प्राप्त हुआ है कि आप भगवान् विश्वनाथ के दूसरे वपु के समान इस काशी को सुकृतों से परिपालित किया करते हैं ।।४७-४८।।

काशीत्रिजगतीसारस्त्रिवेदीसार एव वै ।
त्रिवर्गोत्तरसारश्च निर्णीतेति महर्षिभिः ।।४९
विश्वेशानुग्रहेणैव त्वयैपापाल्यतेपुरी ।
एकस्याप्यवनात्काश्यांत्रैलोक्यमवितम्भवेत् ।।५०
अन्यच्च ते हितं वच्मि यदि ते रोचतेऽनघ !।
प्रीणनीयः सदैवको विश्वेशः सर्वकर्मभिः ।।५१
अन्यदेव धिया राजन् विश्वेशं पश्य माक्वचित् ।
ब्रह्माविष्णिवन्द्रचन्द्रार्काः क्रीडयन्तस्य धूर्जटेः ।।५२
विप्रं रुद्रर्कमिच्छद्भिः शिक्षणीया यतो नृपाः ।
अतस्तव हितं रुयातं किम्वा मे चिन्तयाऽनया ।।५३
इति जोप स्थितविप्रं प्रेत्युवाचनृपोत्तमः ।
सर्वं मयाहृदिधृतंयत्त्वयोक्तं द्विजोत्तम! ।।५४
अहं यियक्षमाणस्य तव साहाय्यकर्मणि ।
दासोऽस्मि यज्ञसम्भारान्नय मे कोशतोऽखिलान् ।।५५
यदस्ति मेऽखिलन्तत्र सप्ताङ्गेऽपि भवान्प्रभुः ।
यजस्वैकमनाब्रह्मन् ! सिद्धं मन्यस्व वाञ्छितम् ।।५६

यह काशीपुरी तीनों भुवनों का सार है, और तीनों वेदों का भी सार स्वरूप है और महर्षियों ने यह निर्णय किया है कि यह तीनों वर्गों का उत्तर सार है। यह भगवान् विश्वनाथ प्रभु का ही परम अनुग्रह है कि जिससे आपके द्वारा इस परम पावन पुरी का परिपालन किया जाता है। इस काशीपुरी में एक के भी अवन से सम्पूर्ण त्रैलोक्य ही अवित हो जाया करता है। हे अनघ ! मैं एक और भी आपके हित

को मात कहना हूँ यदि वह आपको पसन्द हो जावे। सदा ही समस्त कर्मों के द्वारा एक ही भगवान् विश्वनाथ को प्रसन्न करना चाहिए ॥४९-५१॥ हे राजन् ! दूसरे देवता को बुद्धि से कभी भी कहीं पर विश्वेश प्रभु को मत देखना। उस भगवान् धूर्जटि के ही अन्दर ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, चन्द्र और सूर्य क्रीडा किया करते हैं ॥५२॥ जो विप्र अपना अभ्युदय चाहने वाले हैं उनको चाहिए कि नृपों को शिक्षा देवें। इससे आपका हित स्यात होगा। मेरी इस चिन्ता से आपको क्या प्रयोजन है। यह कहकर फिर मौन धारण करने वाले स्थित विप्र से वह श्रेष्ठ नृप बोला—हे द्विजोत्तम ! जो भी आप ने कहा है वह सब मैंने अपने हृदय मे धारण कर लिया है। राजा ने कहा—यजन करने की इच्छा वाले आपकी सहायता के कर्म मे मैं आपका दास हूँ। आप मेरे कोश से समस्त यज्ञ के सम्भारो को ग्रहण कीजिए। जो भी है वह सभी यहां पर है। सप्ताङ्ग मे भी आप प्रभु हैं। हे ब्रह्मन् ! आप एकचित्त होकर यजन करिए। आपका वाञ्छित सिद्ध हो मानिए ॥५३-५६॥

राज्यं करोमि यद् ब्रह्मन् !स्वार्थं तत्समनागपि।
पुत्रैः कलत्रैर्देहेन परोपकृतये यते ॥५७
राज्ञाक्रतुक्रियाभ्योपितीर्थेभ्योपिसमन्ततः।
प्रजापालनमेवैकोधर्मःप्रोक्तोमनीषिभिः ॥५८
प्रजासन्तापजोवह्निर्वज्राग्नेरपिदारुणः।
ह्रियान्दहतिवज्राग्निः पूर्वो राज्यं कुलंतनुम् ॥५९
यदाऽवभृथसिस्नासुर्भवेयंद्विजसत्तम !।
तदा विप्रपदाम्भोभिराभिषेककरोम्यहम् ॥६०
हवनं ब्राह्मणमुखे यत् करोमि द्विजोत्तम !।
मन्येक्रतुक्रियाभ्योऽपितद्विशिष्टं महामते ॥६१
अभिलाषेषु सर्वेषु जागर्त्येकोहृदीह मे ॥६२
अद्यापिमार्गणःकोऽपि द्रष्टव्यःस्वतनोरपि ॥६३

हे ब्रह्मन् ! जो मैं यह राज्य करता हूँ उसमे मेरा थोड़ा सा भी स्वार्थ नही है। हे यते ! पुत्रों के, कलत्रों के और देह के द्वारा सभी

कुछ दूसरो के उपकार करने के लिए किया जाता है ।।५७।। राजाओ को ऋतु की क्रियाओ से और समस्त तीर्थो से भी अधिक अपनी प्रजा का पालन करना ही मनीषियो ने एक ही धर्म बतलाया है ।।५८।। प्रजा के सन्ताप से उत्पन्न होने वाला वह्नि वज्र की अग्नि से भी अधिक दारुण होता है । वज्र की अग्नि तो दो या तीन का दाह कर दिया करता है । और पहिली जो प्रजा के सन्ताप से उत्पन्न अग्नि पूरे राज्य कुल और तनु को दग्ध कर दिया करता है ।।५९।। हे द्विज श्रेष्ठ ! जिस समय मे अवभृथ में स्नपन करने की इच्छा वाला मैं होता हूँ उस समय मे, मैं विप्रो के पद कमलो के जल से मैं अपना अभिषेक किया करता हूँ । हे द्विजोत्तम ! ब्राह्मण के मुख मे जो हवन किया करता हूं उसकी ऋतु की क्रियाओ से भी विशिष्ट मैं हे महामते ! माना करता हूँ । सम्पूर्ण अभिलाषाओ मे मेरे हृदय मे यहाँ पर एक ही जागरूक रहा करती है कि आज भी कोई अपने तनु का मार्गण देखना चाहिए । अहो ! बहुत ही प्रसन्नता की बात है कि बहुत से पुण्यो से मेरा यह मनोरथ फलित हो गया है कि हे द्विज ! आज आप कुछ प्रार्थना करने के लिये मेरे घर पर प्राप्त हो गये हैं ।।५९-६३।।

इति राज्ञा महावृद्धधर्मशीलस्य भाषितम् ।।६४
श्रुत्वा तुष्टमना सष्टाक्रतुसम्भारमाहरत् ।।६५
साहाय्यप्राप्य राजर्षिदिवोदासस्यपद्मभूः ।
इयाजदशभिः कादयामश्वमेधैर्महामखे. ।।६६
अद्यापि होमधूमोर्घैर्यद्व्याप्तगगनाम्बरम् ।
तदाप्रभृति न व्योमनीलिमानजहात्यदः ।।६७
तीर्थं दशाश्वमेधारय प्रथितजगतीतले ।
तदाप्रभृति तत्रासीद्वाराणस्या शुभप्रदम् ।।६८
पुरारुद्रसरोनाम तत्तीर्थं कलशोद्भव !।
दशाश्वमेधिकं पश्चाज्जात विधिपरिग्रहात् ।।६९
स्वर्धुन्यथ ततः प्राप्ताभगीरथसमागमात् .
अतीवपुण्यवज्जातमतस्तत्तीर्थमुत्तमम् ।।७०

धर्म के शील स्वभाव वाले महान् बुद्धि से सम्पन्न राजा का इस प्रकार से यह भाषित सुनकर ब्रह्मा बहुत ही सन्तुष्ट मन वाले हो गये थे और उन्होने क्रतु के सम्पूर्ण सम्भारों का समाहरण किया था। उस राजर्षि दिवोदास की पूर्ण सहायता प्राप्त करके पद्मभू ब्रह्माजी ने काशी पुरी मे दश महामख अश्वमेधों के द्वारा यजन किया था। उन यज्ञों की होम की धूमों से आज तक भी वहाँ के आकाश का अन्तर व्याप्त होरहा है। तभी से लेकर यह गगनान्तर नीलिमा का त्याग नहीं किया करता है। उसी समय से इस जगती तल मे यह दशाश्वमेध नामक तीर्थ विख्यात होगया था और तभी से यह शुभों का प्रदाता तीर्थ वाराणसी मे स्थित है। हे कलशोद्भव ! पहिले वह तीर्थ रुद्रसर इस नाम से प्रसिद्ध था फिर पीछे विधाता के परिग्रह से दशाश्वमेधिक हो गया था। फिर राजर्षि प्रवर भगीरथ के समागम वहो पर स्वधुंनी गगा भी प्राप्त होगई थी। इसीलिये यह महा तीर्थ अतीव पुण्यशाली एव उत्तम होगया था ॥६४-७०॥

विधिर्दशाश्वमेधेशं लिङ्गं संस्थाप्य तत्र वै ।
स्थितवान्नगतोऽद्यापि क्वापि काशी विहाय तु ॥७१
राज्ञो धर्मरतेस्तस्यच्छिद्रनावापकिञ्चन ।
अत.पुरारे पुरतो अजित्वा किं वदेद्विधिः ॥७२
क्षेत्रप्रभाव विज्ञाय ध्यायन्विश्वेश्वर शिवम् ।
ब्रह्मेश्वर च सस्थाप्य विधिस्तत्रैव सस्थितः ॥७३
परा तनुरियं काशी विश्वेशस्येति निश्चितम् ।
अस्याः ससेवनाच्छम्भुर्न कुप्यति पुरो मयि ॥७४
कः प्राप्य काशी दुर्मेधाः पुनस्त्यक्तुमिहेहते ।
अनेकजन्मजनितकर्मनिर्मूलनक्षमाम् ॥७५
विश्वसन्तापसंहर्तुः स्थाने विश्वपतेस्तनुः ।
सन्ताप्यतेतरां काश्या विश्लेषजमहाग्निना ॥७६
प्राप्य काशी त्यजेद्यस्तु समस्ताघौघनाशिनीम् ।
नृपशुः स परिज्ञेयो महासौख्यपराङ्मुखः ॥७७

निर्वाणलक्ष्मी यः काङ्क्षेत्यक्त्वा संसारदुर्गतिम् ।
तेन काशी न सन्त्याज्या यद्यप्तेशादनुग्रहात् ॥७८

वहाँ पर श्री ब्रह्माजी ने दशाश्वमेधेश नामक एक शिवलिङ्ग की संस्थापना की थी और स्वयं आप भी उस काशीपुरी का त्याग करके कहीं भी न जाकर वहीं पर स्थित हो गये थे जोकि आज तक भी वहीं पर विराजमान रहते हैं ॥७१॥ धर्म में रति रखने वाला राजा का कुछ भी छिद्र प्राप्त नहीं किया था कि भगवान् पुरारि के समक्ष मे उपस्थित होकर उसके सम्बन्ध मे क्या कहते। उस क्षेत्र के महान् प्रभाव को जानकर विश्वेश्वर प्रभु शिव का ध्यान करते हुए ब्रह्मेश्वर की संस्थापना करके ब्रह्माजी वहीं पर संस्थित हो गये थे ॥७२-७३॥ यह निश्चित है कि यह काशीपुरी भगवान् विश्वनाथ का दूसरा एक परमोत्तम वपु ही है। इसके भली भाँति सेवन करने से मुझ पर कभी भी कोप नहीं करेंगे ॥७४॥ कौन-सा ऐसा दुष्ट बुद्धि वाला है जो इस महापावन काशीपुरी को प्राप्त करके फिर त्याग करने की इच्छा किया करता हो जो कि प्राक्तन अनेक जन्मों मे समुत्पन्न कर्मों के निर्मूल करने में समर्थ हो। इस विश्व के सम्पूर्ण सन्तापों का सहार करने वाले प्रभु के स्थान मे विश्वपति का तनु काशीपुरी के विश्लेष से समुत्पन्न महान् अग्नि से अत्यन्त ही सन्तापित होता है ॥७५-७६॥ इस समस्त प्रकार के पापों के समुदाय का विनाश करने वाली काशीपुरी को प्राप्त करके कौन इसका त्याग करेगा ? अर्थात् फिर वहां पहुंच कर कोई भी इस पुरी को नहीं छोड़ना चाहता है। यदि कोई इस पुरी का त्याग करता भी है तो वह महान् सौख्य से पराङ्मुख होने वाला मनुष्यों में साक्षात् पशु के ही समान होता है ॥७७॥ जो निर्वाण लक्ष्मी की इच्छा करता है और संसार की दुर्गति को त्याग देता है उस पुरुष को इस काशीपुरी का कभी भी त्याग नहीं करना चाहिए यदि यह भगवान् ईश के परमानुग्रह से प्राप्त होजाव ॥७८॥

---

## ५५—त्रिलोचनाविर्भावविवर्णन

श्रुत्वोङ्कारकथामेतां महापातकनाशिनीम् ।
न तृप्तोस्मि विशाखाथ ब्रूहि त्रैविष्टपीं कथाम् ॥१
कथं च कथिता देव्यै देवदेवेन षण्मुख !।
आविर्भूतिर्महाबुद्धे ! पुण्यात्रैलोचनीपरा ॥२
आकर्णय मुने ! वच्मि कथा श्रमनिवारिणीम् ।
यथा देवेन कथितां त्रिविष्टपसमुद्भवाम् ॥३
विरजाख्यं हि तत्पीठं तत्रलिङ्गं त्रिविष्टपम् ।
तत्पीठदर्शनादेव विरजा जायते नरः ॥४
तिस्रस्तु सङ्गतास्तत्र स्रोतस्विन्यो घटोद्भव !।
तिस्रः कल्मषहारिण्यो दक्षिणे हि त्रिलोचनात् ॥५
स्रोतोमूर्तिधराः साक्षाल्लिङ्गस्नपनहेतवे ।
सरस्वत्यथ कालिन्दीनर्मदाचातिशर्मदा ॥६
तिस्रोपि हि त्रिसन्ध्यन्ताः सरितः कुम्भपाणयः ।
स्नपयन्ति महाधाम लिंगं त्रैविष्टपम्महत् ।।७

महा महर्षि प्रवर अगस्त्य जी ने कहा—मैंने आपके द्वारा वर्णित ॐकार की कथा का श्रवण कर लिया है जो कि बड़े २ महान् पातकों का विनाश करने वाली है किन्तु मेरी पूर्णतया तृप्ति नहीं हुई है अब आप कृपा करके त्रैविष्टपी कथा का श्रवण कराइये । हे षण्मुख ! देवों के देव ने देवी जगदम्बा को यह कथा कैसे कही थी । आप तो महती बुद्धि वाले हैं । यह आविर्भूत परम पुण्यमयी त्रैलोचनी है ॥१-२॥ भगवान् स्कन्द ने कहा—हे मुने ! मैं उस श्रम के निवारण करने वाली कथा को कहता हूँ । अब आप सुनिये । जिस रीति से त्रिविष्टप के समुद्भव वाली कथा देव ने कही थी ॥३॥ एक विरजा नाम वाला उनकी पीठ स्थल है । वहाँ पर त्रिविष्टप नामधारी लिंग है । उस पुण्यमय पीठ के केवल दर्शन कर लेने ही से मनुष्य विरजा हो जाया करता है । हे घटोद्भव ! वहाँ पर तीन स्रोत स्विनी संगत हुई हैं । त्रिलोचन प्रभु से दक्षिण भाग में ये तीनों ही कल्मषों के हरण करने वाली हैं । लिंग के स्नपन कराने

के कारण से ये साक्षात् गौन की मूर्तियों की धारण करने वाली हैं। ये तीनों में सरस्वती कालिन्दी और कल्याण प्रदान करने वाली नर्मदा हैं। ये तीनों ही सरितायें तीनों कालों में हाथों में कमल ग्रहण करके महापाप उस त्रैविष्टप महत् लिंग का स्मरण किया करती हैं ॥४-७॥

लिंगानि परिमस्ताभिः स्वनाम्ना स्थापितान्यपि ।
तेषां सन्दर्शनात्पुंसां तासां स्नानफलं भवेत् ॥८
सरस्वतीश्वरं लिंग दक्षिणेन त्रिविष्टपात् ।
सारस्वतं पदं दद्याद्दृष्टं स्पृष्टञ्च जाड्यहृत् ॥९
यमुनेशम्प्रतीच्याञ्च नरैर्भक्त्या समन्वितम् ।
अपि किल्विषवद्भिश्च यमलोक निवारणम् ॥१०
दृष्टं त्रिलोचनात्प्राच्या नर्मदेश सुशर्मदम् ।
तल्लिंगार्चनतो नृणां गर्भवासो निषिध्यते ॥११
स्नात्वा पिलपिलातीर्थे त्रिविष्टपसमापनः ।
दृष्ट्वा त्रिलोचनं लिंगं किं भूयः परिशोचति ॥१२
त्रिविष्टपस्य लिंगस्य स्मरणादपि मानवः ।
त्रिविष्टपपतिर्भूयान्नात्रकार्या विचारणा ॥१३
त्रिविष्टपस्य द्रष्टारः स्प्रष्टारः स्युर्नसंशयः ।
कृतकृत्याएत एवात्र त एवात्र महाधियः ॥१४

उन तीनों के द्वारा सब ओर अपने २ नामों से लिंगों की स्थापना की गई है। उन लिंगों के दर्शन करने से ही मनुष्यों को उन सरिताओं के स्नान करने का पुण्य फल प्राप्त हो जाया करता है ॥८॥ सरस्वतीश्वर नाम वाला लिंग त्रिविष्टप से दक्षिण दिग्भाग में है। यह लिंग ऐसा प्रभाव वाला है कि इसका दर्शन और स्पर्श करने पर जड़ता का हरण कर सारस्वत पद प्रदान किया करता है। यमुनेश्वर नामक लिंग पश्चिम दिशा में है जो मनुष्यों के द्वारा भक्ति भाव से समर्चित होता है। इस लिंग की अर्चना से जो किल्विष वाले हैं उनके भी यम लोक का निवारण हो जाया करता है। भगवान् त्रिलोचन से पूर्व दिशा में श्रेय प्रदाता नर्मदेश प्रभु हैं। इनकी अर्चना करने से मनुष्यों का मोक्ष

होता है और फिर जननी के उदार में गर्भवास कभी नहीं हुआ करता है। त्रिविष्टप के समीप मे जो पिलपिला तीर्थ है उसमे स्नान करके और भगवान त्रिलोचन लिंग के दर्शन करके फिर क्या चिंता का विषय रह जाता है अर्थात् कुछ भी नही रहा करता है ॥६-१२॥ त्रिविष्टप लिंग के केवल स्मरण कर लेने से भी त्रिविष्टप का स्वामी हो जाया करता है—इसमें कुछ भी विचारणा नही करनी चाहिए। त्रिविष्टप के दर्शन करने वाले स्रष्टा हो जाया करते हैं—इसमें संशय नही है। ये ही लोग कृतकृत्य हैं और ये ही लोग महा बुद्धिमान हैं ॥१३-१४॥

आनन्दकानने लिंगं प्रणतंयैस्त्रिविष्टपम् ।
त्रिलोचनस्य नामापियैः श्रुतं शुद्धबुद्धिभिः ॥१५
सप्तजन्मार्जितात्पापात्ते पूता नात्र संशयः ।
पृथिव्यां यानि लिंगानि तेषु दृष्टेषु यत्फलम् ॥१६
तस्यस्त्रिविष्टपेदृष्टे काश्यां मन्येततोधिकम् ।
काश्यां त्रिविष्टपे दृष्टे दृष्टं सर्वं त्रिविष्टपम् ॥१७
क्षणान्निर्धूतपापोसौ न पुनर्गर्भभाग्भवेत् ।
सस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वावभृथवान्स च ॥१८
यो वै पिलपिलातीर्थे स्नात्वोत्तरवहाम्भसि ।
सरित्त्रयं महापुण्यं यत्रसाक्षाद्वसेत्सदा ॥१९
तत्र श्राद्धादिकं कृत्वा गयायां किं करिष्यति ।
स्नात्वा पिलपिलातीर्थे कृत्वा वै पिंडपातनम् ॥२०
दृष्ट्वा त्रिविष्टप लिंगं कोटितीर्थफलं लभेत् ।
यदन्यत्रार्जितं पापं तत्काशीदर्शनात्त्रजेत् ॥२१

आनन्द कानन मे जो लिंग है उसको जिन्होने प्रणाम किया है और त्रिलोचन प्रभु का त्रिविष्टप नाम वाले लिंग को जिन शुद्ध बुद्धि वालो ने सुना है वे अपने किये हुए सप्त जन्मो के पापो से भी पवित्र हो जाया करते हैं—इसमें लेशमात्र भी संशय नही है। इस पृथिवी में जितने भी संस्थापित लिंग हैं उन सबके दर्शन का जो पुण्य फल होता है वही त्रिविष्टप के दर्शन से हो जाया करता है और मैं ऐसा मानता हूँ कि काशी

पुरी में स्थापित विश्वनाथ लिंग के दर्शन से इससे भी अधिक पुण्य फल होता है। काशी में त्रिविष्टप के दर्शन करने पर सभी त्रिविष्टप दर्शन का पुण्य होता है। क्षण भर में ही वह निर्धूत पापों वाला हो जाता है और वह पुनः गर्भ का वास प्राप्त नहीं करता है। उसको ऐसा पुण्य होता है कि मानों उसने सभी तीर्थों में स्नान कर लिया है और सभी मखभूयों वाला हो गया है। जो पुरुष उत्तराभ्यम में अर्थात् उत्तर की ओर बहने वाले जल में पिलापिला तीर्थ में स्नान कर लेता है उसको तीनों सरिताओं के स्नान का फल प्राप्त हो जाया करता है क्योंकि इन तीनों सरिताओं का पुण्य वहाँ पर सदा साक्षात् निवास किया करता है। वहाँ पर श्राद्ध आदि जिसने कर लिया है उसको गया आदि में श्राद्ध करने की कुछ भी आवश्यकता नहीं रहा करती है। क्योंकि गया में इससे अधिक क्या इसके बराबर भी पुण्य नहीं होता है। पिलपिला तीर्थ में स्नान करके वहाँ पिण्ड पातन करे और फिर भगवान त्रिविष्टप लिंग के दर्शन करे तो एक करोड़ तीर्थों का फल प्राप्त होता है। जो कहीं दूसरी जगह पर पापों का अर्जन किया है वह सब काशीपुरी के दर्शन से मिट जाया करते हैं ॥१४-२ ॥

काश्यां तु यत्कृतं पापं तत्पैशाचपदप्रदम् ।
प्रमादात्पातकं कृत्वा शम्भोरानन्दकानने ॥२२
दृष्ट्वा त्रिविष्टपं लिंगं तत्पापमपि ह्रास्यति ।
सर्वस्मिन्नपि भूपृष्ठे श्रेष्ठमानन्दकाननम् ॥२३
तत्राऽपि सर्वतीर्थानि ततोऽप्योङ्कारभूतिका ।
ॐकारादपि सल्लिगान्मोक्षवर्त्म प्रकाशकात् ॥२४
अतिश्रेष्ठतरं लिंगं श्रेयोरूपं त्रिलोचनम् ।
तेजस्विषुयथा भानुर्दृश्येषु च यथा शशी ॥२५
तथा लिंगेषु सर्वेषु परं लिंगं त्रिलोचनम् ।२६
त्रिलोचनावकानां सा पदवी न दवीयसी ।
परं निर्वाणपद्याया महासौख्यैकशेवधेः ॥२७
स कृत्त्रिलोचनार्चातो यच्छ्रेयः समुपार्ज्यते ।
न तदाजन्म सम्पूज्य लिंगान्यन्यानि लभ्यते ॥२८

काशीपुरी में जो भी कुछ पाप किया जाता है वह पैशाच पद का देने वाला होता है। भगवान् शम्भु के इस आनन्द कानन में प्रमाद से पातक करके त्रिविष्टप लिंग के दर्शन करने से उस पाप का क्षय किया करता है। इस समस्त भूमण्डल के पृष्ठ पर यह आनन्द कानन परमातिपरम श्रेष्ठ है। यहाँ पर भी सम्पूर्ण तीर्थ हैं और उनसे भी अधिक ॐकार भूमिका है। इस मोक्ष के मार्ग के प्रकाश करने वाले सल्लिंग ॐकार से भी अतिश्रेष्ठ नरलिंग श्रेयःस्वरूप वाला त्रिलोचन है। जिस तरह से तेजस्वियों में भानु हैं और देखने के योग्यों में चन्द्रमा है उसी तरह से सभी लिंगों में परमाधिक श्रेष्ठ लिंग त्रिलोचन है ॥२२-२६॥ इस त्रिलोचन लिंग के समर्थन करने वालों को यह पदवी कुछ दूर या कम नहीं है जो महा सौख्य की एकमेवाद्वि निर्वाण पद्मा का परम पद होता है। एकबार में ही त्रिलोचन प्रभु की अर्चना से जिस परम श्रेष्ठ श्रेय का समुपार्जन किया जाता है वह आजन्म अन्य लिंगों के पूजन से भी प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥२७-२८॥

काश्यां त्रिलोचनं लिंगं येऽर्चयन्ति महाधियः ।
तेऽर्च्यास्त्रिभुवनोकोभिर्गमप्रीतिमभीप्सुभिः ॥२९
कृत्वाऽपि सर्वसंन्यासं कृत्वा पाशुपतव्रतम् ।
नियमेभ्यः स्खलित्वाऽपि कुतो बिभ्यति मानवाः ॥३०
विद्यमाने महालिंगे महापापौघहारिणि ।
त्रिविष्टपे पुण्यराशौ मोक्षनिक्षेपसद्मनि ॥३१
समभ्यर्च्य महालिंगं सकृदेवत्रिलोचनम् ।
मुच्यते पातकैः सर्वैरपि जन्मशतार्जितैः ॥३२
ब्रह्महापि सुरापो वा स्तेयी वा गुरुतल्पगः ।
तत्संयोग्यपि वा यश्च महापापी प्रकीर्तितः ॥३३
परदाररतश्चापि परद्रोहरतोपि वा ।
परान्नभक्षणोऽपि तथा विश्रम्भघातकः ॥३४
कृतघ्नोऽपि भ्रूणहाऽपि गुप्तलोपतिरेव वा ।
मातापितृगुरुत्यागी वह्निदोऽगरदोऽपि वा ॥३५

जो महान् बुद्धिमान् लोग काशी पुरी में त्रिलोचन लिङ्ग का अर्चन किया करते हैं वे त्रिभुवन मे रहने वाले और मेरी प्रीति के चाहने वाले लोगों के द्वारा पूजन के योग्य हुआ करते हैं ॥२९॥ सबका भली भाँति त्याग करके भी और पाशुपत व्रत को करके भी तथा नियमों से स्खलित होकर भी मानव क्यों डरा करते हैं ? ॥३०॥ महालिङ्ग के विद्यमान होने पर तथा महान् पापो के समूह के हरण करने वाले परम पुण्य के राशि और मोक्ष रूपी निक्षेप का आलय भगवान् त्रिविष्टप के रहते हुए मानवो को कोई भी भय नहीं होना चाहिए। इस महालिंग की भली भाँति अर्चना करने और केवल एक ही वार भगवान् त्रिलोचन का यजन करके सौ जन्मो में अर्जित किये हुए समस्त कलुषों से मनुष्य मुक्त हो जाया करता है। ब्रह्महा ( ब्राह्मण को हत्या करने वाला ) सुरा का पान करने वाला—स्तेयी ( चोरी करने वाला )—गुरु पत्नी के साथ सहवास करने वाला तथा उन सबके साथ एक वर्ष पर्यन्त संयोग एवं सम्पर्क रखने वाला पुरुष भी महापापी कहा जाता है। दूसरे की स्त्री मे रति रखने वाला- दूसरो की हिंसा (शरीर और मनको ठेस या हानि पहु-चाने का ही हिंसा कहा जाता है केवल वध को ही नहीं कहा जाता) मे रति रखने वाला—दूसरों के अपवाद ( बुराई या निन्दा ) करने के स्व-भाव वाला—विश्वास देकर फिर उसका घात करने वाला—कृतघ्न अर्थात् अपने साथ किये हुए उपकार को न मानने वाला—भ्रूण की हत्या करने वाला ( गर्भ में स्थित बच्चे को भ्रूण कहते हैं ) वृषली (वदया या शूद्र जाति की स्त्री ) का पति—माता—पिता और गुरु का त्याग कर देने वाला—अग्नि लगाने वाला और विष देने वाला पुरुष भी घोर पापी होते हैं किन्तु ये भी सब भगवान् त्रिलोचन के लिङ्ग को नमस्कार करके ही पापों से निष्कृति को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥३१-३५॥

गोघ्नः स्त्रीघ्नोऽपि शूद्रघ्नः कन्यादूषयिताऽपि च ।
क्रूरो वा पिशुनो वापि निजधर्मपराङ्मुखः ॥३६
निन्दको नास्तिको वाऽपि कूटसाक्ष्यप्रवादकः ।
अभक्ष्यभक्षको वाऽपि यथाऽरक्षे यविक्रयी ॥३७

इत्यादिपापशोलोऽपि मुक्त्वैकं शिवनिन्दकम् ।
पापान्निष्कृतिमाप्नोति नत्वालिङ्गं त्रिलोचनम् ॥३८
शिवनिन्दारतो मूढः शिवशास्त्रविनिन्दकः ।
तस्य नो निष्कृतिर्दृष्टा क्वापि शास्त्रेऽपि केनचित् ॥३९
आत्मघाती स विज्ञेयः सदा त्रैलोक्यघातकः ।
शिवनिन्दां विधत्ते यः सोऽनाभाष्योऽधमाधमः ॥४०
शिवनिन्दारता ये च शिवभक्तजनेष्वपि ।
ते यान्ति नरके घोरे यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥४१
शैवाः पूज्याः प्रयत्नेन कार्या मोक्षमभीप्सुभिः ।
तेष्वर्चितेऽष्वपि शिवः प्रीतो भवत्यसंशयः ॥४२

गाय के हनन करने वाला—स्त्री का वध करने वाला—शूद्र जाति वाले पुरुष को मारने वाला—किसी कन्या को दूषित कर देने वाला—महान् क्रूर ( निर्दयी )—पिशुन ( पीछे से बुराई या चुगली करने वाला )—अपने धर्म से पराङ्मुख अर्थात् धर्म विरुद्ध आचरण वाला—निन्दा करने वाला—नास्तिक अर्थात् ईश्वरीय सत्ता को न मानने वाला—कूट साक्ष्य अर्थात् झूठी गवाही का प्रवादक ( अनर्गल बोलने वाला—जो भक्षण करने योग्य नही है या शास्त्र और सदाचार जिसके भक्षण करने का निषेध करता है उसको खाने वाला—जो वस्तु विक्री करने के योग्य नही हैं उनको बेचने वाला इत्यादि बहुत से पापों के करने के स्वभाव वाला भी पुरुष इन किये हुए पापों से त्रिलोचन लिङ्ग को नमन करके छुटकारा पा जाया करता है । केवल भगवान् शिव की निन्दा करने वाला पाप मुक्त नही होता है । जो शिव की निन्दा मे रति रखता है ऐसा मूढ और जो शिव के शास्त्र की विशेष निन्दा करने वाला है उसकी तो कही पर भी निष्कृति देखी ही नही गयी है । किसी से भी किसी भी शास्त्र मे शिव निन्दक के पाप से छुटकारा पाना नहीं देखा है । ऐसे पुरुष को तो आत्मा का ही हनन करने वाला और सदा त्रैलोक्य का घातक ही समझना चाहिए जो भगवान् शिवकी निन्दा किया करता है उससे भाषण कभी भी नही करना चाहिए क्योंकि वह तो अधम से भी

महान् अधम होता है। जो मनुष्य भगवान् शिव की निन्दा में रति रखने वाले हैं और शिव के भक्तों की भी निन्दा करते हैं वे महान् घोर नरक में गिरा करते हैं और जब तक चन्द्र-सूर्य स्थित रहते हैं तब तक नारकीय यातनाऐं भोगते हैं। जो मनुष्य मोक्ष की प्राप्ति के इच्छुक हैं उन्हें काशी में शैवों की पूजा प्रयत्न पूर्वक करनी चाहिये। उनके समर्चित होने पर भगवान् शिव परम प्रसन्न हुआ करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३६-४२॥

---

## ५६—व्यासभुजस्तम्भवर्णन

शृणु सूत ! महाबुद्धे ! यथा स्कन्देन भाषितम् ।
भविष्यं मम तस्याग्रे कुम्भयोनेर्महात्मतः ॥१
निशामय महाभाग ! त्वं मैत्रावरुणे ! मुने !।
पाराशर्यो मुनिवरो यथा मोहमुपैष्यति ॥२
व्यस्य वेदान्महाबुद्धिर्नानाशाखाप्रभेदतः ।
अष्टादशपुराणानि सूतादीन्परिपाठ्य च ॥३
श्रुतिस्मृतिपुराणानां रहस्यंयस्स्वचीकरत् ।
महाभारतसञ्ज्ञञ्च सर्वलोकमनोहरम् ॥४
सर्वपापप्रशमनं सर्वशान्तिकरम्परम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण ब्रह्महत्याविनश्यति ॥५
एकदा स मुनिः श्रीमान्पर्यटन्पृथिवीतले ।
सम्प्राप्तो नैमिषारण्यं यत्र सन्ति मुनीश्वराः ॥६
अष्टाशीतिसहस्राणि शौनकाद्यास्तपोधनाः ।
त्रिपुण्ड्रितमहाभालालसद्रुद्राक्षमालिनः ॥७
विभूतिधारणो भक्त्या रुद्रसूक्तजपप्रियान् ।
लिङ्गाराधनसंसक्ताञ्छिवनामकृतादरान् ॥८

महा महिम ऋषि श्रेष्ठ श्री व्यास देवजी ने कहा—हे सूत ! आप तो अत्यन्त अधिक बुद्धि वाले हैं जिस प्रकार से मेरा भविष्य महा मति वाले

कुम्भ योनि से भगवान् स्कन्द ने कहा था उसी को आप अब श्रवण कीजिए। भगवान् स्कन्दजी ने कहा था—हे महाभाग! हे मैत्रा वरुणे! हे मुनिवर! अब पराशर के पुत्र मुनिवर जिस तरह से मोह को प्राप्त होगे उसे सुनिए। अनेक शाखा प्रशाखाओं के भेद से वेदों का विस्तार करके महान् बुद्धि वाले व्यास देव ने सूत आदि शिष्यों को अठारह पुराणों को पढ़ा दिया था। श्रुति-स्मृति और पुराणों का रहस्य जिन्होंने स्पष्ट कर दिया था और महाभारत नामक महान् विशाल ग्रन्थ की रचना की थी जो कि समस्त लोकों में एक परम मनोहर ग्रन्थ है और सभी तरह के पापों का प्रशमन करने वाला सभी तरह की परम शान्ति का करने वाला है जिसके केवल श्रवण करने ही से ब्रह्म हत्या विनष्ट हो जाया करती है। एक समय की बात है कि श्रीमान् वह मुनिवर इस पृथ्वी पर पर्यटन कर रहे थे और घूमते-घामते वे नैमिषारण्य में सम्प्राप्त हो गये थे जहाँ पर कि बहुत-से मुनीश्वर निवास किया करते हैं। जिनका केवल एक तप ही धन है ऐसे अट्ठासी हजार शौनकादि मुनि वहाँ पर रहते थे जो अपने विशाल भाल पर त्रिपुण्ड्र धारण किये हुए थे और उन के कण्ठ में रुद्राक्ष की मालाऐं शोभित थी। वे सभी लोग विभूति धारी थे और भक्ति भाव से रुद्र सूक्त के जाप में प्रेम करते थे। वे सब लिङ्ग की आराधना करने में संलग्न मन वाले थे और सभी भगवान् शिव के नाम में परम समादर करने वाले थे ॥१-८॥

एक एवहि विश्वेशो मुक्तिदो नान्य एव हि।
इति ब्रुवाणान्सततं परिनिश्चित मानसान् ॥९

विलोक्य सन्मुनिर्व्यासस्तान्सर्वान् गिरिशात्मनः।
उत्क्षिप्य तर्जनीमुच्चैः प्रोवाचेदं वचः पुनः ॥१०

परिनिमथ्य वाग्जालं सुनिश्चित्यासकृद्बहु।
इदमेकं परिज्ञातं सेव्यः सर्वेश्वरो हरिः ॥११

वेदे रामायणे चैव पुराणेषु च भारते।
आदिमध्यावसानेषु हरिरेकोऽत्र नापरः ॥१२

सत्यं सत्यं पुनः सत्यं त्रिसत्यं न मृषा पुनः ।
न वेदादपरं शास्त्रं न देवोऽच्युततः परः ।।१३
लक्ष्मीश. सर्वदोनान्यो लक्ष्मीशोऽप्यपवर्गदः ।
एकएवहिलक्ष्मीशस्ततोध्येयोनचापरः ।।१४

उन सबको ऐसी परम दृढ धारणा थी कि एक ही भगवान् विश्वेश मुक्ति देने वाले हैं और दूसरा कोई भी देव ऐसा नही है । वे सभी यही निरन्तर बोला करते थे और उनके मन मे इसका ठीक निश्चय होगया था । भगवान् व्यास देव ने गिरीश के स्वरूप मे स्थित उन सबको देखकर अपनी तर्जनी को ऊंचा उठाकर यह वचन बोले—१९-१०। सम्पूर्ण वाग्जाल का अच्छी तरह से मन्थन करके अनेक बार बहुत कुछ भली भाँति निश्चय करके मैंने यही एक बात को समझ लिया है कि एक सर्वेश्वर श्री हरि का ही सेवन करना चाहिए। वेदों मे—रामायण मे—पुराणों मे और भारत मे आदि—मध्य और अवसान मे एक श्रीहरि ही हैं दूसरा कोई भी अन्य नही है । यह सत्य पुन: सत्य है और तीसरी बार भी सत्य है । इसमे तनिक भी मिथ्या नही है । वेदो से परे कोई भी शास्त्र नहीं है और भगवान् अच्युत से बडा अन्य कोई देव नही है । भगवान् लक्ष्मी के स्वामी सभी कुछ प्रदान करने वाले हैं अन्य कोई नही है । लक्ष्मीश भगवान् अपर्ग के भी प्रदाता हैं । अतएव केवल एक लक्ष्मीश प्रभु का सदा ध्यान करना चाहिए दूसरे किसी भी देवता का नहीं ।।११-१४।।

भुक्तेर्मुक्ते रिहाप्यत्रनान्योदाताजनार्दनात् ।
तस्माच्चतुर्भुजेनित्य सेवनाया सुखेप्सुभिः ।।१५
विहाय केशवादन्य ये सेवन्तेऽल्पमेधस. ।
संसारचक्रे गहने ते विशन्ति पुनः पुन. ।।१६
एक एवहि सर्वेशो हृषीकेशः परात्परः ।
स सेवमान. सतत सेव्यस्त्रि जगतां भवेत् ।।१७
एको धर्मप्रदो विष्णुस्त्वेको बह्वर्थदोहरिः ।
एक. कामप्रदश्चक्रीत्वेको मोक्षप्रदोऽच्युतः ।।१८

शार्ङ्गिणं ये परित्यज्य देवमन्यमुपासते ।
ते सद्भिश्च बहिष्कार्या वेदहीना यथा द्विजाः ॥१६
श्रुत्वेति वाक्यं व्यासस्य नैमिषारण्यवासिनः।
प्रवेपमानहृदयाः परिप्रोचुरिदं वचः ॥२०

भगवान् जनार्दन से अतिरिक्त अन्य कोई भी देव इस लोक में भुक्ति और मुक्ति दोनों का प्रदान करने वाला नहीं है। इसी लिये 'मुख' की इच्छा रखने वाले पुरुषों के द्वारा चतुर्भुज भगवान् की नित्य सेवा करनी चाहिए। जो अल्प बुद्धि वाले लोग भगवान् केशव को छोड़ कर अन्य देव का सेवन किया करते हैं वे इस गहन संसार चक्र में पुनः पुनः प्रवेश किया करते हैं। सर्वेश हृषीकेश एक ही पर से भी पर देव हैं। निरन्तर उनका सेवन करते हुए पुरुष तीनों जगतों का सेव्य हो जाया करता है। भगवान् विष्णु एक ही धर्म के प्रदान करने वाले हैं और यह हरि एक ही बहुत से अर्थों के दाता हैं। भगवान् चक्र धारी प्रभु कामनाओं के दाता हैं और अच्युत प्रभु एक ही मोक्ष के प्रदान करने वाले हैं। जो शार्ङ्ग धनुष के धारण करने वाले प्रभु को छोड़कर अन्य देव की उपासना किया करते हैं उनका सत्पुरुषों के द्वारा बहिष्कार कर देना चाहिए जिस तरह वेदों से हीन द्विजों का बहिष्कार किया जाता है। नैमिषारण्य के निवासी मुनि ने श्रीव्यास देव के इस वाक्य का श्रवण करके वे सब प्रकम्पित हृदय वाले हो गये थे और उन्होंने यह वचन कहा था ॥१५-२०॥

पाराशर्यमुने ! मान्यस्त्वमस्माकं महामते !।
यतो वेदास्त्वया व्यस्ताः पुराणान्यपि वेत्सि यत् ॥२१
यतश्च कर्ता त्वमसि महतो भारतस्य वै ।
धर्मार्थकाममोक्षाणां विनिश्चयकृतोध्रुवम् ॥२२
तत्त्वज्ञःकोपरस्त्वत्तः सत्यवती सुत ।
भवतायत्प्रतिज्ञातं निश्चित्योत्क्षिप्य तर्जनीम् ॥२३
अस्मिन्माणवकास्तत्र परिश्रद्दधते नहि ।
प्रतिज्ञातस्यवचसस्तवश्रद्धाभवेत्तदा ॥२४

यदाऽऽनन्दवने शम्भोः प्रतिज्ञानासि वै वचः ॥२५
गच्छ वाराणसी व्यास ! यत्र विश्वेश्वरः स्वयम् ।
न तत्र युगधर्मोऽस्ति न च लग्ना वसुन्धरा ॥२६
इति श्रुत्वा मुनिर्व्यासः किञ्चित्कुपितवद्‌धृदि ।
जगाम तूर्णं सह हितः स्वशिष्यैरयुतोन्मितै ॥२७

ऋषियो ने कहा—हे पाराशर्य मुनिवर ! आप तो महती मति वाले हैं और हम सबके परम मान्य हैं क्यों कि आपने वेदों का विस्तार किया था और आप सभी पुराणों को भी जानते हैं। आप महा भारत जैसे महा विशाल ग्रन्थ की रचना करने वाले भी हैं। आपने तो धर्म–अर्थ–काम और मोक्ष का विशेष निश्चय भी अवश्य ही कर लिया है। हे सत्यवती के पुत्र ! दूसरा कौन है जो आप से भी अधिक तत्वों का ज्ञाता हो। आपने जो अपनी तर्जनी अंगुलि ऊँचा उठाकर और पूर्ण निश्चय करके प्रतिज्ञा करके कहा है इसमें जो माणवक ( बालक ) हैं वे अच्छी तरह से श्रद्धा नहीं करते हैं। आपके इस प्रतिज्ञा किये हुए वचन की श्रद्धा तो तभी हो सकती है जब कि भगवान् शम्भु के वचन की आनन्द वन में प्रतिज्ञा को आप जान लेवें। हे श्री व्यास देवजी ! आप स्वयं वाराणसी पुरी में गमन कीजिए जहाँ पर भगवान् विश्वेश्वर स्वयं विराजमान रहा करते हैं। वहाँ पर उस विश्वनाथ भगवान् की पुरी की ऐसी अद्‌भुत महिमा है कि वहाँ पर युग के धर्म का भी कोई प्रभाव नहीं है और न वहाँ पर वसुन्धरा ही लग्न है। यह श्रवण करके महामुनि व्यास कुछ अपने हृदय में कुपित से हुए थे और बहुत ही शीघ्र अपने दशों सहस्र शिष्यों के सहित वहाँ पर गये थे ॥२१-२७॥

प्राप्य वाराणसी व्यासः स्नात्वा पञ्चनदेहृदे ।
श्रीमन्माधवमभ्यर्च्य ययौ पादोदकं ततः ॥२८
यत्र स्नानादिकं कृत्वा दृष्ट्वा चैवादि केशवम् ।
पञ्चरात्रं ततः कृत्वा वैष्णवैरभिनन्दितः ॥२९
अग्रतः पृष्ठतः शङ्खैर्वाद्यमानैः प्रमोदितः ।
जयविष्णो हृषीकेश गोविन्दमधुसूदन ! ॥३०

अच्युतानन्तवैकुण्ठमाधवोपेन्द्र ! केशव ॥
त्रिविक्रम गदापाणे शार्ङ्गपाणे जनार्दन ॥३१
श्रीवत्सवक्षः श्रीकान्त पीताम्बरमुरान्तक ।
कंटभारेर्वलिध्वंसिन्कंसारेकेशिसूदन ॥३२
नारायणाऽसुररिपो कृष्ण शौरे ! चतुर्भुज ॥
देवकीहृदयानन्द ! यशोदानन्दवर्धन ॥३३
पुण्डरीकाक्ष ! दैत्यारे दामोदरबलप्रिय ।
बलारातिस्तुत हरे ! वासुदेव ! वसुप्रद !॥३४
विष्वक्चमूस्ताक्ष्यरथवनमालिन्नरोत्तम ।
अधोक्षज क्षमाधार पद्मनाभजलेशय ॥३५

मुनिवर व्यास देवजी ने वाराणसी पुरी मे पहुच कर वहाँ पर पञ्च नद ह्रद मे स्नान किया था और श्रीमान् माधव देव का अभ्यर्चन करके फिर वे पादोदक पर चले गये थे। जहाँ पर स्नान आदि सब करके आदि केशव भगवान् का दर्शन किया था। वहाँ पर पाँच रात्रि तक निवास किया था जिसको वहाँ पर स्थित वैष्णवों ने बहुत ही अभिनन्दित किया था। वहाँ पर आगे और पीछे सभी ओर वाद्यमान ( बजाये गये ) वाद्यों की ध्वनि के साथ श्रीव्यास देव अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होने भगवान् के अनेक शुभ नामों का समुच्चारण किया था—यथा—हे विष्णो ! आपकी जय हो, हे हृषीकेश—हे गोविन्द ! हे मधुसूदन ! हे अच्युत ! अनन्त ! वैकुण्ठ ! माधव, उपेन्द्र, हे केशव ! त्रिविक्रम ! गदा हाथ मे धारण करने वाले ! हे शार्ङ्गपाणे ! जनार्दन, श्री वत्सवक्ष, श्रीकान्त, पीताम्बर, मुर असुर का अन्त करने वाले ! हे कैटभारे ! बलि विध्वंसिन् ! कंसारे ! हे केशी दैत्य के वध करने वाले ! नारायण, असुरों के रिपु—हे श्रीकृष्ण शौरे, चतुर्भुज, हे देवकी देवी के हृदय का आनन्द प्रदान करने वाले यशोदा माता के आनन्द को बढ़ाने वाले ! हे पुण्डरीक के समान नेत्रों वाले ! हे दैत्यो के अरि—दामोदर—बलप्रिय—बलारातिस्तुत—हे हरे वासुदेव, हे वसुप्रद ! विष्वक्चमू—ताक्ष्यरथ—वनमालिन्—हे नरों मे

सर्वोत्तम ! हे अधोक्षज ! हे क्षमाधार-पद्मनाभ-जल में शयन करने वाले ! ॥२८-३५॥

नृसिंह यज्ञवाराह! गोपगोपालवल्लभ !।
गोपीपते गुणातीत गरुडध्वज गोत्रभृत् ॥३६
जय चाणूरमथन! जयत्रलोक्यरक्षण !।
जयानाद्य जयानन्द जयनीलोत्पलद्युते ॥३७
कौस्तुभोद्भूपितोरस्कपूतनाधातुशोषण ।
रक्ष रक्षजगद्रक्षामणे!नरकहारक ॥३८।
सहस्रशीर्षपुरुप पुरुहूतसुखप्रद ।
यद्भूतं यच्च भाव्यं वैतत्रैक.पुरुषोभवान् ॥३९
इत्यादिनाममालाभि.संस्तुवन्वनमालिनम् ।
स्वच्छन्दलीलयागायन्नृत्यंश्चपरयामुदा ॥४०
व्यासो विश्वेशभवनं समायात. सहृष्टवत् ।
ज्ञानवापीपुरोभागे महाभागवतैः सह ॥४१
विराजमानमत्कण्ठस्तुलसीवरदामभिः ।
स्वयं तालधरो जात स्वय जात.सुनर्तक ॥४२

हे नृसिंह ! हे यज्ञ वाराह ! हे गोपो और गोपालों के परम प्रिय ! गोपीपते ! हे गुणों से अतीत, गरुडध्वज गोत्रभृत्—हे चाणूर के मन्थन करने वाले ! आपका जय होवे । हे इस सम्पूर्ण त्रिलोकी की रक्षा करने वाले ! आपका जय हो । हे अनाद्य, हे आनन्द ! हे नील कमल के समान द्युति वाले ! आपका सदा जय हो । हे कौस्तुभ मणि से विभूपित वक्षःस्थल वाले ! हे पूतना की धातुओ के शोषण करने वाले ! हे रक्षा मणे ! इस समस्त जगत् की रक्षा कीजिए, इस का परित्राण करिये । आप तो नरकों के हारक हैं । आप ऐसे महा पुरुष हैं जो सहस्र शीर्षों वाले हैं । हे इन्द्र को सुख प्रदान करने वाले ! जो भी हो चुका है और जो कुछ भी होने वाला है वहाँ सभी स्थितियों मे आप एक ही पुरुष हैं । इत्यादि अनेक प्रभु के शुभ नामो की मालाओ के द्वारा वनमाली प्रभु

का संस्तवन करते हुए—स्वच्छन्द लीला से गान करते हुए और परमानन्द पूर्वक नृत्य करते हुए श्री व्यास देवजी परम हर्षित होते हुए भगवान् विश्वनाथ के भवन में समायात हो गये थे। वहाँ पर ज्ञानवापी के आगे के भाग में महा भागवतों के साथ व्यास देवजी विराजमान हो गये थे। तुलसी की सुन्दर मालाओं से जिनका सुन्दर कण्ठ शोभित था। वे स्वयं वहाँ पर भी तालधर होकर स्वयं ही भगवान् विष्णु की भक्ति के भावावेश में मग्न होकर नृत्य करने वाले हो गये थे ॥३६-४२॥

वेणुवादनतत्त्वज्ञः स्वयं श्रुतिधरोऽभवत् ।
नृत्यंपरिसमाप्येत्थं व्यासःसत्यवतीसुतः ॥४३
पुनरुर्ध्वंभुजंकृत्वा दक्षिणंशिष्यमध्यगः ।
पुनः पपाठ तानेवश्लोकान्गायन्निवोच्चकैः ॥४४
परिनिर्मथ्य वाग्जालं सुनिश्चित्याऽसकृद्बहु ।
इदमेकंपरिज्ञातं सेव्यः सर्वेश्वरो हरिः ॥४५
इत्यादिऽश्लोकसङ्घातं स्वप्रतिज्ञाप्रबोधकम् ।
यावत्पठति स व्यासः सव्यमुत्क्षिप्य वै भुजम् ॥४६
तस्तम्भ तावत्तद्बाहुं शशलादिः स्वलीलया ।
वाक् स्तम्भश्चाऽपि यस्यासीन्मुनेर्व्यासस्य सन्मुने ॥४७
यतोगुप्तं समागम्यविष्णुर्व्यासमभाषत ।
अपराद्धं महच्चाऽत्रभवता व्यासनिश्चितम् ॥४८
तवैतदपराधेन भीतिर्मेऽपि महत्तरा ।
एक एव हि विश्वेशो द्वितीयो नास्ति कश्चन ॥४९

श्री व्यास देव वेणु वादन के तत्वों के परम ज्ञाता थे, वे स्वयं ही श्रुतिधर हो गये थे। इस प्रकार से सत्यवती के पुत्र व्यास देव ने अपने भगवत्प्रेममय नृत्य को समाप्त करके फिर अपने शिष्यों के मध्य में स्थित होकर अपनी दाहिनी भुजा को ऊपर उठाकर उन्होंने फिर भी बहुत ही ऊँचे स्वर से गायन करते हुए उन्हीं श्लोकों को पढ़ा था कि मैंने समग्र वाग्जाल का मथन करके और बहुत ही अनेक बार अच्छी तरह से निश्चय करके यही एक सार की बात का ज्ञान प्राप्त किया है कि सर्वेश्वर श्रीहरि

का ही सेवन करना चाहिए। इत्यादि अनेक श्लोकों के समुदाय को जो कि अपनी प्रतिज्ञा का प्रबोधक थे ज्यों ही श्री व्यास देव अपनी दाहिनी भुजा को ऊपर उठाकर पढ रहे थे वैसे ही उनकी उस भुजा को अपनी ही लीला से सर्वेशादि ने स्तम्भित कर दिया था। उनकी महामुनि व्यास देव की वाणी का भी हे मुने! उसी समय मे स्तम्भन होगया था। उसी समय मे वहाँ पर भगवान् विष्णु गुप्त रूप से समागत हो गये थे और वे व्यास देवजी से बोले थे कि हे व्यास! आपने निश्चित रूप से यहाँ पर यह एक अत्यन्त महान् अपराध किया है। आपके इस अपराध से मुझे भी बहुत बडा भय समुत्पन्न हो गया है। हे व्यास! विश्वेश ही एक सर्वोपरि विराजमान देव हैं। अन्य इनसे ऊपर दूसरा कोई भी नहीं है ॥४१-४६॥

तत्प्रसादादहञ्चक्री लक्ष्मीशस्तत्प्रभावतः।
त्रैलोक्यरक्षासामर्थ्यं दत्तनैव शम्भुना ॥५०
तद्भक्त्यापरमैश्वर्यं मया लब्धं वरात्ततः।
इदानीस्तुहि तं शम्भुं यदिमेशुभमिच्छसि ॥५१
अन्यदापि नवै कार्याभवताशेमुषीदृशी।
पाराशर्य इति श्रुत्वा सञ्ज्ञयाव्याजहारह ॥५२
भुजस्तम्भः कृतस्तेन नन्दिना दृष्टिमात्रतः।
वाक्स्तम्भस्तद्भयाज्जातः स्पृश मे कण्ठकन्दलीम् ॥५३
यथास्तोतुम्भवानीश प्रभवामिभवान्तकम्।
सस्पृश्यविष्णुस्तत्कण्ठगुप्तमेवजगामह ॥५४
तत सत्यवतीसूनुस्तथा स्तम्भितदोर्लतः।
प्रारब्धवान्महेशान परिष्टोतु मुदारधी ॥५५

मैं भी उन्ही विश्वेश की महिमा के प्रभाव से चक्रधारी बना हुआ हूँ तथा लक्ष्मीश का पद प्राप्त करने वाला हो गया हूँ। उन्ही भगवान् शम्भु ने मुझे यह त्रैलोक्य की रक्षा एव परिपालन की शक्ति प्रदान की है। उनकी भक्ति से ही मैंने वरदान के द्वारा यह परम ऐश्वर्य प्राप्त किया है। जो कुछ किया सो किया अब आप उन्ही शम्भु भगवान् का सस्तवन करो यदि मेरा शुभ चाहते हो। मैं यह भी बतलाये देता हूँ कि फिर भी कभी

अन्य समय तथा स्थान मे आपको ऐसी अपनी बुद्धि नही करनी चाहिए। पराशर के पुत्र व्यास देव ने होश मे आकर यह श्रवण करके कहा—उन नन्दी ने अपनी दृष्टि मात्र से ही मेरी इस भुजा का स्तम्भन कर दिया है और मेरी वाणी का स्तम्भन उस भय से ही हो गया है। अत एव हे प्रभो! आप मेरे कण्ठ की कन्दली का स्पर्श करिए ॥५०-५३॥ जभी मैं भवानी के पति का संस्तवन करने के लिये समर्थ हो सकता हूँ जो कि इस समस्त संसार के अन्त करने वाले हैं। भगवान् विष्णु ने व्यास देव के कण्ठ का संस्पर्श किया था और गुप्त रूप से ही ऐसा करके वे चले गये थे। इस के अनन्तर सत्यवती के पुत्र श्रीव्यास देव ने स्तम्भित भुजा वाला ही रहते हुए आप की उदार बुद्धि से महेशान प्रभु का संस्तवन करने का आरम्भ कर दिया था ॥५४-५५॥

एको रुद्रो न द्वितीयो यतस्तद्
ब्रह्मैवैक नेह नानास्ति किंचित्।
यद्यप्यन्यः कोऽपि वा कुत्रचिद्वा
व्याचष्टान्तद्यस्य शक्तिर्नदग्र ॥५६

यः क्षीराब्धेर्मन्दराघातजातो
ज्वालामाला कालकूटोऽतिभीम।
त सोढुं या कोऽपरोऽभून्महेशा
द्यत्कीलाभिःकृष्णतामापविष्णु ॥५७

यद्बाणोऽभूच्छ्रीपतिर्यस्य यन्ता
लोकेशो यत्स्यन्दनम्भूः समस्ता।
वाहा वेदा यस्य येनेपुपात
दग्धा ग्रामास्त्रं पुरास्तत्समः कः ॥५८

यं कन्दर्पो वीक्षमाणः समानं
देवैरन्यैर्भस्मजातः स्वय हि।
पौष्पैर्बाणैः सर्वविद्वैकजेता
को वा स्तुत्यः कामजेतुस्ततोऽन्यः ॥५९

यं वै वेदो वेद नो नैव विष्णु
र्नोवा वेधा नो मनो नैव वाणी ।
तं देवेशं मादृशः कोऽल्पमेधा
याथात्म्याद्वै वेत्त्यहो विश्वनाथम् ।।६०

श्रीव्यास देव ने कहा—इस विशाल विश्व ब्रह्माण्ड मे एक ही रुद्र देव सब के समुच्च देव हैं क्यो कि ब्रह्म एक ही है और वह अनेक न हो कर ही एक विभिन्न रूपो मे रहता है । यद्यपि वही पर भी अन्य कोई बतलाया भी गया है और जिसको क्षपित मेरे आगे हैं वह यही महेश हैं ।।५६।। जो मन्दराचल के घाघात से क्षीर सागर मे ज्वालाओ की माला वाला—अत्यन्त भयानक काल कूट उत्पन्न हुआ था उस को सहन करने के लिये अन्य कौन समर्थ हुआ था । यो महेश ही वैसी सामर्थ्य वाले थे जिन्होने उसे कण्ठ मे धारण कर लिया था जिसकी लीलाओ से भगवान् विष्णु भी कृष्णता को प्राप्त हो गये थे ।।५७। श्रीमति जिसका बाण हुआ था—जिसका यन्ता लोकेश थे—जिसका स्यन्दन अर्थात् रथ यह सम्पूर्ण भूमि थी—जिस के वहन करने वाले वेद थे ऐसे जिन भगवान् महेश्वर ने त्रैपुर ग्रामों को त्राणो के पात्र से दग्ध कर दिया था उन देवेश्वर के समान अन्य कौन देव हो सकता है ।।५८।। जिस देवेश्वर को यह कन्दर्प ( कामदेव ) अन्य देवो के ही समान देखता हुआ स्वयं ही भस्म हो गया था । यह कामदेव अपने पुष्पो क ही बाणो के द्वारा समस्त विश्व पर विजय प्राप्त करने वाला था उस कामदेव को जीत लेने वाले से अन्य कौन देव स्तुति करने के योग्य हो सकता है अर्थात् उनसे अन्य ऐसा कोई भी देव है ही नही । जिन महेश्वर देव को वेद भी नही जान पाये हैं—न विष्णु भगवान् ने उनको समझ पाया है—ब्रह्मा भी उनके स्वरूप को नही पहिचान सके हैं तथा मन और वाणी उनको नही जान सकी हैं उन देवेश्वर विश्वनाथ को मुझ जैसा अल्प बुद्धि वाला कैसे जान सकता है उनकी यथात्मता मेरी बुद्धि के बाहिर की वस्तु है ।।५६-६०।।

यस्मिन्सर्वं यस्तु सर्वत्र सर्वो
यो वै कर्ता योऽविता योऽपहर्ता ।

नो यस्यादिर्यः समस्तादिरेको
नोयस्यान्तो योऽन्तकृत्त नतोऽस्मि ॥६१
यस्यैकाख्या वाजिमेधेन तुल्या
यस्या नत्या चैकयाल्पेन्द्रलक्ष्मीः ।
यस्य स्तुत्या लभ्यते सत्यलोक
यस्यार्चातो मोक्षलक्ष्मीरदूरा ॥६२
नान्यं देवं वेद्म्यहं श्रीमहेशा
न्नान्यं देवं स्तौमि शम्भोर्ऋते ऽहम् ।
नान्यं देवं वा नमामि त्रिनेत्रा
त्सत्यं सत्यं सत्यमेतन्मृषा न ॥६३
इत्थं यावत्स्तौति शम्भुं महर्षि
स्तावन्नन्दी शाम्भवाद्दृक्प्रसादात् ।
तद्दोःस्तम्भं त्यक्तवांश्चाऽऽबभाषे
त्मार्यं स्मार्यंब्राह्मणेभ्यो नमो वः ॥६४
इदं स्तवम्महापुण्यंव्यासतेपरिकीर्तितम् ।
यःपठिष्यतिमेधावी तस्यतुष्यतिशङ्करः ॥६५
व्यासाष्टकमिदम्प्रातः पठितव्यंप्रयत्नतः ।
दुःस्वप्नपापशमनं शिवसान्निध्यकारकम् ॥६६

जिसमे यह समस्त चराचर विश्व ब्रह्माण्ड रहता है जो सर्वत्र विराजमान है—जो इसके सृजन का करने वाला है—जो इस जड–जङ्गम जगत् का परिपालन सरक्षण करने वाला है तथा अन्त मे जो स्वयं ही इसका संहार करता है । जिसका कोई आदि नही है, जो समस्त का एक ही स्वयं आदि है, जिसका अन्त भी नही है और जो इस जगत् का अन्त करने वाला है उन्ही प्रभु विश्वेश्वर को मैं नमन करता हूँ ॥६१॥ जिसके एक ही शुभ एवं पावन नाम के उच्चारण का पुण्य—फल एक वाजिमेध यज्ञ के तुल्य होता है, जिसके लिये एक ही वार प्रणाम करने के पुण्य फल के आगे इन्द्र की ऐश्वर्य लक्ष्मी भी अत्यन्त स्वल्प होती है, जिसकी स्तुति करने का पुण्य फल ऐसा होता है कि सत्य लोक की प्राप्ति

को जाया करती है और जिस विश्वनाथ भगवान् की समर्चना से मोक्ष लक्ष्मी भी समीप में रहा करती है ॥६२॥ मैं तो श्री महेश देव से अन्य किसी भी देव को नहीं जानता हूँ। मैं भगवान् शम्भु के बिना अन्य किसी भी देव का स्तवन नही करता हूँ। मैं त्रिनयन को छोड़कर अन्य देव को नमन भी नही करता हूँ—यह मेरा कथन सर्वथा सत्य है—शत प्रतिशत सत्य है और पूर्णतया सत्य है—इसमें लेश मात्र भी मिथ्या नही है ॥६३॥ इस प्रकार से जब तक व्यास देव शम्भु की स्तुति कर रहे थे तब तक शम्भु की दृष्टि के प्रसाद से नन्दी ने उन महर्षि की बाहु के स्तम्भन का त्याग कर दिया था और वारम्बार मुस्कराहट करते हुए कहा था आप ब्राह्मणों के लिये नमस्कार है ॥६४॥ नन्दिकेश्वर ने कहा—हे व्यास! यह स्तव महान् पुण्यमय है जो आपने अभी किया है। जो भी कोई मेधावी इस स्तोत्र को पढेगा उससे भगवान् शङ्कर बहुत प्रसन्न होंगे। यह व्यास के द्वारा रचित अष्टक है। इसको प्रयत्न पूर्वक अवश्य पढ़ना चाहिए। यह दुःस्वप्नों और पापों के प्रशमन का करने वाला तथा भगवान् शिव की सन्निधि में पहुँचा देने वाला है ॥६५-६६॥

---

काशीखण्ड समाप्त

# स्कन्द पुराण

## अवन्ती खण्ड

---

### ५७—महाकालवन प्रशसा वर्णन

स्रष्टारोपि प्रजाना प्रबलभवभयाद्य नमस्यन्ति देवा-
यश्चित्ते सम्प्रविष्टोऽप्यवहितमनसा ध्यानयुक्तात्मना च ।
लोक नामादिदेव स जयतु भगवाञ्छ्रीमहाकालनामा,
बिभ्राण सोमलेखामहिवलययुत व्यक्तलिंग कपालम् ।।१
पृथिव्या यानि तीर्थानि पुण्याश्च सरितस्तथा ।
कथ्यता तानि यत्नेन श्राद्ध येषु प्रदीयते ।।२
त्त्रिलोकेषु विख्याता ग गास्त्रिपथगानदी ।
सेवितादेवगन्धर्वैमु निभिश्चनिषेविता ।।३
तपनस्यसुतादेवी यमुनालोकपावनी ।
पितृणावल्लभादेवि ! महापातकनाशिनी ।।४
चन्द्रभागावितस्ताच नर्म्मदाऽमरकण्टकम् ।
कुरुक्षेत्र गया देवि ! प्रभास नैमिषन्तथा ।।५
केदार पुष्पकरञ्चैव तथा कायावरोहणम् ।
तथा पुण्यतमन्देवि महाकालवन शुभम् ।।६
यत्रास्ते श्रीमहाकाल पापेन्धन हुताशन ।
क्षेत्र योजनपर्य त ब्रह्महत्यादिनाशनम् ।।७
भुक्तिद मुक्तिद क्षेत्र कलिकल्मषनाशनम् ।
प्रलयेऽप्यक्षय देवि दुष्प्राप त्रिदशैरपि ।।८

आरम्भिक मंगलाचरण का श्लोक है—प्रजाओं के सृजन करने वाले भी देव जिनको महान प्रवरा भय से नमस्कार किया करते हैं जो परम प्रवहित मन वाले और ध्यान मे युक्त आत्माओं वाले लोगो के चित्त में भली भाँति प्रविष्ट हुआ रहा करता है। समस्त लोको का आदि देव चन्द्रमा के लेख और व्यक्त लिंग वाले कपाल को तथा सर्पों के वलय को धारण करने वाले भगवान् श्री महाकाल नाम वाले वह प्रभु हैं उनकी सदा जय होवे। जगज्जननी श्री उमादेवी ने कहा—हे देवेश्वर। इस भू मण्डल मे जो भी तीर्थ रूप हैं तथा परम पुण्यमयी सरितायें हैं उनको प्राय प्रयत्नपूर्वक कहिए जिनमें श्राद्धों का प्रदान किया जाया करता है। श्री ईश्वर ने कहा—समस्त लोको में परम विख्यात त्रिपथगा गङ्गा नदी है जो देवो-गन्धर्वों और मुनियो के द्वारा सेवित और उपासित होती है। हे देवि। सविता देव की पुत्री लोको को पावन करने वाली यमुना हैं जो पितृगणों की बहुत ही अधिक प्यारी है और बड़े से बड़े पातकों के विनाश कर देने वाली है ।।१-४।। हे देवि ! चन्द्रभागा, वितस्ता और नर्मदा सरिताएं भी हैं तथा अमरकण्टक—कुरुक्षेत्र—गया—प्रभास क्षेत्र—नैमिषारण्य—केदार—पुष्कर—कायावरोहण—महान् पुण्यतम एवं शुभ महाकाल वन है जहाँ पर पापो के ईंधन के लिए भस्म करने वाले अग्नि के तुल्य श्री महाकाल विराजमान रहते हैं। यह एक योजन पर्यन्त क्षेत्र है जो ब्रह्म हत्या आदि महान् पातकों का भी विनाश कर देने वाला है। यह सम्पूर्ण सुखो के उपभोगो के प्रदान करने वाला तथा संसार के जन्म मरण के आवागमन से छुटकारा देने वाला क्षेत्र है और सभी कलियुग के कल्मषों का विनाशक है। हे देवि। यह प्रलय काल मे भी जबकि सभी का विनाश हो जाया करता है अक्षय ही रहा करता है और देवों के द्वारा भी दुष्प्राप होता है ।।५-८।।

प्रभावः कथ्यतां देव ! क्षेत्रस्यास्य महेश्वर !।
यानि तीर्थानि विद्यन्ते यानि लिंगानि सन्ति वै ।।९
तान्यहं श्रोतुमिच्छामि परं कौतूहलं हि मे ।।१०

शृणु देवि प्रयत्नेन प्रभावं पापनाशनम् ।
क्षेत्रमाद्यं महादेवि ! सर्वपापप्रणाशनम् ॥११
श्रीमेरोस्सन्निधाने यच्छिखरं रत्नचित्रितम् ।
वैराजभवन नाम ब्रह्मणः परमात्मनः ॥१२
तत्र दिव्यागनागीतमधुरस्वरनादिता ।
पारिजाततरुच्छन्नमञ्जरीदामशोभिता ॥१३
बहुवाद्यसमुत्पन्नसुमहास्वरनादिता ।
लयतानयुतानेक गीतवादित्रनादिता ।
विन्यस्ता कोटिभिः स्तम्भैर्निर्मलःदर्शशोभिता ॥१४
अप्सरोनृत्यविन्यास विलासोल्लासशोभिता ।
सभाकान्तिमतीनाम्नी देवानां हर्षदायिका ॥१५

जगदम्बा उमा देवी ने कहा—हे देव ! आप तो परम महान् ईश्वर हैं। कृपया इस क्षेत्र का प्रभाव मुझे श्रवण कराइये। जो भी तीर्थ विद्यमान रहते हैं और जो भी लिंग हैं उन सभी को मैं सुनना चाहती हूँ। मेरे चित्त मे इनके श्रवण करने का बड़ा भारी कौतूहल हो रहा है ॥९-१०॥ श्री महादेवजी ने कहा—हे देवि ! यदि तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है तो पापो के नाश करने वाले प्रभाव को सुनिए। हे महादेवि ! यह सबसे आदि मे होने वाला क्षेत्र है और सभी प्रकार के पापो का नाश कर देने वाला है ॥११॥ श्री मेरु पर्वत के सन्निधान मे जो रत्नो से चित्रित शिखर है वह परमात्मा ब्रह्मा का वैराज भवन नाम वाला है। वहाँ पर एक कान्ति से सुसम्पन्न और कान्तिमती ही नाम वाली सभा है जो दिव्याङ्गनाओ के गीतो के परम मधुर स्वर से शब्दायमान रहा करती है। जो पारिजात वृक्ष की छन्न मञ्जरियो के मालाओं से शोभा वाली है। जहाँ पर बहुत प्रकार के उत्तमोत्तम वाद्यो के उत्पन्न सुन्दर समुत्पन्न ध्वनियो से निनादित रहा करती है। जो लय और तालो से युक्त बहुत से प्रकार के गीत और वादित्रो की ध्वनियो वाली है। जिसमे परम स्वच्छ आदर्शों (दर्पणो) से शोभित करोडो ही स्तम्भ बने हुए हैं और जो अप्सराओ के नृत्यो से एवं विन्यासो के उल्लासो एव विलासो से

शोभा वाली है। यह देवो को बहुत ही हर्ष के प्रदान करने वाली है ॥१२-१५॥

तस्यां निविष्टं वागीशं शङ्कराराधने रतम् ।
सनत्कुमारं ब्रह्मर्षिं ब्रह्मणो मानसं सुतम् ॥१६
मुनिमध्यात्समुत्थाय कृष्णद्वैपायनो मुनिः ।
पराशरसुतो व्यासः प्रणिपत्य यथाविधि ॥१७
कृताञ्जलिपुटोभूत्वा भवभक्त्यानुभावितः ।
पप्रच्छपरयातुष्ट्या हृषिता गरुडाननः ॥१८
महाकालस्य माहात्म्यं प्राणिनां मोहनाशनम् ।
भगवन् ! क्षेत्रमाहात्म्यं महाकालस्य कथ्यताम् ॥१९
महाकालवनंकस्मात् प्रोच्यते सर्वतोवरम् ।
कथं गुह्यवनं प्रोक्तं पीठं सऊपरस्तथा ॥२०
फलं यथास्यक्षेत्रस्य मृतानाञ्च गतिर्यथा ।
स्नानेन यद्भवेत्पुण्यं दानेनापि च यत्फलम् ॥२१
कथमेतच्छ्मशानञ्च क्षेत्रं प्रोक्तं यथातथा ।
पृष्टोमेशङ्करेभक्ति ब्रूहि त्वं शास्त्रकोविद ॥२२

उस सभा मे निविष्ट—वागीश श्री शंकर भगवान् के समाराधना मे रति रखने वाले—ब्रह्माजी के मानस पुत्र—ब्रह्मर्षि सनत्कुमार मुनि को समस्त मुनि मण्डली के मध्य से उठकर पराशर के पुत्र कृष्ण द्वैपायन व्यास जी ने यथा विधि प्रणाम किया था ॥१६-१७॥ भगवान् भव की भक्ति से अनुभावित होकर दोनो अपने हाथों को जोड़कर परम तुष्टि से हर्षित गरुडानन ने पूछा था कि इस महाकाल का क्या प्रभाव है जो प्राणियो के मोह के नाश कर देने वाला होता है। व्यास देव ने कहा था—हे भगवन् ! आप इस महाकाल के क्षेत्र ■ प्रभाव एव माहात्म्य को कहिये। यह सबसे परम श्रेष्ठ महाकालवन कैसे कहा जाता है? यह सऊपर पीठ गुह्यवन क्यो कहा गया है ? जिस प्रकार से इस क्षेत्र का फल होता है और जैसे यहां पर मृत मानवो की गति हुआ करती है तथा जो यहाँ दान देने से पुण्य होता है एवं यहाँ स्नान करने से जो फल

प्राप्त होता है वह सभी बतलाइये। इस क्षेत्र को श्मशान कैसे और क्यों कहा गया है ? मेरे द्वारा पूछे गये आप भगवान् शङ्कर में भक्ति को भी बतलाइये क्योंकि आप तो सभी शास्त्रों के महान् मनीषी है ॥१८-२२॥

क्षीयते पातकं यस्मात् तेनेदं क्षेत्रमुच्यते।
यस्मात्स्थानञ्च मातृणां पीठन्ते नैवकथ्यते ॥२३
मृताः पुनर्नजायन्ते तेनेदमूपरं स्मृतम्।
गुह्यमेतत्प्रियन्नित्यं क्षेत्रं शम्भोर्महात्मनः ॥२४
यस्मादिष्टं हि भूतानां श्मशानमतिवल्लभम्।
महाकालवनं यच्च तच्चैवापि विमुक्तिकम् ॥२५
एकाम्रकं भद्रकाल करवीरवनन्तथा।
कोलागिरिस्तथा काशीप्रयागममरेश्वरम् ॥२६
भरतञ्चैव केदारं दिव्यं रुद्रमहालयम्।
दिव्यश्मशानान्येतानि रुद्रस्येष्टानि नित्यशः ॥२७
रमते भगवानेषु सिद्धिक्षेत्रेषु सर्वदा।
पृथिव्यान्नैमिषंतीर्थमुत्तम तीर्थंपुष्करम् ॥२८

भगवान् सनत्कुमार जी ने कहा—जिससे पातकों का क्षय हो जाया करता है ? इसी कारण से इसका नाम क्षेत्र यह पड गया है और क्षेत्र कहा जाया करता है। क्योंकि यह मातृगण का स्थान है इसी कारण से इसको पीठ कहा जाता है। इसमें अपने प्राणों का परित्याग करने वाले फिर दूसरी बार जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं इसी से इसको ऊपर कहा गया है। यह महान आत्मा वाले प्रभु शम्भु का परम गोपनीय और नित्य ही अतिशय प्रिय क्षेत्र है। इस कारण से समस्त भूतों का यह इष्ट है और अत्यन्त वल्लभ श्मशान है और जो महाकाल वन है वह भी विमुक्ति के प्रदान करने वाला है। एकाम्रक-भद्रक—करवीर वन—कोलागिरि—काशी—प्रयाग—अमरेश्वर—भरत—केदार यह दिव्य रुद्र महालय है। ये भगवान् रुद्र को अत्यन्त ही नित्य इष्ट दिव्य श्मशान हैं। भगवान् शम्भु इन सिद्धि के क्षेत्रों में सर्वदा रमण किया करते हैं। इस पृथ्वी में परमोत्तम नैमिष तीर्थ और पुष्कर तीर्थ हैं ॥२३-२८॥

त्रयाणामपिलोकानां कुरुक्षेत्रं च शस्यते ।
कुरुक्षेत्राद्दशगुणा पुण्यवाराणसीमता ।।२९
तस्माद्दशगुणं व्यास ! महाकालवनोत्तमम् ।
प्रभासाद्यानि तीर्थानि पृथिव्यामिह्यानितुः ।।३०
प्रभासमुत्तमं तीर्थं क्षेत्रमाद्यं पिनाकिनः ।
श्रीशैलमुत्तमं तीर्थं देवदारुवनं तथा ।।३१
तस्मादप्युत्तमा व्यास ! पुण्या वाराणसी मता ।
तस्माद्दशगुणं प्रोक्तं सर्वतीर्थोत्तम यतः ।।३२
महाकालवनं गुह्यं सिद्धिक्षेत्रं तथोपरम् ।
किञ्चिद् गुह्यान्यथान्यानि श्मशानान्यूपराणि च ।।३३
सर्वतस्तु समाख्यातं महाकालवनं मुने !।
श्मशानमूपरं क्षेत्रं पीठन्तु वनमेव च ।।३४
पञ्चैकत्र न लभ्यन्ते महाकालपुरादृते ।।३५

इन तीनों लोकों में कुरुक्षेत्र परम प्रशस्त माना जाता है। कुरुक्षेत्र से दश गुणा तथा परम पुण्य स्वरूपा वाराणसी मानी गई है। हे व्यास ! यह महाकाल उत्तम वन उससे भी दश गुना महत्व वाला है। यहाँ पृथ्वी में जो भी प्रभास आदि तीर्थ हैं उन सबमें यह प्रभास सबसे उत्तम तीर्थ है और प्रभु पिनाकी का यह आद्य क्षेत्र है। श्री शैल भी परमोत्तम तीर्थ है तथा देवदारु वन भी श्रेष्ठ तीर्थ है। हे व्यास ! इससे भी उत्तम एवं पुण्यमयी वाराणसी को माना गया है। उससे भी दशगुना सब तीर्थों में उत्तम महाकाल वन को कहा गया है। परम गुह्य एवं सिद्धि का क्षेत्र है तथा ऊपर भी इसी प्रकार की महिमा वाला है। इसी प्रकार से कुछ गुह्य अन्य भी श्मशान तथा ऊपर हैं। हे मुने ! इन सबसे महाकाल वन समाख्यात है। श्मशान—ऊपर क्षेत्र– पीठ और वन ये पाँचों एक ही स्थान में महाकाल पुर से अतिरिक्त कहीं भी प्राप्त नहीं हुआ करते हैं ।।२९-३५।।

---

## ५८—अग्नि आविर्भाव वर्णन

कथमग्निः समुत्पन्नो योनिःशर्वेणधारितः ।
विस्तरेणसमाचक्ष्व भगवन्मुनिवन्दितः ॥१
अव्यक्तादोम्ससर्जादावण्डंहितदजायत ।
जज्ञेसौवर्णवर्णाभो ब्रह्मालोकपितामहः ॥२
स्वयम्भूः स तपस्तप्त्वा दिव्यं वर्षशतं महत् ।
सन्तस्थोव्याजहाराऽथ भूर्भुवः स्वरितिश्रुतिः ॥३
श्रुतियोगात्तु मनसः पश्चादग्निरजायत ।
अधोमुखः पपाताऽग्निः पृथिवीनिर्दहन् यदा ॥४
पाणिभ्यां ब्रह्मणा सोऽग्निर्भूमेरूर्ध्वं निवेशितः ।
ततो दक्षिणहस्तेन वेद्यामग्निः प्रणीयते ॥५
पुरापतन्नधोज्वालऊर्ध्वंज्वालोयतोधृतः ।
उत्तानश्चकृतोयस्माद्ब्रह्मणानिर्मितस्त्रिधा ॥६
ज्वालाभिः प्रज्वलन्नूर्ध्वं सर्वशब्दः स्फुलिङ्गवान् ।
हिरण्यवर्णं ब्रह्माणं स उवाचाऽग्निरुत्कटम् ॥७

महामहर्षि व्यासदेव जी ने कहा—हे मुनियों के द्वारा महावन्दित भगवन् ! यह सबका योनि भगवान् शम्भु के द्वारा धारण किया हुआ अग्नि कैसे समुत्पन्न हुए थे ? आप इसको विस्तार से बतलाइये । भगवान् सनत्कुमारजी ने कहा—सबसे आदि काल में अव्यक्तादि का सृजन किया और वह अण्ड समुत्पन्न हुआ था । सुवर्ण के समान आभावाला लोकों के पितामह ब्रह्माजी उत्पन्न हुए थे ॥१-२॥ उन भगवान् स्वयम्भू ने दिव्य सौ वर्ष तक महान तप का सन्तपन किया था । इसके अनन्तर 'भूर्भुवः स्व'—इस श्रुति का कथन हुआ । इसके पीछे श्रुति के योग से मन से अग्नि की समुत्पत्ति हुई थी । वह अग्नि नीचे और मुख वाला होकर गिर गया था । जब वह पृथिवी का दाह कर रहा था तब ब्रह्माजी ने दोनों हाथों से उस अग्नि को भूमि के ऊपर निवेशित कर दिया था । इसके दाहिने हाथ से वेदों में वह अग्नि प्रणीत किया जाता है ॥३-५॥

पहिले यह नीचे की ओर ज्वाला वाला होकर गिरा या फिर ऊर्ध्व ज्वाला वाला इसे धारण किया गया था। इस प्रकार से ब्रह्माजी के द्वारा यह तीन प्रकार से निर्मित किया गया था। ज्वालाओं से ऊर्ध्व भाग की ओर प्रज्वलित होता हुआ—सर्वशब्द वाला—स्फुलिङ्गों से युक्त यह अग्नि हिरण्य के समान वर्ण वाले ब्रह्माजी से उत्कट बोला—॥६-७॥

किमर्थं तु मया देव भूमिभक्ष्यं निवारितम् ।
बुभुक्षयाहमाविष्टआहारोमेप्रदीयताम् ॥८
एवमुक्तोऽग्नयेब्रह्मा स्वरोमाणिजुहावसः ।
कृशश्चखादन्नग्निस्तु सर्वरोमाणिब्रह्मणः ॥९
अब्रवीच्चनमेतृप्तिर्नचमेदेहनिर्वृतिः ।
त्वचंजुहावब्रह्मा स चखादाऽग्निस्तमेव च ॥१०
अब्रवीत्तं ततो वह्निस्तृप्तिर्नास्ति ममैव हि ।
जुहाव स्वानि मांसानि त्वचोत्कृत्य प्रजापतिः ॥११
अब्रवीच्चनमेतृप्तिनचमेदेहनिर्वृतिः ।
जुहाव ब्रह्माचास्थीनि तान्यश्नन्स बुभुक्षितः ॥१२
ततोब्रह्माहुताशेन कृतोदेहोविधातुकः ।
तमदेहमथोवह्निर्ब्रह्माणमवदच्च सः ॥१३
अहोब्रह्मन्नमेतृप्तिर्नचदेहनिवृतिः ।
क्रुद्धेनब्रह्मणासोऽग्निर्हुङ्कारेणद्विधाकृतः ॥१४

अग्नि ने कहा—हे देव! मेरे द्वारा भूमि का भक्षण आपने किस कारण से निवारित कर दिया है। मैं तो बुभुक्षा (भूख) से आविष्ट हूँ। मुझे आप आहार प्रदान कीजिए ॥८॥ इस तरह से अग्नि के द्वारा कहे गये ब्रह्माजी ने उस अग्नि के लिए अपने रोमों का हवन किया था। उस कृश अग्नि ने ब्रह्माजी के समस्त रोमों को खा लिया था और फिर वह अग्नि बोला—मेरी तृप्ति नहीं हुई है और मेरे देह की निर्वृत्ति भी नहीं हुई है। फिर ब्रह्माजी ने अपनी त्वचा का हवन किया था। अग्नि ने उसे भी खा लिया था। और फिर उस अग्नि ने कहा था—मेरी तृप्ति तो अभी भी नहीं हुई है। तब उस प्रजापति ने त्वचा से उखाड़कर अपने

मांस की पेशियो का हवन किया था। फिर भी उस अग्नि ने यही कहा था—मेरी अब भी तृप्ति नही हुई है और न मेरे इस देह की ही निर्वृत्ति हुई है। इसके अनन्तर ब्रह्माजी ने अपनी अस्थियो की आहुतियाँ उसे दे दी थी। उनको भी खाते हुए वह भूखा ही रहा था। इसके पश्चात् उस अग्नि ने ब्रह्मा जी को विधानुक देह वाला कर दिया था। फिर वह अग्नि बिना देह वाले ब्रह्माजी से बोला—अहो! हे ब्रह्मन्! मेरी तृप्ति नही होती है और मेरे देह की निवृ ति भी नही हो रही है तब तो ब्रह्मा अत्यन्त क्रुद्ध हो गये थे और उन्होने अपनी हुङ्कार के द्वारा उस अग्नि के दो भाग कर दिये थे ॥६-१४॥

आहतूरुदतावग्नी आहारार्थं प्रजापतिम् ।
हुङ्कारेणपुनर्ब्रह्मा द्विधैकैकचकार वै ॥१५
भयस्तेषा रुदन्तिस्म रुद्रमेकोहि सश्रितः ।
क्रुद्धेनब्रह्मणाव्यास हुङ्कारेणात्रताडितः ॥१६
रोरूयमाणे चाग्नौ तु पुनर्ब्रह्मा कृपान्वितः ।
आह कामाभिभूताना भुङ्क्ष्व त्व देहधातवः ।१७
ते काले लब्धकामस्य सावृत्तिः सम्प्रकल्पिता ।
अकाराग्नि सन्निविष्टं दृष्ट्वा मनसि मानसम् ॥१८
अकाराग्निः प्रजज्वाल किमेतदितिचाब्रवीत् ।
ब्रह्मातमाहत्वमपि यथेष्टावृत्तिमाश्रय ॥१९
देवमध्येबहिर्वापि मुनीनामाश्रयेषु च ।
इत्येवमुक्तस्तेनाऽऽशु वृत्तिमेतामरोचयत् ॥२०
अहमेव प्रदास्यामि पुनःपुनरुवाच ह ।
यस्मादेषद्वितीयोऽग्निर्हुङ्कारात्समजायत ॥२१

ये दो भागों मे हो जाने वाले अग्नियो ने रुदन करते हुए प्रजापति से अपने आहार के लिये कहा था। फिर ब्रह्माजी ने उन दोनों भागों को एक—एक करके तीन भागों में कर दिया था। ये तीनो भाग रुदन करते थे। उनमें से एक भाग ने रुद्र देव का आश्रय ग्रहण कर लिया था। हे व्यास! क्रुद्ध हुए ब्रह्माजी ने फिर हुङ्कार के द्वारा उस अग्नि को ताड़ित

किया था। ये दोनों अग्नियाँ रो रहे थे तब पुनः ब्रह्माजी को उन पर दया आ गई थी और कृपा से समन्वित होकर ब्रह्माजी ने अग्नि से कहा—जो पुरुष काम से अभिभूत हो उनके देहों की धातुओं का तू भक्षण किया कर ॥१५-१८॥ उन्होंने काल में लब्ध काम की वह वृत्ति सम्प्रकल्पित करली थी। मन में मानस अकाराग्नि को सन्निविष्ट देखकर मकाराग्नि प्रज्वलित हुआ और यह क्या है-ऐसा बोला—ब्रह्माजी ने उस से कहा—तू भी यथेष्ट वृत्ति का समाश्रय ग्रहण करले। देह के मध्य में— बाहिर भी और मुनियों के आश्रमों में अपनी वृत्ति ग्रहण करो। इस प्रकार से कहे हुए उस अग्नि ने इस वृत्ति को बहुत पसन्द कर लिया था। क्यों कि यह दूसरा अग्नि हुङ्कार से समुत्पन्न हुआ है मैं इस प्रकार से दूंगा—यह पुन पुनः कहा था ॥१९-२१॥

साभिमानोऽपमानो वा हुंकारो यत्र कथ्यते ।
साच वृत्तिर्ममादेशाद् बुभुक्षा शान्तये तव ॥२२
इकाराग्नि समाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत् ।
भवतोऽग्नेरियंवृत्तिरन्नभुक्तं दहेरिति ॥२३
उकाराग्नि समाहूय ब्रह्मावचनमब्रवीत् ।
यत्पृथिव्या मरुस्थान भगवस्तत्त्वमाश्रय ॥२४
अहं तव विधास्यामि स्थानमाहारमेवच ।
इत्युक्तः सुततेनाग्निर्यः पृथिव्याशिलाचयः ॥२५
यतोऽग्निर्व्यासतेनोक्तो गिरौदुर्गमहामुने ।
ऊकाराग्निः सचाप्येष समुद्रेवडवामुखः ॥२६
सोऽपि भिन्नः समाहूतो ब्रह्मणा स्थानलिप्सया ।
स्वयम्भुः सर्वलोकस्य ब्रह्मा वचनमब्रवीत् ॥२७
तस्मात्त्वं संस्कृतां वाणी द्विजातीना प्रकाशय ।
दैवी पुण्यासस्कृताच आयुष्यहन्त्यसस्कृता ॥२८

अभिमान के या अपमान के साथ जहाँ पर भी हुङ्कार को कहा जाता है, यह वृत्ति मेरे आदेश से तुम्हारी भूख शान्ति के लिये है ॥२२॥ इकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्माजी ने यह वचन बोला था—अग्नि आपकी

यह वृत्ति होवे कि जो भी अन्न खाया गया हो उसे आप दग्ध कर दो ॥२३॥ फिर उकाराग्नि को बुलाकर ब्रह्माजी ने कहा—जो भी इस पृथिवी मे मरुस्थल हो, हे भगवन् ! वहाँ पर आप अपना आश्रम बनाइये मैं आपके लिये स्थान और आहार को करूंगा ! इस तरह से ब्रह्माजी के द्वारा कहे हुए उस अग्नि ने पृथिवी मे जो भी शिलाओ का समुदाय था, हे महामुने ! व्यास ! उनके द्वारा कहे हुए अग्नि ने गिरि मे —दुर्ग मे स्थिति की ओर वहाँ पर वह उकाराग्नि हो स्थित होगया है । समुद्र मे वडवा मुख अग्नि है । वह भी ब्रह्माजी के द्वारा स्थान की लिप्सा से भिन्न ब्रह्माजी के द्वारा समाहूत किया गया था । ब्रह्माजी ने उससे कहा—आप समस्त लोक की चक्षु है । इस लिये आप द्विजातियो को परम सस्कृत वाणी को प्रकाशित करिये । वाणी दैवी—पुण्या और संस्कृत ही होनी चाहिए । जो वाणी बिना संस्कारो वाली होती है वह आयुष्य का हनन किया करती है ॥२४-२८॥

तस्माद्द्विजानेर्विज्ञेया वाणी पुण्याप्रकाशिता ।
वाक्चमाताद्विजातीना मुखे सा सम्प्रतिष्ठिता ॥२९
अनृताक्षरविन्यासादमङ्गल्याह्यसंस्कृता ।
वक्तारंहन्त्यतोह्यग्निः सदासस्कृतवाग्द्विजः ॥३०
आहूयभूयोऽकाराग्नि प्रजापतिरचक्षुषम् ।
ता देववाणीमवदत्सोऽपिसंमीलितेक्षणः ॥३१
ब्रह्माणमाहवह्निस्तु वाचोऽहमुखमास्महे ।
स्थानं ममप्रयच्छस्व सर्वतेजोवरं परम् ॥३२
ब्रह्मातमाहयस्मात्त्वतेज.स्थानंसमोहसे ।
तस्मात्तेजोमयंयत्तं रविस्थानं भविष्यति ॥३३
यस्मात्प्रपद्यतेतेजश्चक्षुर्भवतिदुर्बलम् ।
तस्मात्त्वांतेजसायुक्तं पश्येदनिमिपञ्चकः ॥३४
इकारमथसभिन्नमग्निमाहपितामहः ।
सौम्यदृष्ट्यातुब्रह्माण समुद्वीक्ष्यह्युपागतः ॥३५

इस कारण से द्विजाति की वाणी पुण्या और प्रकाशिता जाननी चाहिए। द्विजातियों की वाक् माता है और वह मुख में सम्प्रतिष्ठिता होती है ॥२६॥ मिथ्या से युक्त अक्षरों के विन्यास से—अमाङ्गल्य से असंस्कृत वाणी बोलने वाले का अग्नि हनन किया करती है। अतएव द्विज को सदा ही सुसंस्कृत वाणी वाला होना चाहिए ॥३०॥ फिर प्रकाशाग्नि को बुला कर जो कि अचक्षुष था, प्रजापति ने उस देव वाणी को कहा था कि वह भी समीलित ईक्षण वाला हो गया था। वह्नि ने ब्रह्मा जी से कहा था—हम मुख की वाणी हैं–आप समस्त तेज से परम श्रेष्ठ स्थान मुझे प्रदान कीजिए। ब्रह्माजी ने उससे कहा—क्योंकि आप तेज का स्थान चाहते हैं इसीलिये परम तेजोमय तेरा रवि का स्थान होगा। जिससे तेज चला जाता है वह चक्षु दुर्बल हो जाया करता है। इसी लिये तेज से युक्त आपको अनिमिष कौन देखता है। इस के पश्चात् संभिन्न इकार अग्नि को ब्रह्माजी ने कहा था। वह अग्नि भी परम सौम्य दृष्टि से ब्रह्माजी को देखकर समुपस्थित हुआ था ॥३१–३५॥

यस्माच्छीघ्रं महासत्त्व ! सौम्यदृष्टिरिहागतः।
तस्माद्दास्याम्यहं स्थानं सर्वभूतमनोरमम् ॥३६
त्वं सितात्मा श्वेतरश्मिश्चन्द्रमास्त्वं भविष्यसि।
मत्तं तेजोऽधिको दिव्यः सौम्यः परमभासुरः ॥३७
तत्रस्थः सर्वतेजांसि तेजसाऽभिभविष्यति।
इत्युक्त्वा तं विसर्ज्याथ उकाराग्निमथाऽऽह्वयत् ॥३८
इहेह्येहीति गिरगि ममादायन्यवेदयत्।
तत्रस्थः पञ्चमंवक्त्रमूर्ध्वं मेतदजायत ॥३९
एषएवं रूपवह्निरुकाराग्निः प्रतिष्ठितः।
तस्मादग्निश्चसूर्यश्च रुद्रावेतौविनिर्दिशेत् ॥४०
भवाग्निरूपा परमो ब्रह्माणमिदमब्रवीत्।
ममाऽपिरुचिरं स्थानं प्रयच्छस्वयथातथम् ॥४१
प्रत्युत्तमाहब्रह्मत् स्थानं तेरोचतेतले।
अग्निस्तुप्रश्रुवापेदंस्थानं कथयमेपरम् ॥४२

किंकुर्वाणैर्नरैः कर्म रुद्रभक्ति ब्रवीहि नः ।
त्रिविधाकथिताह्यत्र मनोवाक्वायसम्भवा ॥४
लौकिकी वैदिकी चान्या भवेदाध्यात्मिकी तथा ।
ध्यानधारणया बुद्धया रुद्राणां स्मरणं हि यत् ॥५
रुद्रभक्तिकरीचैषा मानसीभक्तिरुच्यते ।
व्रतोपवासनियमैर्जितेन्द्रियनिरोधिनाम् ॥६
रुद्रस्य कायिकीभक्तिर्ज्ञानध्यानस्थधर्मिणाम् ।
गोघृतक्षीरदधिभिर्गन्धरक्तकुशोदकैः ॥७

महामहर्षि प्रवर व्यास देवजी ने कहा—हे भगवन् ! किस विधि से रुद्र लोक की इच्छा रखने वाले क्षेत्र वासी नरों के द्वारा महा काल वन में वास करना चाहिए ? क्या मनुष्यों—स्त्रियों तथा सिद्धि—साधनों से समन्वितों के द्वारा निवास करते हुए क्या करना चाहिए यह सब आप कृपा करके हमको बतलाइये । पुरुषों और स्त्रियों के द्वारा वास करना चाहिए । समस्त वर्णों वाले—सब आश्रमों में रहने वाले—अपने धर्म और आचार में निरत रहने वाले—दम्भ, मोह से वर्जित रहने वाले मनुष्यों को क्या कर्म करते हुए भगवान् रुद्र की भक्ति होवे—वह हमको आप बतलाइये । सनत्कुमारजी ने कहा—तीन प्रकार की भक्ति कही गयी है जो मन—वाणी और शरीर से उत्पन्न होने वाली है ॥१-४॥ दूसरे भी इसके तीन प्रकार होते हैं वे लौकिकी—वैदिकी और अध्यात्मिकी हैं । ध्यान और धारणा की बुद्धि से जो रुद्रों का स्मरण है या रुद्र की भक्ति करने वाली मानसी भक्ति कही जाया करती है । अपनी इन्द्रियों को जीतकर निरोध करने वालों की व्रत—उपवास और नियमों के द्वारा जो भगवान् रुद्र की जो भक्ति की जाती है वह कायिकी भक्ति कही जाती है । ज्ञान और ध्यान में स्थित धर्म वालों को गौ का घृत-क्षीर-दधि से तथा गन्ध रक्त—कुशोदकों से ॥५-७॥

गन्धमाल्यैश्चविविधैर्धातुभिश्चोपपादिता ।
घृतगुग्गुलुधूपैश्च कृष्णागुरुसुगन्धिभिः ॥८

भूषणैर्हेमरत्नानां चित्राभिः स्रग्भिरेव च ।
वासःप्रतिसरस्तोत्रैः पताकाव्यजनादिभि ॥६
नृत्यवादित्रगीतैश्च सर्वप्रत्युपहारकैः ।
भक्ष्यभोज्यानुपानैश्च यापूजाचाक्षतैर्नरैः ॥१०
महेश्वरं पुरस्कृत्य भक्तिः सालौकिकी मता ।
देवमन्त्रैर्हविर्योगैर्या क्रिया वैदिकी मता ॥११
दर्शेचपौर्णमास्यांवा कर्तव्यं चाग्निहोत्रकम् ।
प्राशनं दक्षिणादानं पुरोडाशश्चरुक्रिया ॥१२
इष्टिवृत्तिः सोमपानं याज्ञिकंसर्वं कर्मच ।
ऋग्यजुस्सामजाप्यानिसंहिताध्ययनानिच ॥१३
क्रियन्ते रुद्रमुद्दिश्य सा भक्तिर्वैदिकीस्मृता ।
अग्निभूम्यनिलाकाशनिशाकरदिवाकरान् ॥१४
समुद्दिश्यकृतंकर्मतत्सर्वंदैवतंभवेत् ।
आध्यात्मिकीतुत्रिविधारुद्रभक्तिः स्थितामुने ॥१५

गन्ध माल्य और अनेक धातुओ से उपपादित धूत—गुग्गुल—धूपों से—कृष्ण गुरु सुगन्धियों से—हेम और रत्नो के भूषणो से—विचित्र प्रकार की मालाओं से—निवास कर प्रतिसुर तथा स्तोत्रो से—पताका और व्यजन आदि से—नृत्य वादित्र और गीतो के द्वारा—सर्व प्रत्युपहारो से—भक्ष्य भोज्यो के अनुपानो से अक्षतो से जो मनुष्यो के द्वारा महेश्वर भगवान् को आगे करके पूजा की जाती है वह लौकिकी शिव भक्ति कही गयी है । वेद मन्त्रो के द्वारा और योगो के द्वारा जो हवि की क्रिया है वही वैदिक पूजा मानी गयी है ॥८-११॥ दर्श मे—पौर्णमासी मे अग्नि होत्र करना चाहिए—प्राशन—दक्षिणादान—चरु क्रिया—इष्टिवृत्ति—सोमपान सम्पूर्ण याज्ञिक कर्म, ऋक्, यजु और सामवेद के जाप तथा संहिताओं का अध्ययन जो भगवान् रुद्र का उद्देश्य लेकर किये जाते हैं वही वैदिकी भक्ति कही गयी है । अग्नि, भूमि, अनिल, आकाश, निशाकर, दिवाकर, इनका उद्देश्य ग्रहण करके किया हुआ कर्म दैवत कर्म कहा जाता है ।

और वह यह तत्त्व कहा गया है। तत्त्वान्तर से कार्य्य कारण होते है ॥१९-२२॥

प्रयोजके च वै जात्यं ज्ञात्वातत्वस्य सङ्ख्यया।
संख्याऽस्तीत्युच्यतेप्राज्ञै रुद्रतत्वार्थचिन्तकैः ॥२३
इति तस्यतत्त्वभावं तत्त्वसङ्ख्या च तत्त्वतः।
रुद्रतत्त्वाधिकञ्चापि ज्ञानतत्त्वं विदुर्बुधाः॥२४
सांख्ये ततो भक्तिरेषा सद्भिराध्यात्मिकी मता।
योगिकीमपिमे भक्त्या शृणु भक्तिं महासुराः ॥२५
प्राणायामपरोनित्यंध्यायेत नियतेन्द्रियः।
धारणां हृदयेधृत्वा ध्यायते यो महेश्वरम् ॥२६
हृत्कञ्जकर्णिकासीनं पञ्चवक्त्रंत्रिलोचनम्।
शशांकद्योतितजटं व्यालावृतकटीतटम् ॥२७
श्वेतं दशभुजं भद्रं वरदाभयहस्तकम्।
योगजामानसीव्यास रुद्रभक्तिः परास्मृता ॥२८

तत्त्व की संख्या से प्रयोजक मे जात्य का ज्ञान प्राप्त करके संख्या है, यह रुद्र के तत्त्वार्थ के चिन्तक प्राज्ञो के द्वारा कहा जाता है ॥२३॥ इस प्रकार से उसके तत्त्व भाव को और तात्त्विक रूप से तत्त्वो की संख्या और जिस मे रुद्र तत्त्व अधिक है ऐसे ज्ञान तत्त्व को बुधजन जानते हैं। साङ्ख्ये में यह भक्ति सत्पुरुषों के द्वारा आध्यात्मिकी भक्ति मानी गयी है। योगिकी भी भक्ति को अब मुझ से आप श्रवण कीजिए। जो यह भक्ति महान् स्वर वाली होती है। जो कोई पुरुष नियत इन्द्रियों वाला होकर हृदय मे धारणा करके नित्य ही प्राणायाम परायण होता हुआ ध्यान करे और महेश्वर प्रभु का ध्यान किया करता है। ध्यान मे महेश्वर प्रभु के स्वरूप का ऐसा चिन्तन करता है कि वे मेरे हृदय रूप कमल की कर्णिका में समासीन हैं, उनके पाँच मुख हैं तथा तीन नेत्र हैं, चन्द्रमा की प्रभा से उनकी जटाऐं द्योतित हैं और कटि-तट व्यालों से समावृत है, उनका एक दम श्वेतवर्ण है, दश भुजाऐं हैं, परम भद्र और वरद तथा अभय हाथों से प्रदान करने वाले हैं। इस प्रकार से जिस मे रुद्र की भक्ति की

जाया करती है वही योगजा मानसी रुद्र भक्ति होती है। हे व्यास देव ! यह भक्ति परा भक्ति कही गयी है ॥२४-२८॥

यएवंभक्तिमान्रुद्रे रुद्रभक्तः सउच्यते ।
विधिन्तुशृणुमेव्यासयः स्मृता क्षेत्रवासिनाम् ॥२६
स्वयरुद्रेणविहितो ब्रह्मादीना समागमे ।
कथितो विस्तारात्पूर्वं पूर्वपांतत्रसन्निधौ ॥३०
निर्ममा निरहङ्कारा निस्सङ्गानिष्परिग्रहाः ।
वन्धुवर्गे च नि स्नेहाः समलोष्टाश्मकाञ्चनाः ॥३१
भूतानाकर्मभिर्नित्य त्रिविधैरभयप्रदाः ।
साङ्ख्ययोगविधिज्ञाश्चधर्मज्ञाश्छिन्नसंशयाः ॥३२
यजन्तेविविधैर्यज्ञैर्येविप्राः क्षेत्रवासिनः ।
महाकालवनेतेषा मृतानायत्फलं शृणु ॥३३
व्रजन्त्येवपुदुष्प्राप ब्रह्मसायुज्यमक्षयम् ।
सम्प्राप्यनपुनर्जन्म लभन्तेमोक्षमक्षयम् ॥३४
पुनरावर्तनं हित्वा विधिं माहेश्वरं स्थिताः ।
पनरावृत्तिरन्येषा प्रपञ्चाश्रमवासिनाम् ॥३५
गार्हस्थ्यविधिमासाद्य षट्कर्मनिरतास्सदा ।
वेदोक्तविधिनासम्यग्मन्त्रस्तोत्रनियन्त्रिता ॥३६

जो इस प्रकार से रुद्र मे भक्तिमान् होता है वह रुद्र का परम भक्त कहा जाया करता है। हे व्यास ! उसकी विधि भी आप मुझ से सुनिये जो क्षेत्र वासियों के लिये कही गयी है। ब्रह्मादि देवों के समागम में स्वयं ही रुद्र प्रभु ने किया है। वहाँ पर पूर्व पुरुषों की सन्निधि मे पहिले विस्तार से कही गयी है। ममता से रहित, अहङ्कार से शून्य, सङ्ग से हीन, बिना परिग्रह वाले, अपने बन्धुवर्ग मे भी स्नेह से रहित, मिट्टी के ढेले और सुवर्ण दोनों को समान भाव से समझने वाले, अपने अनेक प्रकार के कर्मों के द्वारा प्राणियों को अभय प्रदान करने वाले, साङ्ख्य योग की विधि के ज्ञाता, धर्म्म के तत्त्व को जानने वाले और ऐसे जिनके सभी संशय छिन्न होगये हैं ऐसे विविध प्रकार के यज्ञों के द्वारा क्षेत्र वासी विप्र

यजन किया करते हैं। महाकाल वन मे उनके मृत होने पर जो उन्हे फल प्राप्त होता है उसका श्रवण करो। वे लोग परम दुष्प्राप और अक्षय ब्रह्म सायुज्य को ही सीधे गमन किया करते हैं वहाँ सम्प्राप्त होकर अक्षय मोक्ष उनका हो जाता है कि वे पुनर्जन्म नही प्राप्त किया करते हैं। माहेश्वर विधि मे स्थित होते हुए वे पुनरावर्त्तन का एक दम त्याग कर दिया करते हैं। जो प्रपञ्चाश्रम के वासी लोग हुआ करते है ऐसे अन्य जनो का ही पुनरावर्त्तन हुआ करता है। गार्हस्थ्य आश्रम की विधि को प्राप्त करके सदा जो षट् कर्मों मे निरत रहा करते हैं वे पुरुष वेदोक्त विधि के द्वारा भली भाँति मन्त्रो और स्तोत्रो मे नियन्त्रित रहते हैं ॥२६-३६॥

## ६०—विद्याधरतीर्थमाहात्म्यवर्णन

कथं तीर्थमिद क्षेत्र जातमत्र महामुने।
प्रसादाद् ब्रूहि मे ब्रह्मञ्छ्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥१
विद्याधरपतिः कश्चिदासीद्रूपधरः पुरा।
ग्रथिता पारिजातस्य माला तेन मनोरमा ॥२
गृहीत्वा स च ता मालां गतोवासव वेश्मनि।
नृत्यन्तीवासवस्याग्रे दृष्टा तेन च मेनका ॥३
दत्ता तस्यैदातेन सा माला नृत्य ससदि।
सा मेनका तु तत्स्थाने मालया मोहिता सती ॥४
कोपाविष्टेन शक्रेण शप्तो विद्याधरस्तदा।
पृथिव्या गच्छ पापिष्ठ ! नृत्यभङ्गस्त्वया कृतः ॥५
विद्याधरपदं त्यक्त्वा मम शापाच्च साम्प्रतम्।
एवमुक्तस्तु शक्रेण वाक्य विद्याधरोऽब्रवीत् ॥६

महर्षिवरिष्ठ श्री व्यासजी ने कहा—हे महामुने ! यहाँ पर यह क्षेत्र तीर्थ कैसे हो गया है ? हे ब्रह्मन् ! आपकी महती दया होगी आप इसको मुझे बतला दीजिए। मैं इस समय में यही श्रवण करने की उत्कट अभिलाषा रखता हूँ। श्री सनत्कुमारजी ने कहा—पहिले परम पुरातन काल में

कोई रूपधारी विद्याधर पति था। उसने पारिजात के पुष्पों की एक परम सुन्दर माला का ग्रथन किया था। वह उस माला का ग्रहण करके इन्द्र देव के गृह मे गया था। उसने वहाँ पर इन्द्र देव के समक्ष में मेनका नाम वाली अप्सरा को नृत्य करती हुई देखा था। उस नृत्य सभा में वह परम मनोरम माला उसने उस अप्सरा को देदी थी। वह मेनका अप्सरा उसी स्थान मे उस माला से परम मोहित हो गई थी। उस समय में इन्द्र को बहुत अधिक क्रोध हो गया और उसने कोप विष्ट होकर उस विद्याधर को शाप दे दिया था—हे पापिष्ट ! तुम पृथ्वी पर चले जाओ क्यों कि तुमने आज हमारी इस सभा मे अतीव सुन्दर नृत्य का भङ्ग कर दिया है। तुम अभी इस विद्याधर के पद का त्याग करके मेरे शाप से भूमि वासी बन जाओ। इस तरह से इन्द्र के वाक्य को श्रवण करके वह विद्याधर बोला—॥१-६॥

अजानतामयानल्प अपराधः कृतोऽधुना।
अनुग्रहमतो देव कुरु मे त्वं प्रसादतः ॥७
एवमुक्तस्तशक्रो वै विद्याधरमुवाच ह।
गच्छावन्तीं त्वमद्यैव यत्रास्तेगाङ्गटीगुहा ॥८
तस्याश्चोत्तरभागे तु विद्यते तीर्थमुत्तमम्।
ख्यातं तत्त्रिपुलोकेषु नाम्ना विद्याधरं शुभम् ॥९
भक्त्या तत्र कृते स्नाने विद्याधरपतिर्भवेत्।
अतस्त्वमपि तत्रैव कुरु स्नानं प्रयत्नतः ॥१०
एवमुक्तः स शक्रेण आगतोऽवन्ति मण्डले।
स्नानं कृतञ्च तेनैव तीर्थे तस्मिन्मनोरमे ॥११
प्रभावात्तस्य तीर्थस्य स विद्याधरयोऽभवत्।
एवं व्यास ! समाख्यातं तीर्थं विद्याधरं शुभम् ॥१२
तत्र पुष्पाणि यो दद्याच्चन्दनञ्च विलेपनम्।
लभेत्समस्तभोगान्स इहलोके परत्र च ॥१३

हे देव ! अज्ञान के वश मे आकर आज इस समय मे मैंने यह अपराध कर दिया है। अतएव मेरे ऊपर प्रसन्नता करके आप अनुग्रह करिये ॥७॥

जब इस तरह से प्रार्थना की गई तो इन्द्र देव उस विद्याधर से बोले—आप आज ही अवन्ती पुरी मे चले जाओ जहाँ पर गाङ्गुटी गुहा विद्यमान है। उसके उत्तर दिशा के भाग मे यह उत्तम तीर्थ विद्यमान है। यह तीर्थ त्रिलोकी मे नाम से परम शुभ विद्याधर प्रसिद्ध है। भक्ति भाव से वहाँ पर स्नान करने से मनुष्य विद्याधरो का स्वामी बन जाया करता है। इस लिये तुम भी वहाँ पर प्रयत्न पूर्वक स्नान करना। इस रीति से इन्द्र देव के द्वारा कहे गये उस विद्याधर ने अवन्ती मण्डल मे समागमन किया था। उसने उस परम तीर्थ मे स्नान भी किया था। उस तीर्थ के महान् प्रभाव से वह विद्याधरो का पति हो गया था। हे व्यास! इस प्रकार से यह परम शुभ विद्याधर तीर्थ समाख्यात हुआ था। वहाँ पर जो भी कोई पुष्पो का समर्पण किया करता है तथा चन्दन और विलेपन अर्पित करता है वह इस लोक मे समस्त प्रकार के सुखो का उपभोग प्राप्त किया करता है और परलोक मे सद्गति पाता है ॥८-१३॥

अत परं प्रवक्ष्यामि मर्कटेश्वरमुत्तमम्।
तत्र तीर्थं च विख्यातं सर्वकामप्रदायकम् ॥१४
तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा गोशतस्य फलं लभेत्।
विस्फोटानां प्रशान्त्यर्थं बालानाञ्चैव कारणे ॥१५
माषेण मिश्रितान्कृत्वा मसूरांस्तत्र कुट्टयेत्।
शीतलायाः प्रभावेण बालाः सन्तु निरामयाः ॥१६
ये पश्यन्ति नरा भक्त्या शीतलान्दुरितापहाम्।
न तेषां दुष्कृतं किञ्चिन्न दारिद्रयं द्विजोत्तम ॥१७
न च रोगभयं तेषां ग्रहपीडा तथैव च ॥१८

भगवान् श्रीसनत्कुमारजी ने कहा—अब मै उत्तम मर्कटेश्वर के विषय में वर्णन करूँगा। वहाँ पर विख्यात तीर्थ है जो सभी कामनाओ के प्रदान करने वाला है। उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके एक सौ गौओ के दान करने का पुण्य—फल प्राप्त किया करता है। विस्फोटों की प्रशान्ति के लिये और बालो के कारण में उड़दों के साथ मिश्रित करके वहाँ पर मसूरो को कूटना चाहिए। इसका यह प्रभाव होता है कि बालक शीतला देवी के

प्रभाव से नीरोग एवं स्वस्थ हो जाया करते हैं। हे द्विजोत्तम ! जो मनुष्य भक्तिभाव से दुरितों के अपहरण करने वाली शीतला देवी का दर्शन किया करते हैं उनको कुछ भी दुष्कृत नहीं हुआ करता है और कभी भी उन्हें दरिद्रता नहीं सताया करती है। उनको कभी किसी भी रोग का भी भय नहीं होता है तथा ग्रहों की पीड़ा नहीं हुआ करती है। सभी ग्रह शान्त हो जाया करते है ।।१४-१८।।

## ६१—दशाश्वमेधमाहात्म्यवर्णन

दशाश्वमेधिकेऽस्नात्वा दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ।
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्नोति मानव ।।१
मनुनामानवेन्द्रेण राज्ञा चैव ययातिना ।
रघुणोशनसाचैव लोमशेन महर्षिणा ।।२
अत्रिणा भृगुणा चैव दत्तात्रेयेण धीमता ।
पुरूरवसापुण्येन नहुषेण नलेन च ।।३
अत्र स्नाने संप्राप्तं दशाश्वमेधिकं फलम् ।
संप्राप्ते द्वापरस्यान्ते राज्ञा वाष्कलिना तथा ।।४
दशानामश्वमेधानां फलं प्राप्तं द्विजोत्तम ।।
कृष्णवर्णं तथा लिङ्गं पूजितं भक्तितः सदा ।।५
दृष्ट्वास्पृष्ट्वा चतं देवं प्रागुक्तं लभते फलम् ।
चैत्रेमासिसिताष्टम्यां देवं संपूज्य भक्तितः ।।६
अश्वं दद्याच्च विप्राय सुरूप सगुणान्वितम् ।
यावन्ति तस्य रोमाणि गणयन्ते सङ्ख्यया द्विज ।।७
तावद्वर्षं सहस्राणि शिवलोके महीयते ।
पित्र लोकात्परिभ्रष्टः सार्वभौमो भवेद् भुवि ।।८

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—अधिक मास में दशाश्वमेध घाट पर गंगा भागीरथी में स्नान करके महेश्वर देव के अर्थात् वाराणसी में भगवन् श्री विश्वनाथ जी के दर्शन करके मनुष्य दश अश्वमेध यज्ञों के

करने का फल प्राप्त कर लिया करता है। इस प्रकार के फल प्राप्त करने के अनेक उदाहरण दिये जाते हैं—मानवों में परम शिरोमणि मनु राजा ने–ययाति ने–रघु–उशना और महर्षि लोमश ने—अत्रि ने—भृगु ने—श्रीमान् दत्तात्रेय ने—परम पवित्र पुरूरवा ने—नहुष ने–तथा राजा नल ने यहाँ दशाश्वमेध पर स्नान करने के द्वारा दश अश्व मेघ यज्ञों के करने का फल प्राप्त किया था। हे द्विजोत्तम! द्वापर के अन्त के प्राप्त होने पर राजा बलि ने दश अश्वमेध यज्ञों का पुण्य-फल प्राप्त किया था। तथा कृष्ण वर्ण वाले लिंग को सदा भक्ति भाव से पूजित किया था। उस देव का दर्शन और स्पर्शन करके पहिले बताया हुआ फल प्राप्त करता है। चैत्र मास की शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में भक्तिभाव से देव की भली भाँति पूजा करके विप्र के लिए सुन्दर रूप वाले गुण गण से युक्त अश्व का दान करे। हे द्विज! उसके जितने भी लम्या में रोम होते हैं उतने ही सहस्र वर्ष पर्यन्त वह शिवलोक में प्रतिष्ठित होता है। शिव लोक से परिभ्रष्ट होकर इस भू मण्डल में सार्व भौम (सम्राट) हुआ करता है ॥१-८॥

---

## ६२—महाकालयात्रामाहात्म्यवर्णन

अथ यात्रां प्रवक्ष्यामि महाकालस्य यत्नतः।
नियश्चेमस्करी पुण्या पुण्यलोकप्रदायिनीम् ॥१
स्नात्वा सरसि रुद्रस्य दृष्ट्वा कोटीश्वरं शिवम्।
नमस्कृत्य ततो गच्छेन्महाकालं सनातनम् ॥२
गन्धैः पुष्पैर्नमस्कारैः सम्पूज्य त्रिदशेश्वरम्।
प्रणिपत्य ततो गच्छेद्दृष्टं यं कपालमोचनम् ॥३
तत्र यं देवदेवेनः कपालं न्यस्तमाश्रितो।
पपातेि तस्मान्नाम्ना ते तत्राभूत्तिर्न्नमुत्तमम् ॥४
कपालमोचनं नाम सर्वपापप्रणाशनम्।
तत्र यं स्नपनं कुर्यादाज्यदध्नमतान्तु यं ॥५

तदर्धार्धेनपादेन वित्तशाठ्य विवर्जितः ।
काले पूर्णे स विप्रेन्द्र ! शिवलोके महीयते ॥६
नमस्कृत्य ततो गच्छेत्कपिलेश्वरमुत्तमम् ।
दर्शनात्तस्यदेवस्य मुच्यते ब्रह्मघातकः ॥७

महर्षि सनत्कुमार जी ने कहा—इसके अनन्तर यत्न पूर्वक महाकाल की यात्रा को कहूँगा जो शिव और श्रेय के करने वाली—पुण्यपूर्ण और पुण्य लोक के प्रदान करने वाली है ॥१॥ भगवान् रुद्र के सरोवर में स्नान करके तथा कोटीश्वर शिव का दर्शन करके और नमस्कार करके इसके पश्चात् सनातन महाकाल को गमन करना चाहिए ॥२॥ गन्ध और पुष्पों से तथा नमस्कारों से त्रिदशेश्वर का समर्चन करके तत्पश्चात् प्रणिपात करके फिर कपाल मोचन देव की ओर यात्रा करे ॥३॥ वहाँ पर देव देवेश ने भूमि पर कपाल को न्यस्त किया था । कपाल के विन्यस्त करने पर उसी क्षण में वहाँ पर उत्तम लिंग हो गया था ॥४॥ वह कपाल मोचन नाम वाला तीर्थ सभी पापों का नाश करने वाला है । वहाँ पर स्नान करावे और सौ पल घृत से करावे ॥५॥ उससे आधा पाद से करावे किन्तु वित्त की शठता से रहित होकर करावे । हे विप्रेन्द्र ! काल के पूर्ण होने पर वह शिवलोक में महिमान्वित होता है ॥६॥ फिर उत्तम कपिलेश्वर को प्रणाम करके वहा से गमन करे । उनके दर्शन से ब्रह्म घातक भी पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥७॥

हनुमत्केश्वरं देव ततो गच्छेत्समाहितः ।
ऐश्वर्यमतुलं व्यास ! दर्शनादस्य जायते ।।८
ततो गच्छेन्महादेव पिप्पलाद सनातनम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण मुक्तिः स्याद् द्विजसत्तम !॥९
स्वप्नेश्वरं ततो गच्छेद्भक्तिश्रद्धा समन्वितः ।
दर्शनादस्यदेवस्य दुःस्वप्नञ्च विनश्यति ॥१०
ततो गच्छेन्महादेवमीशानं विश्वतोमुखम् ।
यस्य दर्शन मात्रेण विश्वस्यैव पतिर्भवेत् ॥११

सोमेश्वरन्ततो गच्छेज्जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
कुष्टरोगादि दोषेभ्यो दर्शनादस्यमुच्यते ।।१२
वैश्वानरेश्वर व्यास ततो गच्छेत्समाहितः ।
तस्य वृद्धिस्सदा लोके जायते तस्य दर्शनात् ।।१३
बीजापूरकहस्तन्तु लकुलीशन्ततो व्रजेत् ।
रुद्रत्व दर्शनात्तस्य जायते नात्रसंशयः ।।१४

वहाँ से परम सावधान होकर हनुमत्केश्वर देव का जाना चाहिए । हे व्यास ! इनके दर्शन से अतुल ऐश्वर्य हो जाता है ।।८।। हे द्विजश्रेष्ठ ! फिर सनातन पिप्पलाद महादेव को जावे जिसके दर्शन मात्र से ही मुक्ति हो जाया करती है ।।९।। भक्ति और श्रद्धा के भाव से युक्त होकर फिर स्वप्नेश्वर को गमन करे । उस देव के दर्शन से दुःस्वप्न विनष्ट हो जाता है ।।१०।। फिर विश्वतोमुख ईशान महादेव को गमन करे जिसके केवल दर्शन ही से पूर्ण विश्व का स्वामी हो जाता है ।।११।। क्रोध को जीतकर और इन्द्रियों को वश मे करके सोमेश्वर को गमन करना चाहिए । इनके दर्शन से कुष्ठ रोगादि के दोषों से मुक्त हो जाता है ।।१२।। हे व्यास ! वहाँ से फिर समाहित होकर वैश्वानरेश्वर को जावे । उनके दर्शन से लोक मे उसकी वृद्धि सदा होनी है ।।१३।। वहाँ से बीजा पूरक हस्त और लकुलीश को जावे । उनके दर्शन से रुद्र का स्वरूप प्राप्त कर लेता है— इसमे बिल्कुल संशय नही है ।।१४।।

ततो गच्छेन्महादेव गणपेश्वरमुत्तमम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण जायन्ते सर्वसिद्धय. ।।१५
अभ्यर्थितस्सदा देवैः पूजितस्सिद्धिकारणात् ।
तेनाभ्यर्थितपूरोऽय विख्यातो विघ्ननायकः ।।१६
वयोवृद्ध ततो गच्छेन्महाकाल सनातनम् ।
न रोगो न जराव्याधिर्दर्शनान्नात्र संशयः ।।१७
विघ्ननाश ततो गच्छेत्प्राणीश देवमुत्तमम् ।
स्नान शतघटैस्तस्य कुर्याद्भक्त्या समाहितः ।।१८

तस्य चैव कृते स्नाने लभ्यन्ते सर्वसिद्धयः ।
स्वर्गश्चापि सदा व्यास ! दर्शनादस्य जायते ॥१९
मार्गगतमनुल्लङ्घ्य दण्डपाणि ततो व्रजेत् ।
यस्य दर्शनमात्रेण यमलोकोन दृश्यते ॥२०
पुष्पदन्तं ततो गच्छेद्भक्तिश्रद्धा समन्वितः ।
यस्य दर्शनमात्रेण मुच्यते सर्वपातकैः ॥२१

इसके पश्चात् उत्तम गणपेश्वर महादेव की ओर गमन करे जिसके केवल दर्शन से ही समस्त सिद्धियाँ हो जाया करती हैं ॥१५॥ सदा देवों के द्वारा अभ्यर्थना की गई है और सिद्धि प्राप्त करने के कारण से उनकी अर्चना भी की गई है। इसी से यह विघ्नों के स्वामी अभ्यर्थना को पूरी करने वाले विख्यात हो गये हैं ॥१६॥ वहाँ से सनातन महाकाल वयोवृद्ध को गमन करे। इनके दर्शन से रोग नहीं होता है और बुढ़ापे की व्याधि भी नहीं होती है इसमें संशय नहीं है ॥१७॥ इसके अनन्तर विघ्न नाश उत्तम देव प्राणीश की ओर गमन करे। भक्ति से समाहित होकर सौ घड़ों से उसे स्नान करावे ॥१८॥ उसके स्नान करने पर सम्पूर्ण सिद्धियों की प्राप्ति हो जाती है। हे व्यास ! इनके दर्शन से सदा स्वर्ग का वास भी हो जाया करता है ॥१९॥ मार्ग में रहने वाले का उल्लंघन न करके यहाँ से दण्डपाणि को जावे जिसके केवल दर्शन से ही यमलोक नहीं दिखलाई देता है ॥२०॥ फिर यहाँ से भक्ति श्रद्धा से युक्त होकर पुष्प दन्त को जावे जिनके दर्शन मात्र से ही समस्त पातकों से छुटकारा पा जाया करता है ॥२१॥

गुह्यञ्चैव महाकालं ततो गच्छेत्समाहितः ।
यस्य दर्शनमात्रेण गुह्यपापैः प्रमुच्यते ॥२२
ततो गच्छेत्समाधिस्थो दुर्वासेश्वरमुत्तमम् ।
यस्य दर्शनमात्रेण कृतकृत्यो नरो भवेत् ॥२३
श्वासावरोधनं कृत्वा दुर्वासस्य समीपतः ।
गौरी गत्वा महादुर्गा त्यजेच्छ्वा समनन्तर ॥२४

तत्रोच्छ्वासोविमोक्तव्यस्तामर्चेत्तु समाहितः ।
कालेश्वरं ततो गच्छेद्देवदेवं महेश्वरम् ॥२५
यस्य दर्शनमात्रेण यमलोकं न पश्यति ।
बधिरेशं ततो गच्छेद्देवदेवं महेश्वरम् ॥२६
यस्य दर्शनमात्रेण बधिरत्वं न जायते ।
यात्रेश्वरन्ततो गच्छेद्यात्रा पूर्णफलप्रदम् ॥२७
कीर्त्तयेदात्मनोनाम स्थानं गोत्रञ्च तत्र वै ।
न कीर्त्तयेद्यदानाम सा यात्रा विफला भवेत् ॥२८

इसके पश्चात् सावधान होकर गुह्य महा काल की ओर जावे जिसके केवल दर्शन से ही गुह्य पातकों से प्रमुक्त हो जाता है ॥२२॥ फिर समाधि में स्थित होकर उत्तम दुर्वासेश्वर को गमन करे जिनके दर्शन से मनुष्य कृतकृत्य (सफल) हो जाया करता है ॥२३॥ दुर्वास के समीप में श्वास का अवरोध करे और महा दुर्गा गौरी के समीप जाकर बाद में श्वास का त्याग करे ॥२४॥ वहाँ पर उच्छ्वास का विमोचन करना चाहिए और उस देवी का सावधान होकर अर्चन करे। इसके उपरान्त वहाँ से देवों के देव महेश्वर कालेश्वर को गमन करे ॥२५॥ जिसके केवल दर्शन से ही यमलोक को नहीं देखता है। फिर देवदेव महेश्वर बधिरेश को जावे ॥२६॥ जिसके दर्शन मात्र से ही बधिरत्व नहीं होता है। फिर यात्रा के पूर्ण फल को प्रदान करने वाले यात्रेश्वर को जावे ॥२७॥ वहाँ पर अपने नाम-स्थान और गोत्र का कीर्तन करे। यदि नाम आदि का कीर्तन नहीं करता है तो वह यात्रा विफल हो जाया करती है ॥२८॥

देवस्याग्रे ततो व्यास ! उपविश्य समाहितः ।
भक्तियुक्तः स्तुतिं ब्रूयान्नमस्कृत्वा पुनः पुनः ॥२९
मया समर्पिता यात्रा त्वत्प्रसादान्महेश्वर !
संसारसागराद् घोरान्मामुद्धर जगत्पते !॥३०
अनेन विधिना यस्तु महाकालं प्रदक्षयेत् ।
प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तदीपा वसुन्धरा ॥३१

गोलक्षं द्विजवर्य्याय दत्वाल्लभते य फलम् ।
तत्फलदेवदेवस्य सकृत्कृत्वा प्रदक्षिणम् ॥३२
भक्त्या परमयायुक्तो महाकालं प्रदक्षयेत् ।
पदे पदे यशफलमिति मे शङ्करोऽब्रवीत् ॥३३
षष्टिकोटिसहस्राणि षष्टिकोटिशतानि च ।
पूजितानि भवन्त्यत्र यात्रेश्वर समर्चनात् ॥३४
य एव कुरुते यात्रां शिवध्यानपरायणः ।
स वस्त्रन्दक्षिणा दद्यात्तस्य पुण्यफल शृणु ॥३५

हे व्यास ! फिर देवता के सामने समाहित होकर बैठ जावे घोर भक्ति से युक्त होकर बारम्बार नमस्कार करके स्तुति बोले ॥२९॥ हे महेश्वर ! मैंने अपनी यात्रा समर्पित करदी है। आपके प्रसाद से हे जगत्पते ! इस घोर संसार सागर से मेरा उद्धार करो ॥३०॥ जो इस विधि से महाकाल की प्रदक्षिणा करता है उसने सात द्वीप से युक्त वसुन्धरा की परिक्रमा करली है ॥३१॥ द्विज को एक लाख गौओं का दान करने से जो फल प्राप्त होता है वही देवों के देव की एक बार प्रदक्षिणा करने से प्राप्त होता है ॥३२॥ परम भक्ति से युक्त होकर महाकाल की प्रदक्षिणा करे। भगवान शङ्कर ने कहा है कि मेरी परिक्रमा मे पद पद मे यज्ञ का फल होता है ॥३३॥ यहाँ पद यात्रेश्वर के समर्चन से साठ हजार करोड़ और साठ सौ करोड़ पूजित होते है ॥३४॥ जो शिव के ध्यान में परायण होकर इस प्रकार से यात्रा करता है और वस्त्र के सहित दक्षिणा देता है उसका पुण्य फल श्रवण करो ॥३५॥

सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यतेनात्र संशयः ।
एव यात्रा समाप्याऽथ गत्वा च स्वगृह नरः ॥३६
मात्रादैवत सख्यान्वं षड्विंशति द्विजोत्तमान् ।
भोजयेच्छिवभक्तांश्च शिवध्यानपरायणान् ॥३७
सवरत्रा दक्षिणा दत्वा प्राप्यानुज्ञा विसर्जयेत् ।
यात्राक्रमेण चैकैक तीर्थान्तरमनुव्रजेत् ॥३८

धर्मोपदेशकेपश्चात् सर्वोपस्करसंयुताम् ।
धेनुम्पयस्विनीं दद्याद्वित्तशाठ्य विवर्जितः ॥३९
भुञ्जीत च स्वयं व्यास ! सर्वभृत्यसमन्वितः ।
दीनानाथ दरिद्रान्ध विकलांश्चापि भोजयेत् ॥४०
यदत्रफलमुद्दिष्टं तद्वदाम शृणुष्व मे ।
कुलानां शतमुद्धृत्य मातापित्रोस्समाहितः ॥४१
कल्पकोटिसहस्राणि शिवलोके स मोदते ॥४२

सात जन्मों मे किए हुए पाप से मनुष्य छुटकारा पा जाता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । इस प्रकार से यात्रा को समाप्त करके इसके अनन्तर मनुष्य अपने घर जावे ॥३६॥ यात्रा के देवों की संख्या के अनुसार छब्बीस परम श्रेष्ठ—शिव के भक्त और शिव के ध्यान में परायण द्विजों को भोजन करावे ॥३७॥ वस्त्रों के सहित दक्षिणा देकर उनसे आज्ञा प्राप्त करके उनको विदा करना चाहिये । यात्रा के क्रम से एक चक्र अन्य तीर्थ में जावे ॥३८॥ उनके पीछे किसी धर्म के उपदेश करने वाले द्विज को सभी उपस्करों से युक्त दूध देने वाली धेनु को वित्त (धन) की शठता से रहित होकर दान करना चाहिए ॥३९॥ हे व्यास ! फिर सभी भृत्यों से युक्त स्वयं भोजन करे और जो दीन—अन्धे-अनाथ-दरिद्री और इन्द्रियों से विकल मनुष्य हों उनको भी भोजन कराना चाहिए ॥४०॥ जो भी इस में पुण्य-फल उद्दिष्ट है उसे हम बतलाते हैं । उसको मुझसे आप श्रवण करो । वह यात्री अपने सौ कुलों का उद्धार करके माता पिता का भी उद्धार समाहित होकर कर देता है और सहस्रों करोड़ कल्पों तक शिवलोक में निवास करता हुआ आनन्द प्राप्त किया करता है ॥४१-४२॥

---

## ६३—वाल्मीकेश्वरमहिमावर्णन

वाल्मीकेरीश्वरं व्यास ! भक्त्या देवं प्रपूजयेत् ।
मौनी ध्यानपरो भूत्वा सुकवित्वमवाप्नुयात् ॥१

जाता है। वह पातक किसका है—यह कहो। क्या उन्होंने यह नहीं कहा था कि स्वयं प्राणियों का वध मत करो ॥१४॥

नकदाचिन्मयातेतु संपृष्टार्हदृशंवचः।
युष्माकंवचसामेऽद्य प्रतिबोधः प्रवर्तते ॥१५
गत्वा पृच्छामि तान्सर्वान् कस्य भावश्च कीदृशः।
यूयमत्रैव तिष्ठध्वं यावदागमनं मम ॥१६
इत्युक्त्वातान्जगामाशुपितरं स्वमुवाचह।
धर्मस्यप्रतिघातेन प्राणिनापीडनेनच ॥१७
सुमहद्दृश्यतेपापं कस्यैतत्कथ्यतामम।
पिताप्राहाथतन्माता नापुण्यमावयोरिह ॥१८
त्वं जानासिकुरुषे यत्कृत भोग्यंपुनस्त्वया।
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा भार्यावचनमब्रवीत् ॥१९
तयाप्युक्तं नमेपापं पापमेतत्तव वतु।
तद्वाक्यमब्रवीत्पुत्रं बालोऽहमितिसोऽब्रवीत् ॥२०
तज्ज्ञात्वाभाषितं तेषां चेष्टितञ्चैवतत्त्वतः।
नष्टोऽहमितिमन्वानः शरणमेतपस्विनः ॥२१

अग्नि शर्मा ने कहा—मैंने तो इस प्रकार से उनसे कभी नहीं पूछा है। आज आपके वचन से ही मुझे यह प्रतिबोध हो रहा है ॥१५॥ मैं जाकर उन सभी से पूछता हूँ और देखता हूँ कि इस विषय में किसका क्या भाव है। आप लोग यहीं पर ठहरिये जब तक मैं वापिस लौट कर यहाँ पर आता हूँ ॥१६॥ यह कह कर वह उनके पास गया और अपने पिता से बोला कि यह धन जो मैं लाता हूँ वह धर्म का प्रतिघात करके और प्राणियों को पीड़ा देकर ही लाता हूँ ॥१७॥ यह एक महान् पाप दिखाई देता है सो यह मुझे बतलाओ कि यह पाप किसको होता है। तब उसके माता और पिता ने कहा कि इसमें हम दोनों का यह कुछ भी पाप नहीं है ॥१८॥ तू ही इसे जानता है क्या करता है। जो तू करता है वह तुझे ही भोगना भी है। उन दोनों के वचन को सुनकर उसकी भार्या ने यह वचन कहा था ॥१९॥ उसने भी यही कहा कि मुझे इसका

कुछ भी पाप नहीं है। यह तो तुम्हारा ही पाप है। यही वचन पुत्र से कहा तो वह बोला—मैं तो बच्चा हूं ॥२०॥ उन सबके कथन को जानकर और उनके चेष्टित को तात्त्विक रूप से समझ कर वह यह मानता हुआ कि मैं तो विनष्ट ही हो गया अब तो मेरे रक्षक वे तपस्विगण ही हैं ॥२१॥

क्षिप्त्वाथलकुटं कृष्णयेनवं जन्तवोहताः ।
प्रकीर्यकेशांस्त्वरितोऋषीणामग्रतः स्थितः ॥२२
प्रणम्य दण्डपातेन ततो वचनमब्रवीत् ।
न मे माता न च पिता न भार्या न च मे सुतः ॥२३
सर्वैस्तैः परित्यक्तोऽहं भवन्तांशरणंगतः ।
सुष्ठूपदेशदानान्मांनरकात्त्रातुमर्हथ ॥२४
एवं तं वादिनं दृष्ट्वा ऋषयोऽत्रिमथाब्रुवन् ।
भवतोवचनादस्य प्रतिबोधस्समागतः ॥२५
भवताऽयमनुग्राह्यः शिष्योभवतुतेमुने ! ।
तथेत्युक्त्वायतम्प्राह इमंध्यानं समाचर ॥२६
अनेनध्यानयोगेन पापपुञ्जं प्रणाशय ।
सस्थितो वृक्षमूलेत्वं परांसिद्धिंगतिष्यसि ॥२७
इत्युक्त्वा ते ययुस्सर्वे सकामः सोऽपि तत्र वै ।
तद्ध्यानस्थोऽभवद्योगी वत्सराणि त्रयोदश ॥२८

हे कृष्ण ! इसके अनन्तर उस लाठी को फेंक कर जिससे बहुत-से जन्तुओं को मारा था, केशों को फैला कर शीघ्र ही वह ऋषियों के सामने स्थित हो गया था। दण्ड के समान गिर कर प्रणाम किया और इसके पश्चात् यह वचन बोला—मेरी माता नहीं है और न पिता—भार्या और कोई सुत ही है। मैं उन सबके द्वारा परित्यक्त हूँ और आपकी शरणागति में हूं। बहुत अच्छा उपदेश का दान करके मेरी नरकों से रक्षा करो ॥२२-२४॥ इस प्रकार से इसको कहते हुए देख कर ऋषि गण अत्रि से बोले—आपके ही वचन से इसको प्रतिबोध आगया है। हे मुने ! आपके द्वारा इस पर अनुग्रह करना ही चाहिए यह आपका शिष्य हो जावे।

ऐसा ही होगा-यह कह कर इसके अनन्तर उससे कहा कि इस ध्यान का समाचरण करो ॥२५-२६॥ इस ध्यान के योग से पापों के समूह का विनाश कर। इस वृक्ष के मूल में स्थित होकर ही तू परं सिद्धि को प्राप्त हो जायगा ॥२७॥ यह कर वे सब चले गये थे। रामनाम से युक्त वह भी उसी ध्यान में स्थित त्रयोदश वर्ष में योगी होगया था ॥२८॥

निवृत्तास्तुयथातेन मुनयस्तत्प्रशुश्रुवुः ।
उदीरितध्वनिस्तेनवल्मीकेविस्मयान्विताः ॥२९
ततस्तु दृष्ट्वा वल्मीकं काष्टीभूतोरुशंकुभिः ।
तं दृष्ट्वोत्थापयामासुर्मुनयो नयसयुतम् ॥३०
ननमस्केऽयतान्सर्वान् समुनिमुनिपुङ्गवान् ।
तान्प्राहप्रणतोभूत्वातपसादीप्ततेजसः ॥३१
प्रसादाद्भवतामद्य ज्ञानं लब्धंमयाशुभम् ।
दीनोऽहमुद्धृतस्सर्वैर्मग्नोऽहंपापकर्दमे ॥३२
श्रुत्वा तस्येति तद्वाक्यमूचुः परमधार्मिकाः ।
वल्मीकेऽस्मिन् स्थितः पुत्र ! यतस्त्वमेकचित्ततः ॥३३
वाल्मीकिरिति ते नाम भुवि ख्यातं भविष्यति ।
इत्युक्त्वा मुनयोजग्मुः स्वां दिशं तपसान्विताः ॥३४
गतेपुमुनिमुख्येपु वाल्मीकिस्तपताम्वरः ।
कुशस्थल्यामथागम्य समाराध्यमहेश्वरम् ॥३५
तस्मात्कवित्वमासाद्य चक्रे काव्यं मनोरमम् ।
रामायणञ्च यत्प्राहुः कथासु प्रथमं स्थितम् ॥३६
ततः प्रभृति देवेशो वाल्मीकेश्वरसञ्ज्ञकः ।
ख्यातोऽत्रन्त्यां ततो व्यास ! कवित्वदायको नृणाम् ॥३७

जिस प्रकार से उनके द्वारा निवृत्त हुए थे उन मुनियों ने उस शुश्रूषण किया था। उसने 'वल्मीक में ध्वनि कही थी। मुनिगण विस्मय से युक्त हो गये थे। इसके अनन्तर ऊरु शंकुओं से काष्ठ के सदृश हुआ वल्मीक को देखा था ॥२९॥ उसको देख कर जो तप से पूर्ण संयुत था

मुनिगण ने उसको उठाया था ॥३०॥ उसने उन सब मुनिश्रेष्ठों को नम-स्कार किया था और परम प्रण रत होकर तप से दीप्त तेज होने वाले उन से बोला–॥३१॥ आपके प्रसाद से मैंने आज शुभ ज्ञान प्राप्त किया है। मैं बड़ा दीन हूँ, मैं पापों के बीच में मग्न(फँसा) हुआ था आप सब ने मेरा उद्धार कर दिया है ॥३२॥ उसके इस वचन को सुनकर परम धर्म के ज्ञाता उन ऋषियों ने कहा—हे पुत्र ! इस वल्मीक मे एक चित्त होकर आप स्थित रहे थे। इसलिए भूमण्डल में तेरा नाम 'वाल्मीकि' यह प्रसिद्ध होगा। यह कह कर मुनिगण तपश्चर्या से युक्त हुए अपनी अभीष्ट दिशा को ओर चले गये थे। ३३-३४॥ उन प्रमुख मुनियों के चले जाने पर तपस्वियों मे श्रेष्ठ वाल्मीकि ने कुश स्थली में समपान होकर महेश्वर की समाराधना की थी। उस से कवित्व प्राप्त करके उनने एक परम सुन्दर काव्य की रचना की थी जिसको रामायण कहते हैं और जो कथाओं मे प्रथम स्थित है ॥३५-३६॥ तभी से लेकर वाल्मीकेश्वर नाम के देवेश अवन्ती पुरी मे विख्यात होगये थे। हे व्यास ! यह मनुष्यों को कवित्व प्रदान करने वाले हैं ॥३७॥

---

## ६४—गणेशमाहात्म्यवर्णन

लड्डुकैश्चततोदेवैर्विघ्ननाथस्समर्चितः ।
तदाप्रभृतिविख्यातो विघ्नेशोलड्डुकप्रियः ॥१
यस्समर्चयतेभक्त्या तस्यविघ्न नजायते ।
तस्मैददातिसन्तुष्टस्सर्वकामान्विनायकः ॥२
नक्ताहारश्चतुर्थ्यांच स्नात्वाशिप्राविशेषतः ।
रक्ताम्बरधरोभूत्वा रक्तपुष्पैर्विनायकम् ॥३
रक्तचन्दनतोयेन मन्त्रस्स्नपनपूर्वकम् ।
चन्दनेनापिरक्तेन तंविलेप्य प्रपूजयेत् ॥४
धूपदद्यात्तथादिव्यं सुगन्धलड्डुकप्रियम् ।
नैवेद्येलड्डुकादंयाआज्यखण्डपरिप्लुताः ॥५

नतस्यजायतेव्यास भयंविघ्नं कदाचन ।
लभतेचतथाभीष्टं मृतश्शिवपुरंव्रजेत् ॥६
अवतीर्णः पुनर्लोके जायते वसुधाधिपः ।
मतिमान् पुत्रवाञ्छूरो नात्रकार्याविचारणा ॥७

महर्षि सनत्कुमारजी ने कहा—इसके अनन्तर लड्डुक देवों के द्वारा विघ्नों के नाश को अर्चना की गयी थी तभी से लेकर विघ्नेश लड्डुक प्रिय विख्यात हो गये थे ॥१॥ जो भक्तिभाव से इसकी पूजा करता है उसको विघ्न कभी नहीं हुआ करता है। उस अर्चन को परम सन्तुष्ट होकर विनायक सभी कामों को दे दिया करते हैं ॥२॥ चतुर्थी तिथि में रात्रि को एक बार आहार करे विशेष रूप से शिप्रा में स्नान करे। स्वयं रक्त वस्त्र धारी होकर रक्त ही पुष्पों से और लाल चन्दन जल से मन्त्रों के द्वारा स्नपन करावे फिर रक्त चन्दन से गणेश के शरीर पर विलेपन करे और विनायक को पूजा करे ॥३-४॥ इसके उपरान्त लड्डुक प्रिय को परम सुगन्ध-सम्पन्न धूप का आघ्राण कराना चाहिए। नैवेद्य में घृत और खांड से खूब परिप्लुत लड्डू देने चाहिए ॥५॥ हे व्यास ! उस अर्चना करने वाले मनुष्य को भय और विघ्न कभी भी नहीं होते हैं और वह अभीष्ट पदार्थों की प्राप्ति किया करता है मृत्यु होने पर वह सीधा शिवपुर गमन करता है ॥६॥ फिर लोक में जन्म लेकर राजा होता है, बुद्धिमान्, पुत्रवान् और शूर होता है, इस विषय में कुछ भी विचार नहीं करना चाहिए ॥७॥

---

## ६५—सोमवतीतीर्थमाहात्म्यवर्णन

तीर्थंसोमवतीनाम लिङ्गंसोमेश्वरं तथा ।
अभूदेतत्कथं नाम श्रोतुमिच्छामितत्त्वतः ॥१
शृणुव्यासयथोत्पन्नं सोमतीर्थं सुशोभनम् ।
सोमेश्वरं तथालिंगमेतत्सत्यंवदामिते ॥२
यो देवो भगवान्सोमो लोकस्याप्ययनं परम् ।
आसीत्तस्य पुरा व्यास ! पिता विप्रो महातपाः ॥३

अवन्त्याञ्च महाभागो योऽत्रिनामातपोनिधिः।
वर्षाणां त्रीणि दिव्यानि सहस्राणि तपो महत् ॥४
ऊर्ध्वबाहुस्सर्वेतेपे ब्रह्मध्यानपरायणः।
ऊर्ध्वंगतं ततोव्यास ब्राह्मं तेजोमहात्मनः ॥५
नेत्राभ्यांतस्यसुस्राव काशयंश्चदिशोदश।
तेजस्तत्सहसादृष्ट्वा ततोवेशोद्भवं स्वतः ॥६
दिशश्च तद्यदा व्यास ! सर्वाधतु मशक्नुवन् ।
सुस्राव च तदा दिग्भ्यस्तद्धितेजोऽतिदुस्सहम् ॥७

महर्षि व्यासजी ने कहा—तीर्थ का नाम सोमवती तथा लिङ्ग का नाम सोमेश्वर हुआ था–यह कैसे हुआ—यह मैं तात्त्विक रूप से सुनना चाहता हूँ ॥१॥ सनत्कुमारजी ने कहा—हे व्यास ! जिस तरह से सुशोभन सोमतीर्थ समुत्पन्न हुआ तथा सोमेश्वर लिङ्ग हुए—यह सभी आपको सत्य बतलाता हूँ ॥२॥ जो भगवान् सोमदेव हैं जो कि लोक की परम तृप्ति करने वाले हैं। हे व्यास ! पहिले उनका महान् तपस्वी विप्र पिता था ॥३॥ अवन्ती पुरी में जो महान् तपस्वी महाभाग अत्रि नाम वाला था। उसने दिव्य तीन हजार वर्ष तक महान् तप किया था ॥४॥ ब्रह्म के ध्यान में तत्पर होते हुए उसने ऊर्ध्वबाहु होकर तप किया था। हे व्यास ! तब उस महात्मा का ब्रह्म तेज ऊर्ध्व को चला गया था ॥५॥ दशों दिशाओं में प्रकाश करता हुआ उनका तेज नेत्रों से स्रवित हुआ था। सम्पूर्ण देश में स्वतः उत्पन्न हुए उस तेज को सहसा देखकर हे व्यास ! जब दिशाएँ सबको धारण करने में असमर्थ हो गईं थीं तो वह अत्यन्त दुस्सह तेज दिशाओं से स्रवित हुआ था ॥६-७॥

लोकांश्चभानयन्सर्वान् धरण्यांवैपपातह।
सोमोजातस्ततस्तेनशीतांशुश्चजनप्रियः ॥८
सरित्सोमात्समुत्पन्ना व्यासतेनैवतेजसा।
प्रविष्टासा नदीनिग्राममृतेनातिपूरिता ॥९
ततस्सोमवती निम्ना विख्याता ह्यतिपुण्यदा।
नाममुक्ता नदी निम्ना दृष्ट्वा पापं व्यपोहति ॥१०

ख्याताचत्रिपुलोकेषु पापिनापुण्यदायिनी ।
ब्रह्महावासुरापोवास्तेयोवागुरुतल्पग ॥११
चत्वारोऽप्यत्रपापेन मुच्यन्तेदर्शनादध्रुवम् ।
अमासोमौयदायुक्तौ सोमवत्या तदामुने ॥१२
स्नान दान चयोधीमाञ्जपहोम समाचरेत् ।
अक्षयतस्यतत्सर्व यावच्चन्द्रदिवाकरौ ॥१३
तिलोदकप्रदानेनपिण्डदानेनकालिज । ।
अकालेकालिकीतृप्ति पितृणाञ्चयथोदिता ॥१४

समस्त लोको मे प्रकाश करता हुआ वह तेज फिर भूमि मे गिरा था। उससे सोम समुत्पन्न हुआ उससे वह शीतल किरणो वाला और जनो का परम प्रिय था ॥८॥ हे व्यास ! उसी तेज से एक सोमा नदी समुत्पन्न हुई थी वह अमृत से अतिपूरित नदी शिप्रा नदी में प्रविष्ट हो गई थी ॥९॥ तभी से फिर अत्यन्त पुण्य देने वाली शिप्रा सोमवती विख्यात हो गई थी। सोम से युक्त शिप्रा के दर्शन करके मनुष्य पापो से छुटकारा पा जाता है ॥१०॥ तभी से वह नदी तीनो लोको मे पापियो को पुण्य प्रदान करने वाली विख्यात हो गई थी। चाहे कोई ब्राह्मण की हत्या करने वाला हो अथवा सुरा पीने वाला हो—चोर हो या गुरु शय्या पर गमन करने,वाला हो ॥११॥ ये चारो ही महा पातकी यहाँ पर केवल दर्शन से ही निश्चय ही पाप से मुक्त हो जाया करते हैं। हे मुने ! अमावस्या और सोम जब दोनो युक्त हो तो वह सोमवती होती है उसमे ॥१२॥ जो धीमान् स्नान—दान—जप—होम का समाचरण करता है उसका वह सभी अक्षय हो जाता है और वह जब तक चन्द्र और सूर्य स्थित है रहा करता है ॥१३॥ हे कालिज ! तिलोदक दान से-पिण्ड दान से अकाल मे कालिकी तृप्ति और पितृगणो की जैसी कही गयी है ॥१४॥

सर्वत्रदुर्लभाशिप्रा सोमस्सोमग्रहस्तथा ।
सोमेश्वरस्सोमवारस्सकारा पञ्चदुर्लभा ॥१५
शिप्रासोमजलव्यास कोटितीर्थफलप्रदम् ।
अमासोमसमायोगेपितृतीर्थसमस्मृतम् ॥१६

अमायांसोमवारश्चेद्व्यतीपातोयदाभवेत् ।
शतगुणंगयायास्तुसोमवत्याप्रकीर्तितः ॥१७
एवसोमवतीतीर्थं जातमत्रमहामुने ! ।
सोमंदृष्ट्वायपतितं क्षितौब्रह्माजगद्गुरुः ॥१८
रथे तं स्थापयामास लोकाना हितकाम्यया ।
स तु वेदमयो व्यास ! धर्मज्ञस्सत्यसङ्ग्रहः ॥१९
युक्तोवाजिसहस्रेण ब्रह्मणाप्रेरितस्तदा ।
दृष्ट्वासोमंततोदेवा रथे त ब्रह्मणायुतम् ॥२०
तुष्टुवुस्सर्वभावेन हृष्टाः सर्वे समाहिताः ।
तस्य सस्तूयमानस्य तेजस्सोमस्य भास्वरम् ॥२१

सर्वत्र शिप्रा दुर्लभ है । सोम—सोमग्रह—सोमेश्वर और सोमवार ये पाँच सकार दुर्लभ होते हैं ॥१५॥ हे व्यास ! शिप्रा का सोमजल करोड़ तीर्थों का पुण्य-फल प्रदान करने वाला है । अमा का और सोम का योग होने पर—पितृ तीर्थ के सदृश कहा गया है ॥१६॥ अमा में सोमवार और जब यदि व्यतीपात होवे, गया से सौ गुना सोमवती में कहा गया है ॥१७॥ हे महामुने ! इस प्रकार से यहाँ पर सोमवती तीर्थ हुआ था । जगत् के गुरु ब्रह्माजी ने भूमि पर पड़े हुए सोम को देखा था ॥१८॥ लोकों के हित की कामना से उसको रथ में स्थापित कर दिया । हे व्यास ! वह तो वेदों से परिपूर्ण—सत्य संग्रह वाले और धर्म के ज्ञाता थे ॥१९॥ उस समय में एक सहस्र अश्वों से युक्त और ब्रह्माजी के द्वारा प्रेरित था । रथ में ब्रह्मा से युक्त सोम को देवों ने देखा था ॥२०॥ उनने सर्व भाव से परम प्रसन्न और सावधान होकर सबने स्तवन किया था । सस्तूयमान उस सोम का तेज परम भास्वर होगया था ॥२१॥

आप्यायमानं त्रींल्लोकान् पापतद्धरणीतले ।
ब्रह्मातेनरथेनाथ सागरान्तावसुन्धराम् ॥२२
त्रिः सप्तकृत्वोऽतियशाश्चकारसप्रदक्षिणम् ।
तस्यपतितंसतेजो ह्यामसोमस्यनीतलम् ॥२३

तदेवौषधयोदिव्याजाताभुविसुनिर्मलाः ।
याभिर्धार्योह्ययंलोकः प्रजाश्चैवचतुर्विधाः ॥२४
तुष्टोऽथभगवान्सोमो जगतस्सर्वदोमुने ! ।
दशवर्षसहस्राणि तेपेऽतिदुस्सहंतपः ॥२५
ततस्तस्मै ददौस्वाम्यंब्रह्मलोकपितामहः ।
बीजौषधीनां विप्राणां सोमोराजाबभूवह ॥२६
सप्तविंशतिसोमाय दाक्षायण्योमहाव्रताः ।
पत्न्यःप्राचेतसोदक्षोददौनक्षत्रसञ्ज्ञका। ॥२७
सतत्प्राप्यमहद्राज्यं सोमोभार्यायुतस्तदा ।
समारेभेराजसूयं सहस्रशतदक्षिणम् ॥२८

तीनों लोकों की तृप्ति करने वाला वह धरणी तल पर गिर गया था। ब्रह्माजी ने उस रथ से सागरों के सहित वसुन्धरा की इक्कीस बार अतिशय से प्रदक्षिणा की थी। उसका जो तेज है व्यास ! सोम का शीतल गिरा था वे ही परम दिव्य सुनिर्मल ओषधियाँ भूमि में उत्पन्न हो गईं थी जिनसे यह लोक चार प्रकार की प्रजा धारण करने के योग्य हो गया था ॥२२-२४॥ हे मुने ! जगत् की सब कुछ देने वाला भगवान् सोम परम तुष्ट हो गये थे और दस हजार वर्ष पर्यन्त अतीव दुस्सह तप किया था ॥२५॥ इसके अनन्तर ब्रह्म लोक के पितामह ब्रह्माजी ने उसको स्वामि पद प्रदान किया था। सोम बीजौषधियों का विप्रों का राजा हो गया था ॥२६॥ प्राचेतस दक्ष ने उस सोम के लिये दाक्षायणी—महान् व्रत वाली सत्ताईस नक्षत्र संज्ञा से सम्पन्न पत्नियाँ प्रदान की थी ॥२७॥ उस समय में भार्याओं से युक्त सोम ने उस महान् राज्य को प्राप्त करके सहस्र और शत दक्षिणा वाला राजसूय यज्ञ का आरम्भ कर दिया था ॥२८॥

होताचभगवानत्रिरध्वर्युर्भगवान्भृगुः ।
हिरण्यगर्भश्चोद्गाता ब्रह्माब्रह्मत्वमेयिवान् ॥२९
सदस्यो भगवान् विष्णुस्सनकादिमुखैर्वृतः ।
ददौ स दक्षिणां सोमस्त्रींल्लोकान्सुसमाहितः ॥३०

सिनीवालीकुहूश्च च द्युतिः पुष्टिः प्रभावसुः ।
कीर्तिर्धृतिश्च लक्ष्मीस्तं देव्यो दिव्यास्सिषेवरे ॥३१
प्राप्यावभृथमव्यग्रस्सर्वेदेवर्षिपूजितः ।
अतीवराजतेचन्द्रो दश प्रोद्भासयन्दिशः ॥३२
सस्य तत्प्राप्य दुष्प्राप्यमैश्वर्यमृषिसंकृतम् ।
विबभ्राम मतिर्व्यास ! तदामृतमयस्य च ॥३३
बृहस्पतेस्यदा भार्यां तारानाम्नी यशस्विनीम् ।
जहार तमसा साध्वीमवमान्याङ्गिरस्सुतम् ॥३४
वाच्यमानस्तदा सोमो देवैर्देवर्षिभिस्तथा ।
नैव व्यसर्जयत्तारां तस्मा आङ्गिरसाय च ॥३५

उस यज्ञ मे भगवान् अत्रि होता हुए थे-भगवान् भृगु अध्वर्यु थे—हिरण्य गर्भ उद्गाता थे और ब्रह्मत्व का पद स्वयं ब्रह्माजी ने प्राप्त किया था ॥२६॥ सनकादि प्रमुखो से समावृत भगवान् विष्णु सदस्य थे । उनने सुसमाहित होते हुए तीन लोक सोम को दक्षिणा दी थी ॥३०॥ सिनीवाली—कुहू—द्युति—पुष्टि—प्रभावसु—कीर्ति—धृति और लक्ष्मी इन दिव्य देवियो ने उसकी सेवा की थी ॥३१॥ अवभृथ को प्राप्त कर समस्त देवर्षियो के द्वारा वन्दित हुआ अव्यग्र वह चन्द्रमा दशो दिशाओ को प्रोद्भासित करता हुआ अत्यन्त अधिक शोभा सम्पन्न हो गया था ॥३२॥ हे व्यास ! ऋषियो के द्वारा सत्कार किया हुआ वह दुष्प्राप्य ऐश्वर्य प्राप्त करके उसकी बुद्धि जो कि अमृत मय था विभ्रान्त हो गयी थी ॥३३॥ उस समय मे अङ्गिरा के पुत्र का अपमान करके बृहस्पति की भार्या परम यशस्विनी तारा नाम वाली का जो कि अत्यन्त ही साध्वी थी अन्धकार से इसने हरण कर लिया था ॥३४॥ उस समय मे देवो और देवर्षियो के द्वारा कहा गया भी था किन्तु सोम ने उस आङ्गिरस के लिये उस तारा को नही विसर्जित किया था ॥३५॥

बृहस्पतेस्ततः पक्षं शक्रोजग्राहकोपतः ।
महिशिष्योमहातेजा हितुः पूर्वं बृहस्पतेः ॥३६

ततोयुद्धमभूत्तत्र सुघोरंशक्रसोमयोः ।
देवानां दानवानाञ्च व्यासत्रासङ्करं महत् ॥३७
सर्वेभीतास्ततोदेवा ब्रह्माणं शरणं गताः ।
अग्रतोब्रह्मणोयुद्धं कथितं सोमशक्रयोः ॥३८
देवानांवचनं श्रुत्वा सार्द्धदेवैः पितामहः ।
आगत्य युद्धसमयेऽवारयद्दं वदानवान् ॥३९
वारितास्ते स्थितास्तत्र युद्धं त्यक्त्वा सुरासुराः ।
तारामादाय स तदा ददावाङ्गिरसे द्विजः ॥४०
तांचसप्रसवां दृष्ट्वा आहभार्यांबृहस्पतिः ।
अन्यदीयोनतेयोन्या गर्भोधायःकथञ्चन ॥४१
उत्ससर्जततस्तारां कुमारं देवरूपिणम् ।
ऐषिकास्त्रं समादाय ज्वलन्तमिवपावकम् ॥४२

इसके उपरान्त कोप से इन्द्र ने बृहस्पति के पक्ष को ग्रहण किया। वह पहिले बृहस्पति के पिता का शिष्य था ।३६। इसके पश्चात् इन्द्र और चन्द्र का अतीव भयानक युद्ध हुआ था । हे व्यास ! वह युद्ध देवों को और दानवों को भी महान् भय समुत्पन्न करने वाला अत्यन्त भीषण था ॥३७॥ उस उग्र युद्ध से सभी देवता डर गये थे और फिर वे श्रीब्रह्माजी की शरण मे प्राप्त हुए थे। ब्रह्माजी के समाने सोम और शक्र के युद्ध को कहा था ॥३८॥ देवो के इस वचन का श्रवण कर पितामह देवो के साथ ही युद्ध के समय मे आकर उन्होंने देवों और दानवो को रोक दिया था ॥३९॥ रोके हुए सुर-असुर युद्ध का त्याग करके वहाँ पर स्थित हो गये थे। उनने उस समय में तारा को लाकर आङ्गिरस ( बृहस्पति ) को द्विज ( सोम ) ने दे दिया था ॥४०॥ उस तारा को प्रसव से युक्त देख कर बृहस्पति भार्या से बोले— दूसरे का गर्भ तेरी योनि मे कभी भी धारण नहीं होना चाहिए ॥४१॥ इस कथन के पश्चात् तारा ने ऐषिकास्त्र लेकर जलती हुई अग्नि के समान देव रूपी कुमार का उत्सर्जित कर दिया था ॥४२॥

स तेजो जातमात्रोऽपि देवानामाक्षिपद्यशः ।
ततस्संशयमापन्ना ऊचुस्तारां दिवौकसः ॥४३
कस्यायं ब्रूहिसुभगे! सोमस्याथबृहस्पतेः ।
नाचचक्षेदेवताना वेधाः पप्रच्छताम्पुनः ॥४४
यदत्रसत्यंतद्ब्रूहि तारे! कस्यसुतोह्ययम् ।
साप्राञ्जलिरुवाचेदं ब्रह्माणं वरदं विभुम् ॥४५
सोमस्येति महासौम्यः कुमारो देवसन्निभः ।
सोमस्य तं सुतं ज्ञात्वा परिष्वज्य पितामहः ॥४६
बुधइत्यकरोन्नाम तस्यपुत्रस्यवैतदा ।
परदारापहाराच्च यत्पापं तनुदुस्सहम् ॥४७
तेनसोमोऽभवत्कुष्ठीक्षयरोगयुतस्तदा ।
ततोराज्येस्वकं पुत्रंस्थापयित्वायथाविधि ॥४८
अवन्तीमाजगामाशु सोमोदेवदिदृक्षया ।
सोमाहे सोमवत्याञ्च अमायोगेजितेन्द्रिय. ॥४९

जात मात्र ही उस तेज ने देवो के यश को आक्षिप्त कर दिया था । तब तो संशय को प्राप्त हुए देवों ने तारा से कहा ॥४३॥ हे सुभगे ! यह तो बताओ कि यह गर्भ किस का है सोम का है या बृहस्पति का है ? देवों से उसने कुछ नहीं कहा था तब फिर ब्रह्माजी ने उससे पूछा था ॥४४॥ हे तारे ! इसमें जो भी सत्य है वही बतला दो कि यह सुत किस का है । उस तारा ने हाथ जोड़ कर वरद विभु ब्रह्माजी से यह कहा—॥४५॥ यह महान् सौम्य देवों के सदृश कुमार सोम का है । पितामह ने उस पुत्र को सोम का जानकर समालिंगन किया था ॥४६॥ उसी समय उस पुत्र का 'बुध' यह नामकरण कर दिया था । पराई स्त्री का अपहरण करने से जो पाप है वह शरीर में दुस्सह हुआ करता है ॥४७॥ उस समय में उस पाप से सोम कोढ़ वाला और क्षय से युक्त हो गया था । इसके अनन्तर राज्य पर अपने पुत्र को विधि पूर्वक स्थापित करके वह शीघ्र ही सोम देव को देखने की इच्छा से अवन्ती पुरी में आगया था ।

सोमवार और सोमवती अमावस्या के योग में उन इन्द्रियों को जीतने वाले ने स्नान किया था ॥४८-४९॥

स्नात्वा सम्पूजयामास सोमस्तोमेश्वरं ततः ।
तस्य भक्त्या च सन्तुष्टः प्राह सोमं महेश्वरः ॥५०
मत्प्रसादाद्वपुः कान्तं तव सोम! भविष्यति ।
सोमेश्वरमितिख्यातं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥५१
एवं तुव्यास!तत्तीर्थं लिङ्गं चैवातिदुर्लभम् ।
कथितं तथ्यभावेन मयातुष्टेनसाम्प्रतम् ॥५२
श्रावणं प्राप्य यो मासं सोमनाथं जितेन्द्रियः ।
नित्यं पश्येन्नरोव्यास! तस्यपुण्यफलं शृणु ॥५३
सौराष्ट्रे सोमनाथस्य पूजायाः प्रत्यहं फलम् ।
लभते स नरो व्यास! नात्र कार्या विचारणा ॥५४

स्नान करके फिर सोम ने सोमेश्वर प्रभु का भली भाँति पूजन किया था। उसकी भक्ति से परम तुष्ट हुए महेश्वर ने सोम से कहा था ॥५०॥ हे सोम! मेरे प्रसाद से तेरा शरीर कान्त हो जायगा। फिर यह सोमेश्वर इस नाम से विख्यात हो गया था जो भुक्ति और मुक्ति दोनों को देने वाला था ॥५१॥ हे व्यास! इस प्रकार से वह तीर्थ और लिंग अत्यन्त दुर्लभ है। मैंने सत्य भाव से परम तुष्ट होते हुए अब तुमको बतला दिया है ॥५२॥ जो कोई जितेन्द्रिय होकर श्रावण के महीना में वहाँ पहुँच कर नित्य ही सोमनाथ का दर्शन करता है उस मनुष्य का पुण्य—फल सुनो ॥५३॥ सौराष्ट्र में सोमनाथ की पूजा का प्रतिदिन फल होता है वह नर हे व्यास! प्राप्त किया करता है—इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए ॥५४॥

---

## ६६—सौभाग्यतीर्थमाहात्म्यवर्णन

तीर्थे सौभाग्यके स्नात्वा दृष्ट्वा सौभाग्यकेश्वरम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः सौभाग्यं परमं लभेत् ॥१

घृततीर्थेनरः स्नात्वा घृतेनस्नापयेच्छिवम् ।
घृतमग्नावथोहुत्वा रुद्रलोकेमहीयते ॥२
देवीयोगेश्वरीप्रार्च्य सुरासुरनमस्कृताम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तः परं योगमवाप्नुयात् ॥३
शङ्खावर्तेनरः स्नात्वा सर्वपापविवर्जितः ।
धनधान्यसमायुक्तो जायतेनिर्मलेकुले ॥४
शुद्धोदकेचतुर्दश्या मुक्त्यर्थंस्नानवान्नरः ।
शिवं सुरेश्वरं दृष्ट्वा ततोमोक्षगतिर्भवेत् ॥५
तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
त्रिपुनरिति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ॥६
पूर्वंत्रेतायुगेव्यास! सुनेत्रोनामवैद्विजः ।
तस्यपुत्रः समुत्पन्नोविश्वावसुरितिस्मृतः ॥७

महा महर्षि श्री सनत्कुमार जी ने कहा—सौभाग्य तीर्थ में स्नान करके और सौभाग्येश्वर का दर्शन करके मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर परम सौभाग्य को प्राप्त होता है ॥१॥ घृत तीर्थ में स्नान करके मनुष्य घृत से ही शिव का स्नपन करावे। इसके अनन्तर अग्नि में घृत का हवन करे तो वह रुद्रलोक में प्रतिष्ठित होता है ॥२॥ सुर और असुरों के द्वारा वन्दित योगेश्वरी देवी की अर्चना करके मनुष्य सभी पापों से छुटकारा पाकर परम योग को प्राप्त किया करता है ॥३॥ शंखावर्त में मनुष्य स्नान करके सब पापों से रहित हो जाता है और धन-धान्य से समायुक्त होकर निर्मल कुल में समुत्पन्न होता है ॥४॥ चतुर्दशी तिथि में शुद्धोदक में मनुष्य मुक्ति के लिए ही स्नान वाला होता है। फिर सुरेश्वर शिव का दर्शन करके मोक्ष की गति वाला हो जाया करता है ॥५॥ एक अन्य त्रिलोकी में प्रसिद्ध तीर्थ को बतलाऊँगा और त्रिपुर इस नाम से विख्यात है जो कि ब्रह्म हत्या का विमोचन करने वाला है ॥६॥ हे व्यास ! पहिले त्रेता युग में एक सुनेत्र नामक द्विज था। उसका विश्वा-वसु नामक पुत्र समुत्पन्न हुआ था ॥७॥

यवक्रीतस्य शापेन स पिता तेन घातितः ।
ब्रह्महत्यान्वितो व्यास! तीर्थात्तीर्थं परिभ्रमन् ॥८
तीर्थे किं पुनके स्नात्वा धारातीर्थे गतो द्विजः ।
ततः कपिलधारायां चिन्तयित्वाऽऽत्मना स्वयम् ॥९
कथं मे ब्रह्महत्याया यायात्पापं प्रशान्तिताम् ।
एवं हि चिन्तयन् सोऽथ पुनरायादवन्तिकाम् ॥१०
अत्र तीर्थे पुनः स्नाति यावद्वाणीं ततोऽशृणोत् ।
किंपुनर्ध्यायसे ब्रह्मन् येन स्नातो द्विजोत्तमः ॥११
नतेऽस्तिब्रह्महत्यावै तीर्थस्नानेननाशिता ।
गच्छशीघ्रं गृहं विप्र! पापहीनोयथासुखम् ॥१२
पुनरन्यं प्रवक्ष्यामि पत्तनेश्वरमुत्तमम् ।
तत्रस्थित्वा महेशेन पुनःपत्तनमीक्षितम् ॥१३
पत्तनेश्वरइत्याख्यो देवदेवोमहेश्वरः ।
यस्तुगन्धैश्चपुष्पैश्च धूपैर्दीपैर्मनोरमैः ॥१४

यव क्रीत के शाप से उसने उस पिता को मार डाला था । हे व्यास ! वह फिर ब्रह्म हत्या से युक्त होकर तीर्थ से तीर्थ में परिभ्रमण करता था ॥८॥ उस द्विज ने किंपुनक तीर्थ में स्नान किया था, फिर धरा तीर्थ में चला गया था, फिर कपिलधारा में उसने स्वयं ही अपने आप चिन्तन किया था ॥६॥ मेरी ब्रह्म हत्या का पाप कैसे शान्ति को प्राप्त होवे । इस तरह से चिन्तन करता हुआ वह पुनः अवन्ती पुरी मे आ गया था ॥१०॥ इस तीर्थ में जब वह पुनः स्नान करता है तो उसने वाणी का श्रवण किया था । हे ब्रह्मन् ! किंपुनः का ध्यान करो । द्विजोत्तम जिसके द्वारा स्नान किये हुए हो ॥११॥ तुमे अब ब्रह्म हत्या नहीं रही है क्योंकि वह उस तीर्थ के स्नान से नष्ट होगई है । हे विप्र ! अब सुखपूर्वक घर जाओ क्योंकि तुम पाप से हीन हो गये हो ॥१२॥ आगे फिर उत्तम एक अन्य पत्तनेश्वर को बतलाता हूँ । वहाँ पर स्थित होकर महेश ने पुनः पत्तन को देखा था ॥१३॥ वह महेश्वर देवों के भी देव पत्तनेश्वर इस नाम

वाले थे जिसको गन्ध-पुष्प और सुन्दर धूप तथा दीपों से पूजना चाहिए ॥१४॥

भावयुक्तो नरो व्यास! पूजयेद्विधिवत्सदा ।
यथावत्स्थितेलिङ्गं वंशच्छेदोनजायते ॥१५
हंसयुक्तेनयानेन शिवलोकं सगच्छति ।
तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥१६
दुर्धर्षमिति विख्यातं ब्रह्महत्याविमोचनम् ।
पुरा दिवाकरो व्यास! चक्रे दुर्धर्षनामतः ॥१७
तीर्थमस्मिन्नदीतीरे विख्यातं सूर्यसंस्कृतम् ।
तेजःपुञ्जोऽभवल्लिङ्गं गणगन्धर्वपूजितम् ॥१८
सप्तम्यामथवाष्टम्यांसंक्रान्तौरविवासरे ।
तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वात्रिरात्रमुपोषितः ॥१९
दृष्ट्वामहेश्वरं तत्र शिप्राकूलेव्यवस्थितम् ।
पूजयित्वातुभावेन यत्फलं तच्छृणुष्वमे ॥२०
पितृमातृकुलंसर्वं समुद्धृत्यशिवंव्रजेत् ।
तत्रयच्छतियोदानं गांहेमादिविशेषतः ॥२१

हे व्यास! भक्तिभाव से युक्त सदा मनुष्य विधिपूर्वक पूजन करे। लिंग यथावत् स्थित है और वंश का वंशच्छेद नहीं होता है ॥१५॥ फिर यह हंस से युक्त यान के द्वारा शिवलोक को चला जाया करता है। अब एक और तीर्थ को कहूँगा जो कि त्रैलोक्य में प्रसिद्ध है ॥१६॥ यह तीर्थ दुर्धर्ष नाम से विख्यात है और यह भी ब्रह्म हत्या के पाप से छुड़ाने वाला है। हे व्यास! पहिले दिवाकर ने इसका दुर्धर्ष नाम किया था ॥१७॥ इस नदी में यह तीर्थ सूर्य के द्वारा संस्कृत होता हुआ विख्यात है। गन्धर्वों के गणों द्वारा पूजित यह लिंग तेज का पुञ्ज हो गया था ॥१८॥ सप्तमी या अष्टमी तिथि में संक्रान्ति में—रविवार में वहाँ स्नान करके शुद्ध होकर तीन रात्रि तक उपोषित रहे ॥१९॥ वहाँ पर शिप्रा के तट पर व्यवस्थित महेश्वर का दर्शन करे और भावपूर्वक पूजा करे। इसका जो फल होता है वह मुझसे श्रवण करो ॥२०॥ माता और पिता

के सम्पूर्ण कुलों का उद्धार करके यह अन्त में शिवलोक में गमन किया करता है। यहाँ पर जो गौ और सुवर्ण आदि का विशेष रूप से दान दिया करता है ।।२१।।

तावत्तदक्षयंलोके यावच्चन्द्रदिवाकरौ।
तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि गोपीन्द्र तीर्थ मुत्तमम् ।।२२
गौतमेनपुरायत्र इन्द्र.शापाद्भगीकृतः।
भगग्रोडायुत शक्रः प्रविश्य वनमुत्तमम् । २३
ततोपयत्तदोग्रे ण तपसा शङ्करम्पुरा ।
तुष्टेन शम्भुना विप्र! ये भगास्तच्छरीरगाः ।।२४
गोसहस्रोकृतास्तेन गोपीन्द्रमिति कथ्यते।
तत्र स्नात्वा दिवं याति शक्रतुल्यपराक्रमः ।।२५
येमृतास्तेपुनर्जन्मनाप्नुयन्तिमहीतले ।
गङ्गातीर्थे नर.स्नात्वापुण्यंप्राप्नोतिपुष्कलम् ।।२६
ज्येष्ठशुक्लदशम्यान्तु गङ्गाया.फलमादिशेत् ।
गङ्गातीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा पुष्करखण्डकम् ।।२७
पुष्पकेणविमानेन प्रयातिदिविमोदते।
नरकादुद्धरत्याशु नरः स्नात्वोत्तरेश्वरे ।।२८

उसका वह दान तब तक अक्षय रहता है जब तक ये चन्द्र और सूर्य स्थिर रहा करते हैं। अब एक अन्य उत्तम गोपीन्द्र तीर्थ को बतलाऊँगा ।।२२।। जहाँ पर प्राचीन समय में गौतम के शाप से इन्द्र को भगो वाला कर दिया था। भगों के चिन्हों से लज्जा से युक्त होकर इन्द्र ने वन में प्रवेश कर लिया था ।।२३।। पहिले इन्द्र ने अत्यन्त उग्र तप से भगवान् शम्भु को सन्तुष्ट कर दिया था। हे विप्र ! परम प्रसन्न हुए शम्भु ने जो उसके शरीर में रहने वाले भग थे उनको एक सहस्र गो कर दिया था जो गोपीन्द्र इस नाम से कहा जाता है। उसमें स्नान करने के इन्द्र के समान पराक्रम वाला होकर दिवलोक को चला जाया करता है ।।२४-२५।। जो इस मही के तल में मृत हो गये वे फिर दूसरा जन्म प्राप्त नहीं किया करते हैं। गंगा तीर्थ में मनुष्य स्नान करके बहुत अधिक पुण्य की

प्राप्ति किया करता है ॥२६॥ ज्येष्ठ मास की दशमी में गंगा का फल कहते हैं—गंगा तीर्थ में मनुष्य स्नान करके और पुष्कर रण्डक के दर्शन करे ॥२७॥ वह पुष्पक विमान के द्वारा दिवलोक में चला जाता है और महान् प्रसन्न होता है। उत्तरेश्वर में मनुष्य स्नान करके शीघ्र ही नरक से उद्धार प्राप्त करता है ॥२८॥

इष्टभोगसमापन्नो यातिस्वर्गं नसंशयः ।
भूतेश्वरेनरः स्नात्वा भूतेश्वरमथार्चयेत् ॥२९
गन्धपुष्पादिनैवेद्यैर्मृतः सुरपुरं व्रजेत् ।
शिप्रायां तु नरः स्नात्वा कैलासं तु नमस्यति ॥३०
सूर्याहतं तमोयद्वत्तद्वत्पापं प्रणश्यति ।
अम्बालिकाचयः पश्येत् समाधिनियमेनच ॥३१
समुक्तः सर्वपापेभ्यः कञ्चुकेनफणीयथा ।
घण्टेश्वरं प्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिपूजितम् ॥३२
यत्रकूपोदकम्पीत्वा सौभाग्यमतुलं लभेत् ।
अर्चयेद्यस्तुदेवेशं गन्धपुष्पैरनुक्रमात् ॥३३
शिवलोकेवसेत्तावद्यावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
पुण्येश्वरं तु यःपश्येच्छुचिःस्नातोजितेन्द्रियः ॥३४
सगाणपत्यमाप्नोति यत्सुरैरपिदुर्लभम् ।
लुम्पेश्वरेनरःस्नात्वासमभ्यर्च्यमहेश्वरम् ॥३५

अभीष्ट भोगों से सुसम्पन्न होता हुआ स्वर्ग को चला जाया करता है—इसमें लेशमात्र भी संशय नहीं है। मनुष्य भूतेश्वर में स्नान करके इसके उपरान्त भगवान् भूतेश्वर की अर्चना करे और यह पूजा गन्ध पुष्पादि नैवेद्य के द्वारा करनी चाहिए। ऐसा मनुष्य मृत्यु प्राप्त करके सुरपुर में गमन किया करता है। मनुष्य शिप्रा में स्नान करके कैलास को नमस्कार करता है ॥२९-३०॥ जिस तरह से सूर्य से तम आहत होता है उसी भाँति उसका पाप नष्ट हो जाया करता है। जो समाधि के नियम से अम्बालिका का दर्शन करता है वह सभी प्रकार के पापों से मुक्त हो जाता है जैसे सर्प अपनी कंचुली से मुक्त हो जाया करता है। अब घण्टेश्वर के

विषय में वर्णन करूंगा जिसको सुरों ने भी पूजित किया है ॥३१-३२॥ वहाँ पर कूप का जल पीकर अतुल सौभाग्य को प्राप्त करता है जो गन्ध-और पुष्पों के द्वारा अनुक्रम से देवेश की अर्चना किया करता है ॥३३॥ वह उस समय तक शिव लोक में वास करता है जब तक चौदह इन्द्र हुआ करते हैं। जो शुचि होकर पुण्येश्वर का दर्शन किया करता है और इन्द्रियों को जीतकर वहां स्नान करता है वह गाणपत्य के पद को प्राप्त करता है जो कि सुरों को भी बहुत ही दुर्लभ होता है। लुम्पेश्वर तीर्थ में मनुष्य स्नान करके महेश्वर भगवान् का अभ्यर्चन किया करता है ॥३४-३५॥

नयातिनरकंमर्त्यः स्वर्गं लोकेमहीयते ।
तथान्यत्संप्रवक्ष्यामि यत्सुरैरपिदुर्लभम् ॥३६
पूजितं ब्रह्मणा पूर्वं स्थविराख्यं विनायकम् ।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पूजयेद्यो विनायकम् ॥३७
गन्धधूपैश्च पुष्पैश्च भक्ष्यैर्भोज्यैः फलं शृणु ।
समीहिता भवेत्सिद्धिमृ तः शिवपुरं व्रजेत् ॥३८
नवनद्याः समीपे तु पार्वतीम्पूजयेद्बुधः ।
गन्धपुष्पैश्चधूपैश्च सौभाग्यमतुलं लभेत् ॥३९
कामोदके नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कामं रतिप्रियम् ।
स्वर्गे च देवगन्धर्वैःपूजनीयवपुर्भवेत् ॥४०
प्रयागेतुनरः स्नात्वा प्रयागेशंतु पश्यति ।
सर्वंल्लोकानतिक्रम्य शिवलोकेमहीयते ॥४१

वह मनुष्य कभी भी नरकों में नहीं जाया करता है और स्वर्गलोक में महिमान्वित हुआ करता है तथा अन्य भी बतलाऊंगा जो कि देवों को भी परम दुर्लभ है ॥३६॥ प्राचीन समय ब्रह्माजी ने स्थविर नाम वाले विनायक की पूजा की थी। वहाँ पर स्नान करके पवित्र होकर जो विनायक की पूजा किया करता है ॥३७॥ वह पूजा गन्ध से—पुष्पों तथा भक्ष्य-भोज्यों के द्वारा किया करता है उसका पुण्य फल श्रवण करो। उसको चाही हुई सिद्धि होती है और मृत होकर वह शिवपुर को गमन

किया करता है ॥३८॥ बुध पुरुष को भव नदी के समीप मे पार्वती देवी को पूजा करनी चाहिये और गन्ध पुष्पों तथा धूप से अर्चना करे तो वह अतुल सौभाग्य का लक्ष्य प्राप्त करता है ॥३६॥ कामोदक तीर्थ में मनुष्य स्नान करके और रति प्रिय काम का दर्शन करे तो वह स्वर्ग मे देवों और गन्धर्वों के द्वारा स्पृहा करने के योग्य वपु वाला हो जाया करता है ॥४०॥ प्रयाग मे मनुष्य स्नान करके जो प्रयागेश के दर्शन करता है वह सभी लोकों का अतिक्रमण करके शिव लोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥४१॥

---

## ६७—प्रतिकल्पाभिधानवर्णन

शृणुष्वावंहितोव्यास कथामेकाग्रमानसः ।
मयाव्यासमुखात्प्राप्ताकल्पभेदेकथाशुभा ॥१
गुह्याद्गुह्यतराश्रेष्ठादेयायस्यनकस्यचित् ।
नास्तिकायकृताघ्नायनाशिष्यायकदाचन ॥२
एपापुण्यतमाव्यास! कथापापहरापरा ।
यस्याःश्रवणमात्रेण कल्पदोपो न बांधते ॥३
प्रमाणं कल्पपर्यन्तं ब्रह्मण परमेष्ठिनः ।
मन्वन्तरेषु सर्वेषु कल्पकल्पान्तरेषु च ॥४
यावत्सङ्ख्या परिमिता तावती शृणु सत्तम! ।
अहोरात्रं विभजते सूर्यो भानुपदैःपदम् (मानुपदैव्रतम्) ॥५
तामुपादाय गणनां शृणु सङ्ख्यां द्विजोत्तम ।
निमिषैःपञ्चदशभिः काष्ठास्त्रिंशत्तु ताःकलाः ॥६
त्रिंशत्कलो मुहूर्तस्तु त्रिंशद्भिस्तर्मनीपिणः ।
अहोरात्रमिति प्राहुश्चन्द्रादित्यगतिस्तथा ॥७

महर्षि सनत्कुमार जी ने कहा—हे व्यास ! मन को एकाग्र करके परम सावधान होकर एक कथा का श्रवण करो ! कल्प के भेद में यह शुभ कथा मैंने भी व्यास के मुख से प्राप्त की थी । यह कथा परम गोप-

नीय से भी अधिक गोपनीय है जिस किसी को इसे नहीं देना चाहिए। जो नास्तिक हो—कृतघ्न हो और शिष्य न हो उसे तो इसे कभी भी नहीं देना चाहिये ॥१-२॥ हे व्यास ! यह परम पुण्यतमा है और यह कथा परम पापों के हरण करने वाली है। जिसके केवल श्रवण कर लेने ही से कल्प का दोष बाधा नहीं दिया करता है ॥३॥ परमेष्ठी ब्रह्माजी का सभी मन्वन्तरों में और कल्प कल्पान्तरों में कल्प पर्यन्त प्रमाण होता है ॥४॥ हे श्रेष्ठतम ! जितनी संख्या परिमित है उतनी का तुम श्रवण करो। सूर्य भानुपदों के द्वारा पद की अहोरात्रों के द्वारा विभाजन किया करता है। पद मनुष्यों का और देवों का होता है ॥५॥ हे द्विजोत्तम ! उसी गणना का ग्रहण करके सत्वर को सुनो। पन्द्रह निमिषों की काष्ठा है और तीस काष्ठाओं की एक कला होती है। तीस कला का मुहूर्त होता है और मनीषी का तीस मुहूर्तों का एक अहोरात्र होता है तथा चन्द्र की और आदित्य की गति कही जाती है ॥६-७॥

रवेर्गतिविशेषेण सर्वेष्वेतेपुनित्यशः ।
तदहस्तु मनुष्याणां रात्रिश्चैवतुतादृशी ॥८
पक्षामासाऋतुरब्दमयनञ्च प्रकीर्तितम् ।
पितृणाञ्चैव देवानां ब्रह्मणश्च यथातथम् ॥९
यावत्सङ्ख्या समाख्याता आयुरन्तश्च तादृशः ।
अहोरात्राः पञ्चदश पक्ष इत्यभिशब्दितः ॥१०
पक्षौ द्वौ तौकृतोमासो मासौद्वावृतुरुच्यते ।
अयनं तैस्त्रिभिः प्रोक्तमब्देद्वेअयनेस्मृतः ॥११
दक्षिणं चोत्तरञ्चैव सङ्ख्यातत्त्वविशारदैः ।
मानेनानेनयोमासः पक्षद्वयसमन्वितः ॥१२
पितृणांतदहोरात्रमितिकालविदोविदुः ।
शुक्लपक्षस्त्वहस्तेषां कृष्णपक्षस्तु शर्वरी ॥१३
कृष्णपक्षेत्रिहश्राद्धं पितृणांवर्ततेततः ।
मानुषेणतुमानेन योवैसंवत्सरस्स्मृतः ॥१४

इन सभी में नित्य ही विशेष रूप से रवि की गति होती है। मनुष्यों
ो वह दिन है और वैसी ही रात्रि है ॥८॥ पक्ष—मास—ऋतु—
ब्द और अयन कहे गये हैं। ये पितृ गणों के–देवों के और ब्रह्मा के
थोचित रूप से हुआ करते हैं ॥९॥ जितनी संख्या कही गई है और
वैसा ही आयु का अन्त होता है। पन्द्रह अहोरात्र ही पक्ष इस शब्द से
कहा गया है ॥१०॥ दो शब्दों का एक मास होता है और दो मासों का
एक ऋतु हुआ करता है। तीन ऋतुओं का एक अयन होता है और
वर्ष में दो अयन (दक्षिणायन–उत्तरायण) होते हैं ॥११॥ संख्या के तत्व
पण्डितों ने दक्षिण और उत्तर कहा है। इस मान से जो मास होता है
वह दो पक्षों से युक्त हुआ करता है ॥१२॥ पितृगण का वह एक अहोरात्र
है–ऐसा ही काल के वेत्ता कहते है। जो शुक्ल पक्ष है वह दिन कहा गया है
तथा कृष्ण पक्ष पितृगणों की रात्रि हुआ करती है ॥१३॥ यहाँ पर कृष्ण
पक्ष मे पितृगणों के श्राद्ध होते हैं जो मनुष्यों के मान से एक सम्वत्सर
ही कहा गया है ॥१४॥

देवानां तदहोरात्रं दिवाचैवोत्तरायणम् ।
दक्षिणायनं स्मृतो रात्रिःप्राज्ञैस्तत्त्वार्थकोविदैः ॥१५
दिव्यमब्दं शतगुणमहोरात्रं मनोःस्मृतम् ।
अहोरात्रं दशगुणं मानवः पक्षउच्यते ॥१६
पक्षाद्दशगुणोमासोमासैर्द्वादशभिर्गुणैः ।
ऋतुर्मनूनासम्प्रोक्तःप्राज्ञैस्तत्त्वार्थदर्शिभिः ॥१७
षड्भिस्तैर्वर्षं आख्यातस्तेन सङ्ख्या निबध्यते ।
चत्वार्येव सहस्राणि वर्षाणान्तु कृतं युगम् ॥१८
तावतीतु भवेत्सन्ध्या सध्यांशश्चतथाविधः ।
त्रीणि वर्षसहस्राणि त्रेतायाः परिमाणतः ॥१९
तस्याश्चतावतीसन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ।
तथा वर्षसहस्रे द्वे द्वापरं परिकीर्तितम् ॥२०
तस्यापि तावती सन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ।
कलिर्वर्षसहस्रन्तु संङ्ख्यातोऽत्र मनीषिभिः ॥२१

तस्य तावतिका सन्ध्या सन्ध्यांशश्चतथाविधः ।
एषाद्वादशसाहस्री युगसंख्या प्रकीर्तिता ॥२२

देवों का वही एक अहोरात्र होता है। देवों का जो उत्तरायण है वही दिन होता है और दक्षिणायन को रात्रि तत्वार्य के कोविदो प्राज्ञों ने कहा है ॥१५॥ दश गुण दिव्य शब्द (वर्ष) मनु के एक अहोरात्र होते हैं। दश गुना अहोरात्र मनु का पक्ष कहा जाया करता है। पक्ष से दश गुना मास होता है। द्वादश मासो के गुणों से मनुष्यों का ऋतु कहा गया है। ऐसा तत्वों के ज्ञाता प्राज्ञ लोगों के द्वारा ही बतलाया जाता है ॥१६-१७॥ उन छः ऋतुओं से एक वर्ष कहलाया है उनसे ही सख्या को निबद्ध किया जाता है। चार हजार वर्षों का कृतयुग (सत्ययुग) होता है ॥१८॥ उतनी ही उस युग की सन्ध्या होती है और उसी प्रकार का सन्ध्यांश होता है। परिमाण से तीन सहस्र वर्ष त्रेता के होते हैं ॥१९॥ उसकी भी उतनी ही सन्ध्या और उसी तरह का सन्ध्यांश हुआ करता है। दो सहस्र वर्ष का द्वापर युग कहा गया है ॥२०॥ उसकी भी उतनी ही सन्ध्या और वैसा ही सन्ध्यांश भी होता है। कलियुग का परिमाण एक ही सहस्र वर्ष की सख्या वाला मनीषियों ने कहा है ॥२१॥ उसकी भी उतनी सन्ध्या और वैसा ही सन्ध्यांश हुआ करता है। यह बारह सहस्रों की युगो की सख्या कही गई है ॥२२॥

दिव्येनानेनमानेन युगसंख्या निबोध मे ।
ससर्जसपुनस्तात जगत्सर्वमिदंततम् ॥२३
कृतं त्रेताद्वापरञ्च कलिञ्चैव चतुर्युगम् ।
युगं तदेकसप्तत्या गुणितं द्विजसत्तमम् ॥२४
मन्वन्तरमितिप्रोक्तं संख्यानार्थविशारदैः ।
अयनं चापि तत्प्रोक्तं द्व्ययनेदक्षिणोत्तरे ॥२५
मनुःप्रलीयतेह्यत्र सम्प्राप्ते जगत.प्रभो ।
ततोपरोमनु.कालमेतावन्तं भवत्युत ॥२६
समतीतेतुराजेन्द्र! प्रोक्तस्संवत्सरस्सवं ।
तदेवचामनंप्रोक्तं मुनिनातत्त्वदर्शिना ॥२७

ब्रह्मणस्तदहःप्रोक्तः कल्पश्चेति समुच्यते ।
सहस्रयुगपर्य्यन्तं सानिशाप्रोच्यतेवुधैः ।।२८

इस तरह से मुझसे आप इस दिव्य मान से युगों की संख्या को समझ लो । हे तात ! फिर उसने इस विस्तृत सम्पूर्ण जगत का सृजन किया था ।।२३।। कृतयुग–त्रेता—द्वापर और कलियुग ये चार युग हैं । इन चारों युगों की इकहत्तर चौकड़ी गुणित होकर द्विजसत्तम मन्वन्तर कहा गया है और यह संख्या के विशारदों ने गणना की है । दक्षिण और उत्तर दो अयन भी कहे गये हैं ।।२४-२५।। हे प्रभो ! इस जगत् के समाप्त होने पर मनु का लय हो जाया करता है । इसके अनन्तर फिर इतने ही काल तक दूसरा मनु हुआ करता है ।।२६।। हे राजेन्द्र ! समतीत होने पर वही सम्वत्सर कहा गया है और वही भवन तत्वों के दर्शी मनु ने बताया है । ब्रह्मा का वह एक दिन कहा गया है और वह कल्प भी कहा जाया करता है । बुधों के द्वारा एक सहस्र युग पर्यन्त वह निशा (रात्रि) कही जाती है ।।२७-२८।।

निमज्जत्यथ तत्रोर्वी सशैलवनकानना ।
तस्मिन् युगसहस्रे तु पूर्णे भरतसत्तम ।।२९
ब्राह्मे दिवसपर्यन्त कल्पो निश्शेष उच्यते ।
युगानि समतीतानि साग्राणि कथितानि ते ।।३०
कृतत्रेतानियुक्तानि मनोरन्तरमुच्यते ।
चतुर्दशैतेमनव कथिता कीर्तिवर्द्धनाः ।।३१
वेदेषु स पुराणेषु सर्वेषु प्रभविष्णवः ।
प्रजानाम्पतयोव्यास धन्यमेषाप्रकीर्तितम् ।।३२
मन्वन्तरेषु सहारा- सहारान्तेषु सम्भवाः ।
नशक्यमन्तस्तेषावै वक्तुं वषशतैरपि ।।३३
विसर्गश्च प्रजानावै सहारस्यच भारत! ।
मन्वन्तरेषु सहारः श्रूयते भरतर्षभ ।।३४
यत्र तिष्ठन्तिवैदेवाः सर्वसप्तर्षिभिस्सह ।
तपसा ब्रह्मचर्येण श्रुतेनच समन्विताः ।।३५

हे भरत सत्तम ! उस एक हजार युगों के पूर्ण हो जाने पर पहाड़ और वन एवं काननों से युक्त यह पृथ्वी उस समय में निमज्जित हो जाया करती है ॥२६॥ ब्रह्मा के दिवस पर्यन्त में ही एक कल्प पूरा हो जाया करता है। अब ये महित समतीत युगों को मैंने तुम्हें बतला दिया है ॥३०॥ कृत और त्रेता युग में नियुक्त मनु का मन्वन्तर कहा जाता है। वे मनु चौदह कीर्ति की वृद्धि करने वाले बताये गये हैं ॥३१॥ हे व्यास ! वह वेदों में और समस्त पुराणों में प्रभविष्णु प्रजाओं के पति हैं जिनका होना बहुत ही धन्य कीर्तित किया गया है ॥३२॥ मन्वन्तरों में संहार होते हैं और संहारों के अन्त में जन्म अर्थात् उत्पत्तियाँ हैं। उनका अन्त सौ वर्षों में भी कहा नहीं जा सकता है ॥३३॥ हे भारत ! प्रजाओं का विसर्ग और संहार का वर्णन नहीं किया जा सकता है। हे भरत के वंश में परम श्रेष्ठ ! मन्वन्तरों में संहार सुना जाता है ॥३४॥ जिसमें सप्तर्षियों के सहित समस्त देववृन्द तप से, ब्रह्मचर्य से और श्रुत से समन्वित होते हुए स्थित रहा करते हैं ॥३५॥

पूर्णे युगसहस्रे तु कल्पो निश्शेष उच्यते ।
तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभि ॥३६
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्द्विजा ।
प्रविशन्तिसुरश्रेष्ठ हरिनारायण प्रभुम् ॥३७
स स्रष्टासर्वभूताना कल्पान्तेषु पुन पुन ।
अव्यक्तःशाश्वतोदेवस्तस्यसर्वमिदञ्जगत् ॥३८
स एव चिंतयेव्यास महेदावधिसयुत ।
महाकालवनेरम्ये वासचक्रे स ईश्वर ॥३६
प्रलयोनबाधते व्यास! महाकालवनोत्तमे ।
कल्पेकल्पेचवैरम्या पुरीह्येषाकुशस्थली ॥४०
निरामया निरातङ्का निर्विकारा युगे युगे ।
मार्कण्डेयोपदिष्टानि कल्पानि सम्भवन्ति च ॥४१
अत्रैवचवनेरम्ये ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रजाना पतयो ये ते दक्षःप्राचेतसस्तथा ॥४२

एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर एक पूर्ण कल्प कहा जाता है। उसमे सूर्य की तीव्रतम किरणो से सब भूत दग्ध हो जाया करते हैं ॥३६॥ द्विजगण देवगणो के साथ ब्रह्माजी को आगे करके सुरो में परम श्रेष्ठ प्रभु हरि नारायण में प्रवेश किया करते हैं ॥३७॥ कल्पों के अन्त समयो मे समस्त भूतो का बारम्बार सृजन करने वाला वही है। वह देव अव्यक्त व शाश्वत है और उसी का यह संपूर्ण जगत् है ॥३८॥ हे व्यास! महेश और विधाता से समन्वित वह ही विद्यमान रहा करता है। वह ईश्वर परम रम्य महाकाल वन में निवास किया करता था ॥३९॥ हे व्यास! परमोत्तम महाकाल वन मे प्रलय की कोई बाधा नही हुआ करती है। यह कुशस्थली सुरम्य पुरी कल्प-कल्प मे अतीव सुन्दर हो जाती है ॥४०॥ युग-युग मे यह पुरी आमय (पीडा) से रहित, आतङ्क (भय) से हीन और विकारो से शून्य होती है। मार्कण्डेय ऋषि के द्वारा उपदिष्ट कल्प हुआ करते हैं ॥४१॥ इस परम सुरम्य वन में लोको के पितामह ब्रह्माजी तथा दक्ष और प्राचेतस जो प्रजाओ के पति हुए थे ॥४२॥

मरीचि. कश्यपोरुद्रोयेचान्ये भार्गवादयः।
कल्पादौसृजतेलोकान्चराचरान्यथातथा ॥४३
एवमादौ पुराव्यास कल्पं कल्पान्तकंसदा।
वाराहोवामनोविष्णुः पितृणांवैतथैव च ॥४४
कल्पभेदास्समाख्याता महाकालवनेशुभे।
चतुराशीतिकल्पानिसञ्जातानिद्विजोत्तम ॥४५
तावन्ति ज्योतिर्लिङ्गानि वने तिष्ठन्ति सत्तम!।
पुनर्जाता पुनर्नष्टा महीसागरपर्वताः ॥४६
पुनः पुनर्भविष्यन्तिह्येपाञ्चलास्मृता।
तस्मात्सर्वेपुकालेपुसर्वलोकेपु गीयते ॥४७
प्रतिकल्पेति सञ्ज्ञा सा भुवि व्यास! भविष्यति।
यस्याञ्च मानवा दान्ताः स्नानदानादिकं तथा ॥४८

हे भरत सत्तम ! उस एक हजार युगों के पूर्ण हो जाने पर पहाड़ और वन एवं काननो से युक्त यह पृथ्वी उस समय मे निमज्जित हो जाया करती है ॥२९॥ ब्राह्म मे दिवस पर्यन्त में ही एक कल्प पूर्ण हो जाया करता है। अब के सहित समतीत युगो को मैंने तुम्हें बतला दिया है ॥३०॥ कृत और त्रेता युग मे नियुक्त मनु का अन्तर कहा जाता है। वे मनु चोदह कीर्त्ति की वृद्धि करने वाले बताये गये हैं ॥३१॥ हे व्यास ! वह वेदो मे और समस्त पुराणो में प्रभविष्णु प्रजाओ के पति हैं जिनका होना बहुत ही धन्य कीर्तित किया गया है ॥३२॥ मन्वन्तरो मे संहार होते हैं और सहारो के अन्त मे जन्म अर्थात् उत्पत्तियाँ हैं। उनका अन्त सौ वर्षों में भी कहा नही जा सकता है ॥३३॥ हे भारत ! प्रजाओ का विसर्ग और संहार का वर्णन नहीं किया जा सकता है। हे भरत के वंश मे परम श्रेष्ठ ! मन्वन्तरो मे सहार सुना जाता है ॥३४॥ जिसमे सप्तर्षियो के सहित समस्त देववृन्द तप से, ब्रह्मचर्य से और श्रुत से समन्वित होते हुए स्थित रहा करते हैं ॥३५॥

पूर्णे युगसहस्रे तु कल्पो निश्शेष उच्यते ।
तत्र सर्वाणि भूतानि दग्धान्यादित्यरश्मिभि. ॥३६
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा सहादित्यगणैर्द्विजाः ।
प्रविशन्तिसुरश्रेष्ठं हरिनारायणंप्रभुम् ॥३७
स स्रष्टासर्वभूतानां कल्पान्तेषु पुनः पुनः ।
अव्यक्तःशाश्वतोदेवस्तस्यसर्वमिदञ्जगत् ॥३८
स एव विद्यतेव्याम महेशविधिसंयुतः ।
महाकालवनेरम्ये वासंचक्रे स ईश्वरः ॥३९
प्रलयोनबाधते व्यास! महाकालवनोत्तमे ।
कल्पेकल्पेचवैरम्या पुरीह्येषाकुशस्थली ॥४०
निरामया निरातङ्का निर्विकारा युगे युगे ।
मार्कण्डेयोपदिष्टानि कल्पानि सम्भवन्ति च ॥४१
अत्रैवचवनेरम्ये ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रजानां पतयो ये ते दक्षःप्राचेतसस्तथा ॥४२

एक सहस्र युगों के पूर्ण हो जाने पर एक पूर्ण कल्प कहा जाता है। उसमें सूर्य की तीव्रतम किरणों से सब भूत दग्ध हो जाया करते हैं ॥३६॥ द्विजगण देवगणों के साथ ब्रह्माजी को आगे करके सुरों में परम श्रेष्ठ प्रभु हरि नारायण में प्रवेश किया करते हैं ॥३७॥ कल्पों के अन्त समयों में समस्त भूतों का बारम्बार सृजन करने वाला वही है। वह देव अव्यक्त व शाश्वत है और उसी का यह संपूर्ण जगत् है ॥३८॥ हे व्यास! महेश और विधाता से समन्वित वह ही विद्यमान रहा करता है। वह ईश्वर परम रम्य महाकाल वन में निवास किया करता था ॥३९॥ हे व्यास! परमोत्तम महाकाल वन में प्रलय की कोई बाधा नहीं हुआ करती है। यह कुशस्थली सुरम्य पुरी कल्प-कल्प में अतीव सुन्दर हो जाती है ॥४०॥ युग-युग में यह पुरी आमय (पीड़ा) से रहित, आतङ्क (भय) से हीन और विकारों से शून्य होती है। मार्कण्डेय ऋषि के द्वारा उपदिष्ट कल्प हुआ करते हैं ॥४१॥ इस परम सुरम्य वन में लोकों के पितामह ब्रह्माजी तथा दक्ष और प्राचेतस जो प्रजाओं के पति हुए थे ॥४२॥

मरीचिः कश्यपोरुद्रोयैश्चान्ये भार्गवादयः।
कल्पादौसृजतेलोकान्चराचरान्यथातथा ॥४३

एवमादौ पुराव्यास कल्पं कल्पान्तकंसदा।
वाराहोवामनोविष्णुः पितृणावंतथं वच ॥४४

कल्पभेदास्समाख्याता महाकालवनेशुभे।
चतुराशीतिकल्पानिसञ्जातानिद्विजोत्तम ॥४५

तावन्ति ज्योतिर्लिङ्गानि वने तिष्ठन्ति सत्तम!।
पुनर्जाता पुनर्नष्टा महीसागरपर्वता ॥४६

पुनः पुनर्भविष्यन्तिह्येपाऽचलास्मृता।
तस्मात्सर्वेषुकालेषुपर्वलोकेषु गीयते ॥४७

प्रतिकल्पेति सञ्ज्ञा सा भुवि व्यास! भविष्यति।
यस्याञ्च मानवा दान्ताः स्नानदानादिक तथा ॥४८

महर्षि सनत्कुमारजी ने कहा—इस प्रकार से हे व्यास ! सनातनी नाम होने वाली रम्यपुरी जो हे अनघ ! युग-युग में जैसी हुई थी उसी प्रकार की मैंने बतलादी है ॥१॥ व्यासजी ने कहा—हे वेदों के वेताओं में परम श्रेष्ठ ! मैं पुनरपि आप से श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ जो कि शिप्रा नदी की परम पुण्यमयी—अत्यन्त पवित्र और पापों के हरण करने वाली कथा है ॥२॥ आपने एक सुन्दर कुण्ड बतलाया था तथा पिशाच मोचन कहा था। आपने नील गङ्गा कही थी और इसके आगे परम कर्क राज वर्णित किया था। सब पुष्कर और अत्युत्तम गया तीर्थ तथा गोमती कुण्ड का वर्णन किया था। उसी प्रकार से धर्मसर नाम का वर्णन किया था ॥३-४॥ संगम से समुत्पन्न तीर्थ ख्यात किया था तथा शनि के शुभ जन्म की कथा का वर्णन किया। च्यवन ऋषि की जो वार्त्ता है वह तथा शुभ नागालय में जो वार्त्ता थी वह बतलाई थी ॥५॥ पुरुषोत्तम की महिमा का वर्णन किया। किन्तु किस समय में किस के द्वारा कैसे यह सब हुआ—यही मैं जानना चाहता हूँ आपके मन में जो भी हो कृपया कहिए ॥६॥

शृणुव्यास ! महाभाग कथापापहरांपराम् ।
यस्मिन्कालेयथा जाता महाकालवनेशुभे ॥७

नास्ति वत्स ! महीपृष्ठे शिप्रायाः सदृशी नदी ।
यस्यास्तीरे क्षणान्मुक्तिः किञ्चिरात्सेवनेनवै ॥८

वैकुण्ठेजायतेशिप्राज्वरघ्नीचसुरालये ।
यमद्वारेचपापघ्नी पातालेऽमृतसम्भवा ॥९

वाराहकल्पेवैप्रोक्ता विष्णुदेहेतिनामतः ।
शिप्रावन्त्या समाख्याता कामधेनुसमुद्भवा ॥१०

विचित्रमिदमाख्यातं भगवन्नृपिसत्तम ! ।
वक्तुमर्हसि शिप्रायाः समासेन कथां शुभाम् ॥११

ब्रह्मकपालमादाय भिक्षार्थं व्यचरन्महीम् ।
महादेवोविशुद्धात्मा सर्वलोकेषुसर्वतः ॥१२

अप्राप्तभिक्षोभिक्षार्थी वैकुण्ठमगमद्विभु ।
गतस्त्वातिथ्यवेलायांभ्रमन्देवो यतस्ततः ॥१३
लोकनिन्दा रतः क्रुद्धः क्षुधितोवहुवासरैः।
भिक्षांदेहीतिभोब्रह्मन् क्षुधितोऽहं समागतः ॥१४

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—हे महाभाग व्यास ! इस पापों के हरण करने वाली परमोत्तम कथा का तुम श्रवण करो। यह कथा अत्यन्त शुभ महाकाल वन मे जिस समय मे जिस रीति से हुई थी ॥७॥ हे वत्स ! इस मही मण्डल के पृष्ठ पर शिप्रा के समान अन्य कोई भी नदी नहीं है। जिसके तट पर कुछ ही समीप मे रहकर सेवन करने से क्षणभर मे ही मुक्ति हो जाया करती है ॥८॥ यह शिप्रा वैकुण्ठ मे उत्पन्न होनी है और सुरालय मे ज्वरों का हनन करने वाली है। यमराज के द्वार पर पापों का विनाश किया करती है और पाताल मे अमृत सम्भवा होती है ॥९॥ यह वाराह कल्प में नाम से विष्णुदेहा कही गयी थी और अवन्ती मे यह शिप्रा कामधेनु से समुद्भव वाली कही गई है ॥१०॥ महर्षि व्यासजी ने कहा—हे ऋषिश्रेष्ठ ! हे भगवन् ! यह तो आपने अति अद्भुत बात बतलाई है। अब आप इस शिप्रा नदी की कथा संक्षेप मे कहने के योग्य होते हैं ॥११॥ महर्षि सनत्कुमारजी ने कहा–विशुद्ध आत्मा वाले महादेव प्रभु सब लोकों में सभी ओर ब्रह्म कपाल को लेकर भिक्षा के लिये मही मे विचरण करते थे ॥१२॥ भिक्षार्थी विभु भिक्षा प्राप्त न करने वाले वैकुण्ठ मे गये थे। देव जहाँ तहाँ भ्रमण करते हुए आतिथ्य के समय मे गये थे ॥१३॥ लोगो की निन्दा मे तत्पर बहुत दिनों से भूखे और अत्यन्त क्रुद्ध थे और यही कहते थे—हे ब्रह्मन् ! भिक्षा दो, मैं भूखा यहाँ पर आगया हूँ ॥१४॥

कपालसकरे कृत्वा इत्युवाचपुनःपुनः।
गृह्यतांहरभिक्षांते ददामीतिहरिस्तदा ॥१५
इत्युक्त्वाकरमुद्यम्य तर्जन्यंगुलिमदर्शयत् ।
तदारुद्रसमाध्मातस्त्रिशूलेनाहनद्रुपा ॥१६

तदांगुलिसमुद्भूतं बहुशुश्रावशोणितम् ।
पूर्णपात्रंचतेनाशुशङ्करस्यकरेस्थितम् ॥१७
तदोद्वेलितपात्राद्वै धाराजातासमन्ततः ।
तत्रस्थानात्समुद्भूताशिप्रास्नृग्धारसम्भवा ॥१८
वैकुण्ठाच्चाभवत्सद्यो नदीत्रैलोक्यपावनी ।
एवं शिप्रासरिच्छ्रेष्ठा त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥१९
ज्वरघ्नी च यथा प्रोक्ता तथा व्यास ! ब्रवीम्यहम् ।
यदा बाणासुरोदैत्यः कृष्णेन सह संयुगे ॥२०
योधयामास दैत्येन्द्रोऽनिरुद्धकृतहेलनः ।
सहस्रबाहुभिर्वीरो नानाप्रहरणोद्यतः ॥२१

कपाल को हाथ में लेकर बारम्बार यही बोल रहे थे । उस समय में भगवान् हरि ने कहा था—हे हर ! भिक्षा ग्रहण करो । मैं आपको भिक्षा देता हूँ । इतना कहकर हाथ को उद्यत करके तर्जनी अंगुलि प्रदर्शित की थी । उस समय में समाध्मान रुद्र भगवान् ने क्रोध से त्रिशूल के द्वारा हनन किया था ॥१५-१६॥ उस समय में अंगुलि से समुत्पन्न बहुत—सा रुधिर स्रावित हुआ था । उससे भगवान् शङ्कर के हाथ में स्थित पात्र शीघ्र पूर्ण हो गया । उस समय में पात्र से उद्वेलित होकर चारों ओर धारा बन गई । वहाँ पर उसी स्थान से रुधिर की धार से समुत्पन्न शिप्रा प्रकट हुई थी ॥१७-१८॥ तुरन्त ही यह नदी वैकुण्ठ से त्रैलोक्य पावनी हो गई । इस प्रकार से यह शिप्रा नदी परम श्रेष्ठ तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो गयी थी ॥१९॥ हे व्यास ! जिस प्रकार से यह ज्वरघ्नी हुई उसे मैं बतलाता हूँ । जिस समय में बाणासुर दैत्य श्रीकृष्ण के साथ रणक्षेत्र में युद्ध कर रहा था । अनिरुद्ध के द्वारा जिसका अवमान हो गया ऐसा वह दैत्येन्द्र बड़ा वीर था और सहस्रों बाहुओं से अनेक आयुधों से समन्वित था ॥२०-२१॥

तस्मात्क्रुद्धोवासुदेवः चक्रमादायसत्वरः ।
चिच्छेददोः सहस्रन्तुक्षुरप्रेणाशुर्मगाना ॥२२

ततदाभग्नसंकल्पश्छिन्नदोश्चरणार्दितः ।
युद्धात्पराङ् मुखोभूत्वा शंकरंशरणंययौ ।।२३
तदागतंमहादैत्यं समीपेभयविह्वलम् ।
विलोक्यकृपयाविष्टो गतः संग्राममूर्द्धनि ।।२४
छित्वाबाहुसहस्रं वै दैत्यराजस्यसंयुगे ।
क्रुद्धः कृष्णोमहाबाहुः परसेनान्तकोबली ।२५
स्थितोयत्राचलोव्यासगतस्तत्रमहेश्वरः ।
वारयामासकृष्णंवैशरौघांश्चसमाकिरन् ।।२६
अन्योन्यंतौसमासाद्य युद्धंकृत्वाचदारुणम् ।
शस्त्रास्त्रैश्चमहाघोरैः सर्वप्राणिभयंकरैः ।।२७
वैष्णवास्त्रं तदाकृष्णसन्दधेहरजिघांसया ।
पाशुपतञ्चनामास्त्रसर्वसंहारकारकम् ।।२८

इस कारण से परम क्रोध में भरे हुए वासुदेव ने शीघ्रता से संयुत हो चक्र ग्रहण कर लिया और आशुगामी क्षुरत्र से उसके सहस्र बाहुओं का छेदन कर दिया था ।।२२।। उस समय में अपने सङ्कल्पों को भग्न कर देने वाला वह कटे हुए बाहुओं वाला और चरणों से भी पीड़ित होता हुआ युद्ध से पराङ्मुख होकर भगवान् शङ्कर की शरणागति में गया था ।।२३।। उस समय में भय से अत्यन्त विह्वल समीप में समागत महादैत्य को देखकर कृपा से समाविष्ट होकर संग्राम स्थल में सब से आगे पहुँच गये थे ।।२४।। युद्ध में दैत्यराज की सहस्र बाहुओं का छेदन करके महाबाहु श्रीकृष्ण शत्रु की सेना का हनन करने वाले बलवान् अधिक क्रोधित हुए थे ।।२५।। हे व्यास ! श्रीकृष्ण जहाँ पर अब स्थित थे और अचल थे वहीं पर महेश्वर गये थे । बहुत से शरों के समूहों को समाकीर्ण करते हुए श्रीकृष्ण का वारित किया था ।।२६।। उन दोनों ने परस्पर में प्राप्त होकर और परम दारुण युद्ध करके जो कि समस्त प्राणियों के लिये महान् भयङ्कर तथा अत्यन्त घोर शस्त्रास्त्रों से किया गया था ।।२७।। उस समय में महादेव को मारने की इच्छा से श्रीकृष्ण ने वैष्णवास्त्र

का सन्धान किया और शिव ने सबका संहार कर देने वाला अपना पाशुपत नाम वाला अस्त्र सँभाला था ॥२८॥

सन्दधेवैतदाशम्भुः कृष्णप्राणहरोत्सुकः ।
हाहाकारस्तदाजातः सर्वलोकेपुश्रूयते ॥२६
मोहनास्त्रंपुनः कृष्णोहरोपरिमुमोचह ।
तेनास्त्रेणतदाशम्भुर्मोहितोदेवमायया ॥३०
जृम्भमाणः स्थितः संख्ये किञ्चित्कालं मुहुर्मुहुः ।
लब्धसंज्ञः पुनर्जातो यदा रुद्रो महाहवे ॥३१
तदाक्रोधाभिभूतेन कृतोमाहेश्वरोज्वरः ।
ललाटफलकात्सद्यो वीरभद्रो महाबलः ॥३२
त्रिनेत्रस्त्रिशिरोह्रस्वस्त्रिपादोवर्बराकृतिः ।
क्षुद्रोजटिलभस्माङ्गोमहाव्याधिदुरत्ययः ॥३३
कृष्णसेनांसमासाद्य महादेवेनप्रेरितः ।
प्राणिनांकदनंचक्रे सर्वेषांकृष्णसङ्गिनाम् ॥३४
पराङ्मुख पराभग्नाज्वराभिघात पीडिता ।
बभूव सहसा व्यास ! सेना कृष्णेनपालिता ॥३५

उस समय में श्रीकृष्ण के प्राणों का हरण करने के लिये अत्युत्सुक शिव ने उस समय में पाशुपत का सन्धान कर लिया था। उस समय में हा हा कार मच गया था जो कि सभी लोकों में सुना गया था ॥२६॥ पुनः श्रीकृष्ण ने हर के ऊपर मोहनास्त्र का परिमोचन किया। उस अस्त्र से उस समय में देव माया से शम्भु मोहित हो गये थे ॥३०॥ कुछ समय तक युद्ध स्थल में बारम्बार में जँभाई लेते हुए स्थित हो गये थे। उस महा युद्ध में जिस समय में पुनः संज्ञा ( होश-हवास) प्राप्त करने वाले हो गये थे ॥३१॥ उस समय में क्रोध से अभिभूत शिव ने माहेश्वर ज्वर समुत्पन्न किया। ललाट के फलक से तुरन्त महा बलवान् वीरभद्र उत्पन्न हुआ। वह वीरभद्र तीन नेत्रों वाला-तीन मस्तकों वाला—छोटा कद वाला—तीन चरणों से युक्त—वर्बर की आकृति वाला-क्षुद्र-जटाधारी—अङ्गों में भस्म लेपन करने वाला—महान् व्याधि से समन्वित और

दुर्जय था ॥३२-३३॥ श्रीकृष्ण की सेना को प्राप्त कर महादेव के द्वारा उसे प्रेरित किया गया था। उसने श्रीकृष्ण के साथी सब प्राणियों का विनाश किया था ॥३४॥ हे व्यास ! श्रीकृष्ण के द्वारा पालित सेना सहसा हो पराङ्मुख—पराभग्न—ज्वर के अभिघात से पीड़ित हो गई थी ॥३५॥

तथाभूतांनमालोक्यजृम्भमाणां रुजार्दिताम् ।
स्वसेनांभग्नसंकल्पांमाहेशज्वरपीडिताम् ॥३६
ससर्जवैष्णवंतापं कृष्णः परमकोपनः ।
तेनसहवैष्णवस्य माहेश्वरज्वरेणच ॥३७
अन्योन्यमभवद्युद्धं घोरं घोरतरं महत् ।
संग्रामं बहुशंकृत्वा भग्नोमाहेश्वरोज्वरः ॥३८
सर्वलोकेषु गत्वा वै न शान्ति प्रतिजग्मिवान् ।
महाकालवने रम्ये प्राप्तस्तेनाभिपीडितः ॥३९
निमग्नश्चैवक्षिप्रायां ततःशान्तिपरांययौ ।
दृष्ट्वामाहेश्वरं शान्तं ज्वरं परमकोपनम् ॥४०
वैष्णवोऽपिसमासाद्य तस्यां मज्जनमाचरत् ।
तस्याः प्रभावशान्तौ ज्वरौ हरिहरोद्भवौ ॥४१
तस्मात्सर्वेषु कालेषु ज्वरघ्नी साऽभवत्क्षणात् ।
ज्वराभिभूता ह्यत्राद्यजनाः परमदुःखिताः ॥४२
निमज्जन्तिचक्षिप्रायां वसन्ति च समाहिताः ।
नतेषांबाधते पीडाज्वरोद्भूताकदाचन ॥४३
सत्यमुक्तं तदाव्यास ब्रह्मनहरिहरेणच ।
येशृण्वन्तिकथा दिव्यां नराश्चैकाग्रमानसाः ॥
न तेषां जायते किञ्चिज्ज्वरसन्तापजं भयम् ॥४४

इस में अजित—जँभाई लेती हुई—भग्न सम्पूर्ण वाली—महेश के ज्वर से पीड़ित उस प्रकार की अपनी सेना को देखकर परम कोप वाले श्रीकृष्ण ने वैष्णव ताप का सृजन किया था। उस वैष्णव ताप का माहेश्वर ज्वर के साथ परस्पर में परम घोर और उससे भी अत्यन्त घोर

महान् युद्ध हुआ था। बहुत संग्राम करके माहेश्वर ज्वर भग्न हो गया था ॥३६-३८॥ समस्त लोकों में जाकर भी कहीं पर शान्ति प्राप्त नहीं की थी। उससे अभिपीडित होकर रम्य महाकाल वन में प्राप्त हुआ ॥३६॥ इसके पश्चात् वहाँ पर क्षिप्रा में निमग्न हो गया और शीघ्र ही परम शान्ति को प्राप्त हुआ। परम कोप युक्त माहेश्वर ज्वर को शान्त देखकर वैष्णव भी वहाँ आकर उस ने भी उसी नदी में मज्जन किया था। उसके प्रभाव से दोनों हरि और हर से उत्पन्न ज्वर नष्ट हो गये थे ॥४०-४१॥ इसी लिये सभी समयों में वह क्षणभर में ज्वरघ्नी हो गई। ज्वर से अभिभूत परम दुःखित मनुष्य वहाँ प्राप्त होकर शिप्रा में निमज्जन किया करते हैं और समाहित होकर वास किया करते हैं। फिर कभी भी उनको ज्वर से होने वाली पीड़ा बाधा नहीं दिया करती है ॥४२-४३॥ हे ब्रह्मन् व्यास! उस समय में हरि और हर ने सत्य कहा था। जो एकाग्र मन वाले मनुष्य इस दिव्य कथा का श्रवण किया करते हैं उनको ज्वर के सन्ताप से होने वाला कुछ भी भय नहीं हुआ करता है ॥४४॥

—

## ६६—विष्णु स्तोत्र और ध्यान

विष्णुभक्तिः परा नित्या सर्वार्तिदुःखनाशिनी।
सर्व पापहरा पुण्या सर्वसुखप्रदायिनी ॥१
एषा ब्राह्मी महाविद्या न देया यस्य कस्यचित्।
कृतघ्नाय ह्यशिष्याय नास्तिकायानृताय च ॥२
ईर्ष्यकाय च रूक्षाय कामिकाय कदाचन।
तद्गतं सर्वं विघ्नन्तियत्तद्धर्मं सनातनम् ॥३
एतद्गुह्यतमं शास्त्रं सर्वपापप्रणाशनम्।
पवित्रं च पवित्राणां पावनानां च पावनम् ॥४
विष्णोर्नामसहस्रं च विष्णुभक्तिकरं शुभम्।
सर्वसिद्धिकरं नृणां भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥५
ॐ अस्य श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रमन्त्रस्य मार्कण्डेयऋषिः।
विष्णुर्देवताअनुष्टुप्छन्दःसर्वकामावाप्त्यर्थेजपेविनियोगः॥६

सजलजलदनीलं दर्शितोदारशीलं,
करतलधृतशैलं वेणुवाद्ये रसालम् ॥७
व्रजजनकुलपालं कामिनीकेलिलोलं,
तरुणतुलसिमालं नौमि गोपालबालम् ॥८

महर्षि मार्कण्डेय जी ने कहा—भगवान् विष्णु की भक्ति परम प्रधान है जो नित्या और सभी दुःखों को पाप्ति का विनाश करने वाली है। यह समस्त पापों के हरण करने वाली—पुण्यमयी और सब सुखों के प्रदान करने वाली है ॥१॥ यह ब्राह्मी महा विद्या है। इसको चाहे जिस किसी को नहीं देना चाहिए। जो कृतघ्न हो—अशिष्य हो—नास्तिक हो तथा क्रूरा हो उसे कभी न देवे ॥२॥ जो ईर्ष्यालु हो—रुक्ष हो और कामुक हो उसे भी इस विद्या को नहीं देना चाहिए। उसमें रहने वाले सब का विघ्न कर देती है—यही सनातन धर्म है ॥३॥ यह परम गोपनीय शास्त्र है जो सर्व पापों का नाशक है यह पवित्रों मे परम पवित्र है और पावनों में परम पावन है ॥४॥ भगवान विष्णु के सहस्र नाम परम शुभ विष्णु की भक्ति के करने वाले हैं। मनुष्यों की समस्त सिद्धियों के करने वाले तथा भुक्ति और मुक्ति दोनों ही के प्रदान करने वाला है ॥५॥ इस विष्णु सहस्र नामक स्तोत्र मन्त्र का मार्कण्डेय ऋषि है—विष्णु देवता है—अनुष्टुप् छन्द है—समस्त कामनाओं की प्राप्ति के लिये ही जप में विनियोग है ॥६॥ ध्यान—जल से परिपूर्ण मेघ के समान श्रीविष्णु का नीला वर्ण है—उदारता और शील से दर्शित स्वरूप है—हाथ पर शैल को धारण करने वाले हैं—रसमयी वेणु का वादन करने वाले हैं—व्रजवासियों के कुल के मनुष्यों का सदा परिपालन करने वाले हैं—कामिनियों की केलि में अतीव चंचल हैं—तरुण तुलसी की माला को धारण करने वाले गोपाल के बाल स्वरूप को मैं प्रणाम करता हूँ ॥७-८॥

ॐविश्वं विष्णुर्हृ पावनः सर्वात्मा सर्वभावनः ।
सर्वगः सर्व रानाद्यो भूतग्रामाऽन्ययाशय: ॥६

अनादिनिधनो देवः सर्वज्ञः सर्वसम्भवः ।
सर्वव्यापी जगद्धाता सर्वशक्तिधरोऽनघः ॥१०
जगद्बीज जगत्स्रष्टा जगदीशो जगत्पतिः ।
जगद्गुरुर्जगन्नाथो जगद्धाता जगन्मयः ॥११
सर्वाऽऽकृतिधरः सर्वविश्वरूपी जनार्दनः ।
अजन्मा शाश्वतो नित्यो विश्वाधारो विभुः प्रभुः ॥१२
बहुरूपैकरूपश्च सर्वरूपधरोहरः ।
कालाग्निप्रभवो वायुः प्रलयान्तकरोऽक्षयः ॥१३
महार्णवो महामेघो जलबुद्बुदसम्भवः ।
सस्कृनो विकृतो मत्स्यो महामत्स्यस्तिमिङ्गिलः ॥१४

अब विष्णु के सहस्र नामावली का प्रारम्भ होता है—विश्व स्वरूप वाले—विषयेन्द्रियों के स्वामी—सबके आत्मा—सब पर कृपा करने वाले विष्णु हैं। सर्वत्र गमन करने वाले—शर्वरी के स्वामी—भूत ग्रामों के आशयों के भी आशय हैं ॥९॥ आदि और अन्त से रहित हैं। देव—सभी कुछ के ज्ञाता, सबकी समुत्पत्ति करने वाले हैं। सर्वत्र सब में व्यापक—इस जगत् के धाता—सभी प्रकार की शक्तियों के धारण करने वाले तथा निष्पाप हैं॥१०॥ इस जगत् की उत्पत्ति के बीज स्वरूप हैं—जगत् के सृजन करने वाले—जगत् के स्वामी और इस जगत् की रक्षा करने वाले हैं। जगत् को ज्ञान देने वाले गुरु—जगत् के नाथ—जगत् के पालक और सम्पूर्ण जगत् के स्वरूप वाले हैं ॥११॥ सभी आकृतियों के करने वाले—सम्पूर्ण विश्व के स्वरूप वाले तथा जनों की पीडा को दूर करने वाले हैं। कभी जन्म न धारण करने वाले—निरन्तर स्थित रहने वाले—नित्य—विश्व के आधार—व्यापक और कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ प्रभु हैं। अर्थात् करने न करने और विपरीत करने की शक्ति से समन्वित समर्थ हैं ॥१२॥ बहुत से स्वरूपों से संयुत—एक ही रूप वाले—सबका स्वरूप धारण करने वाले—हर—कालाग्नि के समुत्पन्न करने वाले—वायु—प्रलय के अन्त करने वाले और क्षय से रहित हैं ॥१३॥ महान् सागर—महान् मेघ—जल के बुलबुले से समुत्पन्न—

संस्कार सम्पन्न---विकार युक्त—मत्स्य—महान् मत्स्य स्वरूप और तिमिङ्गल हैं। सबका भक्षण करने वाली सागर मे एक परम विशाल मछली को तिमिङ्गल कहते हैं ॥१४॥

अनन्तोवासुकिःशेषोवराहोधरणीधरः।
पयः क्षीरविवेकाढ्योहंसोहैमगिरि स्थितः ॥१५
हयग्रीवो विशालाक्षो हयकर्णो दयाकृतिः।
मन्थनो रत्नहारी च कूर्मो धरधराधरः ॥१६
विनिद्रो निद्रितोनन्दो सुनन्दोनन्दनप्रियः।
नाभिनालमृणालीच स्वयंभूश्चतुराननः ॥१७
प्रजापतिपरो दक्षः सृष्टिकर्ता प्रजाकरः।
मरीचिः कश्यपोदक्षः सुरासुरगुरुःकविः ॥१८
वामनो वाममार्गी च वामकर्मा बृहद्वपुः।
त्रैलोक्यक्रमणो दीपो बलियज्ञ विनाशन. ॥१९
यज्ञहर्ता यज्ञकर्ता यज्ञेशो यज्ञभुग्विभुः।
सहस्रांशुर्भगो भानुर्विवस्वानरविरंशुमान् ॥२०

अनन्त (शेष)—वासुकि—शेष—धरणी को धारण करने वाले—वराह हैं। दूध और जल के विवेचन से सुसम्पन्न हंस हेमगिरि पर स्थित रहने वाले हैं ॥१५॥ हयग्रीव—विशाल लोचनो वाले—हय के समान कर्णों वाले—और अश्व के सदृश आकृति वाले हैं अथवा दया के आकार से युक्त हैं—मन्थन करने वाले—रत्नों का हरण करने वाले-कूर्म-धरा को अधर धारण करने वाले हैं ॥१६॥ निद्रा से रहित—परम निद्रा वाले—आनन्द स्वरूप-सुनन्द और नन्दन प्रिय हैं। नाभि के कमल नाल के मृणाल वाले हैं—स्वय ही समुत्पन्न (ब्रह्मा) और चार मुखो वाले हैं। अर्थात् ब्रह्मा भी विष्णु भगवान् का ही एक स्वरूप है ॥१७॥ परम प्रजापति—दक्ष—सृष्टि के करने वाले—प्रजाओं को समुत्पन्न करने वाले—मरीचि—कश्यप—दक्ष—सुरों के गुरु तथा असुरो के गुरु हैं। अर्थात् सब प्रजापतियों और ऋषियों का स्वरूप भी विष्णु का ही रूप है ॥१८॥ वामन—वाम मार्ग वाले—वाम कर्म करने वाले तथा बृहत् शरीर से

समन्वित हैं। तीनों लोकों में संक्रमण करने वाले—दीप्त अर्थात् प्रकाशमान और राजा बलि के मद का विनाश करने वाले हैं ॥१६॥ यज्ञों के हरण करने वाले—यज्ञों के करने वाले—यज्ञों के स्वामी-यज्ञों में अंश ग्रहण करने वाले-सहस्र-सहस्र किरणों से युक्त (सूर्य)—भग-वान् विवस्वान्—अंशुमान्—रवि हैं ॥२०॥

तिग्मतेजास्त्वल्पतेजाः कर्मसाक्षी मनुर्यमः ।
देवराजः सुरश्रेष्ठो दानवारिः शचीपतिः ॥२१
अग्निर्वायुसखो वह्निर्वरुणो यादसांपतिः ।
नैर्ऋतो नादनोऽन्नादो रक्षसो धनदाधिपः ॥२२
कुबेरो वित्तवान्वेगो वसुपालो विलासभृत् ।
अमृतस्रवणः सोमः सोमपानकरः सुधीः ॥२३
सर्वौषधिकरः श्रीमान्निशाकरदिवाकरः ।
विषारिर्विषहर्त्ता च विषकण्ठधरो गिरिः ॥२४
नीलकण्ठो वृषी रुद्रो भालचन्द्रो ह्युमापतिः ।
शिवः शान्तो वशी वीरो ध्यानी मानी च मानदः ॥२५
कृमिकीटो मृगव्याधो मृगहा मृगलाञ्छनः ।
बटुको भैरवो बालः कपाली दण्डविग्रहः ॥२६
श्मशानवासी मांसाशी दुष्टनाशी वरान्तकृत् ।
योगिनीत्रासको योगी ध्यानस्थो ध्यानपावनः ॥२७

तीक्ष्ण तेज से युक्त—स्वल्प तेज वाले—सबके किये हुए कर्मों को देखने वाले—मनु—यम—देवों के राजा—सुरों के श्रेष्ठ—दानवों के शत्रु—इन्द्राणी के पति—अग्नि—वायु के सखा—वह्नि—वरुण—यादवों के पति—नैर्ऋत—नादन—अन्नादि—राक्षस और कुबेर हैं ॥२१-२२॥ कुबेर—वित्त वाले—वेग स्वरूप—वसुपाल—और विलासों के करने वाले हैं। अमृत के स्रवण करने वाले—सोम—सोमरस को पीने वाले—सुधी हैं ॥२३॥ सम्पूर्ण औषधियों के करने वाले, श्री सम्पन्न निशाकर (चन्द्रमा) और दिवाकर (सूर्य) हैं। विष के शत्रु, विष के हरण करने

वाले, विष (गरल) को कण्ठ में धारण करने वाले—गिरि हैं ॥२४॥ नीलकण्ठ—वृष वाले—रुद्र—भाल में चन्द्र को धारण करने वाले, उमा के स्वामी—शिव—शान्त स्वरूप—पदा में रहने वाले—धीर—ध्यान में मग्न—मानयुक्त और दूसरों को मान के देने वाले हैं ॥२५॥ कृमि कीट—मृगों के व्याध—पशुओं के हनन करने वाले—मृग के चिह्न वाले (चन्द्रमा)—वटुक काल स्वरूप भैरव (शिव के प्रधान गण) बाल—कपाल धारी और दण्ड के विग्रह वाले हैं ॥२६॥ श्मशान में निवास करने वाले—मांस का प्राशन करने वाले—दुष्टों के नाशक—वरों के अन्त करने वाले हैं। योगियों को मानदाता—योगी—ध्यान में स्थित और ध्यान परायण हैं ॥२७॥

सेनानीः सेनदः स्कन्दो महाकालो गणाधिपः।
आदिदेवोगणपतिर्विघ्नहा विघ्ननाशनः ॥२८
ऋद्धिसिद्धिप्रदोदन्ती भालचन्द्रोगजाननः।
नृसिंह उग्रदंष्ट्रस्च नखी दानवनाशकृत् ॥२९
प्रह्लादपोपकर्ता च सर्वदैत्यजनेश्वरः।
शलभः सागरः साक्षी कल्पद्रुमविकल्पकः ॥३०
हेमदो हेमभागी च हिमकर्ता हिमाचलः।
भूधरो भूमिदोमेरुः कैलासशिखरोगिरिः ॥३१
लोकालोकान्तरो लोकी विलोकी भुवनेश्वरः।
दिक्पालो दिक्पतिर्दिव्यो दिव्यकायो जितेन्द्रियः ॥ २
विरूपो रूपवान्रागी नृत्यगीतविशारदः।
हाहा हूहूश्चित्ररथो देवर्षिर्नारद सखा ॥३३
विश्वेदेवाः साध्यदेवा धृताशीश्च चलोऽचलः।
कपिलो जल्पको वादी दत्तो हैहय सङ्कराट् ॥३४

सेनानी (सेना के अधिपति कार्तिकेय)—सेना देने वाले, स्कन्द, महाकाल, गणों के स्वामी, आदि देव, गणपति (गणेश), विघ्नों के हनन करने वाले, विघ्नों के नाशक हैं ॥२८॥ ऋद्धियों और सम्पूर्ण सिद्धियों के प्रदान करने वाले, दन्ती (एक दाँतधारी), मस्तक में चन्द्रमा को धारण

करने वाले, गज के समान मुख से संयुत,नृसिंह, उग्र दाढ़ों वाले, नखों से (विशाल एवं तीक्ष्ण नखों वाले) युक्त,दानवों के विनाशकारी हैं ॥२६॥ प्रह्लाद के पोषण करने वाले, समस्त दैत्यजनों के स्वामी, शलभ, सागर, साक्षी कल्प वृक्ष के विकल्प वाले अर्थात् समस्त मनोरथों का पूर्ण करने वाले कल्पद्रुम के ही सदृश हैं ॥३०॥ हेम के दाता, हेम के भागी, हिम के करने वाले, हिमवान् पर्वत, भूधर, भूमि के दाता, सुमेरु, कैलाश का शिखर, गिरि है ॥३१॥ लोकालोक पर्वत के मन्दर, लोकों, विलोकन करने वाला, भुवनों के स्वामी, दिशाओं के पालक, दिशाओं के पति, परम उत्तम, उत्तम आकृति तथा काया वाले और इन्द्रियों को जीतने वाले हैं ॥३२॥ विगत रूप वाले, परम सुन्दर रूप से संयुत, राग युक्त, नृत्य और गीतों के महान् मनीषी हैं। हाहा-हूहू, चित्ररथ, देवर्षि नारद और सखा हैं ॥३३॥ विश्वेदेवा, साध्य देव, धृताची, चल, अचल (वह जो चलायमान न हो), कपिल, कल्पक, नादी, दत्त, हैहय और शङ्कराः हैं ॥३४॥

वसिष्ठो वामदेवश्च सप्तर्षिप्रवरो भृगुः ।
जामदग्न्योमहावीरः क्षत्रियान्तकरोह्यृषिः ॥३५
हिरण्यकशिपुश्चैवहिरण्याक्षोहरप्रियः ।
अगस्तिः पुलहोदक्षः पौलस्त्योरावणोघटः ॥३६
देवारिस्तापसस्तापीविभीषणहरिप्रियः ।
तेजस्वीतेजदस्तेजो ईशो राजपतिः प्रभुः ॥३७
दासरथी राघवोरामोरघुवंशविवर्धनः ।
सीतापतिःपतिः श्रीमान्ब्रह्मण्योभक्त वत्सलः ॥३८
सन्नद्धः कवचो खड्गी चीरवासा दिगम्बरः ।
किरीटी कुण्डली चापी शङ्खचक्री गदाधरः ॥३९
कौशल्यानन्दनोदारो भूमिशायी गुहप्रियः ।
सौमित्रो भरतो बालः शत्रुघ्नो भरताग्रजः ॥४०
लक्ष्मणः परवीरघ्नः स्त्रीसहायः कपीश्वरः ।
हनुमानृक्षराजश्च सुग्रीवोवालिनाशनः ॥४१

दूतप्रियो दूतकारी ह्यङ्गदो गदतां वरः ।
वनध्वंसो वनी वेगो वानरध्वजलांगुली ॥४२

वसिष्ठ, वामदेव और सप्तर्षियों में परम श्रेष्ठ भृगु हैं। जामदग्न्य, महावीर और क्षत्रियों का अन्त करने वाले ऋषि परशुराम) हैं ॥३५॥ हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष-हर का प्रिय, अगस्ति, पुलह, दक्ष, पौलस्त्य, रावण, पर हैं ॥३६॥ देवारि, तापस, तापी, विभीषण और हरि के प्रिय, तेजयुक्त, तेज को देने वाले, तेजी, ईश, राजपति और प्रभु हैं ॥३७॥ दशरथ के पुत्र, राघव, राम, रघु के वंश की वृद्धि करने वाले, सीता के पति, स्वामी, श्रीमान्, ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले), भक्तों पर प्रेम करने वाले हैं ॥३८॥ सन्नद्ध, कवच धारी, खड्गयुक्त, पीले वस्त्रों वाले, दिगम्बर (नग्न), किरीट पहनने वाले, कुण्डलों को धारण करने वाले, चाप से युक्त, शङ्ख और सुदर्शन चक्र के धारी, गदा को धारण करने वाले हैं ॥३९॥ कौशल्या को आनन्द देने वाले पुत्र, उदार, भूमि पर शयन करने वाले, गुह के प्यारे, सुमित्रा पुत्र, भरत, बाल शत्रुघ्न और भरत के ज्येष्ठ भाई हैं ॥४०॥ लक्ष्मण, दूसरों के वीरों का हनन करने वाले, स्त्री की सहायता से युक्त, कपियों के ईश्वर, हनुमान, रीछों का राजा जाम्बवान्, सुग्रीव और बालि का वध करने वाले हैं ॥४१॥ दूत प्रिय, दूतों के करने वाले, अङ्गद, बोलने वालों में श्रेष्ठ, वनों का विध्वंस करने वाले, वनी, वेग और वानरों के ध्वज का लांगुली हैं ॥४२॥

रविदंष्ट्री च मद्घाहा हाहाकारो वरप्रदः ।
भवनेत्रं महासेतुबद्धसेतू रमेश्वरः ॥४३
जानकीवल्लभः कामी किरीटी कुण्डली खगी ।
पुण्डरीकविशालाक्षो महाबाहुर्घनाकृतिः ॥४४
चञ्चलश्चपलः कामी वामो वामाङ्गवत्सलः ।
स्त्रीप्रियः स्त्रीपरः स्त्रैणः स्त्रियो वामाङ्गवासकः ॥४५
जितवैरो जितकामो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
शान्तो दान्तो दयारामो ह्येकस्त्री व्रतधारकः ॥४६

करने वाले, गज के समान मुख से संयुत, नृसिंह, उग्र दाढ़ों वाले, नखों से (विशाल एवं तीक्ष्ण नखों वाले) युक्त, दानवों के विनाशकारी हैं ॥२६॥ प्रह्लाद के पोषण करने वाले, समस्त दैत्यजनों के स्वामी, शलभ, सागर, साक्षी कल्प वृक्ष के विकल्प वाले अर्थात् समस्त मनोरथों का पूर्ण करने वाले कल्पद्रुम के ही सदृश हैं ॥३०॥ हेम के दाता, हेम के भागी, हिम के करने वाले, हिमवान् पर्वत, भूधर, भूमि के दाता, सुमेरु, कैलाश का शिखर, गिरि है ॥३१॥ लोकालोक पर्वत के अन्तर, लोकों, विनाश करने वाला, भुवनों के स्वामी, दिशाओं के पालक, दिशाओं के पति, परम उत्तम, उत्तम आकृति तथा काया वाले और इन्द्रियों को जीतने वाले हैं ॥३२॥ विगत रूप वाले, परम सुन्दर रूप से संयुत, राग युक्त, सुर और गीतों के महान् मनोषी हैं। हाहा हूहू, चित्ररथ, देवर्षि नारद और सखा हैं ॥३३॥ विश्वेदेवा, साध्य देव, घृताची, चल, अचल (जो कभी चलायमान न हो), कपिल, जल्पक, नादी, दत्त, हैहय और बहुराट् हैं ॥३४॥

वसिष्ठो वामदेवश्च सप्तर्षिप्रवरो भृगुः ।
जामदग्न्योमहावीरः क्षत्रियान्तकरोह्यृषिः ॥३५
हिरण्यकशिपुश्चैवहिरण्याक्षोहरप्रियः ।
अगस्तिः पुलहोदक्षः पौलस्त्योरावणोघटः ॥३६
देवारिस्तापसस्तापीविभीषणहरिप्रियः ।
तेजस्वीतेजदस्तेजो ईशो राजपतिः प्रभुः ॥३७
दासरथी राघवोरामोरघुवशविवर्धनः ।
सीतापतिःपति· श्रीमान्ब्रह्मण्योभक्त वत्सलः ॥३८
सन्नद्ध. कवची खड्गी चीरवासा दिगम्बरः ।
किरीटी कुण्डली चापी शङ्खचक्री गदाधरः ॥३९
कौशल्यानन्दनोदारो भूमिशायी गुहप्रिय. ।
सौमित्रो भरतो बालः शत्रुघ्नो भरताग्रजः ॥४०
लक्ष्मणः परवीरघ्नः स्त्रीसहायः कपीश्वरः ।
हनुमानृक्षराजश्च सुग्रीवोवालिनाशनः ॥४१

दूतप्रियो दूतकारी ह्यङ्गदो गदतां वरः ।
भनध्वंसी वनी वेगो वानरध्वजलांगुली ॥४२

वसिष्ठ, वामदेव और सप्तर्षियों में परम श्रेष्ठ भृगु हैं । जामदग्न्य, महावीर और क्षत्रियों का अन्त करने वाले ऋषि परशुराम) हैं ॥३५॥ हिरण्यकशिपु, हिरण्याक्ष-हर का प्रिय, अगस्ति, पुलह, दक्ष, पौलस्त्य, रावण, वर हैं ॥३६॥ देवारि, तापस, तापी, विभीषण और हरि के प्रिय, तेजयुक्त, तेज को देने वाले, तेजी, ईश, राजपनि और प्रभु हैं ॥३७॥ दशरथ के पुत्र, राघव, राम, रघु के वंश की वृद्धि करने वाले, सीता के पति, स्वामी, श्रीमान्, ब्रह्मण्य (ब्राह्मणों की रक्षा करने वाले), भक्तों पर प्रेम करने वाले हैं ॥३८॥ सन्नद्ध, कवच धारी, खड्गयुक्त, चीरों के वस्त्रों वाले, दिगम्बर (नग्न), किरीट पहनने वाले, कुण्डलों को धारण करने वाले, चाप से युक्त, शङ्ख और सुदर्शन चक्र के धारी, गदा को धारण करने वाले हैं ॥३९॥ कौशल्या को आनन्द देने वाले पुत्र, उदार, भूमि पर शयन करने वाले, गुह के प्यारे, सुमित्रा पुत्र, भरत, वाल शत्रुघ्न और भरत के ज्येष्ठ भाई हैं ॥४०॥ लक्ष्मण, दूसरों के वीरों का हनन करने वाले, स्त्री की सहायता से युक्त, कपियों में ईश्वर, हनुमान्, रीछों का राजा जाम्बवान्, सुग्रीव और बालि का वध करने वाले हैं ॥४१॥ दूत प्रिय, दूतों के करने वाले, अङ्गद, वालने वालों में श्रेष्ठ, वनों का विध्वंस करने वाले, वनी, वेग और वानरों के ध्वज का लांगुली हैं ॥४२॥

रविदष्टी च लङ्काहा हाहाकारो वरप्रदः ।
भवसेतुर्महासेतुर्बद्धसेतु रमेश्वरः ॥४३
जानकीवल्लभः कामी किरीटी कुण्डली खगी ।
पुण्डरीक विशालाक्षो महाबाहुर्घनाकृतिः ॥४४
चञ्चलश्चपलः कामी वामी वामाङ्गवत्सलः ।
स्त्रीप्रियः स्त्रीपरः स्त्रैणः स्त्रियो वामाङ्गवासकः ॥४५
जितवैरी जितकामो जितक्रोधो जितेन्द्रियः ।
शान्तो दान्तो दयारामो ह्येकस्त्री व्रतधारकः ॥४६

सात्त्विक सत्त्वसंस्थानो मदहा क्रोधहा खरः ।
बहुराक्षससम्वीत सर्वराक्षसनाशकृत् ॥४७
रावणारी रणक्षुद्रदशमस्तकच्छेदक ।
राज्यकारी यज्ञकारी दाता भोक्ता तपोधन ॥४८
अयोध्याधिपति कान्तो वैकुण्ठोऽकुण्ठविग्रह ।
सत्यव्रतो व्रती शूरस्तपी सत्यफलप्रद ॥४९

रवि के वंश्य में आने वाले, लङ्का का हनन कर्त्ता, हा हा कार, वरदान के देने वाले, इस संसार से पार होने का सेतु, महान् सेतु और रमा (लक्ष्मी) के ईश्वर हैं ॥४३॥ जानकी के प्रिय, कामी, किरीट धारी, कुण्डल पहिनने वाले, खगी अर्थात् गरुड पर सवारी करने वाले, पुण्डरीक के सदृश विशाल नेत्रों से संयुत, बड़ी भुजाओं वाले, मेघ के समान आकार वाले हैं ॥४४॥ परम चपल, चपल, काम युक्त, वामों वाले, वामाओं के अगों पर प्रेम करने वाले, स्त्रियों के प्रिय, स्त्री परायण, स्त्रियों में ही रमे रहने वाले, स्त्री के वाम अङ्ग में वास देने वाले हैं ॥४५॥ वैरियों को जीतने वाले, काम पर विजयी, क्रोध को पराजित करने वाले, इन्द्रियों को वश में रखने वाले, परम शान्त, दमनशील, दयाराम और एक ही स्त्री के व्रत को धारण करने वाले हैं ॥४६॥ परम सात्त्विक, सत्त्व के संस्थान वाले, मद के हर्ता, क्रोध के हरण कर्त्ता, खर, बहुत, से राक्षसों से संवीत और समस्त राक्षसों के नाश करने वाले हैं ॥४७॥ रावण के शत्रु, रण में क्षुद्र दश माथों के छेदन करने वाले, राज्य करने वाले, यज्ञ के कर्त्ता, दान देने वाले, भोग करने वाले और तप को ही धन मानने वाले हैं ॥४८॥ अयोध्या के स्वामी, कान्त (सुन्दर), वैकुण्ठ, अकुण्ठित विग्रह वाले, सत्य के व्रत से समन्वित, व्रतधारी, शूर, तप करने वाले सत्य फल के दाता हैं ॥४९॥

सर्वसाक्षी स्वर्गश्च सर्वप्राणहरोऽव्यय ।
प्राणश्चाथाप्यपानश्च व्यानोदानः समानक ॥५०
नाग. कृकल कूर्मश्च देवदत्तो धनञ्जय. ।
सर्वप्राणविदो व्यापी योगधारकधारक. ॥५१

तत्त्ववित्तत्त्वदस्तत्त्वी सर्वतत्त्वविशारदः ।
ध्यानस्थो ध्यानशाली च मनस्वी योगवित्तमः ॥५२
ब्रह्मज्ञो ब्रह्मदो ब्रह्मज्ञाताचब्रह्मसम्भवः ।
आध्यात्मविद्विदोदीपो ज्योतिरूपोनिरञ्जनः ॥५३
ज्ञानदोऽज्ञानहा ज्ञानी गुरुः शिष्योपदेशकः ।
सुशिष्यः शिक्षितः शाली शिष्यशिक्षाविशारदः ॥५४
मन्त्रदो मन्त्रहा मन्त्री तन्त्री तन्त्रजनप्रियः ।
सन्मन्त्रो मन्त्रविन्मन्त्री यन्त्रमन्त्रैकभञ्जनः ॥५५
मारणो मोहनो मोही स्तम्भोच्चाटनकृत्खलः ।
बहुमायो विमायश्च महामायाविमोहकः ॥५६
सहस्राक्षः सहस्रपात्सहस्रवदनोज्ज्वलः ।
सहस्रनामानन्ताक्षःसहस्रबाहुर्नमोऽस्तुते ॥५७

सबके द्रष्टा—सर्वत्र गमनशील—सबके प्राणो का हरण करने वाले—अव्यय (नाश रहित)—प्राण—अपान—व्यान—उदान और समान है। ये शरीर मे रहने वाली पाँच प्रकार की वायु है जो जीवन के आधार है ॥५०॥ नाग—कृकल—कूर्म—देवदत्त-धनञ्जय—( ये पाँच अन्य वायु हैं )—सब के प्राणो के ज्ञाता—व्यापी—योग के धारण करने वालो के धारक है ॥५१॥ तत्वो का ज्ञाता, तत्व प्रदान करने वाला, तत्व से संयुत सब तत्वो के विशारद, ध्यान मे स्थित, ध्यानशाली, मन को नियन्त्रित रखने वाले और परम श्रेष्ठ योग के वेत्ता हैं ॥५२॥ ब्रह्म के ज्ञाता, ब्रह्म ज्ञान के दाता, ब्रह्म को पहिचानने वाले, ब्रह्म से सम्भव, अध्यात्म वेत्ताओ के ज्ञाता, दीप स्वरूप, ज्योति रूप और निरञ्जन हैं ॥५३॥ ज्ञान के दाता, ज्ञान के हर्त्ता, ज्ञान से युक्त, अज्ञान के नाशक, शिष्यो को उपदेश देने वाले, सुशिष्य, शिक्षित, शोभा संयुत और शिष्यो की शिक्षा के विशारद ( महा पण्डित ) हैं ॥५४॥ मन्त्रो के दाता, मन्त्रो के हनन करने वाले, मन्त्रों से संयुत, तन्त्र युत, तन्त्र जनो के प्रिय, सत मन्त्रों वाले, मन्त्रो के वेत्ता, मन्त्री और मन्त्र तथा मन्त्रो के एक ही भञ्जन करने

वाले है ॥५५॥ मारण करने वाले, मोहन करने वाले, मोह युक्त, स्तम्भन और उच्चाटन करने वाले, खल, बहुत माया से समन्वित, विना माया वाले और महा माया को मोह करने वाले हैं ॥५६॥ सहस्र नेत्रों वाले, सहस्र चरणों से युक्त, सहस्र मुख वाले, अतीव उज्ज्वल, सहस्र नामों वाले, अनन्त नेत्रों से युक्त, और सहस्र बाहुओं से संयुत हैं ऐसे आपकी सेवा मे नमस्कार समर्पित है ॥५७॥

विष्णोर्नामसहस्रं वै पुराणं वेदसम्मतम् ।
पठितव्यं सदा भक्तैः सर्वमङ्गलमङ्गलम् ॥५८
इति स्तवाभियुक्तानां देवानां तत्र वैद्विज ।
प्रत्यक्षं प्राह भगवान्वरदो वरदार्चितः ॥५९
व्रियतां भोः सुराः! सर्ववरोऽस्मत्तोऽभिवाञ्छितः।
तत्सर्वं सम्प्रदास्यामि नाऽत्रकार्या विचारणा ॥६०
वरदोऽसि यदा विष्णो वरमेतं ददस्व नः ।
अदितेर्गर्भसभूत शक्रस्याप्यनुजोभव ॥६१
इति संप्रार्थितो देवैर्ब्रह्मशक्रपुरोगमैः ।
तथेत्युक्त्वा च भगवास्तत्रैवान्तरधीयत ॥६२
ततः कतिपये काले भगवानदितिनन्दनः ।
विष्णुरूपधरोऽनन्तोवामनत्वाच्चवामनः ॥६३

यह भगवान् विष्णु के नामों का सहस्र पुराण है तथा वेदों के द्वारा समात है । इसे सदा ही भक्तों को पढ़ना चाहिए । यह अमङ्गल से रहित सभी प्रकार के मङ्गल करने वाला है ॥५८॥ हे द्विज ! इस स्तव से युक्त देवों को वहाँ पर वरदों के द्वारा समर्चित वरदान देने वाले भगवान ने प्रत्यक्ष रूप से कहा था ॥५९॥ श्री भगवान् ने कहा—हे सुर गणो ! आप सब हमसे अभिवाञ्छित वरदान माँग लो । यह सभी मैं आपको दे दूँगा । इसमें कुछ भी विचारणा मत करो अर्थात् वर मिलेगा या नहीं–ऐसा सन्देह मत करो ॥६०॥ देवगण ने कहा–हे विष्णो ! जब वरदान देने की ही कृपा करते हैं तो हमको यह वरदान प्रदान कीजिए कि आप स्वयं अदिति के गर्भ से समुत्पन्न होकर इन्द्र के छोटे भाई हो जाइये

॥६१॥ देवो के द्वारा इस प्रकार से सम्प्रार्थित होते हुए जिन देवों मे ब्रह्मा और इन्द्र पुरोगामी थे । तथास्तु अर्थात् ऐसा ही होवे—यह कहकर भगवान् विष्णु वही पर अन्तर्हित हो गये थे ॥६२॥ इसके अनन्तर कुछ काल मे भगवान विष्णु रूपधारी अदिति के पुत्र हुए थे । जो अनन्त थे तथा बौना होने से वामन नामधारी हुए थे ॥६३॥

बलिर्वैरोचनो व्यास वाजिमेघशतेन च ।
ईजे द्विजवरश्रेष्ठ! इन्द्रराज्यजिहीर्षया ॥६४
ऋत्विजं कश्यपं कृत्वा होतारं भृगुसत्तमम् ।
ब्रह्मा तत्राभवच्चैवस्वयमेवपितामह ॥६५
अध्वर्युं भगवानग्निर्बभूव मुनिसत्तमः ।
उद्गाता नारदश्चैव वसिष्ठश्च सभासदः ॥६६
ये यत्र विहिताःसर्वेतत्रतत्रमुनीश्वराः ।
बलिस्तत्राऽभवद्व्यास दीक्षितोराजसत्तम. ॥६७
एवं प्रवर्तमानेषु यज्ञेषु मुनिसत्तम! ।
हूयतां भुज्यतां चैव दीयतां पीयतां तथा ॥६८
इति वाचः शुभास्तत्र श्रूयन्ते च द्विजोत्तम ।
तस्मिन्काले सुचित्तेषु वामनोऽगाच्छुचिस्मितः ॥६९

हे व्यास ! विरोचन का पुत्र बलि सौ वाजिमेध यज्ञो के द्वारा यजन कर रहा था । हे द्विज वरो मे श्रेष्ठ ! इस बलि ने यह यजन इन्द्र के राज्य के हरण करने की ही इच्छा से किया था ॥६४॥ उस बलि ने यज्ञ मे कश्यप को तो ऋत्विज नियुक्त किया था और भृगु श्रेष्ठ को होता बनाया था तथा पितामह ब्रह्माजी ही स्वयं उस यज्ञ में ब्रह्मा हुए थे ॥६५॥ भगवान अग्नि उसमे अध्वर्यु थे जो कि परम श्रेष्ठ मुनि थे । नारद उद्गाता थे और वसिष्ठ सभासद थे ॥६६॥ जो जहाँ पर विहित किए थे वहीं-वहीं पर सब मुनीश्वर अपना २ कर्म कर रहे थे । वहाँ यज्ञ में हे व्यास ! श्रेष्ठतम राजा बलि दीक्षित हुआ था ॥६७॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! इस प्रकार से यज्ञो के प्रवर्तमान होने पर "हूयतां, भुज्यतां, दीयतां,

धीयतां" अर्थात् आहुतियाँ डालो या हवन करो, भोजन कराओ, दान दो, धारण करो—इस प्रकार की वाणियाँ जो परम शुभ थीं वहाँ पर सुनाई दे रही थी। हे द्विजोत्तम! उसी समय में उन सुचिन्नित यज्ञों में सुचिस्मित वाले वामन आ गये थे ॥६८-६९॥

पठमानो मुखाग्रेण चातुर्वेदिकमन्त्रकान् ।
द्वारे तिष्ठति राजेन्द्र वामनो द्विजसत्तमः ॥७०
प्रतिहारेण वै व्यास! सर्वं राज्ञेनिवेदितम् ।
उत्थाय च महाराजोबलिवरोचनिस्तदा ॥७१
अर्घ्यमादाय तत्सर्वं जगाम स्वैः सभासदैः ।
पूजयित्वा यथान्यायं वामनं लोकभावनम् ॥७२
आनयित्वा सभामध्ये दत्वाऽऽसनपरिग्रहम् ।
कुतस्त्वागमनं ब्रह्मन्किन्तेऽभीष्टं ददामि वै ॥७३
राजराजाखिला सृष्टिर्ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।
ततोऽहमागतो भूमन्यज्ञं चैव दिदृक्षया ॥७४
वरुणस्यच यज्ञो वै दृष्टो मे वै पुराऽनघ! ।
यक्षाधिपतेनूनं च यज्ञं वैदृष्टवानहम् ॥७५
धर्मस्यापि च यज्ञो मे प्रजापतेश्च सत्तम ।
वायोर्यज्ञो महाराज दृष्टोमेविधिपूर्वकः ॥७६
राजर्षीणां च ये यज्ञा दृष्टास्तेऽपि महाव्रत! ।
यादृशं वै महाराज यज्ञं ते दृष्टवानहम् ॥७७
ईदृशो राजराजेन्द्र न भूतोनभविष्यति ।
तस्मादिहागतो राजन्! याचनार्थंतवाऽनघ ॥७८

कण्ठस्थ चारों वेदों के मन्त्रों को मुख से पढ़ते हुए एक परम श्रेष्ठ द्विज, प्रहरी ने कहा—हे राजेन्द्र! द्वार पर खड़ा हुआ है ॥७०॥ हे व्यास! प्रतिहारी ने सभी कुछ वामन के विषय में राजा बलि से निवेदन कर दिया था। उसी समय में विरोचन का पुत्र महाराज बलि ने उठकर अर्घ्य लेकर अपने सभासदों के साथ में सबके साथ वहाँ पर गये थे। सविधि पूजा करके अर्थात् लोकों पर कृपा करने वाले वामन देव की

अर्चना की थी ॥७१-७२॥ फिर उन वामन देव को सभा के मध्य में लिवाकर ले आये और आसन आदि निवेदित किया था। बलि ने पूछा—हे ब्रह्मन्! आपका आगमन कहाँ से हुआ है? आपका क्या अभीष्ट है जिसे मैं आपकी सेवा में समर्पित करूँ? ॥७३॥ वामन देव ने कहा—हे राज राज! हे भूमन्! यह समस्त सृष्टि परमेष्ठी ब्रह्मा की है यहीं से मैं इस यज्ञ के देखने की इच्छा से समागत हुआ हूँ ॥७४॥ हे अनघ! मैंने पहिले वरुण का यज्ञ देखा था और यज्ञों के अधिपति का भी निश्चय ही, मैंने यज्ञ का दर्शन किया था ॥७५॥ हे सत्तम! मैंने धर्म का और प्रजापति का भी यज्ञ देखा था किन्तु हे राजन्! मैंने जैसा यह आपका यज्ञ देखा है। हे महाराज राज राजेन्द्र! इस प्रकार का यज्ञ तो न कभी पहिले हुआ और न होगा। हे राजन्! हे अनघ! इसी कारण से आपसे कुछ याचना करने के ही लिए मैं यहाँ पर आया हूँ ॥७६-७८॥

याचस्व त्वं द्विजश्रेष्ठ! किं तेऽभीष्टं ददाम्यहम्। ७९
देहि मे राजराजेन्द्र! पदानि त्रीणि मेदिनीम्।
वासार्थं रोचते तेऽद्य यदि पार्थिवसत्तम! ॥८०
किमिदं याचितं विप्र! स्वल्पं ते नहि ते परम्।
गजवाजिरथाः क्षोणी रत्नानि विविधानि च ॥८१
दासदासीर्वरारोहा.स्त्रियोनानावसूनिच।
द्रव्याणिवासांसीशुभ्रेयाचस्वत्वंद्विजोत्तम ॥
पात्रोऽसि कृतकृत्योऽसि वेदवेदाङ्गपारग! ॥८२
न मे किञ्चित्स्पृहा राजन्विद्यते भुवि मानद!।
देहि त्वं त्रिपदां भूमिं यदि श्रद्धाऽस्ति तेऽधुना ॥८३
इत्युक्ते वामनेनाथ बलिर्वचनमब्रवीत्।
गृहाण त्रिपदां भूमिं वासस्यार्थं हि मानद ॥८४

राजा बलि ने कहा—श्रेष्ठ द्विज! आप याचना कीजिए। मैं आपके अभीष्ट पदार्थ को दूँगा ॥७९॥ श्री वामन देव ने कहा—हे राज राजेन्द्र! आप मुझे केवल तीन पद भूमि दीजिए जो मेरे निवास के लिए पर्याप्त

है। हे राजाओं में परम श्रेष्ठ ! यदि यह आपको रुचिकर हो तो आज ही दे दीजिए ॥८०॥ बलि ने निवेदन किया—हे विप्र ! आपने बहुत थोड़ा सा यह क्या माँगा है। यह आपके लिए देना अधिक सुन्दर नहीं है। हे द्विजोत्तम ! मेरे समीप में दान देने के लिए आप जैसे श्रेष्ठ महानुभाव को अनेक पदार्थ हैं। गज, अश्व, रथ, भूमि, विविध प्रकार के रत्न दास, दासी, परम सुन्दरी नारियाँ, नाना भाँति के धन, द्रव्य, शुभ वस्त्र हैं। आप भी इनकी याचना कीजिए। आप तो समस्त वेदों और वेदों के अंग शास्त्रों के पारगामी मनीषी हैं। आप सभी प्रकार के ज्ञान के समुचित पात्र हैं और कृतकृत्य हैं ॥८१-८२॥ श्री वामनदेव ने कहा—हे मान के देने वाले ! हे राजेन्द्र ! इस भूमण्डल में मुझे किसी भी पदार्थ के प्राप्त करने की स्पृहा नहीं है। यदि इस समय में आपकी श्रद्धा हो तो मुझे केवल तीन पद परिमित भूमि ही दीजिए ॥८३॥ वामन वेश के द्वारा ऐसा कथन करने पर बलि ने यह वचन कहा था—हे मानद ! अपने निवास के लिए तीन पद भूमि ग्रहण कीजिए ॥८ ॥

इत्युक्त्वासचराजर्षिर्ददौभूर्मिद्विजाय वै।
वारितोऽपितदाव्यासभृगुणादैवनोदितः ॥८५
दत्तमात्रे जलेसद्यो ब्रह्माण्डं चाक्रमद्धरिः।
सार्धपादद्वयं जाता सशैलवनकानना ॥८६
वसुधेयं तदा व्यास! बलिना चार्पितं वसु।
जित्वाऽसुरगणान्सर्वान्राज्यं दत्वा शतक्रतोः ॥८७
पश्चात्कुमुद्वतीं प्राप्तो विष्णुर्वामनरूपधृक् ॥८८
ऋद्धिसिद्ध्याश्रमे पुण्ये तीर्थं कृत्वाऽऽत्मसंभवम्।
निवासमकरोद्व्यास तत्रैव स सुरोत्तमः ॥८९

यह कहकर उस राजर्षि ने द्विज को भूमि के दान का संकल्प कर दिया था। हे व्यास ! उस समय में देव के द्वारा प्रेरित हुआ राजा भृगु (शुक्राचार्य) के द्वारा निवारित भी किया गया था कि भूमि के दान का वचन मत दो। संकल्प के जल के देते ही श्री हरि ने तुरन्त ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का आक्रमण कर दिया था। वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिसमें

शैल, वन घोर कानन सभी ये ढाई पद मे ही नाप लिया गया था ॥८५-८६॥ उस समय में हे व्यास ! राजा बलि के द्वारा समर्जित सम्पूर्ण वैभव जीतकर तथा सब असुरो को पराजित करके इन्द्र को सम्पूर्ण राज्य दे दिया था ॥८७॥ इसके पश्चात् वामन के स्वरूप धारण करने वाले भगवान् विष्णु कुमुद्वती से प्राप्त हो गये थे ॥८८॥ उस ऋद्धि और सिद्धियों के परम पुण्यमय आश्रम मे आत्म सम्भव अर्थात् अपने द्वारा उत्पन्न तीर्थ बनाकर हे व्यास ! सुरोत्तम वामन देव ने वहीं पर अपना निवास किया था ॥८९॥

वामनेन कृत तीर्थं वामनं कुण्डमुच्यते ।
भाद्रेमासिसितेपक्षेद्वादशी श्रवणान्विता ॥९०

वामनद्वादशी प्रोक्ता हत्याकोटिविनाशिनी ।
अस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा ह्युपोष्यैकादशी यदा ॥९१

रात्रौ जागरण कुर्याद्ब्रह्मभूयाय कल्पते ।
द्वादश्यां यं विशेषेण महादानानिकुर्वते ॥९२
नतेषादुर्लभ किञ्चित्त्रिपुलात्तेषु विद्यते ।
एवं यं वामन तीर्थं पुरा प्रोक्तं महर्षिणा ॥९३
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वकामवरप्रदम् ।
प्राप्यते तेन सर्वं हि नाऽत्र कार्याविचारणा ॥९४

वामन देव के द्वारा किया हुआ तीर्थ वामन कुण्ड कहा जाता है । भाद्रपद मास मे शुक्ल पक्ष म श्रवण नक्षत्र से युक्त द्वादशी तिथि वामन द्वादशी कही गई है । यह करोड़ों हत्या के पापो का विनाश करने वाली है । इस तीर्थ मे मनुष्य स्नान करके जब एकादशी का उपवास करे और रात्रि मे जागरण करे तो वह ब्रह्म भूय कल्पित होता है अर्थात् ब्रह्म के ही समान हो जाया करता है । इस द्वादशी में विशेष रूप से महान् दान करे उस पुरुष के लिए तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहा करता है । इस प्रकार से पहिले महर्षि ने वामन तीर्थ का वर्णन किया था । यह समस्त पापो के हरण करने वाला पुण्यमय सब कामनाओं

के वरों के प्रदान करने वाला है उस मनुष्य के द्वारा सभी कुछ प्राप्त कर लिया जाता है इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥६०-६४॥

---

## ७०—कुटुम्बेश्वरमाहात्म्यकथन

भृणुव्यासपरं तीर्थं भुवि विख्यातमुत्तमम् ।
कुटुम्बेश्वरेतिविख्यातो नाम्नाचवमहेश्वरः ॥१
तस्यतीर्थं वरं तीर्थं सर्वं तीर्थं फलप्रदम् ।
यस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा कुटुम्बीजायते ध्रुवम् ॥२
कुटुम्बार्थं तपस्तेपे पुरा दक्षः प्रजापतिः ।
नारदेन पुरा व्यास पुत्रषष्ठिर्विवासिता ॥३
प्रजाकामः स धर्मात्मा सुचिरं व्रतमाचरत् ।
सपत्नीको महातेजा निराहारो जितेन्द्रियः ॥४
अस्मिंस्तीर्थे शुचिः स्नातो जपन्ब्रह्म सनातनम् ।
वर्षाणामयुतं व्यास! तपस्तेपे सुदारुणम् ॥५
तेन तीर्थ प्रसादेन लभेत्स बहुलाप्रजाम् ।
प्रजापतिरितिख्यातोजातोदक्ष प्रतापवान् ॥६
ब्रह्माऽपि तत्र वै पश्चात्तप कृत्वा सुदुष्करम् ।
निष्कलं कमलं रूपं प्राप्तवास्तत्क्षणाद्विधिः ॥७

महामहर्षि सनत्कुमार जी ने कहा—हे व्यास ! भू मण्डल मे परयन्त प्रसिद्ध उत्तम और परम प्रधान तीर्थ के विषय मे श्रवण करो । यह तीर्थ कुटुम्बेश्वर विख्यात है और नाम से वमहेश्वर है ॥१॥ उसका यह तीर्थों मे श्रेष्ठ तीर्थ है जो समस्त तीर्थों के फलो का प्रदान करने वाला है जिस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके निश्चय ही कुटुम्बी हो जाया करता है ॥२॥ पहिले प्रजापति दक्ष ने कुटुम्ब के लिए तपस्या की थी । हे व्यास ! नारद ने पहिले साठ पुत्र विवासित कर दिये थे ॥३॥ प्रजा की कामना वाले उस धर्मात्मा ने बहुत काल पर्यन्त व्रत का समाचरण किया था और अपनी पत्नी को साथ मे लेकर, इन्द्रियो को जीतकर और आहार का

त्याग करके ही महान तेज वाले ने यह व्रत लिया था ॥४॥ हे व्यास ! इस तीर्थ में शुचि होकर स्नान किया था और सनातन ब्रह्म का जप करते हुए दश हजार वर्ष तक परम दारुण तपश्चर्या की थी ॥५॥ उस तीर्थ के प्रभाव से हे व्यास ! उसने बहुत-सी प्रजाओं की प्राप्ति की थी। सभी से वह प्रजापति विख्यात हो गया था और दक्ष परम प्रताप वाला हो गया था ॥६॥ यहाँ पर पीछे ब्रह्माजी ने भी सुदुष्कर तप किया था। विधाता ने उसी समय में निष्कल कमल का रूप प्राप्त कर लिया था ॥७॥

महादेवोऽपि तत्रैव प्राप्तवान्ब्रह्मणः पदम् ।
चतुर्मुखधरं लिङ्गं दृश्यतेऽद्यापिसत्तम ॥८
भद्रपीठधरा देवी भद्रकालीति विश्रुता ।
तत्रैव च सदा व्यास क्रीडतिस्म धृतव्रता ॥९
द्वारे तिष्ठति तत्रैव भैरवः क्षेत्रपालकः ।
पादेन खञ्जतांयातः पुरा दैत्यवरार्दितः ॥१०
पुत्रवत्पालितो देव्या सदा तिष्ठति तत्स्थले ।
ये ते देवगणाः सर्वे तस्मिंस्तीर्थे प्रतिष्ठिताः ॥११
ऋषयोऽपि महाभागाः सदा पर्वणिपर्वणि ।
आयान्ति चैव सन्ध्यायै बहुपुत्रप्रदेश्वरे ॥१२
अस्मिंस्तीर्थे सदाचाराःस्नानं कुर्वन्ति येनराः ।
नतेषांदुर्लभंकिञ्चिज्जायतेजन्मजन्मनि ॥१३
महाव्याधानु घोरासु महामारीषु तत्परैः ।
हवनं क्रियते नित्य सर्षपै राजिकैर्यवैः ॥१४

महादेव ने भी यहीं पर ब्रह्मा के पद को प्राप्त किया। हे सत्तम ! आज भी चार मुखों का धारण करने वाला लिंग दिखलाई दिया करता है ॥८॥ भद्र पीठ धरा देवी जो भद्र काली इस नाम से विश्रुत है। हे व्यास ! यहीं पर सदा व्रत धारण करके क्रीड़ा किया करती थी ॥९॥ यहीं पर द्वार पर क्षेत्र का पालन करने वाला भैरव स्थित रहा करता है। पहिले यह दैत्य वर के द्वारा अर्दित होकर एक पैर से लँगड़ा हो गया ॥१०॥ देवी ने इसका पुत्र के ही भाँति पालन किया और यह सदा ही

उसके ही स्थल में स्थित रहता है। जो देवगण हैं वे सभी उस तीर्थ में प्रतिष्ठित हैं ॥११॥ ऋषि वृन्द भी महान् भाग वाले सदा ही पर्व—पर्व पर उस बहु पुत्रों को प्रदान करने वाले सर पर सन्ध्या के लिये आया करते हैं ॥१२॥ जो सदाचरण वाले इस तीर्थ में मनुष्य स्नान किया करते हैं उनको प्रति जन्म में कुछ भी दुर्लभ नहीं होता है ॥१३॥ महान् घोर बाधाओं में और महामारियों में तत्पर मनुष्य सर्षप (सरसों) यव (जौ) और राजिक (राई) से नित्य हवन किया करते हैं ॥१४॥

पायसैर्विविधैर्भोगैस्तेषां दोषो न जायते ।
दुर्भिक्षे राज्यभ्रंशे च संग्रामे भृशदारुणे ॥१५
पूजयेत्क्षेत्रपालं च सर्वापदि समाहितः ।
सर्वदुःखविनिर्मुक्तोजायतेनाऽत्रसंशयः ॥१६
स्नात्वा कुटुम्बके तीर्थे पूजयित्वा महेश्वरम् ।
दानं कूष्माण्डकं दद्याद् ब्राह्मणाय तपस्विने ॥१७
सौवर्णमणिमुक्ताभिर्वासोऽलङ्कारसंयुतम् ।
धनधान्यसमायुक्तः कुटुम्बी जायतेनरः ॥१८
फाल्गुनेच सिते पक्षे या वै चतुर्दशी भवेत् ।
त्रयोदशीयुता व्यास शिवरात्रिस्तथोच्यते ॥१९
तद्दिने च नरः स्नात्वा रात्रौ जागरणं चरेत् ।
विल्वोदकेन गन्धेन बहुपुष्पफलैस्तथा ॥२०
धूपैर्दीपैश्च नैवेद्यैर्वासोऽलङ्कारकादिभिः ।
पूजयेद्योनरो भक्त्या गिरीशं सगणं परम् ॥२१

विविध भोगों के द्वारा तथा पायस से जिनके द्वारा हवन किया जाता है उनको कोई भी दोष नहीं होता है। दुर्भिक्ष (अकाल) में—राज्य के भ्रंश हो जाने पर—संग्राम में और जो अत्यन्त दारुण समय हो उसमें तथा सभी तरह की आपत्ति में समाहित होकर क्षेत्रपाल की पूजा करता है वह सभी दुःखों से छुटकारा पा जाता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१५-१६॥ कटुम्बक तीर्थ में स्नान करके और महेश्वर का अर्चन

करके किसी तपस्वी ब्राह्मण को कूष्माण्ड ( पेठा ) का दान देना चाहिए ।।१७।। वह मनुष्य सुवर्ण-मणि-मुक्ताओं से, वस्त्र और अलङ्कारों से संयुत होकर धन-धान्य से समन्वित होता हुआ कुटुम्बी हो जाया करता है ।।१८।। फाल्गुन मास के सित पक्ष में जो चतुर्दशी तिथि होवे । हे व्यास ! त्रयोदशी तिथि से जो युक्त होती है वह शिवरात्रि कही जाया करती है ।।१९।। उस दिन में मनुष्य को स्नान करके रात्रि में जागरण करना चाहिए । बिल्व के पत्र तथा फल—जल—गन्ध—बहुत से पुष्प और फल-धूप , दीप, नैवेद्य तथा अलङ्कार आदि से जो मनुष्य भक्ति भाव से भगवान् गिरीश का गणों के सहित पूजन करता है ।।२०-२१।।

तस्य पापं क्षयं याति शिवलोके महीयते ।
द्वादशैकादशीपुण्यं लभते भुवि मानवः ।।२२
अश्वमेधफलं तस्यजागरे च क्षणेक्षणे ।
ततस्तुप्रातरुत्थायस्नानदानादिका क्रियाः ।।२३
कृत्वा तु विधिवद् व्यास! शिवपूजार्चनं तथा ।
विप्रांश्च भोजयेत्सम्यक् तस्य पुण्यफलं शृणु ।।२४
कपिलानां सवत्सानां सहस्राणि चतुर्दश ।
वाजपेयसहस्रस्य फलं प्राप्नोति नान्यथा ।।२५

उस मनुष्य के समस्त पाप क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं और फिर वह पवित्र होकर इस व्रत के प्रभाव से शिव लोक में आदर प्रतिष्ठित होता है, भूमण्डल में मनुष्य बारह एकादशियों के उपवास का फल प्राप्त किया करता है । उसके एक-एक क्षण के रात्रि जागरण में अश्वमेध यज्ञ का पुण्य—फल प्राप्त होता है । इसके उपरान्त प्रातः काल में उठकर अर्थात् जागरण का कृत्य समाप्त करके स्नान—दान आदि की क्रिया करे । हे व्यास ! फिर विधि—विधान के सहित भगवान् शिव की अर्चना करनी चाहिए और ब्राह्मणों को सुन्दर सुस्वादु पदार्थों का भोजन कराये । इसका जो पुण्य—फल होता है उस का भी श्रवण करो ।।२२-२४।। बच्चों के सहित कपिला गौओं का जो संख्या में चौदह सहस्र हों उनके दान करने का तथा एक सहस्र वाजपेय यज्ञ के करने का पुण्य

—फल यह मानव प्राप्त कर लेता है, इसमें अन्यथा लेश मात्र भी नहीं है ॥२५॥

---

## ७१—अखण्डेश्वरमहिमावर्णन

शृणु व्यास महापुण्यंतीर्थं परम शोभनम् ।
देवप्रयागमाख्यातं सर्व पापप्रणाशनम् ॥१
देवानां च परं स्थानं यत्र तीर्थं परंतप ।
सोमतीर्थोत्तरे भागे प्रयागस्यच दक्षिणे ॥२
शि ( क्षि ) प्रायाः पूर्वभागे च तत्र तीर्थं प्रतिष्ठितम् ।
तत्र तीर्थं नरः स्नात्वा पश्येच्चैव सुरोत्तमम् ॥३
देवं माधवमित्याख्यं भुवि सर्व फलप्रदम् ।
ददातितस्यदेवेन्द्रोवाञ्छितार्थं जगत्पतिः ॥४
आनन्दभैरवस्तत्र सर्वदेवनमस्कृतः ।
यस्य दर्शन मात्रेण सर्वपापक्षयो भवेत् ॥५
न तस्य जायते व्यास ! यातनाभैरवीकदा ।
स्वर्गद्वारे सदा व्यासजायते निर्भयः पुमान् ॥६
ज्येष्ठे मासे सिते पक्षे दशम्यां बुध हस्तयोः ।
गरानन्देव्यतीपातेकन्याचन्द्रे वृषेरवौ ।
द्रशाला जायते वत्स ! गङ्गाजन्म परं शुचि ॥७
तद्दिने च नरः स्नात्वा सर्वतीर्थफलं लभेत् ।
अखण्ड च परं तीर्थं शृणु व्यास ! ह्यतः परम् ॥८

महर्षि सनत्कुमारजी ने कहा—हे व्यास ! सबसे अधिक अच्छा महान् पुण्य वाले तीर्थ के विषय मे सुनो । यह तीर्थ देव प्रयाग नाम से प्रसिद्ध है और यह सभी तरह के पापों का विनाश कर देने वाला है ॥१॥ हे परन्तप ! जहाँ पर यह तीर्थ है वह देवो का परम स्थान है । यह सोम तीर्थ के उत्तर भाग मे और प्रयाग के दक्षिण में तथा शिप्रा नदी के पूर्व भाग मे वहाँ पर ही यह तीर्थ प्रतिष्ठित है । वहाँ उस तीर्थ मे मनुष्य

स्नान करके सुरोत्तम प्रभु का दर्शन करे ॥२-३॥ यह देव माधव नाम वाले हैं और भू मण्डल में समस्त फलों के प्रदाता हैं । जग्‌त्‌ के स्वामी देवेन्द्र उस मनुष्य को वाञ्छितार्थ प्रदान किया करते हैं ॥४॥ वहाँ पर आनन्द भैरव देव हैं जिनको सभी देवगण नमस्कार किया करते हैं और जिसके केवल दर्शन से ही सब पापों का क्षय हो जाया करता है ॥५॥ हे व्यास ! उसको कभी भी भैरवी यातना नहीं हुआ करती है । वह मनुष्य निर्भय होकर स्वर्ग के द्वार पर हे व्यास ! सदा पहुँच जाया करता है ॥६॥ ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में दशमी तिथि में जब कि बुधवार हो और हस्त नक्षत्र हो, गरानन्द में, व्यतीपात में, कन्या के चन्द्रमा में और वृष राशि पर स्थित सूर्य में हे वत्स ! परम पवित्र गङ्गा का जन्म दशाला होता है । उस दिन में मनुष्य वहाँ पर स्नान करके समस्त तीर्थों का पुण्य —फल प्राप्त कर लिया करता है । हे व्यास ! इससे भी पर अखण्ड तीर्थ है उसके विषय में श्रवण करो ॥७-८॥

यस्य श्रवणमात्रेण व्रतभङ्गो न जायते ।
एक एव पुरा ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवित्तमः ॥९
धर्मशर्मेतिविख्यातः सदाचाररतः शुचिः ।
बहुव्रतधरो दान्तो वेदवेदाङ्गपारगः ॥१०
किञ्चिद्दोषप्रसङ्गेन व्रतपूर्तिन चाभवत् ।
एव बहुतिथे काले नारदो देवदर्शनः ।.११
तस्य गेहागतो ब्रह्मन्नातिथ्यार्थं महातपाः ।
तदोत्थाय द्विजो नित्य बहुमानपुरः सरम् ॥१२
सत्कृत्य नारद भूमन्विधिदृष्टेन कर्मणा ।
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठः पप्रच्छ मुनिसत्तम ॥१३
भगवन्भवता सर्वं विदितं ज्ञानचक्षुषा ।
अस्माकं च परं दोषः किञ्चिज्जातः पुराऽनघ ॥१४
येन पापप्रसङ्गेन व्रतभङ्गोऽभवद्ध्रुवम् ।
कारण ब्रूहि मे नाथ किं दोषोऽत्र तु गण्यते ॥१५

यह ऐसा तीर्थ है जिसके विषय में श्रवण करने ही से व्रत का भंग नहीं होता है। हे महान् ! पहिले एक ब्रह्म वेत्ताओं मे परम श्रेष्ठ ब्राह्मण था। उसका धर्म शर्मा नाम विख्यात था। यह सदाचार मे रति रखने वाला और परम पवित्र था। बहुत से व्रतों का धारण करने वाला, दमन शील तथा वेदों और वेदों के सम्पूर्ण अंग—शास्त्रों का पारगामी विद्वान् था ॥६-१०॥ कुछ दोष के प्रसंग होने से इसके व्रत की पूर्ति नहीं हुई थी। इस प्रकार से बहुत-सा समय व्यतीत हो जाने पर देव दर्शन भगवान् नारदजी हे प्रद्युम्न ! उसके घर में आये थे उस समय में महान् तपस्वी वह द्विज उनके आतिथ्य करने के लिये उद्यत था और नित्य ही बहुमान पूर्वक हे श्रीमन् ! विधि युक्त कर्म के द्वारा उसने नारदजी का सत्कार किया और हे मुनिसत्तम ! उस श्रेष्ठ द्विज ने पूजा करके उनसे पूछा था ॥११-१३॥ हे भगवन् ! आपने तो ज्ञान की चक्षु के द्वारा यह सभी जान लिया है। पहिले हे मनघ ! हमको कुछ दोष उत्पन्न हो गया। जिस पाप के प्रसंग से व्रत का भंग निश्चित रूप से हो गया। हे नाथ ! उसका कारण आप बतलाइये कि यहाँ पर क्या दोष गिना जाता है ॥१४-१५॥

श्रूयतां भो द्विजश्रेष्ठ ! भवद्भिश्च पुराकृतम् ।
महाराष्ट्रे सुविख्यातो ब्राह्मणो धनसञ्ज्ञकः ॥१६
ब्रह्मदत्तेरयसौ विप्रो वेदब्राह्मणनिन्दकः ।
धनलोभी पराक्रान्तः सर्वधर्मबहिर्मुखः ॥१७
नास्तिको देवतीर्थेषु परद्रव्यापहारकः ।
परस्त्रीषु रतो नित्यं द्यूतवादी च तस्करः ॥१८
एवमायुः परिक्षीणो धनहीनोऽभवत्तदा ।
इतस्ततोऽभ्रमद्भ्रष्टो नदीतीरे सुविह्वलः ॥१९
गतश्चौर्यप्रसङ्गेन यात्रिकैः सह सङ्गतः ।
किञ्चित्कालेषु दुःशीलो मृतिम्प्राप्ता रुजार्दितः ॥२०
नीतः संयमिनीं विप्रस्तत्काल यमकिङ्करैः ।
यमराजपुरं प्राप्तो बहुपापकरो द्विजः ॥२१

देवर्षि नारदजी ने कहा—हे द्विज श्रेष्ठ ! आपने जो पहिले किया था उसको सुनो। महाराष्ट्र में धन का सञ्चय करने वाला एक सुविख्यात ब्राह्मण था ॥१६॥ ब्रह्मदत्त यह विप्र वेदों और ब्राह्मणों की निन्दा करने वाला, धन का लोभी, पराक्रान्त, और सभी धर्मों से बहिर्मुख था ॥१७॥ देवों और तीर्थों के विषय में वह परम नास्तिक था और पराये द्रव्य का अपहरण करने वाला था। वह नित्य ही पराई स्त्रियों में रत रहता था-चुगलखोर और तस्कर था ॥१८॥ इस तरह से वह आयु से क्षीण हो गया था और उस समय में धन से हीन हो गया था। इधर—उधर घूमता रहता था, भ्रष्ट होकर नदी के तट पर सुविह्वल होकर पहुंच गया था ॥१९॥ चोरी के प्रसंग से यात्रियों के साथ सङ्गत होकर गया कुछ काल में रोग से पीड़ित होकर दुःशील वह मृत्यु को प्राप्त हो गया था ॥२०॥ उसी समय में यमराज के दूतों के द्वारा वह विप्र संयमनी ( दण्ड विधान का स्थल ) पर ले जाया गया। बहुत अधिक पाप कर्म करने वाला यह द्विज यमराज की पुरी में प्राप्त हो गया था ॥२१॥

दृष्टोऽसौ धर्मराजेन तदा पापपरायणः।
निरीक्ष्य सहसोवाच धर्मपूर्वमिदं वचः ॥२२
शृणुध्वं किंकरा सर्वे यूयमेकाग्रमानसा.।
अनेनाचरितं सर्वंदुष्कर्मसर्वं किल्विषम् ॥२३
गोदातीरे मृतः पापी तस्मान्न. कारणं नहि।
तिस्र. कोटयोऽर्धकोटिश्च यानि तीर्थान्यहर्निशम् ॥२४
आयान्ति गौतमीतीरे सिंहस्थेऽपि बृहस्पतौ।
तेषां तु वायुसंस्पर्शो जाताऽस्यान्ते (न) कलेवरे ॥२५
तेनपुण्यप्रभावेणनोऽस्माकंकारणं क्वचित्।
प्राप्तोभवद्भिर्नैवायं मुच्यतामेषो. पुराः नराः ॥२६
एवं तैर्मोचितो विप्र. पुनर्न्ने स्वर्गति गतः।
तेन पापप्रसङ्गेन प्रनभङ्गो गतो भुवि ॥२७
ब्रह्मन्नेन प्रकारेण सर्वपापक्षयो भवेत्।
किं तप. किं च दानं च किं तीर्थं प्रायेपनम् ॥२८

येन पुण्यप्रभावेण व्रत भंगो न जायते ॥२९

उस समय में धर्मराज ने इसको देखा कि यह तो बड़ा ही पाप परायण है। उसको देखकर वह धर्म पूर्वक यह वचन सहसा ही बोल उठे ॥२२॥ हे सब किङ्करो ! सुनिए और सभी एकाग्रमन वाले हो जाइये। इसने सभी पापों से पूर्ण दुष्कर्म किये हैं किन्तु यह महापापी गोदावरी नदी के तीर पर मरा है वहाँ पर हमारा कोई कारण नहीं है। तीन करोड और आधा करोड जो भी तीर्थ हैं वे सब रात दिन वहाँ पर गौतमी के तट पर आया करते हैं। बृहस्पति के सिंहराशि पर स्थित होने पर भी वे आते हैं। उन सब तीर्थों की वायु का संस्पर्श इसके शरीर के अन्दर में हुआ है ॥२३-२५॥ उस पुण्य के प्रभाव से हमारा कहीं पर कोई कारण नहीं है। आप लोगों को यह ग्रहण नहीं करना चाहिए। पूर्व में ही आप लोग इसको छोड दो ॥२६॥ इस रीति से उन यम के दूतों के द्वारा छोडा गया वह विप्र पुनः ब्रह्मगति को प्राप्त हो गया। उस पाप के प्रसंग से वह व्रत भंगी हो गया था ॥२७॥ ब्राह्मण ने कहा— हे ब्रह्मन् ! किस प्रकार से समस्त पापों का क्षय होता है ? क्या तप है, क्या दान है और क्या क्या तीर्थों तथा व्रतों का सेवन है ? जिस पुण्य के प्रभाव से व्रत भंग नहीं होता है ॥२८-२९॥

शृणु द्विजवर श्रेष्ठ ! महाकालवनं स्मृतम् ।
यत्र रुद्रसरः प्रोक्तमृषिणा तत्त्वदर्शिना ॥३०
कोटिकोटिसुतीर्थानि वर्तन्ते द्विजसत्तम ! ।
कोटितीर्थं तिविख्यातं तस्माद् द्विज ! सनातनम् ॥३१
तत्तीर्थस्योत्तरे भागे सुतीर्थं सर्वकामदम् ।
नाम्नाऽखण्डसरः ख्यातमखण्डेश्वरसन्निधौ ॥३२
यस्यदर्शनमात्रेण सर्वं यज्ञफलं लभेत् ।
तस्माद्धि सर्वथा वत्सगच्छत्वं तत्रमाचिरम् ॥३३
इति तस्य वचः श्रुत्वा सद्विजोऽगात्कुमुद्वतीम् ।
स्नात्वाऽखण्डसरे व्यास दृष्ट्वा देवं महेश्वरम् ॥३४

सद्यः पुण्यवतां लोकान्प्राप्तो वै द्विजसत्तमः ।
एव व्यास ! महातीर्थमखण्डेश्वरमुत्तमम् ॥३५

श्री नारद जी ने कहा—हे श्रेष्ठ द्विज गण ! सुनिए । महाकाल वन कहा गया है । जहाँ पर तत्त्व दर्शी ऋषि ने रुद्र सर कहा है ॥३०॥ हे द्विज सत्तम ! वहाँ पर करोड़ों-करोड़ों सुन्दर तीर्थ वर्तमान रहते हैं । हे द्विज ! इसी से वह सनातन कोटि तीर्थ नाम से विख्यात है ॥३१॥ उस तीर्थ के उत्तर भाग में समस्त मनोरथों का प्रदान करने वाला सुतीर्थ है । वहाँ पर अखलेश्वर की सन्निधि में अखण्ड सर नाम से एक सर प्रसिद्ध है ॥३२॥ जिसके केवल दर्शन से ही सम्पूर्ण यज्ञों के फलों का लाभ होता है इस कारण से हे वत्स ! तुम वहाँ पर चले जाओ और अधिक विलम्ब मत करो ॥३३॥ इस उनके वचन को सुनकर वह द्विज कुमुद्वती को चला गया था । हे व्यास ! उसने अखण्ड सर में स्नान किया था और महेश्वर देव का दर्शन किया था ॥३४॥ वह द्विजों में श्रेष्ठ तुरन्त ही पुण्य वालों के लोकों को प्राप्त हो गया था । इस प्रकार से अखलेश्वर उत्तम महान् तीर्थ है ॥३५॥

---

## ७२—हनुमत्केश्वरमाहात्म्यवर्णन

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि देवंत्रिदशपूजितम् ।
हनुमत्केश्वर नाम भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् ॥१
दर्शेसरसियः स्नात्वा पश्येद्धनुमत्केश्वरम् ।
कल्पकोटिसहस्राणिवायुलोके समोदते ॥२
हनुमत्केश्वरोयस्तु पृष्टः पूर्वंस्त्वयानघ ! ।
तथाकथयहं तस्य व्रतपूर्वांननातनोम् ॥३
त्रैलोक्यकण्टकः पूर्वो रावणोनामराक्षस- ।
विष्णुनारामरूपेण लंकायांविनिपातितः ॥४
घातयित्वातुतंदुष्टं सीतामादायजानकीम् ।
वानरैस्सहऋक्षैश्च नगरीस्यामुपागतः ॥५

तत्रराज्यमनुप्राप्य ऋषिभिः परिवारितः ।
कथावसानेरामेण ह्यगस्त्योमुनिसत्तमः ॥६
पृष्टोऽधिकोद्वयोर्वापिशम्भुर्वातजयोऽस्तुकः ।
सदादाशरथिप्राहअगस्त्योमुनिसत्तमः ॥७

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—इसके अनन्तर देवो के द्वारा समचित एक अन्य देव के विषय मे वर्णन करूंगा जिनका नाम श्री हनुमत्केश्वर है और यह भुक्ति और मुक्ति दोनो के प्रदान करने वाले हैं। वाँव सर मे जो स्नान करके श्री हनुमत्केश्वर प्रभु का दर्शन किया करता है वह एक सहस्र करोड़ कल्पो तक वायु लोक मे आनन्द का लाभ प्राप्त किया करता है। श्री व्यास देव जी ने कहा—हे अनघ ! आपने जो पहले हनुमत्केश्वर कहा था अब इसको बल पूर्वक सनातनी कथा कहने की कृपा कीजिए। श्री सनत्कुमार जी ने कहा—पहिले होने वाला एक त्रैलोक्य का कण्टक स्वरूप अर्थात् दु.ख दायी रावण नाम वाला राक्षस था। उसका विनिपात श्रीराम रूपधारी भगवान् विष्णु ने किया था। उस दुष्ट रावण का वध करके और जनक महाराज की पुत्री सीता को लेकर समस्त वानर और रीछो के सहित वापिस अपनी नगरी अयोध्या मे समागत हो गये थे। वहाँ अपना राज्यासन ग्रहण करके ऋषिगण से समावृत मुनियो मे श्रेष्ठ अगस्त्य जी से कथा के अवसान मे श्रीराम ने पूछा था कि भगवान् शङ्कर और वायुदेव इन दोनो से समुत्पन्न होने वालो मे अधिक कौनसा है। उस समय मे मुनिश्रेष्ठ अगस्त्य जी ने महाराज दशरथ के पुत्र श्री राम से कहा था ॥१-७॥

अनौपम्योयथादेवो युद्धेशौर्येमहेश्वरः ।
ज्ञेयोवायुसुतस्तद्वत्सत्यमेतद्ब्रवीमिते ॥८
एवंश्रुत्वाथहनुमान्यच्छिवेनोपमामम ।
कृतामुनिवरेणेह प्रत्यक्षं राघवस्यहि ॥९
गमिष्येनगरीलंकां लिंगमेकं प्रयाचितुम् ।
राक्षसेन्द्रं महाभागं विभीषणमकल्मषम् ॥१०

ततोगतस्सलंकायां विभीषणमुवाचह ।
देहिमत्वं महाभाग लिंगमेकञ्चशोभनम् ।।११
उक्तञ्चराक्षसेन्द्रेण गृहाणैतद्यथारुचि ।
एतानिषड्वैलिंगानि रावणस्थापितानिवै ।।१२
त्रैलोक्यविजयात्पूर्वं ममभ्रात्रामहात्मना ।
एतेषु यदभीष्टन्ते लिंगकथय सुव्रत ! ।।१३
तत्प्रयच्छामितेऽद्यैव सत्यमेतत्प्लवंगम ! ।
ततोजग्राहहनुमांल्लिंगंमौक्तिकसन्निभम् ।।१४

युद्ध में और शूरवीरता में महेश्वर देवता के समान अनुपम वायुपुत्र को समझना चाहिए और यह वायु के ही समान है—यह मैं बिल्कुल सत्य आपको बतला रहा हूँ ।।८।। इसके अनन्तर हनुमान् जी ने इस प्रकार से श्रवण करके कि मेरी शिव प्रभु के साथ उपमा यहाँ पर मुनिवर ने की है जो कि थी राघव के प्रत्यक्ष में को गयी थी । मैं अब लङ्का नगरी में जाऊँगा और वहाँ पर एक लिङ्ग की याचना करूँगा और वह भी कल्मषों से रहित राक्षसों के स्वामी महान् भाग वाले विभीषण से ही करूँगा । इसके उपरान्त वह लङ्का में गया था और विभीषण से बोला—हे महाभाग ! मुझे एक परम शोभन लिङ्ग दीजिए । उसी समय में उस राक्षसों के इन्द्र ने कहा—इसका आप अपनी रुचि के अनुसार ग्रहण कीजिये । ये छै लिङ्ग हैं जो कि रावण के द्वारा संस्थापित किये गये हैं । मेरे भाई महात्मा ने त्रैलोक्य विजय करने के पूर्व में ही इन लिङ्गों की संस्थापना की थी । हे सुव्रत ! इन छओं लिंगों में आप बतलाइये कौन-सा शिव लिङ्ग आपको अभीष्ट है ? हे प्लवङ्गम ! उसी को मैं आज ही आपको दिये देता हूँ—यह सर्वथा सत्य ही है । इसके पश्चात् हनुमान् जी ने एक जो मौक्तिक के सदृश लिङ्ग था उसी को ग्रहण कर लिया था ।।६-१४।।

यदेतद्दृश्यतेवीर ! तत्प्रयच्छममानघ ।
श्रुत्वा हनुमतोवाक्यमथोवाचविभीषणः ।।१५

कथं तावङ्कपादाख्ये यातावत्रमहामुने! ।
नपश्येद्यमलोकं स यद्यपिब्रह्महाभवत् ।।२
भारावतारणार्थाय देवौरामजनार्दनौ ।
अवतीर्णौयदोर्वंशेदिव्यरूपौमहाद्युतौ ।।३
कंसं हत्वाथचाणूरमुग्रसेनं नराधिपम् ।
अभिषिच्यस्वयराज्ये यदुसिंहउवाचतम् ।।४
किंकार्यं तेमयात्र हि कर्तव्यन्त्तेसुतेहते ।
एवमुक्तस्सराजावै उग्रसेनोऽब्रवीदिदम् ।।५
सर्वं सम्पत्स्यतेकृष्ण! भवतोहिनदुर्लभम् ।
विज्ञाताखिलविज्ञानौभवितारावुभावपि ।।६
गच्छतामुज्जयिन्यांवं कृतविद्यौभविष्यथः ।
ततस्सान्दीपनिंविप्रं जग्मतूरामकेशवौ ।।७

श्री सनत्कुमारजी ने कहा—अवन्ती में अङ्कपाद नाम वाले स्थान में राम जनार्दन दोनों का दर्शन करना चाहिए। जिनके दर्शन मात्र से ही मनुष्य फिर यम लोक को नहीं देखा करता है। श्री व्यास देव जी ने कहा—हे महामुने! इस अंकपाद नाम वाले स्थल में वे दोनों कैसे प्राप्त हुए थे। यद्यपि ब्रह्म हत्यारा ही क्यों न हो तो भी इनके दर्शन का ऐसा प्रभाव होता है कि वह मनुष्य यमलोक का कभी दर्शन नहीं किया करता है ।।१-२।। सनत्कुमारजी ने कहा—भूमि के बढ़े हुए भार को उतारने के लिए श्रीराम और जनार्दन दोनों देव अवतीर्ण हुए थे और यदु के वंश में महती द्युति से सम्पन्न दिव्य रूप वाले इन्होंने अवतार लिया था। मथुरा के राजा कंस को मारकर और चाणूर का वध करके नराधिप उग्रसेन का अभिषेक किया था और फिर यदुओं में सिंह के समान उन्होंने उनसे कहा था—अब दुष्ट आपके सुत के मार देने पर मुझसे आपका क्या कार्य शेष रह गया है और मुझे अब क्या करना चाहिए—यह बताओ। इस प्रकार से जब उनसे कहा गया तो वह राजा उग्रसेन यह बोला—हे कृष्ण! आपसे सभी कुछ हो जायगा, कुछ भी दुर्लभ नहीं है। सम्पूर्ण विज्ञान के जानने वाले आप दोनों ही होंगे। अब आप दोनों

ही उज्जयिनी पुरी मे चले जाइये वहाँ पर आप कृतविद्य अर्थात् विद्या प्राप्त करने वाले होंगे। इसके अनन्तर वे दोनो बलराम और केशव सान्दीपनि विप्र के समीप मे चले गये थे ॥३-७॥

कण्ठस्थाश्चक्रतुर्वेदानाचारमखिलञ्चतौ ।
सरहस्यंधनुर्वेदं ससंहारं तथैवच ॥८
अहोरात्रैश्चतुःषष्टयालदद्भुतमभूद्द्विज ।
सान्दीपनिरसम्भाव्यं तयोः कर्मातिमानुषम् ॥९
विचिन्त्यतौतदामेनेप्राप्तौचन्द्रदिवाकरौ ।
ततःकिञ्चिदमनोवाचस्नातुंतीर्थमथोययौ ॥१०
शिष्यैस्तु सहितो विप्रो महाकालमथाविशत् ।
शिष्यैस्सह प्रविष्टौ द्वौ तदा तौ रामकेशवौ ॥११
वन्द्यमानोमहाकालस्तदाकेशवमब्रवीत् ।
त्वयानाथेनदेवाना मनुष्यत्वेहितिष्ठता ॥१२
सुखमासीच्चसाधूनामज्ञानाच्चसर्वदा ।
जनपीडाकराये तु सदा वा बलदर्पिताः ॥१३
युवाभ्यांतेहतास्सर्वं कंसप्रमुखतोनृपा ।
मुनिसिद्धसुरादीनास्थिति कार्यात्वयानघ ॥१४
करिष्यामि तमित्युक्त्वा स नमस्यस्ततो ययौ ।
दृष्ट्वा सान्दीपनि शिष्या ऊचुरेवं दिनेदिने ॥१५

दोनों ने चारो वेदो को कण्ठस्थ कर लिया था और सम्पूर्ण आचार का ज्ञान प्राप्त कर लिया था। रहस्य से समन्वित एवं संहार के सहित धनुर्वेद को जान लिया था। यह समग्र ज्ञान चौसठ अहोरात्र मे ही प्राप्त कर लिया था। हे द्विज ! यह एक परम अद्भुत ही घटना थी। उन दोनो बालकों का मनुष्य की शक्ति से बाहिर असम्भाव्य कर्म के विषय मे सान्दीपनि ने स्वयं बहुत कुछ किया था और वे इन दोनो को चन्द्र और सूर्य ही मानते थे। इसके पश्चात् उसने कुछ भी नहीं कहा था और वह तीर्थ में स्नान करने के लिए चला गया था। वह विप्र अपने शिष्यों के सहित महाकाल के मन्दिर मे प्रविष्ट हुआ था। उस समय मे शिष्यों के

सहित वे दोनों राम और केशव भी प्रविष्ट हुए थे। वन्दना किये गए महाकाल ने भगवान् केशव से कहा था—देवों के स्वामी आपके इस मानवीय शरीर में स्थित रहकर विराजमान होने से साधु पुरुषों को परम सुख हुआ था और जिनको ज्ञान नहीं था उनको भी सर्वदा सुख था। जो जनों की पीड़ा करने वाले थे अथवा सर्वदा अपने बल का घमण्ड रखते थे वे सभी कंस आदि प्रमुख राजा आपके दोनों के द्वारा निहत कर दिए हैं। हे अनघ ! आपको मुनि, सिद्ध और सुर आदि की स्थिति करनी चाहिए। उनको मैं इसे करूंगा, यह कहकर नमस्कृत हुए वह वहाँ से चले गये थे। शिष्यों ने सान्दीपनि को देख कर दिन-दिन में इसी प्रकार से कहा था ॥८-१५॥

कोपिनाश्रद्दधत्तेपांवचस्त्वत्यद्भुतंयतः ।
स्वयंययौततोद्रष्टुमाश्चर्यंशिष्यभाषितम् ॥१६
ततस्तयोरुत्थितः शब्दः संश्लेषश्च तथा तयोः ।
तावागतौ गृहं तत्र गुरुर्वचनमब्रवीत् ॥१७
नवैज्ञातौमयावीरौयदिवृष्णिकुलोद्भवौ ।
ततस्सान्दीपनिंकृष्णः कृतकृत्योऽब्रवीद्वचः ॥१८
गुर्वर्थंकिन्ददामीतिसहरामेणहर्षितः ।
तच्छुत्वावचनंहृद्यं गुरुःप्रोवाचहर्षितः ॥१९
पुत्रमिच्छाम्यहंत्वत्तोयोमृतो लवणाम्भसि ।
पुत्रएकोहिमेजातस्सचापितिमिनाहृतः ॥२०
प्रभासेतीर्थयात्रायां त्वमेवतमिहानय ।
तथेतिचाब्रवीत्कृष्णो रामस्यानुमतेगतः ॥२१

क्योंकि यह अत्यन्त अद्भुत वचन था। इस पर कोई भी श्रद्धा नहीं करता था। इसके अनन्तर शिष्यों के द्वारा कहे हुए वचन को जो आश्चर्य युत था देखने के लिए स्वयं ही आ गये थे। इसके अनन्तर उस प्रकार का शब्द उत्थित हुआ था और उन दोनों का संश्लेष हुआ था। वहां पर वे दोनों गृह मे समागत हो गए थे। तब श्री गुरुदेव ने यह वचन कहा

था—वृष्णि कुल मे समुद्भूत आप दोनो वीरो को मैंने नही पहिचाना है। इसके उपरान्त भगवान् कृष्ण कृतकृत्य होते हुए मान्दीपनि से बोले—राम के सहित हर्षित मैं श्री गुरुदेव को सेवा में क्या भेंट करूँ। यह वचन सुनकर परम हर्षित गुरुजी ने अतीव सुन्दर वचन कहा था ॥१६-१९॥ मैं तो केवल आपसे अपने पुत्र को चाहता हूँ जो लवण सागर में मृत हो गया है। मेरे एक ही तो पुत्र उत्पन्न हुआ था वह भी तिमि के द्वारा निहत हो गया है। प्रभास क्षेत्र की तीर्थ यात्रा में यह दुर्घटना हुई थी। आप ही उस को यहाँ पर लाइये। हे गुरुदेव। ऐसा ही किया जायगा, यह बलराम की अनुमति से श्रीकृष्ण ने गुरु को उत्तर दिया था ॥२०-२१॥

तं समुद्रउवाचेद दैत्यः पञ्चजनोमहान्।
तिमिरूपेणतंबाल ग्रस्तवान्मयिसस्थितः ॥२२
ततः पञ्चजन हत्वा ग्राहरूप महाबलम्।
तन्मध्यस्थ चजग्राह शङ्ख ग्रस्तोहियः पुरा ॥२३
जलमध्यस्थिते नैवग्राहेणातीवलीलया।
तस्योदरेयदाबालनददर्शजनार्दनः ॥२४
यमालयगत मत्वा तदावरुणमब्रवीत्।
भगवन्पादसामीप्य रथोमेदीयताम्महान् ॥२५
येनाहवैहिताञ्जित्वापश्येयप्रेतपयमम्।
पुराजिरेहतादैत्याक्षानवाबलदर्पितः ॥२६
मयायेनरथेनाद्य समहा दीयतारथ.।
न्यासभूतोरथोयस्ते विधृतोपरतेरणे ॥२७
मयाधर्मपुरस्कृत्य दीयता सह्यपाम्पते ।।
एनच्छुत्वाप्रहृष्टात्माज्ञात्वाकार्यार्थिनहरिम् । २८

समुद्र ने श्री कृष्ण से कहा था—एक महान् पञ्चजन दैत्य है उसने ही तिमि के स्वरूप से उस बालक को मेरे अन्दर स्थित होते हुए ग्रस लिया था। इसके अनन्तर समुद्र के मध्य मे स्थित महान् बलशाली ग्राह के रूप वाले उस पञ्चजन का व ा करके शङ्ख को प्राप्त किया था जो पहिले इस-

ने ग्रस लिया था। यह जल के मध्य में स्थित अत्यन्त बल वाला ग्राह था। उसके उदर मे जब जनार्दन प्रभु ने उस बालक को नही देखा था तो यह मानकर कि वह यमालय को चला गया है। उस समय में यादवों के स्वामी भगवान ने वरुण से यह कहा था कि मुझे एक महान् रथ दो। जिस रथ के द्वारा युद्ध में शत्रुओं को जीतकर मैं प्रेतों के स्वामी यम-राज के समीप पहुंच सकूं। पहिले र में बल से दर्पित दैत्य और दानव निहत किये गये हैं और मैंने जिस के द्वारा युद्ध किया है वही रथ मुझे इस समय में दो। रण के उपरत हो जाने पर वह रथ न्यास के रूप में आपके समीप मे रखा हुआ है। हे अपांपते। वही रथ मुझे दो जो मैंने धर्म कार्य को पहले करके रखा था। यह श्रवण करके वरुण परम प्रसन्न आत्मा वाला हुआ और उसने श्री हरि को उस समय में कार्यार्थी समझ लिया था ॥२२-२८॥

ददौतुरथमक्षोभ्यं रणेतस्मैंसुरासुरैः।
ततोहरिस्समालोक्य रथं रत्नपरिष्कृतम् ॥२९
द्वीपिचर्मपरीधानं वैयाघ्रपरिवारितम्।
नानाचित्रविचित्राङ्गं गरुडध्वजराजितम् ॥३०
सयुक्तं शैव्यसुग्रीवमेघपुष्पवलाहकैः।
अजेयन्देवदेवेन्द्रदानवासुरराक्षसैः ॥३१
अनेकायुधसम्पूर्णमणिविद्रुमभूषितम्।
सहस्रसूर्यप्रतिमचारुचक्रं चतुर्युगम् ॥३२
किङ्किणीशतशोभाढ्यं घण्टाचामरचन्द्रिकम्।
संवर्त्ताकारविषमं खगेन्द्रवरकेतनम् ॥३३
दृष्ट्वाकृष्णस्सरामस्तु मुमुदे वीतविस्मयः।
प्रदक्षिणमुपागत्य देवताभ्यः प्रणम्यच ॥३४
आरुरोह रथं विष्णुर्विमानं साग्रजोऽजनः ॥३५

वरुण देव ने तुरन्त ही वह रथ भगवान को समर्पित कर दिया था जो रण मे सुरों और असुरों के द्वारा अक्षोभ्य था अर्थात् किसी के द्वारा भी उसे कोई क्षोभ नही दिया जाता था। इसके अनन्तर हरि ने रत्नों

से परिष्कृत उस दिव्य रथ का समवलोकन किया था ॥२६॥ वह रथ हाथी के चर्म से मढ़ा हुआ था और व्याघ्रों के चर्म से परिवारित था। वह नाना प्रकार के चित्रों से विचित्र अंगों वाला था और गरुड़ की ध्वजा से शोभायमान था। शैव्य, सुग्रीव, मेघ पुष्प और बलाहकों से समन्वित था तथा देश देवेन्द्र, दानव, असुर और राक्षसों के द्वारा अजेय था। वह रथ अनेक आयुधों से सम्पूर्ण था और मणियों तथा विद्रुमों से विभूषित था। वह रथ एक सहस्र सूर्यों के समान तेज युक्त था, चार चक्र और चार युगों वाला था। वह भगवान् विष्णु के विराजमान होने वाला रथ सैकड़ों किङ्किणियो की शोभा से समन्वित था तथा घण्टा और चामरों की चन्द्रिका से संयुत था। वह सम्वर्त आकार से विषम था तथा खगेन्द्र श्रेष्ठ के केतन (ध्वजा) वाला था। भगवान् श्री कृष्ण और श्री बलराम को विस्मय से रहित होकर बहुत ही प्रसन्नता हुई थी। प्रदक्षिण को समुपागत होकर और देवगणों को प्रणाम करके अपने अग्रज के सहित भगवान् विष्णु उस विमान रथ पर समारूढ़ हुए थे ॥३०-३५॥

ततो जगाम त्वरितो जनार्द्दनो
जगन्निवासो यमलोकमाश्रिताम् ।
दिशं सहस्रैः किरणैर्वृ ताम्पुरी
ददर्श शङ्खं परिगृह्य चाच्युतः ॥३६
तत्रप्रध्मापयामास शङ्खं खड्गधनुर्धरः ।
तेनशब्देनवित्रस्ताः कृतान्तालयवासिनः ॥३७
नरकान्तर्गतामर्त्याः पापाचारपरायणाः ।
सुखमापुः प्रशान्ताश्चवह्नयःकृष्णदर्शनात् ॥३८
शस्त्राणि कुण्ठतां प्रापुर्यन्त्राणि विविधानि च ।
विदीर्णानि तदा चाशु देवदेवस्य दर्शनात् ॥३९
असिपत्रवनंनाम शीर्णपर्णमजायत ।
रौरवंनामनरकमभैरवमभूत्तदा ॥४०
अभैरवंभैरवाख्यं कुम्भीपाकमपाचिकम् ।
शृङ्गाटंशृङ्गसदृशं लोहसूच्यप्यसूचिका ॥४१

दुस्तरामुनराजा नदीवैतरणीनृणाम् ।
नरकान्तेतदाजातेगतेविश्वेश्वरेविभौ ॥४२

इसके अनन्तर जगत् के निवास अच्युत जनार्दन भगवान् ने शङ्ख का परिग्रहण करके सहस्रों किरणों से परिवृत यम लोक के समाश्रित दिशा वाली उस यमराज की पुरी को देखा था ॥३६॥ खंग और धनुष के धारण करने वाले प्रभु ने वहाँ पर उस अपने शंख को बजाया । उस शंख की ध्वनि से यमराज के लोक के समस्त निवास करने वाले भय भीत हो गये थे । जो लोग नरकों में अन्दर रहने वाले मनुष्य थे और पापों के समाचरण में तत्पर रहते थे उन्होंने परम सुख को प्राप्ति की थी । भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन से अग्नियाँ एक दम प्रशान्त हो गई थी । जितने भी शस्त्र थे वे सब कुण्ठित दशा को प्राप्त हो गये थे और विविध भाँति के यन्त्र भी देवों के देव के दर्शन से बहुत ही शीघ्र उस समय में विदीर्ण हो गये थे ॥३७-३९॥ असिपत्र वन नाम वाला जो नरक था वह शीर्ण पर्ण हो गया था और उस समय में रौरव नाम वाला महा भीषण नरक उस समय में अभैरव हो गया अर्थात् उसकी भीषणता दूर हो गई थी ॥४०॥ भैरव नाम वाला नरक अभैरव हो गया और कुम्भीपाक नाम वाला नरक अपाचिक हो गया अर्थात् उसकी पाचन क्रिया समाप्त हो गई थी । जो शृंगार नाम वाला नरक था वह शृंग के समान था और लोह सूची भी बिना सूचियों वाला हो गया । जो वैतरणी नदी परम दुस्तर थी वह भी मनुष्यों के लिये सुतरा हो गई । उस समय में जब कि नरकों के समीप विभु विश्वेश्वर पहुँचे तो उनकी सभी यातनाओं की क्रियाऐं समाप्त हो गई थी ॥४१-४२॥

पापक्षयात्ततस्सर्वे तेमुक्तानरकान्नरा ।
पदमव्ययमासाद्य दृष्ट्वा विष्णु तमोपहम् ॥४३
विमानेपुससहस्रे पु ह्यारूढास्तेसमन्तत ।
समीक्ष्यपुण्डरीकाक्षं मुक्तास्तेसर्वपातकात् ॥४४
ततश्शून्यमभूज्जातं सर्वनिरयमण्डलम् ।
दर्शनात्तस्यदेवस्य विष्णोर्विश्वस्वरूपिण ॥४५

ततोदूताः कृतान्तस्यकृष्णञ्चयुद्धकारिणम् ।
चारयामासुरव्यग्रा-विशन्तं नरकान्प्रति ॥४६
मावीरानेनमार्गेण रथमानयमानवाः ।
प्रयान्त्यधोगतिं पापात्परस्त्रीस्वापहारकाः ॥४७
यमादिष्टानराः पापाद्ये मोच्या वर्षकोटिभिः ।
दृष्ट्वा तएवसद्यस्त्वां गतास्स्वर्गमघावृताः ॥४८
एतच्छ्रुत्वावचस्तेषां कृपयापीडितोभृशम् ।
पुनः प्रोवाचमधुहा मोक्षायाहमुपागतः ॥४९

पापों के क्षय हो जाने से फिर वे सभी नरक वासी मनुष्य नरकों से विमुक्त हो गये थे। अव्यय पद को प्राप्त करके और तम का अपहरण करने वाले भगवान् विष्णु का दर्शन प्राप्त करके वे सभी और सहस्रों विमानों में समारूढ हो गये थे। भगवान् पुण्डरीकाक्ष का दर्शन प्राप्त करके वे नरकों में रहने वाले प्राणी सभी पापों से विमुक्त हो गये थे। हे मुने! उसके पश्चात् तो ऐसा हुआ था कि वह सम्पूर्ण नरकों का मण्डल एक दम शून्य हो गया था अर्थात् वहाँ पर कोई भी रहा ही नहीं था। यह सारा प्रभाव विश्व स्वरूपी भगवान् विष्णु देव के दर्शनों का ही था। इसके अनन्तर यमराज के दूतों ने युद्धकारी श्रीकृष्ण को नरकों में प्रवेश करने पर अव्यग्र होते हुए निवारित कर दिया था ॥४३-४६॥ यमराज के किंकरों ने कहा था—हे वीर! इस मार्ग से रथ को मत लाओ। जो पराये धन तथा परायी स्त्री का अपहरण करने वाले मनुष्य होते हैं वे ही अपने किये हुए पाप के कारण से इस मार्ग से अधोगति को आया करते हैं। जिस नरक की यातना को भोगने के लिये मनुष्यों को आदेश दिये गये थे और जो करोड़ों वर्षों तक मोचन करने के योग्य थे वे भी आपका दर्शन प्राप्त करके अघों से आवृत भी तुरन्त ही स्वर्ग लोक को चले गये हैं। इस उनके वचन को सुनकर कृपा से अत्यन्त पीड़ित होकर मधुरिपु प्रभु ने पुनः यह कहा था—मैं तो उनके मोक्ष के लिये ही आया हूँ ॥४७-४९॥

सर्वेषांस्वर्गदाताऽहं यमलोकनिवारकः ।
अञ्जसायमराड्दूता यमायाख्यातमेव च ॥५०
एतच्छ्रुत्वावचोदूतास्सत्वरायममागताः ।
सर्वमाचक्षिरेवृत्तं यथानारकिमोक्षणम् ॥५१
ततोयमोरुषाविष्टः प्राहतान्यमकिङ्करान् ।
यः कश्चिदागतोमर्त्यो मर्यादाभेदकृन्नरः ॥५२
तंग-वावारयध्वंवं गृहीत्वानीयतामिह ।
अयन्नरान्तकोयातु किङ्करस्सहकिङ्करैः ॥५३
एवमुक्तो यमेनाथ किङ्करस्सनरान्तकः ।
गत्वातंवारयामास वाग्भिरुग्राभिरच्युतम् ॥५४
यदानवारितस्तस्थौ तदाक्रुद्धोनरान्तकः ।
तदाशरैरतीवोग्रैस्ताडितस्तेनकेशवः ॥५५
बलदेवोऽपिसमरे ताडितोविविधैश्शरैः ।
तावुभौताडितौघोरैः समन्ताद्यमकिंकरैः ॥५६

'मैं सभी को स्वर्ग के प्रदान करने वाला हूँ और इस यमलोक का निवारण करने वाला हूँ। तुरन्त ही उन यमराज के दूतों ने यमराज से जाकर यही कह दिया। यह वचन सुनकर यम के दूत बहुत ही शीघ्रता से यमराज के समीप में पहुँच गये थे और उन्होंने यह सभी वृत्त जैसे कि नारकियों का मोक्ष हुआ यमराज से निवेदित कर दिया। यमराज ने कहा—यह नरान्तक किंकर अपने किंकरों के साथ वहाँ पर चला जावे और वहाँ जाकर उनको रोक दो। उसे पकड़ कर यहाँ मेरे पास लाओ। इस प्रकार से यम के द्वारा कहे हुए उस नरान्तक किंकर ने बहुत ही उग्र वचनों से उन भगवान् अच्युत को रोक दिया। जब वह वारित किये जाने पर भी नहीं रुके तो वह नरान्तक बहुत क्रुद्ध हुआ था और उस समय में बहुत ही उग्र शरों से उस नरान्तक ने भगवान् केशव पर प्रहार किया। बलदेवजी को अनेक शरों के द्वारा ताडित किया। वे दोनों ही श्रीकृष्ण और बलराम परम घोर बाणों से चारों ओर से यमराज के किंकरों के द्वारा प्रताडित हुए थे ॥५०-५६॥

आदायधनुषीदिव्ये जघ्नतुर्यमकिंकरान् ।
बाणैरनेकसाहस्रैः क्रुद्धौरामजनार्दनौ ।।५७
नरान्तकोऽपिसमरे बलेनबलिनार्दितः ।
पपातगदयाभिन्नो मूर्ध्निनिर्गतलोचनः ।।५८
ततोनरान्तकेवीरे पतितेयमकिंकरे ।
किंकराणामभूत्सैन्यमातं रणपराङ्मुखम् ।।५९
तैर्दूतारामकृष्णाभ्यां हन्यमानाभयातुराः ।
यमायकथयामासुर्नरान्तकनिपातनम् ।।६०
ततोयमोयमोययौक्रुद्धः समन्तात्किंकरैर्वृतः ।
ततः प्राह यमः क्रुद्धोनोजितोऽहंपुरापरैः ।।६१
ततोवादित्रघोषैस्तु मुरजानकगोमुखैः ।
नानाडमरुकाद्यैश्चचित्रगुप्तंचगच्छति । ६२
देवाविद्याधराः सिद्धा द्रष्टुं प्राप्ता महाबलम् ।
पृतान्तस्य रणेऽक्षोभ्यं कामपालं जगत्पतिम् ।।६३

तब तो बलराम और जनार्दन दोनों बहुत ही क्रुद्ध हो गये थे और उन्होंने सहस्रों बाणों से अपने दिव्य दिव्य धनुषों को ग्रहण करके उन यमराज के किंकरों का हनन कर दिया। वह नरान्तक भी उस समर स्थल में परम बलशाली बलरामजी के द्वारा खूब ही पीड़ित किया गया और गदा के प्रहार माथे में भिदा हुआ वह निकले हुए नेत्रों वाला होकर गिर गया। इसके अनन्तर जब वह नरान्तक वीर यमराज का किंकर युद्ध स्थल में गिर गया तो उसके पतन होते ही यमराज के किंकरों की वह सम्पूर्ण सेना रण से पराङ्मुख हो गई। वे समस्त दूत राम कृष्ण के द्वारा हन्यमान होते हुए भयभीत होकर यमराज के पास पहुँचे और उन्हों ने यमराज से उस नरान्तक के निपात होने का समाचार कह दिया। इसके उपरान्त यमराज अत्यन्त क्रुद्ध होकर सभी ओर से अपने किंकरों द्वारा परिवृत होकर वहाँ पर गया और क्रोधाविष्ट होकर उसने कहा— पहिले आज तक मुझे कभी दूसरों ने नहीं जीता है। इसके पश्चात् वादित्रों

की ध्वनियों से—मुरज—आनक और गोमुख के शब्द से तथा अनेक डमरू आदि के घोषों के साथ चित्रगुप्त के जाने पर वहाँ पर समस्त देव गण—विद्याधर और सिद्ध उस कृतान्त के युद्ध में महान् बलवान् जगत् के स्वामी कामपाल को देखने के लिये प्राप्त हो गये थे जो कि असंख्य थे ॥५७-६३॥

ततस्तेकिंकराः सर्वे चित्रगुप्तेननोदिताः ।
रथामावृत्यबाणोघैः प्रबबाधुस्समन्ततः ॥६४
बलञ्चकेशवं संख्ये जघ्नतुस्तावुभावपि ।
रणेचविविधैर्बाणैश्चित्रगुप्तस्यपश्यतः ॥६५
विदार्यचसहस्राणि किंकराणांसमन्ततः ।
कृतान्तानीकिनीमध्ये कतान्तइवकेशवः ॥६६
चचार रणदुर्द्धर्षः कामपालेन पालितः ॥६७
ततश्चित्रगुप्तोरणे किंकरोघं
विदीर्णं निरीक्ष्यार्त्तनादं चकार ।
शरैः पञ्चभिः कृष्णमायान्तमाजौ
जघानाष्टभिर्वज्रदेशे सभिन्नः ॥६८
शरार्तोरथोपस्थआसीत्तदानीं
तमालोक्यभिन्नं रणे नष्टसञ्ज्ञम् ।
रथं स्वं समादाय यातः कृतान्त
स्ततश्चित्रगुप्तेशरार्ते प्रसुप्त ॥६९
रणे कीर्त्तिलुप्तेभयक्षोभयुक्ताः
स्वसैन्यंश्चयुक्ताभयार्तानिषण्णाः ॥
प्रधानाश्च भग्ना विचित्राश्च भग्ना
स्ततश्चित्रगुप्तं निशम्याऽथ भग्नम् ॥७०

इसके अनन्तर चित्रगुप्त के द्वारा प्रेरित हुए वे सब किंकर कृष्ण' बलराम के रथ को चारों ओर से घेर कर बाणों के समूह से प्रहार कर रहे थे। उन्होंने उस युद्ध में श्री बलराम और श्रीकृष्ण दोनों के ही खूब आघात किये थे। चित्रगुप्त के देखते हुए उस युद्ध स्थल में

अनेक प्रकार के वा ो के द्वारा हनन हो रहा था। उस समय मे भगवान् केशव ने साक्षात् कृतान्त के ही समान उस यमराज को सेना के मध्य मे यमराज के किंकरो में सभी ओर से सहस्रो को विदीर्ण करके कामपाल के द्वारा पालित वह रण मे दुर्धर्ष होकर विचरण कर रहे थे ॥६४-६७॥ इसके पश्चात् चित्रगुप्त ने उस युद्ध मे अपने किंकरो के एक बहुत बडे समुदाय को विदीर्ण होते हुए देखा और ऐसी बुरी दशा उन अपने किंकरो की देखकर चित्रगुप्त ने आर्त्तनाद किया था ॥६८॥ उसने पाँच शरो के द्वारा आते हुए श्रीकृष्ण पर हनन किया और वह आठ बाणो से मुख प्रदेश मे भिन्न हो गया। उस समय मे वह सरो से अत्यन्त आर्त्त होकर रथ के समीप मे ही था। उसको रण में भिन्न तथा बेहोश देखकर शरो से आर्त्त और चित्रगुप्त के प्रमुग्ध हो जाने पर कृतान्त अपने रथ को लेकर स्वयं वहाँ पर समागत हो गया। रण मे कीर्त्ति के लुप्त हो जाने पर भय और क्षोभ से युक्त तथा अपनी सेनाओ के सहित भय से आर्त्त एवं सब बैठे हुए थे। सभी प्रधान भग्न हो गये थे—विचित्र भी भग्न हो गये थे और फिर चित्रगुप्त को भी भग्न हुआ सुन लिया था ॥६९-७०॥

सकालस्तमायान्तमालोक्यदूराद् ।
वर सैन्यमादाय देवारिशत्रुम् ।
विनाशाय युध्दयुगान्ते प्रजाना
यथा वाडवो ज्वालवृद्धः प्रवृत्तः । ७१

तमायान्तमालोक्य काल कराल
शरैरावृणोदन्तक कालकल्पैः ।
स कालः कराल समादायदण्ड
मुमोचाच्युतं पश्यतान्देवतानाम् ॥७२

ततः कालदण्डः प्रजाना विनाशो
हरेस्सन्निकाश समभ्याजगाम ।
ततो देवगन्धर्वयक्षामुनीन्द्राः
परं विस्मयं प्रापुरन्वीक्ष्य रामम् ॥७३

ज्वलन्तञ्च जग्राह कालस्य दण्डं
स रामो वरं लीलयानन्तमूर्तिः ।
कालदण्डे गृहीते बलेनाहवे
मोक्तुकामे पुनः कालनाशाय वै ॥७४
सूर्णमभ्येत्य तत्रान्तरे पद्मजस्तं ।
रणे वारयामास कृष्णं तदा ॥७५
मां मुञ्चेत्यब्रवीद्वेधाः कालं कालायुधं बल! ।
त्वयाबलवतावीर चराचरधराधरा! ।
धार्यतेशिरसादेव समारेनास्ति ते समः ॥७६
त्वयाविश्वपतिर्विष्णुरुत्सङ्गे नसदोह्यते ।
कोऽन्योऽस्तित्वत्समोरामयोजगद्वहनेक्षमः ॥७७

उस काल ने देवो के अरियो के शत्रु उसको आते हुए दूर से ही देखकर बहुत अच्छी सेना लेकर उनके विनाश के लिये युद्ध करने लगा जैसे प्रजाओ के अन्त करने मे ज्वालाओ से प्रवृद्ध वाडव प्रवृत्त होता है ॥७१॥ उस आते हुए करालकाल को देखकर काल के तुल्य शरो से उस अन्तक को आवृत कर दिया । उस काल ने कराल दण्ड को लेकर देवताओ के देखते हुए अच्युत पर उसका प्रहार कर दिया । प्रजाओ का विनाश यह काल दण्ड था जो कि श्रीहरि के समीप मे आकर प्राप्त हुआ । इसके अनन्तर श्रीराम को देखकर देव—गन्धर्व—यक्ष और मुनीन्द्र परम विस्मय को प्राप्त हो गये थे ॥७२-७३॥ श्रीअनन्त मूर्त्ति उन श्रीबलराम ने लीला से ही परम श्रेष्ठ जाज्वल्यमान काल के दड को ग्रहण कर लिया । बलराम जी के द्वारा उस युद्ध मे काल दण्ड के ग्रहण करने पर पुनः काल के विनाश करने के लिये उसके छु डने की इच्छा करने पर भगवान् ब्रह्माजी उसी बीच मे उस युद्ध स्थल मे शीघ्र उपस्थित हुए थे और उस समय मे उन्होने श्रीकृष्ण को निवारित कर दिया । ब्रह्माजी ने कहा—हे बल ! इस कालायुध काल को मत छोडो । हे वीर ! बलवान् आप के द्वारा तो इस समस्त चराचरो को धारण करने वाली इस भूमि को शिर से ही धारण किया जाता है । इस ससार मे आप के तुल्य अन्य कोई भी नही

है। आपके द्वारा विश्व के पति भगवान् विष्णु सदा उत्सङ्ग के द्वारा धारण किये जाया करते हैं। हे राम ! जो जगत् के वहन करने में समर्थ हैं वैसा अन्य आपके समान कौन है। अर्थात् कोई भी नहीं है ॥७४-७७॥

जगत्स्रष्टाजगद्गोप्ताजगद्धर्ताजगत्पतिः ।
पाल्यतेयस्त्वयासोऽपिविष्णुर्विश्वैकनायकः ॥७८
कस्ते स्तुतिकरोऽस्तीह को गुणान्वेत्तुमर्हति ।
ततो वयं त्वदङ्कस्था विष्णुनाभिभवायनाः ॥७९
इत्युक्त्वाबलदेवञ्च वासुदेवंपुनर्वचः ।
उवाच चतुरास्यस्तु स्तुतिपूर्वंवृत्तस्सुरैः ॥८०
कृष्ण ! कृष्ण ! करालास्य ! कालस्यास्य कृपां कुरु ।
यतो भवन्तमायाभ्तं विष्णुं विश्वैकनायकम् ॥८१
वेत्तिनायं जगन्नाथ नरकार्णवतारकम् ।
त्वयावैभगवन्पूर्वंयमः सस्थापितः पदे ॥८२
नृणादुष्कृतकर्तृणां नरकाययमः प्रभो ! ।
तस्मादस्य जगन्नाथ क्षम्यतांपुरुषोत्तम ! ॥८३
विभो ! कृतापराधस्यत्र हियत्तेविवक्षितम् ।
एतच्छ्रुत्वाब्रवीत्कृष्णोधातः शृणुगुरोर्मम । ८४
सान्दीपनेस्समानीतस्सुतस्तेनागताविह ।
समर्प्यतांगुरुश्रेष्ठ श्रेष्ठायगुरुदक्षिणा ॥८५

इस समस्त जगत् के सृजन करने वाले—जगत् की रक्षा करने वाले—जगत् के धारण करने वाले और इस जगत् के पति—विश्व के एक ही नायक जो विष्णु देव हैं वे भी आपके ही द्वारा पालित होते हैं। यहाँ पर कौन स्तुति के करने वाला है और कौन गुणों को जानने को योग्य होता है। विष्णु के द्वारा अभिभवायन हम आपके ही अङ्क में स्थित हैं—यह कहकर पुनः बलदेव और वासुदेव को सुरों से समावृत ब्रह्माजी ने स्तुति पूर्वक कहा—हे कृष्ण ! हे कृष्ण ! आप तो कराल मुख वाले हैं—इस काल के ऊपर कृपा करिए। कारण यह है कि विश्व के एक नायक

विष्णु भगवान् आपको आते हुए यह नहीं जानता था कि आप समस्त जगत् के नाथ घोर नरकों के सागर से तारने वाले हैं। हे भगवन् ! आपने ही पहिले इस यमराज को इस पद पर संस्थापित किया। हे प्रभो ! जो दुष्कृत करने वाले मनुष्य हैं उनको दण्ड देने के लिये ही इस यम को आपने यह पद प्रदान किया है। हे जगन्नाथ ! हे पुरुषोत्तम ! इसी कारण से अब इसको आप क्षमा कर दीजिए। हे विभो ! इसमें कोई भी सन्देह नहीं है कि इसने आपका अपराध किया है किन्तु अब उसके क्षमापन के लिये आप ही बतलाइये कि आपका क्या विवक्षित है। यह सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा—हे धाता ! आप मेरा कथन श्रवण कीजिए—मेरे गुरु सान्दीपनि का पुत्र यहाँ लाया गया है। इसी लिये हम दोनों यहाँ पर आये हैं। हम अपने परम श्रेष्ठ गुरु देव के लिये गुरु दक्षिणा समर्पित करें। हे विभो ! हम दोनों ने प्रतिज्ञा की है कि हम गुरु सान्दीपनि के पुत्र को लाकर उन्हें देंगे इसी लिये उसका पालन कीजिए ॥७८-८५॥

आवाभ्यां च प्रतिज्ञाता तस्मात्सा पाल्यतां विभो ! ।
एतत्पितामहः श्रुत्वा यम समरनिर्जितम् ॥८६
समाहूयाऽब्रवीद्विष्णुर्यद्ब्रवीति कुरुष्व तत् ।
तच्छ्रुत्वा धर्मराजस्तु विरञ्चिमिदमब्रवीत् ॥८७
भगवन्विश्वकृल्लोकेनैषमार्गस्त्वयाकृतः ।
यमलोकमनुप्राप्तः कायहीनः शरीरवान् ॥ ८
शरीरसहितोयाति नैतदत्रप्रपद्यते ।
तच्छ्रुत्वाहिपुनर्ब्रह्मा विश्वस्यास्यविभुः स्वयम् ॥८९
विश्वकृद्विश्वहृद्यस्माद्यदिच्छति करोतु तत् ।
तस्मादर्पय पुत्रं त्वं मुनेस्सान्दीपनेश्च वै ॥९०

पितामह ने यह सुनकर समर भूमि में निर्जित किये हुए यमराज को बुलाकर कहा कि जो भगवान् विष्णु बोल रहे हैं उसे तुम शीघ्र करो। यह सुनकर धर्मराज ने विरञ्चि देव से यह कहा—हे भगवन् ! इस विश्व

की रचना करने वाले आपने ही यह मार्ग निर्मित किया है कि जो इस यमलोक में प्राप्त हो जाया करता है वह काया से रहित शरीर वाला होता है। जो शरीर के सहित होता है वही जाया करता है सो ऐसा शरीर धारी यह प्राप्त ही नहीं होता है। यह श्रवण करके इस सम्पूर्ण विश्व के स्वयं विभु ब्रह्माजी ने पुनः कहा था कि क्यों कि इस विश्व की रचना करने वाले और इस विश्व के हृदय जो भी चाहते हैं वही तुम करो। इस लिये मुनि सान्दीपनि के पुत्र को तुम इनका समर्पित करदो ॥८६-६०॥

नरकायं पुनः कृत्वा तञ्चानयमहामते।
तच्छ्रुत्वाधर्मराजस्तु पुत्रंसान्दीपनेस्तथा ॥९१
ससर्जबालरूपञ्चतदात्मानंतदुद्भवम्।
अर्पयामासकृष्णाय बालंरूपसमन्वितम् ॥९२
समक्षं देवतानांच तदद्भुतमिवाभवत्।
दतः प्राप्यगुरोः पुत्रं प्रभु प्रीत प्रजापतिम् ॥९३
प्राह प्राप्तो मया ब्रह्मन् स्वरूपो द्विजदारकः।
अद्यप्रभृति लोकेश ! देशे मच्चरणाङ्किते ॥९४
अवन्त्यामंकपादाख्ये मृतानेक्षन्तितेयमम्।
महाकालोत्तरे देवमार्या वै पुरुषोत्तमम् ॥९५
विश्वरूपञ्चगोविन्दं शङ्खोद्धारंचकेशवम्।
ये पश्यन्तिकुशस्थल्यामेतेशामूर्तिपञ्चकम् ॥९६
तेनरानगमिष्यन्तिविरञ्चेनिरयक्वचित्।
तथैवागमनादत्र मम रामस्य नारकाः ॥९७
विमुक्तास्ते त्वया घोरात् प्राप्नुवन्त्वखिलादिवम्।
इत्युक्ते वचने वेधाः प्रोवाच प्रीतिमान्हरिम् ॥९८

हे महामते ! पुनः मनुष्य के शरीर की रचना करके उसको यहाँ पर लाओ। यह श्रवण करके धर्मराज ने सान्दोपनि मुनि के पुत्र की रचना की थी जो कि बालक के रूप वाला उसी स्वरूप से युक्त और उसके उद्भव को प्राप्त करने वाला ही था। ऐसे बालरूपी उसको भगवान् श्री

कृष्ण के लिये उस धर्मराज ने वह समर्पित कर दिया था ॥९१-९२॥ समस्त देवताओं के समक्ष में वह एक अद्भुत जैसी घटना घटित हुई थी। इसके अनन्तर प्रभु ने अपने गुरु के पुत्र को प्राप्त करके प्रजापति पर परम प्रसन्नता उनको हुई थी और उन्होंने कहा था—हे ब्रह्मन्! मैंने ठीक सुन्दर स्वरूप वाला द्विज का बालक प्राप्त कर लिया है। श्रीकृष्ण ने कहा—हे लोकेश! आज से लेकर मेरे चरणों से अंकित देश मे अवन्ती में अंकपाद नाम वाले स्थल मे जो मृत पुरुष हैं वे आकर यमराज का मुख नही देखेंगे। महाकालोत्तर में आद्यदेव पुरुषोत्तम, विश्वरूप, गोविंद और शंखोद्धार केशव भगवान् का जो दर्शन किया करते हैं और कुशस्थली में इनकी पाँच मूर्तियों का अवलोकन करते हैं, हे ब्रह्मन्! वे मनुष्य कभी भी कही पर नरक का दर्शन नही करेंगे। उसी भाँति यहाँ पर मेरे आगमन से तथा बलरामजी के आगमन से नारक लोग अर्थात् नरकों मे निवास करने वाले मनुष्य विमुक्त हो गये हैं। ये सब इस घोर नरक से जो आपने इन्हें दिया था विमुक्त होकर सब के सब दिवलोक को प्राप्त होते हैं। इस वचन के कहने पर ब्रह्माजी परम प्रीति वाले होकर श्री हरि से बोले—हे श्री कृष्ण! आपने जो कुछ भी वचन कहा है वह सदा सफल होगा ॥९३-९८॥

यत्त्वयोक्तं वचः कृष्णतदस्तुसकलंसदा।
ये च त्वामादिपुरुषं प्रथमंपुरुषोत्तमम् ॥९९
प्रणम्य ये च द्रक्ष्यन्ति स्नात्वा शिवसरस्यपि।
अघोज्वलं महाकालं सोऽश्वमेधफलं लभेत् ॥१००
एवमुक्तो हरिः पुत्रमादायबलेन ( हलिना ) सह (?) ॥१०१
आपृच्छ्यचैवसंदेवमारुरोहरथंततः।
शङ्खमापूरयामास कृतकार्योजनार्दनः ॥१०२
मोक्षायनिरयस्थानं नृणांवैपापकर्मणाम्।
ततस्तेशङ्खशब्देन स्मरणेनाच्युतस्य च ॥१०३
दिव्यान्विमानानारुह्य दिवमेवाखिलागताः।
शून्यंतन्मण्डलं जातं नारायणसमागमे ॥१०४

कालोऽपि दण्ड मासाद्य बलदेवात्पुरः पुरम् ।
प्रविवेश ततो धाता तत्रैवान्तरधीयत ॥१०५

जो मनुष्य प्रथम पुरुषोत्तम आदि पुरुष आपको प्रणाम करके और शिवसर मे भी स्नान करके अघोज्ज्वल महाकाल का दर्शन करेंगे वे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करते हैं। इस प्रकार से कहे हुए श्री हरि बलराम जी के साथ द्विज पुत्र को लेकर और देव ब्रह्माजी से मनुमति ग्रहण करके रथ पर समारूढ़ हो गये थे। कृत कार्य जनार्दन प्रभु ने शंख का नाद किया था। पाप कर्म करने वाले मनुष्यों के निरय स्थान के मोक्ष के लिए ही वह शंख की ध्वनि की थी। इसके पश्चात् वे उस शंख के शब्द से तथा भगवान् अच्युत के स्मरण करने से परम दिव्य विमान पर चढ़कर वे सबके सब स्वर्ग लोक को चले गये थे। भगवान् नारायण के वहाँ पर समागम होने से वह पुरा मण्डल शून्य हो गया था ॥९९-१०४॥ काल भी दण्ड प्राप्त करके बलदेवजी के आगे २ प्रविष्ट हुआ था और इसके पश्चात् धाता (ब्रह्मा) वहीं पर अन्तर्धान हो गये थे ॥१०५॥

कृष्णोऽपिबलवान्वीरः प्राप्तउज्जयिनीपुरीम् ।
बलदेवसहायस्तुमरथेनाशुगामिना ॥१०६
ततस्सान्दीपनेः पुत्रमर्पयामासकेशिहा ।
कुरवेयत्प्रतिज्ञातं ततस्मादनृणोऽभवत् ॥१०७
एवं सान्दीपनेः पुत्रं दृष्ट्वाचपुनरागतम् ।
नागरास्तत्रराजाच विस्मयंपरमंययुः ॥१०८
तौवीरावर्चयामासुर्मत्वादेवोत्तमोत्तमौ ।
सान्दीपनिस्त्वाचेदं तौचरामजनार्दनौ ॥१०९
इह स्थास्यति वः कीर्तिर्यावदाभूतसम्प्लवम् ।
स्थाने तु वयमेतस्मिन् स्यास्यामो यदुनन्दनौ ॥११०
नविज्ञातोमयावीरौ यदुवृष्णिकुलोद्भवौ ।
नरनारायणौदेवौ देवकार्यार्थमागतौ ॥१११

नाल्पमृत्युर्भवेत्तस्यनव्याधिर्नचदुर्गतिः ।
प्राप्नोत्यग्रचस्नातश्चै वस्वर्गलोकेमहीयते ॥११२

भगवान् श्री कृष्ण भी वीर उज्जयिनी जी पुरी मे आ गये थे। बलदेव जी भी उनके साथ मे सहायक थे। वे शीघ्रगामी रथ के द्वारा वहाँ पहुंच गये थे और केशी दैत्य के हनन करने वाले प्रभु ने सान्दीपनि मुनि को उनका पुत्र लाकर अर्पित कर दिया था। अपने गुरुजी से जो पुत्र को लाकर दे देने की प्रतिज्ञा की थी उस गुरु ऋण से वे उऋण हो गये थे। इस प्रकार से सान्दीपनि मुनि के पुत्र को जो मर गया था पुनः वापिस समागत हुआ देख कर वहाँ के सभी नगर निवासी लोग और राजा भी परम विस्मित हो गये थे। उन सबने उन दोनो श्री बलराम और श्री कृष्ण की अर्चा की थी और सभी ने उन दोनो को परमोत्तम देव मान लिया था मुनि सान्दीपनि ने उन दोनो श्री राम और जनार्दन से यह वचन कहा था—यहाँ पर लोक मे आपकी यह कीत्ति जब तक समस्त भूतो का सम्प्लव होगा स्थित रहेगी। हे यदुनन्दनो ! इस स्थान मे हम लोग स्थित रहेगे। यदु वृष्णि कुल मे उद्भव प्राप्त करने वाले आप दोनों वीरो को मैंने नही पहिचाना था कि साक्षात् नर नारायण देव देवो के कार्यों को सुसम्पादित करने के लिए ही इस लोक मे समागत हुए हैं। यहाँ पर प्राप्त जो भी कोई होता है और यदि यहाँ स्नान कर लेता है तो वह कभी भी अल्प आयु मे मरने वाला नहीं होगा। उसे कभी भी कोई व्याधि भी पीडित नही करेगी और न किसी प्रकार की उसकी दुर्गति ही होगी। अन्त मे इसका ऐसा प्रभाव होगा कि वह स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित होता है ॥१०६-११२॥

शङ्खिनं विश्वरूपञ्चामाधवञ्चक्रिणतथा ।
चत्वारिविष्णुक्षेत्राणि अकपादस्तुपञ्चम ॥११३
एपा यात्रा प्रवक्ष्यामि यथा कार्या मनीपिभिः ।
मन्दाकिन्या कृतस्नानो दृष्ट्वा रामजनार्दनौ ॥११४
शंखोद्धारे ततस्स्नात्वा प्रपश्येद् बलकेशवौ ।
स्नानं कृत्वाततः कुण्डे गोविन्दञ्च समर्चयेत् ॥११५

चक्रिणञ्चततोदृष्ट्वा विश्वरूपस्ततोव्रजेत् ।
तस्याग्रतः करीकुण्डेस्नानं कृत्वायथाविधि ॥११६
पुनस्तेन प्रकारेण प्रपश्येद् बलकेशवौ ।
स्नानं कृत्वा ततः कुण्डे गोविन्दञ्च समर्चयेत् ॥११७
तथैव चक्रहस्तौ तौ दृष्ट्वा केशवमाव्रजेत् ।
शिप्राम्भसि नर स्स्नात्वा भक्त्या सम्पूज्य केशवम् ॥११८

काशी, विश्वरूप, पञ्च माधव, और चक्री ये चार विष्णु क्षेत्र हैं और मत्स्यपाद पाँचवां क्षेत्र है। इनकी यात्रा के विषय में मैं कहूँगा कि किस प्रकार से मनीषियों को यह करनी चाहिए। मन्दाकिनी में स्नान करके श्रीराम जनार्दन का दर्शन करके फिर शंखोद्धार में स्नान करके बलराम और केशव भगवान का दर्शन करना चाहिए। इसके पश्चात् कुण्ड में स्नान करके श्री गोविंद प्रभु का अर्चन करे ॥११३-११५॥ इसके पश्चात् चक्री भगवान् का दर्शन करे और इसके बाद में विश्व रूप की सेवा में उपस्थित होना चाहिए। उनके आगे करी कुण्ड में विधिपूर्वक स्नान करे और फिर उसी प्रकार से श्री बल और केशव का दर्शन करना चाहिए। इसके पश्चात् कुण्ड में स्नान करके श्री गोविंद प्रभु का समर्चन करे ॥११६-११७॥ उसी भाँति से चक्र हाथ में रखने वालों का दर्शन करके भगवान केशव के समीप में गमन करना चाहिए। क्षिप्रा के जल में मनुष्य को स्नान करके भक्ति की भावना से भगवान केशव का भली-भाँति पूजन करना चाहिये ॥११८॥

परावृत्याकपाद्न्तु तां रात्रिंगमयेच्छुचिः ।
प्रातर्वैभोजयेत्तत्र पञ्चविप्रांश्चसुव्रतान् ॥११९
गोदक्षिणाश्शङ्खिनेतु विश्वरूपायवैहयः ।
गोविन्दाय गजः प्रोक्तस्सर्वंदद्याच्चकेशवम् ॥१२०
उपाप्य द्वादशोविप्रायाकपादसमर्चयेत् ।
गन्धपुष्पैश्चधूपैश्चनैवेद्यैर्विविधैस्तथा ॥१२१
श्राद्धं यः कुरुतेसर्वं तस्यपुण्यफल शृणु ।
कुलानां शतमुद्धृत्य विमानैस्सार्वकामिकैः ॥१२२

गीतनृत्यादिभोगैश्च वैकुण्ठे सुचिरं वसेत्।
पुनर्लोकमिमंप्राप्य पवित्रेजायते कुले ॥१२३
प्राप्नोत्यनन्तसन्तानं विष्णुलोकं पुनर्व्रजेत् ॥१२४

मार्कपाद में वापिस लौटकर परम पवित्र होकर उस रात्रि में वहीं पर निवास करे। प्रातः काल होने पर पर सुव्रत पाँच विप्रों को वहाँ पर भोजन करावे। स्वामी प्रभु को गौ की दक्षिणा विश्व रूप के लिए हय की दक्षिणा, गोविंद के लिये गज की दक्षिणा बताई गई है। केशव भगवान के लिए सर्वस्व दक्षिणा में देवे ॥११६-१२०॥ द्वादशी का उपवास करके विप्र के लिए मार्कपाद का समर्चन करना चाहिए। गन्ध, पुष्प, धूप, नैवेद्य और विविध प्रकार के अन्य उपचारों से समर्चन करना चाहिए। जो वहाँ पर श्राद्ध करता है उसका सब पुण्य फल श्रवण करो। यह मनुष्य जो श्राद्ध वहाँ पर किया करता है अपने सौ कुलों का उद्धार करके समस्त कामनाओं से परिपूर्ण विमानों के द्वारा तथा गीत और नृत्य आदि महान् सुखोपभोगों के द्वारा वह वैकुण्ठ लोक में चिरकाल पर्यन्त निवास किया करता है। फिर सुयधि के अनन्तर इस लोक में आकर किसी महान् पवित्र कुल में समुत्पन्न हुआ करता है। यहाँ पर वह मनुष्य अनन्त सन्ततियों का सुख प्राप्त किया करता है और फिर भी वह विष्णु लोक में ही गमन किया करता है ॥१२१-१२४॥

---

## ७४—रामेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णन

अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि केदारेश्वरमुत्तमम्।
प्रवरं सर्वतीर्थानां सर्वलोकेषु विश्रुतम् ॥१
तत्रस्नात्वाशुचिर्भूत्वा यःपश्यतिमहेश्वरम्।
केदारेयत्फलं प्रोक्तं तदत्रापिलभेन्नरः ॥२
सर्वपापविनिर्मुक्तः स्वकीयकुलसंयुतः।
विमानेनार्कवर्णेन शिवलोकेसमोदते ॥३
जटाशृङ्गे नरः स्नात्वा शुचिर्भूत्वाजितेन्द्रियः।
दृष्ट्वा जटेश्वरं देवं ततःपापाद्विमुच्यते ॥४

महास्नपनमादौच कृत्वागच्छेच्छिवम्प्रति ।
मातृकं पैतृकं चैव कुलानांतारयेच्छतम् ।।५
इन्द्रतीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट्वाचेन्द्रेश्वरं शिवम् ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्य. शक्रलोकेमहीयते ।।६
कुण्डेश्वरं तु यः पश्येच्छिवध्यानपरायणः ।
लभतेसनरोव्यास! शिवदीक्षाफलंशुभम् ।।७

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—इसके अनन्तर मैं उत्तम केदारेश्वर का वर्णन करूंगा जो ससार के समस्त तीर्थों मे परम वरिष्ठ है और सभी लोकों मे प्रसिद्ध है। वहाँ पर स्नान करके परम पवित्र होकर जो मनुष्य महेश्वर प्रभु का दर्शन किया करता है वह मनुष्य केदार तीर्थ मे जो पुण्य-फल कहा गया है उसे यहाँ पर भी प्राप्त कर लिया करता है। अपने कुलों के सहित समस्त पापो से निर्मुक्त होकर सूर्य के समान आभा वाले विमान के द्वारा शिव लोक में आनन्द का लाभ लिया करता है ।।१-३।। जटा भृ ग नामक तीर्थ मे स्नान करके जो मनुष्य शुचि होकर अपनी इन्द्रियों को जीत लेने वाला जटेश्वर देव के दर्शन करता है वह फिर पाप से एक दम छुटकारा पा जाया करता है। आदि मे महा स्नान करके फिर भगवान् शिव के मन्दिर मे जाना चाहिए। ऐसा मनुष्य अपने मातृ कुल को और पितृ कुल को दोनों के सौ-सौ की संख्या मे तार दिया करता है। इन्द्र तीर्थ मे नर स्नपन करके फिर जो इन्द्रेश्वर शिव के दर्शन किया करता है वह भी सब तरह के अपने किए हुए पापो से विमुक्त होकर इन्द्रलोक मे प्रतिष्ठित हुआ करता है। जो कुण्डेश्वर के दर्शन किया करता है, हे व्यास देव! वह मनुष्य शिव की दीक्षा के परम शुभ का फल का लाभ पा जाता है ।।४-७।।

गोपतीर्थेनरः स्नात्वा दृष्ट्वागोपेश्वरंशिवम् ।
शिवलोकं सर्वयाति ह्यमृदामरोयथा ।।८
स्नात्वाशुचिपिशाचतीर्थे शिवदेवं प्रणम्यच ।
तिर्यग्योनिंनरो नैव प्रयातिमुनिपुङ्गव! ।।९

विजयेचनरः स्नात्वाआनन्देश्वरपूजनात् ।
विमुक्तःसर्वपापेभ्यःस्वर्लोकेविजयीभवेत् ॥१०
अथान्यं सम्प्रवक्ष्यामि कुशस्थल्यां विनिर्मितम् ।
देवं रामेश्वरं व्यास! भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥११
चित्रकूटात्पुरारामो मैथिल्यालक्ष्मणेनच ।
अत्ररामं समागत्य पप्रच्छमुनिसत्तमम् ॥१२
कानितीर्थानिपुण्यानि किंवाक्षेत्रं महामुने ।
यत्रगत्वानचाप्नोतिवियोगः सहबान्धवैः ॥१३
अनेनवनवासेन मरणेनपितुःप्रभो ।
भरतस्यवियोगेन प्रतप्येऽहं त्रिभिर्मुने ॥१४

एक गोपतीर्थ यहाँ है, उसमें स्नान करके मनुष्य गोपेश्वर भगवान् शिव के दर्शन करता है वह सीधा शिव लोक में गमन किया करता है जैसे अमृत के पान से अमर हो जाता है। चिपिटा तीर्थ में स्नान करके और देवेश्वर शिव को प्रणाम करके हे मुनियों में परम श्रेष्ठ! वह मनुष्य फिर कभी भी तिर्यग योनि को प्राप्त नहीं किया करता है। विजय नाम वाले तीर्थ में स्नान करके श्रीमानन्देश्वर प्रभु के पूजन करने से मनुष्य सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होता हुआ स्वर्ग लोक में पहुँच कर विजय वाला हुआ करता है। इसके अनन्तर मैं एक अन्य तीर्थ के विषय में वर्णन करता हूँ जो कुशस्थली में विनिर्मित तीर्थ है। वहाँ पर हे व्यास देव! भुक्ति और मुक्ति इन दोनों के प्रदान करने वाले रामेश्वर देव विराजमान हैं। पहिले परम पुरातन समय में श्रीराम अपनी प्रिया मैथिली और भाई लक्ष्मण के साथ चित्रकूट से यहाँ पर समागत हुए थे और उन्होंने मुनियों में परम वरिष्ठ से पूछा था—श्रीराम ने कहा—हे महा मुनिवर! यहाँ पर कौन–कौन से परम पुण्यमय तीर्थ हैं और क्षेत्र हैं जहाँ पर मनुष्य अपने बान्धवों के साथ कभी वियोग की प्राप्ति नहीं किया करता है। हे प्रभो! हे मुनिवर! मेरा मन तो इस लम्बे वन के निवास से और पूज्य पिताजी के मरण हो जाने से तथा भरत जैसे परम प्रिय एवं श्रेष्ठ भाई के वियोग हो जाने से इन तीनों बातों से बहुत ही सन्तप्त रहा करता है ॥८-१४॥

तद्वाक्यं राघवेणोक्तं श्रुत्वा विप्रर्षभस्तदा ।
ध्यात्वातुसुचिरं कालमिदं वचनमब्रवीत् ।।१५
साधुपृष्टं त्वयावीर रघूणां वंशवर्धन ।
मम पित्राकृतं क्षेत्र प्रयाच्यशिवमादरात् ।।१६
अवन्तीविषये राम पुरा तस्मिन् कुशस्थली ।
उज्जयिनीति वै नाम्ना ख्याति लोके गता विभो ! ।।१७
तस्यांगत्वादशरथं पिण्डदानेनतर्पय ।
सुरासुरगुरुस्तत्र महाकालोऽप्यवस्थितः ।।१८
देवः सदाशिवोराजन् वाञ्छितार्थफलप्रदः ।
दृष्टे तस्मिञ्जगन्नाथे वियोगोनैवजायते ।। १९
तत्र गच्छन्तियेविप्रा राजानोवैमहाबलाः ।
लभन्तेतेपरं स्थानं यत्र देवोमहेश्वरः ।।२०
तीर्थानामपि तत्तीर्थं भो विष्णोऽवन्तिमण्डले ।
आजगाम ततोऽवन्ती सा शिप्रा यत्र पुण्यदा ।।२१

उस समय मे इस श्रीराघवेन्द्र प्रभु के द्वारा कहे हुए वाक्य का श्रवण करके विप्रो मे परम श्रेष्ठ ने चिरकाल पर्यन्त ध्यान करके इस वचन को कहा—हे वीर ! आपने बहुत ही अच्छी बात मुझ से पूछी है । आप तो रघु के वंश की वृद्धि करने वाले हैं । मेरे पिताजी ने भगवान् शिव से प्रकृष्ट रूप से याचना करके बड़े ही आदर से इस क्षेत्र को किया है । हे राम ! अवन्ती देश मे पहिले एक कुशस्थली है । हे विभो ! यह उज्जयिनी–इस नाम से लोक में ख्याति को प्राप्त हुआ है । वहाँ पर जाकर आप महाराज दशरथ को पिण्ड दान के द्वारा सन्तृप्त करिए । वहाँ सुर और असुरों के गुरुदेव साक्षात् महाकाल समवस्थित रहा करते हैं । हे राजन् ! वहाँ पर सदा शिव देव सभी वाञ्छित मनोरथो के फलों के प्रदान करने वाले हैं । प्रभु श्रीजगन्नाथ के दर्शन करने पर कभी भी वियोग नहीं हुआ करता है । जो विप्रगण वहाँ पर जाया करते हैं तथा महान् बलवान् राजा लोग गमन किया करते हैं वे परम श्रेष्ठ स्थान को

प्राप्त किया करते हैं जहाँ पर महेश्वर देव विराजते हैं। हे विष्णो! इस अवन्ती मण्डल में वह तीर्थ समस्त तीर्थों का भी एक तीर्थ होता है। इसके उपरान्त जहाँ पर परम पुण्यों के देने वाली शिप्रा समागत हो गई थी ॥१५-२१॥

तस्यास्नात्वाततोरामस्तर्पयामासपूर्वजान् ।
महाकाल यदाद्रष्टुं प्रतस्थेरघुनन्दनः ॥२२
वाण्याततोऽशरीरिण्या देवदेवेन भाषितम् ।
भोभोराघव ! भद्रन्ते स्वनाम्ना स्थापयस्व माम् ॥२३
अनस्थानं मयादत्त माविचारय राघव ! ।
ततोहृष्टमनारामो लक्ष्मणवाक्यमब्रवीत् ॥२४
अनुगृहीतः सौमित्रे देवदेवेनशम्भुना ।
तस्मात्स्थापयतीर्थेऽस्मिल्लिङ्गं रामेश्वरं शुभम् ॥२५
वाक्य त्तल्लक्ष्मण. श्रुत्वा स्थापयामास शङ्करम् ।
दृष्ट्वा देव पुरो रामो लक्ष्मणं वाक्यमब्रवीत् ॥२६
एहिलक्ष्मणशीघ्रन्त्वं शिप्रायाजलमानय ।
करिष्यामियतोभ्रातर्देवस्यस्नपनं शुभम् ॥२७
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्य सीतयाकिंकरिष्यसि ।
रामनाऽहसर्वंकालदानमावं करोमिते ॥२८

उसमें इसके उपरान्त श्रीराम ने स्नान किया था और अपने पूर्वजों का तर्पण किया। जिस समय में श्रीरघुनन्दन ने महाकाल भगवान् के दर्शन करने के लिये प्रस्थान किया उस समय में बिना शरीर वाली आकाश वाणी के द्वारा देवों के देव ने कहा—हे राघवेन्द्र ! आपका कल्याण हो। अब आप अपने ही शुभ नाम से मेरी यहाँ पर स्थापना कर दो। हे राघव ! यहाँ पर मेरे द्वारा दिया हुआ यह स्थान है। इसका कुछ भी विचार मत करो। इसके उपरान्त प्रसन्न मन वाले श्रीराम ने लक्ष्मण जी से यह वचन कहा—हे सौमित्रे ! मैं देवों के देव शम्भु भगवान् के द्वारा अनुगृहीत हुआ हूँ। इस लिये इस तीर्थ में परम शुभ श्रीरामेश्वर शिव लिङ्ग की स्थापना करो। श्रीराम के इस वचन का श्रवण करके लक्ष्मण

जी ने श्रीशङ्कर भगवान् की स्थापना की थी। श्रीराम ने अपने आगे देवेश्वर का दर्शन करके लक्ष्मण से यह वचन कहा—हे लक्ष्मण! आप यहाँ पर शीघ्र आइए और सिप्रा नदी का जल ले आओ। हे भाई! क्योंकि मैं देवेश्वर का शुभ स्नपन करूंगा। लक्ष्मण ने वाक्य कहा—सीताजी से क्या करेंगे। मैं राम नाम वाला हूं। सभी काल में मैं आप का दास भाव करूंगा ॥२२-२८॥

इयंचपुष्टाहढा पीवराचमनाप्यतः।
सद राघवसत्येन अनया किंकरिष्यसि ॥२६
श्रुत्वापूर्वंहितद्वाक्यं लक्ष्मणेनप्रभाषितम्।
विमनाराघवस्तस्थौ सीताचापिवरानना ॥३०
यदुक्तंलक्ष्मणेनाथ तच्चसीताचकारह।
स्नात्वाभुक्त्वाचतौवीरौ महाकालमुपागतौ ॥३१
नीत्वाविभावरींतत्र गमनायमनोदधे।
उत्तिष्ठवत्ससौमित्रे व्रजामोदक्षिणां दिशम् ॥३२
सौमित्रिरब्रवीद्वाक्यं नाऽहं गन्ताकथञ्चन।
व्रजत्वमनयासार्द्धं भार्ययाकमलेक्षण ॥३३
नाहमग्रे वनं यामि नवायोध्याकथञ्चन।
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिमुवाचरघुनन्दनः ॥३४
कथं पूर्वंमयोध्याया निर्गतोसिमयासह।
वने वसन्महारामनववर्षाणिपञ्चच ॥३५

हे राघव! यह तो परम पुष्ट-मुष्ट और मुझसे भी अधिक पीवर है। हे राघवेन्द्र! सत्यतापूर्वक यह बतलाइये कि इससे आप क्या करेंगे? ॥२६॥ प्रथम हितवाक्य का श्रवण करके लक्ष्मण ने यह भाषित किया था। श्री राघवेन्द्र उदास होकर स्थित हो गये थे और वह आनन (मुख) वाली सीता भी स्थित हो गई थी ॥३०॥ जो लक्ष्मण ने कहा था वही सीताजी ने किया था। उन दोनों वीरों ने स्नान और भोजन करके दोनों महाकाल में समुपागत हुए थे। वहाँ पर उस रात्रि को व्यतीत करके फिर गमन

करने के लिये मन किया। हे सौमित्रे ! उठो, चलो दक्षिण दिशा को चलें सौमित्रि ( लक्ष्मण ) ने यह वाक्य कहा—मैं कैसे भी नहीं जाऊंगा। हे कमल के समान नेत्रों वाले ! आप ही इस भार्या के साथ गमन कीजिए। मैं न तो आगे वन में जाऊंगा और न अयोध्या ही को किसी भी प्रकार से जाऊंगा। इस तरह से बोलते हुए लक्ष्मण से श्रीराघवेन्द्र ने कहा—पहिले मेरे साथ में आप अयोध्या से कैसे निकल कर आये हैं ? आपने उस समय में तो मुझ से यही कहा कि हे राम ! मैं चौदह वर्ष तक वन में निवास करूंगा ॥३१-३५॥

प्रसादः क्रियतांमह्यं नयमामपिराघव।
इदानीत्वमर्द्धपथे कथंस्थातासिशत्रुहन् ॥३६
लक्ष्मणस्त्वब्रवीद्वाक्यं नाऽहं गन्ता वनं पुनः।
लक्ष्मणं विकृतं ज्ञात्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥३७
मामनुव्रज सौमित्रे! एको यास्यामि काननम्।
द्वितीया च स्त्रियं सीता उक्तो रामेण लक्ष्मणः ॥३८
धनुःसंगृह्यविमना उत्तस्थौलक्ष्मणस्तदा।
प्राप्तौप्राकारमर्यादां क्षेत्रसीमां परन्तपौ ॥३९
त्वंनिवर्तस्वसौमित्रे समर्पयचमेधनुः।
रामवाक्यमुपश्रुत्य सीतांवैलक्ष्मणोऽब्रवीत् ॥४०
किमर्थं हि परित्यक्तः कोऽपराधः कृतो मया।
रामेण च परित्यक्तः प्राणांस्त्यक्ष्याम्यसंशयम् ॥४१
रामं ततोऽब्रवीत्सीता किमर्थं लक्ष्मणस्त्वया।
देवसन्त्यज्यतेवीरःसुमित्रानन्दवर्धनः ॥४२

हे राघव ! मेरे ऊपर आप प्रसाद कीजिए मुझ को भी वन में ले चलिए। अब इस समय में आधे मार्ग में बीच में हो हे शत्रुहन् ! क्यों स्थित हो रहे हो ? लक्ष्मण ने यही वाक्य कहा—मैं फिर वन में नहीं जाऊंगा। इस प्रकार से लक्ष्मण को परम विकृत जान कर श्रीराम ने वचन कहा—हे सौमित्रे ! मेरे पीछे गमन करो, मैं एक ही वन को ...., दूसरी यह सीता है। इस तरह से श्रीराम के द्वारा लक्ष्मण से

कहा गया। उस समय मे धनुष ग्रहण करके लक्ष्मण उदास होकर स्थित हो गये थे। इस प्रकार से वे दोनो परन्तप प्राकार मर्यादा वालो ( चहार दिवारी से जिसकी हद बनी हुई थी ) क्षेत्र की सीमा पर प्राप्त हो गये थे। श्रीराम ने कहा—हे सौमित्रे ! मेरे धनुष को मुझे देदो और आप वापिस लौट जाओ। श्रीराम के इस वाक्य का श्रवण कर लक्ष्मणजी ने सीताजी से कहा—मुझे किस लिये परित्यक्त किया गया है ? मैंने क्या अपराध किया है। श्रीराम के द्वारा परित्याग किया गया मैं निश्चय ही अब अपने प्राणो का त्याग कर दूंगा। इसके अनन्तर सीताजी ने श्रीराम से कहा—हे देव ! आपके द्वारा परम वीर सुमित्रा के आनन्द के बढाने वाले लक्ष्मण का परित्याग क्यों किया जा रहा है ? ॥३९-४२॥

राघवस्त्वब्रवीत्सीता नाऽहं त्यक्ष्यामि लक्ष्मणम् ।
न कदाचिदपि स्वप्ने लक्ष्मणस्येदृगप्रियम् ॥४३
श्रुतपूर्वन्तु सुश्रोणि क्षेत्रस्यास्य विचेष्टितम् ।
अस्मिन् क्षेत्रे न सौभ्रात्र सर्वो हि स्वार्थतत्पर. ॥४४
परस्परं न मन्यन्ते स्वार्थनिष्ठंकहेतवः ।
न शृण्वन्तिपितुः पुत्रा. पुत्राणाञ्चतथापिता ॥४५
नत शिष्योगुरोर्वाक्यं गुरुर्वा शिष्यकर्म च ।
अर्थानुबन्धिनी प्रीतिर्न कश्चित्कस्यचित्प्रियः ॥४६
एवमुक्त्वाययौरामो लक्ष्मणोजानकीतथा ।
लिंग तत्रप्रतिष्ठाप्यास्वमाम्नारघुनन्दनः ॥४७
रामतीर्थे नर स्नात्वा दृष्ट्वा रामेश्वरं शिवम् ।
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकं स गच्छति ॥४८

श्रीरामचन्द्र ने सीताजी से कहा—मैं लक्ष्मण को नहीं त्यागूंगा। हे सुश्रोणि ! पहिले कभी भी स्वप्न मे भी लक्ष्मण का ऐसा अप्रिय वचन नहीं सुना था—यह इसी क्षेत्र का विचेष्टित है। इस क्षेत्र में सौभ्रात भाव नहीं होता है। यहाँ पर सभी स्वार्थ में तत्पर रहा करते हैं। स्वार्थ की निष्ठा ही जिनका एक मात्र हेतु होता है वे लोग परस्पर मे किसी को नहीं माना करते हैं। पुत्र गण पिता की बात नहीं सुना करते हैं और पिता पुत्रों का

कुछ भी ध्यान नहीं रखते हैं। शिष्य गुरु के वाक्य को नहीं मानते हैं और गुरु भी शिष्य के कर्म को कुछ नहीं समझते हैं। यहाँ पर जो भी प्रीति होती है वह अर्थ ( मतलब ) के अनुबन्धन वाली ही हुआ करती है वास्तविक रूप से कोई भी किसी का प्यारा या प्रेम करने वाला नहीं होता है। यह कह कर श्रीराम, लक्ष्मण तथा जानकी वहाँ गये थे। श्री रघुनन्दन ने अपने ही नाम म वहाँ पर शिव लिङ्ग की स्थापना की थी। इस श्रीराम तीर्थ मे मनुष्य स्नान करके तथा श्रीरामेश्वर प्रभु का दर्शन करके समस्त अपने कृत पापो से विमुक्त हो जाया करता है और वह अन्त मे विष्णु लोक में गमन किया करता है ॥४३-४८॥

---

## ७५—विष्णुमाहात्म्यवर्णन

महाकाल किमर्थं तु किंवाशिवपदस्मृतम् ।
कोटीवर किमर्थं तु पावकं तत्किमुच्यते ॥१
नरदीपःकिमर्थं तु द्वितीयावटमातरः ।
अभयेश्वर किमर्थं तु शंखोद्धारणमेवच ॥२
शूलेश्वरं किमथं तु किमोङ्कारस्य कथ्यते ।
धूतपापं किमर्थं तु किमङ्गारेश्वर तथा ॥३
पुरीचोज्जयिनीदिव्या सप्तकल्पाकथ स्मृता ।
कथयस्वमुनिश्रेष्ठतस्थानामानियानिच ॥४
शृणु व्यास यथा ख्याता पुरी दिव्या सुपुण्यदा ।
स्वर्णशृङ्गा तु प्रथमे द्वितीये तु कुशस्थली ॥५
तृतीयेऽवन्तिकाप्रोक्ता चतुर्थे त्वमरावती ।
विख्यातापञ्चमेकल्पे पुरीचूडामणीतिच ॥६
षष्ठेपद्मावतीज्ञे योज्जयिनीसप्तमेपुरी ।
पुनरन्तेतुकल्पस्य स्वर्णशृङ्गादिकास्मृता ॥७

महा महर्षि श्रीव्यासदेवजी ने कहा—यह महा काल किस लिये हुआ था ? अथवा यह शिव पद कैसे कहा गया है ? कोटीवर किस लिये है

और वह पावक क्यों कहा जाता है ? नारदीय किस लिये है तथा द्वितीया वट मातर क्यों हैं—प्रभयेश्वर किस लिये हैं और शङ्खोद्धारण का क्या क्या प्रयोजन है ? शूलेश्वर किस लिये है और ओङ्कार क्यों कहा जाता है ? धूत पाप का क्या अर्थ है तथा ओङ्कारेश्वर का क्या प्रयोजन है ? पहिले यह दिव्या उज्जयिनी सतकल्प कैसे कही गयी है ? हे मुनि श्रेष्ठ ! इसके जो भी नाम हैं उन सबको कहिए । श्रीसनत्कुमारजी ने कहा —हे व्यास देव ! अब आप श्रवण करिए जिस तरह से यह सुपुण्य की देने वाली दिव्या पुरी विख्यात हुई थी । प्रथम कल्प मे यह स्वर्ण शृङ्गा विख्यात थी—दूसरे कल्प मे यही कुशस्थली नाम वाली कही गयी थी । तीसरे कल्प में इसको अवन्तिका कहा गया है और चौथे कल्प में अमरावती नाम से यह प्रसिद्ध हुई थी । पाँचवें कल्प में यही पुरी चूडामणी—इस नाम से विख्यात हुई थी । छटवें कल्प मे इसको पद्मावती कहा गया और सातवें कल्प मे इसीको उज्जयिनी पुरी बोला जाता है, फिर कल्प के अन्त में यह स्वर्णशृङ्गा आदि नाम वाली कही गयी है ॥१-७॥

एतानि सप्तानमानि प्रातरुत्थाय यः पठेत् ।
सप्तजन्मकृतात्पापान्मुच्यते नात्र संशयः ॥८
उज्जयिन्या पुराराजा बभूवकिलचान्धकः ।
तस्यपुत्रोमहावीर्यो नाम्नाकनकदानवा ॥९
युद्धार्थं समहावीर्य. शक्रं युद्धे समाह्वयत् ।
क्रोधादिन्द्रणसंग्रामेयुद्धमानोनिपातितः ॥१०
निहत्यदानवशक्रो भयादन्धासुरस्यतु ।
जगामशंकरान्वेशी कैलासंशंकरालयम् ॥११
दृष्ट्वाप्रणम्यदेवेशं चन्द्रार्द्ध कृतशेखरम् ।
भीतोविज्ञापयामास सहस्राकृतलोचनः ॥१२
अभयं देहि मेदेव! दानवादन्धकाद्भवे ।
शक्रस्येरथ वचः श्रुत्वा शरणागतवत्सलः ॥१३
ददावभृयमेवासौ माभंस्त्वमन्धकाद्धिवै ।
कृत्वारूपं महादेवो विश्वरूपं सुभैरवम् ॥१४

जो कोई मनुष्य प्रातः काल मे उठकर इन सात नामो को पढ़ता है वह सात जन्मो मे किये हुए पापो से मुक्त हो जाता है—इस मे कुछ भी सशय नही है । इस उज्जयिनी नगरी मे पहिले अन्धक नाम वाला राजा हुआ । उसका एक पुत्र था जो महान् वीर्य्य वाला था, उसका नाम कनक दानव था । उस महान् वीर्य वाले ने युद्ध के लिये युद्ध भूमि में इन्द्र देव का आह्वान किया । इन्द्र को वहुत ही अधिक क्रोध आया और उसने सग्राम भूमि मे युद्ध करते हुए उस को निपातित कर दिया अर्थात् मार डाला । इन्द्र ने युद्ध मे दानव को मार तो दिया किन्तु फिर वह अन्धासुर के भय से भगवान् शङ्कर के अन्वेषण करने वाला होकर शङ्कर के निवास स्थान कलास पर्वत पर चला गया । वहाँ १८ अर्धचन्द्र को मस्तक पर धारण करने वाले देवेश्वर का दर्शन करके उनको इस ने प्रणाम किया । सहस्र नेत्रो से समाकुल इन्द्र ने अत्यन्त भय भीत होकर प्रार्थना की थी—हे देव ! अन्धक दानव से मुझे अब आप अभय का दान दीजिए ! शरण मे समागत प्राणी पर दया स्नेह करने वाले प्रभु शकर ने इन्द्र देव के इस वचन को सुनकर उसे पूर्ण विश्वास दिया कि तुम अन्धक से भय मत करो । महादेव ने सुभैरव विश्वरूप धारण कर लिया था ॥८-१४॥

सर्पैर्लिहद्भिरत्युग्रैस्तीक्ष्णदंष्ट्रैर्विषोल्बणैः ।
पातालोदररूपैश्च भैरवारावनादिभिः ॥१५
भुजैरनेकसाहस्रैर्बहुशस्त्रधृतैस्तथा ।
सिंहचर्मपरीधानं व्याघ्रत्वगुत्तरीयकम् ॥१६
गजाजिनकृताटोपं चन्द्राग्निरविलोचनम् ।
महामहीध्रतुल्याभिजङ्घाभिर्भूषितं सदा ॥१७
क्षोभयञ्चालयन्सर्वान् पातालस्यतलावधि ।
ईदृग्रूपं विधायेशो दनुदैत्यभयावहम् ॥१८
अवातरन्महीभीमः पादेनैकेनशङ्करः ।
तत्र वह्निह्रदोजातः सर्वदेवतवन्दितः ॥१९
ख्यातं शिवपदं वह्नियत्पदाक्रान्तवान्विभुः ।
यस्मादग्रपुराकोटिःपादांगुष्ठस्यधारिता ॥२०

कोटितीर्थं मतःख्यातं सर्वपापप्रणाशनम् ।
अगस्त्येनतथाकोटिस्तीर्थानामत्रधारिता ॥२१

बहुत तीक्ष्ण दाढ़ों वाले—विष से महान् उल्बण अत्यन्त उग्र—लप लपाती हुई जीभों वाले सर्पों से भूषित थे जो कि पातालोदर के सदृश थे और महान् भैरव ध्वनियों से निनाद करने वाले थे। बहुत से प्रकार के शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाले बहुत से सहस्र भुजाओं से युक्त उनका स्वरूप था। सिंह के चर्म का परीधान करने वाला तथा व्याघ्र चर्म के अन्तरीय धारण करने वाला उनका स्वरूप था। गजचर्म से आटोप किए हुए तथा चन्द्र और अग्नि के समान नेत्रों वाले थे। महान् पर्वतों के तुल्य जांघों से सदा भूषित थे। पाताल के तल के मध्य में सब को क्षोभ करने वाले थे। ईश ने उस समय में ऐसा दनुओं और दैत्यों को भय देने वाला अपना स्वरूप बना लिया। तब भगवान् शंकर ने भीम स्वरूप से युक्त होते हुए एक पाद से इस मही में अवतरण किया। वहीं पर समस्त देवों के द्वारा वन्दित एक ह्रद उत्पन्न हो गया, वही शिवपद—इस नाम से विख्यात हो गया क्योंकि विभु ने अपने पाद से उसे आक्रान्त कर दिया। क्यों कि यहाँ पर पहिले पादांगुष्ट की धारिता कोटि थी अतएव सम्पूर्ण पापों का प्रणाश करने वाला यह कोटितीर्थ—इस शुभ नाम से ही विख्यात हो गया। यहाँ पर महामुनि अगस्त्यजी ने एक कोटि तीर्थों की धारित की थी, इसलिये भी लोक में ऐसा परम शुभ नाम सदा ही कहा गया है ॥१५-२१॥

अतोपीदृक् शुभं लोके कोटितीर्थं सदा स्मृतम् ।
दृष्ट्वा तु त्रिदशाः सर्वे स्नाता मे हितकाम्यया ॥२२
महाकालं कृतं रूपं महाकालस्ततःस्मृतः ।
अन्धासुरोपिदनुजः पुत्रं श्रुत्वाहतं युधि ॥२३
क्रोधेनमहताविष्टोरणतूर्याण्यवादयत् ।
ससैन्योनिर्गतः प्राप्तोयत्रतेत्रिदशाःस्थिताः ॥२४
महत्यासेनयासार्द्धं रथवारणयुक्तया ।
तदं वदानवान्वीक्ष्य महाहवकृतोद्यमान् ॥२५

वेपन्तस्तेसुसन्नश्चाः शम्भुं शरणमाययुः ।
माभैष्टमहाकालो देवानूचेत्रिलोचनः ॥२६
गृहीत्वाशूलमातिष्ठद्दंष्ट्रादष्टाधरोरुषा ।
कोपयुक्ते विरूपाक्षे ज्वलाभिः पूरितन्नभः ॥२७
अन्धकेनाथ रुष्टेन शर कोटिस्तु दुःसहा ।
मुक्ता जगाम देवानां नाशाय शलभाकृतिः ॥२८

समस्त देव गणों ने इस तरह से देखा तो उन सभी ने अपने हित की कामना से वहाँ पर स्नान किया था ॥२२॥ महान् काल के तुल्य अपना स्वरूप किया इसी वास्ते इसे महाकाल इस नाम से कहा गया है। अन्धासुर ने भी अपने पुत्र को युद्ध में मृत हुआ सुनकर महान् क्रोध से समाविष्ट होते हुए उसने संग्राम के तूर्य वाद्य बजवा दिये थे। वह अपने समस्त सेना के ही साथ में निकल पड़ा और वहीं पर सम्प्राप्त हो गया जहाँ पर देवगण स्थित थे। उन देवों ने बड़ी भारी विशाल और रण के आवरणों से युक्त सेना के साथ उसी समय में महान् संग्राम को करने के लिये उद्यम करने वाले सब दानवों को देखा। वे तुसम्रद्ध थे किन्तु कांप उठे थे और भगवान् शम्भु के शरण में हो गये थे। उस समय में त्रिलोचन महाकाल भगवान् ने उन देवों से कहा—डरो मत। तब उन्होंने अपने त्रिशूल को उठाया और क्रोध से अपनी दाढ़ों से अधरों को काटते हुए स्थित हो गये थे। भगवान् विरूपाक्ष के कोप से युक्त होने पर आकाश ज्वालाओं से पूरित हो गया। परम रुष्ट हुए अन्धक असुर ने अत्यन्त दुस्सह एक करोड़ शरों को छोड़ा था जो कि शलभों के समान आकृति वाले समस्त देवों के विनाश करने के लिये छोड़े गये थे ॥२३-२८॥

विस्फुलिंगार्चिषं वह्निं मन्यमानः पिनाकधृक् ।
शतशस्तक्लीचक्रेतञ्चबाणरताडयत् ॥२९
अन्धकोऽपि हि युद्धस्थो शिथिलः शिथिलायुधः ।
निरुद्धश्शम्भुना बाणैरलिभिः पंकजं यथा ॥३०
तस्य सैन्यञ्च बहुधा स्वगणैर्युद्धयोधिभिः ।
योधृवरैर्हतं दिव्यैः स्थाणुसान्निध्यमाश्रितैः ॥३१

ततोऽन्धकेन सैन्यं स्वं भिन्नं दृष्ट्वा तथा सुरैः ।
आत्मानञ्च महेशेन विद्धं च बाणकोटिभिः ।।३२
विकलीकृतदेहोऽसौ भयमाश्रित्यवेगतः ।
चकारतामसीमाया मायाशतविशारदः ।।३३
तयान्तर्हितदेहोऽसौ जगामदिमत्तराम् ।
शम्भोर्भीतिहरं बिभ्रद्वभ्रामभुविभिन्नहृत् ।।३४
येनाध्वनागतोदैत्यस्तेनदेवोजगामह ।
यदन्नदृश्यतेनकासौ गतोदुष्टःपुनः पुनः ।।३५

पिनाक नामक धनुष के धारण करने वाले भगवान् ने विस्फुलिंग वाली अचियो (ज्वालाओं से युक्त अग्नि)को छोड दिया और उन्होंने उनके सैंकडो ही खण्ड २ कर दिये थे तथा अपने बाणो से उसका ताडन किया था ।।२९।। वह अन्धक असुर भी युद्ध स्थल मे स्थित होता हुआ बहुत ही शिथिल आयुधो वाला होकर स्वयं भी परम शिथिल हो गया । जिस प्रकार से भौंरे कमल को एक दम ढक लिया करते हैं उसी तरह से यह अन्धकासुर भी शम्भु के द्वारा बाणो से एक दम निरुद्ध कर दिया गया था ।।३०।। उसकी प्रायः सभी सेना युद्ध भूमि मे सग्राम करने वाले शिव के गणो के द्वारा जो कि परम दिव्य श्रेष्ठ योधा थे और स्थाणु के सन्निधि का समाश्रय ग्रहण करने वाले थे, निरुद्ध कर दी गयी थी ।।३१।। इसके पश्चात् अन्धक ने अपनी सेना को देवो के द्वारा भिन्न हुई देखकर और अपने आपको महेश के द्वारा करोडो बाणो से विद्ध देखकर विकलीकृत देह वाला यह भय का आश्रय लेने वाला हो गया और फिर सैंकडो मायाओ के विशारद इसने अपनी एक तामसी माया की । उस माया से अन्तर्हित देह वाला यह उत्तर दिशा की ओर चला गया जो कि भगवान् शम्भु की भीति ( भय ) का हरण करने वाली थी । भिन्न हृदय वाला यह भू मण्डल मे भ्रमण कर रहा था । जिस मार्ग से यह दैत्य गया उसी से देव भी गये थे किन्तु यह कही पर भी गया हुआ दुष्ट दिखलाई नही देता और बोलता हुआ बारम्बार चला जारहा था ।।३२-३५।।

उवाचचान्धकदशब्दं तथोवाचमहेश्वरः ।
तत्रतीर्थं मथोत्पन्नं वागन्धकमितिश्रुतम् ॥३६
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा यो वै दद्यात्सशर्करम् ।
नवम्यां मार्गशीर्षस्त शुक्लायां श्रद्धयान्वितः ॥३७
अक्षयंतद्भ्रवेत्सर्वं दाता शिवपुरं व्रजेत् ।
पितृनेद्दिश्ययत्किञ्चिद्दीयतेभक्तितःशिवे ॥३८
तृप्तास्तिष्ठन्ति ते तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ।
तमसा छादितादेवाः सम्बभूवुः समाकुलाः । ३९
सम्भ्रान्तमनसस्सर्वे नकिञ्चिदपिमेनिरे ।
एतस्मिन्नन्तरेव्यास नरादित्यः स्व तेजसा ॥४०
उत्तस्थौ नररूपेण कुर्वन्विर्तिमिरा दिशः ।
नष्टे तमसि दैत्येऽपि प्रकाशे प्रकटे सति ॥४१
देवामुदमवापुस्ते दृष्ट्वाऽनन्तं तुलोचनैः ।
स्तुवन्तोविविधैः स्तोत्रैर्नररूपदिवाकरम् ॥४२

वहाँ पर अन्धक ने शब्द बोला तथा महेश्वर प्रभु ने भी बोला। वहाँ पर वागन्धक तीर्थ उत्पन्न हो गया—ऐसा सुना गया है। वहाँ पर स्नान करके परम शुचि होकर जो कोई शर्करा के सहित दान किया करता है और मार्गशीर्ष मास को शुक्ल पक्ष की नवमी तिथि में श्रद्धा युक्त होकर दान किया करता है तो वह अक्षय हो जाता है। सबका दान करने वाला शिवपुर को गमन किया करता है। हे शिवे ! पितृगण का उद्देश्य करके भक्ति भाव से जो कुछ भी दिया जाता है तो वे पितृगण परम सन्तृप्त होकर जब तक भूत सम्प्लव होता है तब तक स्थित रहा करते हैं। उस समय में दैत्य की माया से विहिततम से ऐसा अन्धकार हो गया कि सभी देवगण समाच्छादित होते हुए परम समाकुल हो गये थे ॥३६-३९॥ सभी सम्भ्रान्त मन वाले होकर कुछ भी नहीं मान रहे थे। इसी बीच मे हे व्यास ! नरादित्य अपने तेज से नररूप से उत्थित हो गये और उन्होने सभी दिशाओं को बिना अन्धकार वाली कर दिया। अन्धकार के नष्ट हो जाने पर वह दैत्य भी प्रकाश में प्रकट होगया। उन

दैत्य के प्रकट हो जाने पर देवों ने अपने लोचनों से अनन्त को देखकर परम प्रसन्नता प्राप्त की । देवों ने अनेक स्तोत्रों के द्वारा उन नर रूप धारी दिवाकर भगवान् का स्तवन किया था ॥४०-४२॥

उत्तस्थौनररूपेण दीप्तोयस्माद्दिवाकरः ।
तेनास्यनामनेचक्रुर्नरदीपइतीश्वराः ॥४३
यः पश्यतिनरोभक्त्या नरदीपं दिवाकरम् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्योयद्यपि ब्रह्महाभवेत् ॥४४
षष्ठ्यामर्कदिनेविप्र सप्तम्यामुपवासकृत् ।
दिनक्षयेऽथसङ्क्रान्तौ ग्रहणेविषुवत्यथ ॥४५
कुण्डेस्नात्वाशुचिर्भूत्वा जपान्नियतमानसः ।
नरदीपनरः पश्येत्स्तोत्रवादित्रमङ्गलैः ॥४६
गन्धधूपैस्तथादीपैर्नैवेद्यैर्विविधैस्तथा ।
गीत वाद्य पुरा कृत्वा प्रणम्याष्टाङ्गमेव च ॥४७
प्रातर्मध्येपराह्णे वा कृत्वार्कस्यप्रदक्षिणाम् ।
समुक्तस्सर्वपापैस्तु सप्तजन्मकृतैरपि ॥ ८
सूर्यकोटिप्रतीकाशैर्विमानैः सार्वकामिकैः ।
सूर्यलोकं प्रयात्याशु यत्सुरै रपि दुर्लभम् ॥४६

क्योंकि वह दिवाकर प्रभु नर के रूप को धारण करके उत्थित हुए और परम प्रदीप्त हो गये इसी कारण से उन ईश्वरों ने नरदीप यह नाम उनका रखा । जो कोई मनुष्य भक्ति से उन नर रूप दिवाकर का दर्शन किया करता है चाहे भले ही वह ब्रह्म हत्यारा ही क्यों न हो तो भी समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है । हे विप्र ! रविवार से युक्त षष्ठी में तथा सप्तमी में उपवास करने वाला—दिन के क्षय में—सङ्क्रान्ति में—ग्रहण में—विषुवद्दिन में कुण्ड में स्नान करके शुचि होकर नियत मन वाला होता हुआ जाप करे और नरदीप का अवलोकन करे तथा स्तोत्र, वादित्र मङ्गल-धूप-दीप एवं विविध नैवेद्यों से गीत वाद्य पहिले करके आठों अङ्गों से प्रणाम करे । प्रातः काल,मध्याह्न और अपराह्न काल में सूर्य की प्रदक्षिणा करे तो वह मनुष्य सब पापों से जो कि सात जन्मों में भी

किये गये हैं मुक्त हो जाया करता है। अन्त मे इस नर लीला का संवरण करने के पश्चात् वह करोडो सूर्यो के सदृश—सब कामनाओं की पूर्ति वाले विमानो के द्वारा सूर्य लोक मे प्रयाण किया करता है जो कि बड़े २ देवों को भी परम दुर्लभ होता है ॥४३-४६॥

शक्रात्प्राप्यपुरायस्माद्भानुरत्रप्रतिष्ठितः ।
नरेणैव प्रसादेन नरदीपस्ततो ह्ययम् ॥५०
तदैवास्यपुराव्यास ! यात्रा शक्रेणनिर्मिता ।
आगमिष्याम्यहं पार्थ सार्द्धं देवैः समाहितः ॥५१
ज्येष्ठेऽतीतेद्वितीयायां नरदीपेतुसर्वदा ।
तत्राहमागतोज्ञेयो लोकैर्देवस्यवर्षणात् ॥५२
ततोऽनन्तरमागम्य देवा ये त्रिदशालये ।
दृष्ट्वा देवं तथारूढं नरदीपंसुदीपनम् ॥५३
कृत्वायात्रान्चतेयान्तिदेव यात्रात्स्ययेततः ।
यः पश्येन्मानवोभक्त्यानरदीपरथस्थितम् ॥५४
सर्वपापविनिर्मुक्तः सूर्यलोके महीयते ।
रथयात्रामथो वक्ष्ये नरदीपस्य या पुनः ॥५५
ता कृत्वा चैव तत्पुण्यं मुनीभि· परिकीर्तितम् ।
ज्येष्ठेऽतीते द्वितीयायां रथस्थो हि दिवाकरः ॥५६

क्योंकि पहिले परम पुरातन समय मे इन्द्र देव से प्राप्त करके भानु को यहाँ पर प्रतिष्ठित किया और यह प्रतिष्ठापन नर के द्वारा ही प्रसाद से हुआ अतएव तभी से यह नरदीप नाम वाला हो गया है। हे व्यास ! उसी समय मे पहिले इन्द्र ने यह यात्रा निर्मित की और कहा—हे पार्थ ! मैं परम समाहित होकर देवों के साथ यहाँ पर आऊगा। अतीत ज्येष्ठ में द्वितीया तिथि में सर्वदा इस नरदीप मे यहाँ पर देव के दर्शन होने से लोगों को मुझे आया हुआ ही समझना चाहिए। इसके पश्चात् आकर जो देव त्रिदशालय में यहाँ पर आरूढ़ सुदीपन नरदीप देव का दर्शन करके जो यात्रा किया करते हैं वे फिर देव यात्रालय में गमन किया करते हैं।

जो मनुष्य भक्तिभाव से रथ मे स्थित नरदीप का दर्शन करता है वह समस्त पापो से विमुक्त होकर सूर्य लोक मे प्रतिष्ठित एवं सम्मानित हुआ करता है। जो वहाँ की रथ यात्रा होती है उसे मैं फिर कहूँगा। उसको सम्पन्न करके जो कुछ उसका पुण्य—फल होता है उसे मुनियो ने कीर्तित किया है। अतीत ज्येष्ठ मे द्वितीया तिथि के दिन मे भगवान् दिवाकर रथ मे संस्थित हुआ करते हैं ॥५०-५६॥

कुशस्थल्या द्विजश्रेष्ठैर्वाहुक्षेपै प्रणीयते ।
उत्तरा दिशमायान्तं य. पश्यति दिवस्पतिम् ॥५७
अग्निष्टोमस्ययज्ञस्य लभतेसोऽखिल फलम् ।
निवृत्त केदाराकोंघोरथं पश्यति मानवः ॥५८
मुण्डीरस्वामिनोयात्रा कृतातेननसशयः ।
रथमाकर्षतेयस्तु रज्ज्वाकर्षणवंमुने ! ॥५९
कुलमुद्धरते सोऽपि पूर्वान्पितृपितामहान् ।
दक्षिणाभिमुख यान्त नरदीप द्विजोत्तम ! ॥६०
ये सयता प्रपश्यन्ति ते यान्ति च त्रिविष्टपम् ।
सूत्रेण वेष्टने क्षेत्रं रथं देवमयापिवा ॥६१
सर्वकामानवाप्नोतिकृतपुण्यस्सजायते ।
प्रदक्षिणातु पर्यस्य भक्त्याकुर्वन्ति ये नराः ॥६२
प्रदक्षिणीकृतातैस्तुसप्त द्वीप वसुन्धरा ।
प्रातरुत्थाययोभक्त्या मौनीयातिदिवाकरम् ॥६३

कुशस्थली मे श्रेष्ठ द्विजो के द्वारा बाहुक्षेपो से प्रणयन किया जाता है। जो कोई उत्तर दिशा में आये हुए दिवस्पति का दर्शन करता है वह अग्निष्टोम यज्ञ का पूरा फल प्राप्त करता है। जो मानव केदारार्क से निवृत्त रथ को देखता है उसने मुण्डीर स्वामी की यात्रा पूर्ण करली है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। हे मुने ! जो मनुष्य रज्जु के आकर्षण के द्वारा रथ का आकर्षण किया करता है वह भी अपने कुल का उद्धार कर दिया करता है जो कि पूर्वज पिता-पितामह आदिक होते हैं उन सब का उद्धार कर देता है। हे द्विजोत्तम ! जो लोग परम सयत होते हुए दक्षिण

दिशा की ओर अभिमुख होकर गमन करते हुए नर दीप का दर्शन किया करते हैं वे सीधे ही त्रिविष्टप को चले जाया करते हैं। जो सूत्र के द्वारा क्षेत्र को—रथ को अथवा देव को वेष्टित किया करते हैं वे भी परम पुण्य के करने वाले हैं और अपनी सभी कामनाओं की प्राप्ति कर लिया करते हैं। जो मनुष्य भगवान् दिवाकर की भक्ति से प्रदक्षिणा करते हैं उनने तो मानो सातों द्वीपों वाली सम्पूर्ण वसुन्धरा की प्रदक्षिणा कर ली है अर्थात् सम्पूर्ण वसुन्धरा की परिक्रमा करने का फल उन्हें प्राप्त हो जाया करता है। प्रातःकाल में उठकर भक्ति भाव से जो कोई मौन व्रत धारण करने वाला भगवान् दिवाकर के समीप में आया करता है उसकी अर्चा और पुण्य फल बतलाते हैं ॥५७-६३॥

दृष्ट्वातुपूर्वद्वारेण नमस्कुर्याद्द्विजोत्तम ।
प्रविश्य दक्षिणेनैव रथचक्रं प्रपूजयेत् ॥६४

तेनद्वारेण निष्क्रम्य प्रणिपत्यव्रजेत्ततः ।
पश्चिमंद्वारमाश्रित्य रथस्थंसूर्यमर्चयेत् ॥६५

चामरे च वितानञ्च घण्टां वापि निवेदयेत् ।
पूर्वद्वारे तु गोर्देया तथाऽश्वश्चैव दक्षिणे ॥६६

पश्चिमेचगजः प्रोक्त उत्तरेरथ एवच ।
कुर्यादेवंतु योयात्रां रथदीपस्य मानवः ॥६७

गो सूर्यशिवशक्राणां स्वालोक्य लभते सुखम् ।
प्रदक्षिणा महामेरोः कृता तेन भवेन्मुने ! ॥६८

दद्याद्गवां सहस्रं यो व्यतीपातशतेनच ।
अश्वानाञ्च सहस्रं णयात्रायांतत्फलंलभेत् ॥६९

नरदीपेरथारूढे वपनं कारयेत्तुयः ।
श्रियः न विच्युतिस्तस्य सूर्यलोके महीयते ॥७०

हे द्विजोत्तम ! पूर्व दिशा के द्वार को देखकर नमस्कार करे—दक्षिण द्वार से प्रवेश करके रथ चक्र का पूजन करना चाहिए ॥६४॥ उस द्वार से निकलकर प्रणिपात करके वहाँ से गमन करे। पश्चिम दिशा के द्वार

का आश्रय ग्रहण करके रथ में स्थित सूर्य का पूजन करना चाहिये। वहाँ पर दो चमर, वितान और घण्टा निवेदित करे। पूर्व द्वार में गौ देनी चाहिए। दक्षिण द्वार पर अश्व समर्पित करे। पश्चिम द्वार पर हाथी देवे और उत्तर दिशा के द्वार पर रथ समर्पित करे। इस तरह से जो मानव रथ दीप की यात्रा करे वह मनुष्य गौ—सूर्य—शिव और इन्द्र के स्वालोक्य के सुख का लाभ प्राप्त किया करता है। हे मुने ! यह समझ लो कि उस मनुष्य ने महामेरु की प्रदक्षिणा करली है अर्थात् उसे मेरु की परिक्रमा करने का पुण्य प्राप्त होता है। जो भी व्यतीपातो मे एक सहस्र गौओं का दान करता और सहस्र अश्वों का दान करता है यात्रा में उसका फल उसे प्राप्त हो जाया करता है। नर दीप के रथ पर समारूढ़ होने पर जो शयन कराया करता है उस पुरुष की श्री से कभी भी विच्युति नही हुआ करती है और अन्त मे वह सूर्यलोक मे महत्व की प्राप्ति किया करता है ॥६५-७०॥

सूर्यस्य पुरतो वाप्यां मासं नित्यं विगाह्य च ।
यस्तमालोकते मर्त्यो दुस्स्वप्नं तस्य नश्यति ॥७१

भवत्यायोनुदिनं व्याप्तं नरदीपं प्रपश्यति ।
उत्तम स्थानमासाद्य पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥७२
प्रक्रीड्य बन्धुभिः सार्द्धं मृतः सूर्यपुरम्व्रजेत् ।
प्रणष्टे तिमिरेविप्र जातेसर्वत्र सुप्रभे ॥७३

हतेऽन्धके महेशेन शूलेनत्रिशिखेनवै ।
प्रहृष्टाश्च सुरास्सर्वे ब्रह्मेन्द्रप्रमुखास्तदा ॥७४

शङ्खं दध्मौ तदा विष्णुः सुराणां हितकाम्यया ।
तत्र तीर्थमभोत्पन्नं शङ्खोद्धारणसञ्ज्ञकम् ॥७५
तत्र सन्निहितोविष्णुर्लिङ्गञ्चैवचतुर्मुखम् ।
अनाद्यञ्चेत्रविप्रेन्द्रलिङ्गञ्चच समीपतः ॥७६
देवस्य दक्षिणे भागे शूलेनालक्षितः स्थितः ।
चतुर्दश्यां तदाऽष्टम्यां ये पश्यन्ति जितेन्द्रियाः ॥७७

सूर्यदेव की सामने में स्थित वापी बावड़ी में जो अवगाहन करके मनुष्य उसका दर्शन करता है उसके दुःस्वप्न का कुफल नष्ट हो जाता है ॥७१॥ हे व्यास देव ! भक्ति से जो अनुदिन नर दीप के दर्शन किया करता है यह अत्युत्तम स्थान पाकर पुत्र-पौत्रादि समन्वित होता है और अपने बन्धुओं के साथ आनन्द सहित क्रीड़ा करके मृत्यु प्राप्त करने पर वह सूर्य के पुर में गमन करता है। हे विप्र ! उस तिमिर के नष्ट हो जाने पर सर्वत्र सुन्दर प्रभा के उत्पन्न होने पर तीन शिखा वाले त्रिशूल से भगवान महेश्वर के द्वारा अन्धक दैत्य के निहत हो जाने पर ब्रह्मा, इन्द्र आदि प्रधान सभी सुरगण बहुत ही प्रसन्न हो गये थे। उसी समय में सुरगणों की दिल की कामना से भगवान विष्णु ने अपना शंख बजाया था। वहाँ पर शंखोद्धारण नाम वाला तीर्थ समुत्पन्न हो गया था ॥७२-७५॥ हे विप्रेन्द्र ! वहाँ पर विष्णु सन्निहित रहते हैं। लिंग के समीप में अनाद्य चतुर्मुख लिंग सन्निहित हैं। देव के दक्षिण भाग में शूल से मालक्षित स्थित रहते हैं। जो इन्द्रियों को जीत लेने वाले लोग चतुर्दशी तथा अष्टमी तिथि में उनका दर्शन किया करते हैं उनका महान् पुण्य होता है ॥७६-७७॥

ते क्षीणाशेषपापौघाः प्राप्स्यन्ति परमां गतिम् ।
योगिनीनां बलि यस्तु यथावत्सम्प्रदास्यति ॥७८
भूतप्रेतपिशाचाद्यैर्नासौकेनापिबाध्यते ।
द्वादशी समुपोष्यैव स्नात्वादेवं जनार्दनम् ॥७९
यः पश्येच्छङ्खिनं देवं सोऽच्युतं स्थानमाप्नुयात् । ८०
यः स्थूलसूक्ष्मः प्रकटप्रकाशो यस्सर्वभूतो न च सर्वभूतः ।
विश्वं यतश्चैव हि विश्वहेतुर्नमोऽस्तु तस्मै पुरुषोत्तमाय ॥८१

उन मनुष्यों के अशेष पापों के समूह क्षीण हो जाते हैं और वे परम श्रेष्ठ गति को प्राप्त हुआ करते हैं। जो वहाँ पर योगिनयों की बलि यथावत् सम्प्रदान करता है वह भूत प्रेत और पिशाच आदि के द्वारा कभी भी बाधित नहीं किया जाता है। द्वादशी के दिन भली भाँति उपवास करके स्नान करने के पश्चात् जो देव जनार्दन शंखधारी देव का दर्शन किया

करता है वह अच्युत स्थान को प्राप्ति करता है ॥७८-८०॥ जो स्थूल और सूक्ष्म स्वरूप वाला है—प्रकटित प्रकाश से युक्त है—जो सर्वभूत है और सर्वभूत नहीं है—जिससे यह सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न होता है और जो इस विश्व का हेतु है उस परम पुरुषोत्तम के लिए नमस्कार है ॥८१॥



## ७६—गयातीर्थमाहात्म्यवर्णन

शृणु व्यास ! प्रवक्ष्यामि तीर्थमेकमतः परम् ॥१
तीर्थानामुत्तमं तीर्थं गयानामेतिनामतः ।
यत्रस्नात्वानरो नित्यं मुच्यतेचऋणत्रयात् ॥२
देवान् पितॄन्समभ्यर्च्य विष्णुलोकं स गच्छति ।
कीकटेपुगयापुण्या नदीपुण्या पुना पुनः ( पुनः पुना ) ॥३
तीर्थानामुत्तमतीर्थं पुण्योराजगिरिस्तथा ।
( च्यवनस्याश्रमः पुण्यः पुण्योराजगिरिस्तथा ) ॥४
सकथं विदितोदेशे महाकालवने शुभे ।
एतद्वेदितुमिच्छामि विस्तरेण तपोधन ! ।
शृणु व्यास ! कथाम्पुण्यां पवित्रां पापहारिणीम् ॥५
यस्याः श्रवणमात्रेण पितरोयान्तिसद्गतिम् ।
पुराकृतयुगे पुण्ये युगादिदेवनामतः ॥६
राजासीत्सतुधर्मात्मापुण्यश्रवणकीर्तनः ।
तस्यपालयतः सम्यक्प्रजाः पुत्रानिवौरसान् ॥७

भगवान् सनत्कुमारजी ने कहा था—हे व्यास ! अब मैं एक इससे भी परमोत्तम आगे तीर्थ के विषय में बतलाता हूँ। आप उसका श्रवण कीजिएगा ॥१॥ समस्त तीर्थों में परम उत्तम नाम से गया कहे जाने वाला एक श्रेष्ठ तीर्थ है। जिस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य नित्य ही तीनों ऋणों से छुटकारा पा जाया करता है। देवों को और अपने पितृगणों को वहाँ पर भली भाँति अभ्यर्चन करके वह मनुष्य सीधा विष्णु लोक को चला जाता है ॥२॥ श्री व्यासदेव ने कहा था—व्यासजी बोले—कीकटों

मे गया परम श्रेष्ठ पुण्यमयी पुनः पुनः नदी है। तीर्थो मे उत्तम तीर्थ तथा पुण्यमय राजगिरि है। च्यवन का आश्रम पुण्यमय है तथा राजगिरि पुण्यमय है। परम शुभ महाकाल वन मे और देश मे वह कैसे विदित हुआ है—हे तपोधन ! मैं यह जानना चाहता हूँ। आप विस्तार से कहिए। श्री सनत्कुमारजी ने कहा—हे व्यास ! अब आप पापो का हरण करने वाली इस परम पुण्यमयी पवित्र कथा का श्रवण कीजिए जिसके श्रवण करने मात्र से ही पितृगण सद्गति को प्राप्त हो जाया करते हैं। पुरातन समय मे परम पुण्यमय कृतयुग मे एक युगादि देव नाम का राजा हुआ था। वह बहुत ही धर्मात्मा और पुण्य श्रवण तथा कीर्त्तन वाला था। उसकी प्रजा ऐसी थी जिनका वह अपने औरस पुत्र पौत्रो के समान ही पालन किया करता था ॥३-७॥

बभूवुः सर्व सम्पन्ना वर्द्धमानाः समन्ततः।
धर्मश्चतुष्पदोनित्यं यस्मिन्राजिप्रशासति ॥८
कालेवर्षी च पर्जन्यो ऋतवः स्वाङ्गचारिणः।
बहु सस्यफला पृथ्वी गावश्च बहुदुग्धदाः ॥९
वेदवादरताविप्राः क्षत्रियाबाहुशालिनः।
वैश्याधनपरा नित्यं शूद्राः शुश्रूषणेरताः ॥१०
वर्णाश्रमरताः सर्वे सर्वधर्मोपदेशकाः।
श्रुतिस्मृतिपरोधर्मोहृष्टपुष्टजनाकरः ॥११
नाधिव्याध्यभिसम्भूता लक्ष्यन्ते केऽपि मानवाः।
दुःशीला दुर्भगा नार्यो विधवा नो तथैव च ॥१२
बहुपुत्राल्पपुत्राश्च मृतपुत्रानवन्ध्यकाः।
रूपशीलगुणोपेताः पतिव्रतपरायणाः ॥१३
सुमार्गकरसंकीर्णा दस्युदोषविवर्जितः।
हूयताम्भुज्यतांदास्वदीयताञ्च गृहे गृहे ॥१४

सभी प्रजाजन सर्व सम्पन्न और सभी प्रकार से वर्द्धमान हुए थे। उस राजा के प्रशासन काल में जिस समय मे नित्य ही धर्म चार पदो वाला अर्थात् सर्वाङ्ग पूर्ण था। मेघ समय पर वर्षा करने वाला था और

सभी ऋतुऐं अपने २ गुणों के समाचरण करने वाली थीं। भूमि बहुत शस्यों के फलने वाली थी और गौऐं बहुत अधिक दुग्ध देने वाली थी। विप्रगण सब वेदों के वाद करने में रति रखने वाले थे और क्षत्रिय लोग बाहु धन से सम्पन्न थे। वैश्य धन परायण अर्थात् बहुत ही सम्पत्तिशाली थे तथा शूद्रगण सबकी शुश्रूषा करने मे रत रहा करते थे। सभी लोग अपने २ वर्णों और आश्रमो मे निरत रहने वाले थे। सभी धर्मों के उपदेशक थे। उस समय मे श्रुति तथा स्मृति मे परायण ही धर्म था और हृष्ट पुष्ट जनो की खान था। वह ऐसा शासन एव धर्म का प्रभाव था कि उस समय मे कोई भी मनुष्य आधि (मानसिक व्यथा) और व्याधि (शारीरिक रोग) से अभिसम्भूत दिखलाई नही देते थे। नारियाँ भी बुरे स्वभाव वाली—बुरे भाग्य वाली तथा विधवाऐं नही होती थी। उस समय मे धार्मिक राजा के शासन का ऐसा प्रभाव था कि स्त्रिया बहुत पुत्रो वाली—अल्प पुत्रो वाली—मृत वत्सा और वन्ध्याऐं नही थी। सभी नारियाँ रूप लावण्य और गुणो से समन्वित थी तथा पातिव्रत धर्म मे परायण रहने वाली थी। समस्त पृथ्वी सुमार्ग कर सङ्कीर्ण थी तथा दस्यु (चोर डाकूओ) के दोष से रहित थी। सभी जगह घर घर मे हवन भोजन, दान निरन्तर हुआ करते थे ॥८-१४॥

जपदानतपोहोमस्तुतियज्ञक्रियापराः।
जना. सर्वत्र दृश्यन्ते सवधर्म परायणा. ॥१५

चतुष्पदन्तरोधर्मोह्यधर्मः पादविग्रहः।
एव राजा तवर्मात्मा युगादिदेवसञ्ज्ञित ॥१६

येनेयपालिता पृथ्वीवर्मण वद्धिता. प्रजाः।
अवन्त्याच पुराण्याम ! यज्ञकोटि समाचरत् ॥१७

तस्मिन्कालेऽतिविक्रान्तस्तुह ( ह ) ण्डानामदानवः।
तेन सर्व वत्र नीत चराचरमिद जगत् ॥१८

घोर तप्त्वा तपः पुण्य ब्रह्मलब्धवरः खलः।
नैवदेवानयज्ञाश्च वेदमार्गाविवर्जिताः ॥१६

देवतापूजनं नास्ति स्वधास्वाहानदृश्यते ।
उत्सन्नोधर्ममार्गोऽप्यशश्वतोवैदुरासदः ॥२०
नष्टप्रायाः सुरास्तेन कृताः सर्वोत्तमोत्तमाः ।
ब्रह्माणं शरणंजग्मुः पितृणासहसाधुभिः ॥२१

सर्वत्र सब मनुष्य जप—दान—तप—होम—स्तवन—यज्ञ और क्रियाओं मे परायण रहा करते थे । सब जगह मनुष्य धर्म मे तत्पर ही दिखलाई दिया करते थे । धर्म चारो पदो से युक्त सर्वाङ्ग सम्पूर्ण था और अधर्म केवल एक ही चरण से युक्त था । इस तरह से वह राजा युगादि देव नाम वाला धर्मात्मा था जिसके द्वारा यह पृथ्वी धर्म से पालित थी और प्रजा सब वर्धमान हो रही थी । हे व्यास ! अवन्ती पुरी मे पहिले एक करोड यज्ञो का समाचरण किया था । उस समय में अत्यन्त विक्रम वाला एक तुहुण्ड नाम वाला दानव था । उसने इस समस्त चराचर जगत् को अपने ही वश मे ले लिया था । इसने अत्यन्त परम पुण्यमय घोर तपस्या की थी और इस खल ने ब्रह्माजी से वरदान प्राप्त कर लिया था । कोई भी देवगण पूजा के योग्य नही है—न कोई यज्ञादि ही हैं—सब वेद के निर्दिष्ट मार्ग से रहित हो जाइये—देवो का पूजन भी कुछ नही है । स्वधा और स्वाहा कही पर भी दिखलाई ही नहीं दे रहे थे । धर्म का मार्ग उत्सन्न हो गया था जो शाश्वत तथा दुरासद था । उसने सभी सुर नष्ट प्रायः कर दिये थे जो कि सबसे उत्तमो मे भी उत्तम थे । वे सब सुर गण पितरो और साधुओ के सहित मिलकर ब्रह्माजी की शरण मे गये थे ॥१५-२१॥

किं कुर्मः क्व च गच्छामस्तुहु (ह) ण्डेन पराजिताः ।
इति श्रुत्वा वचस्तेषां ब्रह्मा लोकपितामहः ॥२२
समुत्थायततः सर्वविष्णुलोकं जगामह ।
तत्रगत्वासमाराध्य विष्णुदेवगणैः सह ॥२३
स्तुतिपुरुषसूक्तेनविष्णोरतुलतेजसः ।
प्रचक्रुस्तुसर्वएतेह्यात्मनोऽभ्युदयाय च ॥२४

तदा तेषामभिच्छन्ती वैष्णवी वा (वागुवाचा)शरीरिणी ।
श्रूयताम्भोः सुरश्रेष्ठा भवता श्रेय उत्तमम् ॥२५
यूययातक्षितोक्षिप्रं महाकालवनं प्रति ।
गुह्याद्गुह्यतरं पुण्य पवित्रं पापनाशनम् ॥२६
मोयत्रमायिनामाया प्रकाशयति भूतले ।
सर्वतीर्थं मयतीर्थं कोटितीर्थं वरप्रदम् ॥२७
यत्रक्षिप्रासरिच्छ्रेष्ठा सर्वकामफलप्रदा ।
दैत्यान्तकारिणीदिव्या महाकाली कुलेश्वरी ॥२८

समस्त सुरगणों ने ब्रह्माजी से प्रार्थना की थी कि हम लोग क्या करें और कहाँ पर चले जावें । इन सब को रुरुण्ड ने पराजित कर दिया है । ब्रह्माजी ने जो समस्त लोकों के पितामह हैं उनके इस वचन को सुनकर वे उठ खड़े हुए थे, और उन सब का साथ में लेकर विष्णु लोक का चले गये थे । वहाँ पहुच कर देवगणों के सहित भगवान् श्री विष्णु की समाराधना की थी । उन सबने अतुल तेज वाले विष्णु की स्तुति पुरुष सूक्त के द्वारा की थी । इन सभी ने अपने अभ्युदय के ही लिए यह संस्तवन किया था उसी समय में उन सब के कल्याण की इच्छा करने वाली बिना शरीर वाली वैष्णवी वाणी ने कहा था—"हे सुरश्रेष्ठो ! आप सब लोग श्रवण कीजिए जोकि आपका परम उत्तम श्रेय है । आप सभी लोग बहुत ही शीघ्र भूमण्डल में महाकाल वन में चले जाइये । यह परम गुप्त से भी गुप्त, पुण्यमय और पवित्र तथा समस्त पापों का नाश करने वाला क्षेत्र है । जहाँ पर ऐसा अद्भुत प्रभाव है कि भूतल में बड़े से बड़े मायावारियों की भी माया प्रकाश नहीं किया करती है । यह स्थल ऐसा तीर्थ है जो सम्पूर्ण तीर्थों से परिपूर्ण है और करोड़ो तीर्थों के वर का प्रदान करने वाला है । जहाँ पर समस्त सरिताओं में श्रेष्ठ क्षिप्रा नदी प्रवाहित होती हुई विराजमान है जो सभी मनोरथों को पूर्ण कर देने वाली है । वहाँ पर परम दिव्य कुलेश्वरी महाकाली विराजमान रहा करती है जो कि दैत्यों के अन्त कर देने वाली हैं ॥२२-२८॥

कोटिकोटिगणाकीर्णा मातृणांशक्तिवर्द्धनी ।
गयायत्रमहापुण्या फल्गुश्चैवमहानदी ॥२९
पुरुषोत्तमगिरिः श्रेष्ठो यत्रबुद्धगयास्मृता ।
तथैवचगयाख्याता त्रिषुलोकेषुविश्रुता ॥३०
विष्णोः षोडशपदीतीर्थं गदाधरविनिर्मितम् ।
सर्वपापहरापुण्या यत्र प्राचीसरस्वती । ३१
महासुरनदीप्रोक्ता पञ्चतिष्ठन्ति पुण्यदाः ।
न्यग्रोधश्चाक्षयोनित्यः पुराप्रोक्तोमहर्षिणा ॥३२
तत्रैव साशिलाप्रोक्ता प्रेतमोक्षकरीशुभा ।
तत्रैववसतेसर्वा देवताः पितृकल्पजा ॥३३
सर्वाक्षरमयोङ्कारः सर्वदेवमयोहरिः ।
सर्वतीर्थमयादेवा गयातीर्थमनुत्तमम् ॥३४
शीघ्रंगच्छततत्रैव परांसिद्धिमवाप्स्यथ ।
यत्रप्रविष्टमात्रेण पितरोनिरयस्थिताः ॥३५
ते सर्वे स्वर्गमायान्ति ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥३६

यह महाकाली देवी करोड़ों ही गणों से समाकीर्ण रहा करती हैं। और मातृगण को शक्ति के वर्द्धन करने वाली हैं। यह ऐसा स्थल है जहाँ पर महापुण्यमयी गया विद्यमान है और महानदी फल्गु बहती है। वहाँ सब पर्वतों में परम श्रेष्ठ पुरुषोत्तम गिरि है जहाँ पर बुद्ध गया कही गयी है। उसी भाँति यह गया भी तीनों लोकों में प्रसिद्ध होकर ख्यात हुई है। भगवान् गदाधर के द्वारा निर्मित वहाँ विष्णु का षोडशपदी तीर्थ विद्यमान है। जहाँ पर समस्त पापों के हरण करने वाली परम पुण्यमयी प्राची सरस्वती है। महासुर नदी कही गयी है। ऐसे वहाँ पर पाँच पुण्य फलों के प्रदान करने वाली नदियाँ स्थित रहा करती हैं। पुरातन समय में महर्षि के द्वारा कथित नित्य और अक्षय न्यग्रोध भी वहाँ पर विद्यमान हैं। वहाँ पर ही वह शिला बताई गयी है जो परम शुभ और प्रेतों के मोक्ष करने वाली है। वहीं पर पितृ कल्पज समस्त देवगण निवास किया करते हैं। सर्वाक्षरमय ओङ्कार है अर्थात् ॐकार में सभी अक्षरों का समा-

वेश होता है और श्री हरि भगवान् व सभी देवता विराजमान रहा करते हैं। देवगण सम्पूर्ण तीर्थों से परिपूर्ण होते हैं तथा गया तीर्थ सर्वोत्तम तीर्थ है। वहीं पर बहुत ही शीघ्र ही आप लोग चले जाइए। वहाँ आप सब परासिद्धि को प्राप्त करेंगे। जिस क्षेत्र में प्रविष्ट होने मात्र से ही नरकों में स्थित पितृगण सबके सब स्वर्ग में आ जाया करते हैं और ब्रह्म भूय कल्पित किये जाते हैं अर्थात् ब्रह्म स्वरूप हो जाते हैं ॥२६-२६॥

---

## ७७—नागतीर्थमहिमावर्णन

नागतीर्थं त्वया ब्रह्मन्पुराप्रोक्तं यशस्विना ।
तस्यतीर्थवरस्यापिमहिमानञ्चसत्तम ॥१
भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो ब्रह्मविदां वर ।
कियत्काले समाख्यातमेतद्विस्तरतो वद ॥२
शृणु ब्रह्मन्प्रवक्ष्यामितवाग्रे नागतीर्थजाम् ।
कथापुण्यतमानुम्यं भुविपापहरापराम् ॥३
यस्याः श्रवणमात्रेण शापमुक्तो भवेन्नरः ।
पुरा नागा परिभ्रष्टा मातुःशापात्परन्तप ॥४
जनमेजयेन दग्धास्ते मोक्षिता ह्यास्तिकेन च ।
पप्रच्छुस्ते द्विजश्रेष्ठा जरत्कार्वात्मजं तदा ॥५
ब्रह्म स्तवप्रसादेनमोक्षिताहव्यवाहनात् ।
जनमेजयस्ययज्ञेऽस्मिन्देवराजस्यसन्निधौ ॥६
अस्माकं भूतिमन्विच्छन्त्रासस्यार्थं परं तप ।
यस्मिन्स्थाने सदा ब्रह्मन्निवासो जायतेऽभयः ॥७

महर्षि प्रवर श्री व्यासजी ने कहा—हे ब्रह्मन्! आपने पहले नागतीर्थ का वर्णन किया था। आप तो बहुत ही यशस्वी हैं। हे श्रेष्ठतम! उस श्रेष्ठतम तीर्थ की महिमा को हे ब्रह्मवेत्ताओं में वरिष्ठ देव! मैं पुनः आपके मुख से श्रवण करना चाहता हूँ। कितना समय होगया तभी आपने इसको कहा था। अब आप इसको विस्तार के साथ कहिए। श्री

सनत्कुमारजी ने कहा— हे ब्रह्मन् ! अब आप सुनिए, मैं आपके समक्ष मे इस नागतीर्थ में समुत्पन्न कथा को आप से कहता हूँ। यह परम पुण्यतम कथा है जो कि इस महीमण्डल मे पापों के हरण करने के लिये परम प्रशस्त है। यह ऐसी कथा है जिसके श्रवण मात्र से ही मनुष्य शाप से विमुक्त हो जाया करता है। हे परन्तप ! पुरातन समय मे नाग गण माता के शाप से परिभ्रष्ट हो गये थे। जनमेजय ने उनको दग्ध कर दिया था और आस्तिक ने उनको मोक्षित किया था। हे द्विजश्रेष्ठ ! उस समय मे उन्होने जरत्कारु के पुत्र से पूछा था ॥१-५॥ नागों ने कहा— हे ब्रह्मन् ! हम सब लोग आपके ही प्रसाद से इस अग्नि से मुक्ति को प्राप्त हुए हैं जबकि देवराज की सन्निधि में राजा जनमेजय द्वारा इस यज्ञ मे हम सब को दग्ध किया जारहा था। हे परन्तप ! हमारी भूति की इच्छा करते हुए आप हम लोगो के निवास करने के लिए भी स्थान निर्दिष्ट कर दीजिए जिसमे हे ब्रह्मन् ! सदा भय से रहित हमारा निवास हो जावे ॥६-७॥

श्रूयतामातुलश्रेष्ठा युष्माकं हितमुत्तमम् ।
महाकालवने रम्ये या वै कुशस्थलीस्मृता ॥८
तस्या हि दक्षिणे भागे पूर्वतीर्थं सनातनम् ।
नागालयं पुरा प्रोक्तं यत्र सन्निहितो हरिः । ९
योगनिद्रासमासाद्य शेते ब्रह्म सनातनम् ।
शेषशायीतिविख्यातः सर्वलोकेषुगीयते ॥१०
कल्पदोषो न तत्रैव बाधते सर्वदेहिनाम् ।
वकदाल्भ्य ऋषिस्तत्र तपस्तेपे धृतव्रतः ॥११
लोमशश्च महातेजास्तत्रैव प्रतितिष्ठति ।
दीर्घायुष्ट्वं समापन्नोमार्कण्डेयो महामुनिः ॥१२
न वर्तते कालचक्रं महाकालप्रतापतः ।
कपिलः सिद्धिमापन्नो यत्र तीर्थवरोत्तमे ॥१३
हरिश्चन्द्रो विमुक्तोऽभूद्गर्ह्यं चण्डालयोनितः ।
सप्तर्षिप्रवरायेते निर्वाणपदवी गताः ॥१४

आस्तीक ने कहा—हे मातुल श्रेष्ठो! आपके उत्तम हित की बात का आप अब श्रवण करो। परम रम्य महाकाल वन मे जो एक कुशस्थली बतायी गयी है। उसके दक्षिण दिग्भाग में एक सनातन (सदा से चला आने वाला) पूर्व तीर्थ है। पहिले यह नागालय कहा गया है जहाँ पर श्री हरि सन्निहित रहा करते हैं। वह सनातन ब्रह्म योगनिद्रा को प्राप्त होकर वहाँ पर शयन किया करते है और शेषशायी—इस नाम से वह विख्यात हैं उनका इसी नाम से सब लोकों मे गायन किया जाता है। वहाँ पर समस्त देहधारियों को कल्प का कोई दोष भी बाधा नहीं दिया करता है वहाँ पर व्रत धारण करने वाले बकदाल्भ्य ऋषि तपश्चर्या किया करते थे। महान् तेज वाले लोमश ऋषि भी यहीं पर प्रतिष्ठित रहा करते हैं। महामुनि मार्कण्डेय दीर्घायुष्ता को प्राप्त हो गये हैं। भगवान् महाकाल के प्रताप से वहाँ पर काल चक्र नहीं है। जिस उत्तम तीर्थ वर मे कपिल मुनि भी सिद्धि को प्राप्त हो गये थे। हरिश्चन्द्र अतीव गर्ह्य (निन्दा के योग्य अर्थात् नीच) चाण्डाल योनि से विमुक्त हो गया था। जो सप्तर्षि प्रवर हैं वे सब निर्वाण पदवी को प्राप्त हो गये थे ॥८-१४॥

एतस्मात्कारणात्सर्वैस्तत्र विश्रम्यता सदा।
मातुः शापोद्भवो दोपो युष्माकं नैव बाधते ॥१५
एतत्तोवचनं श्रुत्वामहर्षेरास्तिकस्यच।
आगच्छंस्तत्र ते शीघ्रं वासार्थं पन्नगोत्तमाः ॥१६

एलापत्रः कम्बलश्च कर्कोटकधनञ्जयौ।
वासुकिःपन्नगश्रेष्ठस्तक्षको नील एव च ॥१७
पद्मकश्चार्बुदश्चैव नागास्ते सर्वं एव हि।
अत्रागत्य स्वस्थानानि चक्रुस्ते सुचिरव्रताः ॥१८

तत्ररम्याणितीर्थानिजातानिपरमाणि च।
नवानि चक्रुःकुण्डानि तीर्थभूतानिसत्तम ॥१९
महापुण्यप्रदान्याहुर्महापापहराणि च।
यत्र सिद्धाश्च गन्धर्वा ऋषयः संशितव्रताः ॥२०

अप्सरोगणसङ्घैश्च सेव्यन्ते च सदा वरैः।
यत्र शेषो महानागः पुरा प्रोक्ता महर्षिणा ॥२१

इस कारण से आप सभी लोग वहीं पर सदा विश्राम करें। माता के शाप से होने वाला दोष वहाँ पर आप सबको बाधा नहीं देगा। उन सब नागों ने उन महर्षि आस्तिक के इस वचन का श्रवण करके वे पन्नगोत्तम वहीं पर अपने निवास के लिए शीघ्रता से चले गये थे। उन विशेष नागों के नामों का संक्षिप्त परिगणन बताते हैं—एलापत्र—कम्बल—कर्कोटक—धनञ्जय—पन्नगश्रेष्ठ वासुकि—तक्षक—नील—पद्मक—अर्बुद आदि वे सभी नाग थे। वहाँ पर आकर सुचिर व्रतों वाले उन्होंने अपने २ स्थान वास के लिये कर लिये थे। वहाँ परमोत्तम एवं सुरम्य तीर्थ हो गये थे। हे श्रेष्ठतम! नवीन कुण्डों की रचना की गयी थी जो कि सभी तीर्थों के स्वरूप वाले हो गये थे। ये सभी महान् पुण्यों के प्रदान करने वाले और महान् से महान् पापों के हरण करने वाले हैं ऐसा कहा जाता है। जहाँ पर सिद्ध—गन्धर्व और संशित व्रतों वाले ऋषिगण सदा श्रेष्ठ अप्सराओं के सङ्घों से सेवित किये जाया करते हैं। जहाँ पर महर्षि के द्वारा शेष महानाग पहले कहा गया है ॥१५-२१॥

शेषशायी ह्यलं विष्णुर्भगवान्कमलेक्षणः।
तत्र सर्वाणितीर्थानितिष्ठन्तिभुविसर्वदा ॥२२
श्वेतद्वीपेति विख्याता मणिविक्रान्तभूमिका।
यत्र पुष्पाश्च वै वृक्षा पुष्पिताश्चैव सर्वशः ॥२३
हंसकारण्डकाकादिपिककोकिलसारसाः।
पद्मखण्डगणास्तत्र नृत्यन्ति च शिखण्डिनः ॥२४
निधिरेषमहापद्मो नीलोत्पलसुगन्धिना।
वासितो वायुना शुभ्रः किन्नरोद्गारनादितः ॥२५
यत्र सुसंस्कृता नार्यो विहरन्ति सुराङ्गनाः।
नागकन्याभी रम्याभिर्मण्डितं परमाद्भुतम् ॥२६
यत्रस्नात्वानरोयाति वैकुन्ठं धामशोभनम्।
शेषशायी हरिर्यत्र शेते हि च रमापतिः ॥२७

तत्र रमासरोनाम तीर्थं परमशोभनम् ।
*यत्रस्नात्वानरोनित्यं श्रीमान्भवति नान्यथा ।।२८*

कमल के समान नेत्रों वाले शेष की शय्या पर शयन करने वाले भगवान् विष्णु ही पर्याप्त हैं। इस भूमण्डल पर वहाँ पर सर्वदा समस्त तीर्थ स्थित रहा करते है। मणियों से विक्रान्त भूमि श्वेतद्वीप—इस नाम से विख्यात है। जहाँ पर पुण्य वृक्ष हैं जो सब प्रकार से सदा फूलों वाले रहा करते हैं। वह ऐसा स्थल है जिसमें हंस—कारण्ड—काक आदि तथा पिक (कोयल)—सारस और पद्म खण्ड गण एवं शिखण्डी नृत्य किया करते हैं। यह महापद्म निधि है। यह स्थल नील कमलों की सुगन्ध वाली वायु से सुवासित रहता है—परम शुभ्र और किन्नर गणों के उद्गारों से ध्वनित रहा करता है। जहाँ पर सुन्दर संस्कारों से समन्वित नारियाँ और सुरों की अङ्गनाऐं विहार किया करती हैं। यह स्थल परम रम्य नाग कन्याओं से मण्डित रहता है और परम अद्भुत है। जहाँ पर मनुष्य एक बार स्नान करके ही सीधा अति शोभा सम्पन्न बैकुण्ठ धाम को चला जाया करता है। जहाँ पर रमा के पति श्री हरि शेष की शय्या पर शयन करते हुए विराजमान रहा करते हैं। वहाँ पर एक 'रमासर' नाम वाला अत्यन्त शोभन तीर्थ है जिसमें नित्य स्नान करके मनुष्य श्रीमान् हो जाया करता है अन्य किसी भी तरह से नहीं होता है। अथवा यह बात मिथ्या है ही नहीं—सर्वथा सत्य है ।।२२-२८।।

एवं व्यास! परं स्थानं सर्वपापहरं परम् ।
अत्रैव च परं तीर्थं बलेराश्रमद्भुतम् ।।२९
अत्रस्नानादिकं कार्यं यत्रसंनिहितोहरिः ।
सर्वपापविशुद्धात्मा नरोभवति तत्क्षणात् ।।३०
कियत्प्रमाणमात्रां च ये ददति वसुन्धराम् ।
तनूरुहाणि यावन्ति तावत्कालसङ्ख्यया ।।३१
अक्षय्या लभ्यते वृद्धिस्तेषां लोकाः सनातनाः ।
श्रावणे मासि दर्शे च पञ्चम्यां सोमवासरे ।।३२

नागानां पूजनं कार्यं श्राद्धं दर्शे विधीयते ।
अक्षयं जायते श्राद्धं वाञ्छितार्थं भवेत्तता ॥३३

हे व्यास देव ! इस प्रकार से यह परमोत्तम स्थान है जो समस्त पापों के हरण करने वाला है । यही पर परमोत्तम तीर्थ बलि का अद्भुत आश्रम है । यहाँ पर भी स्नान आदि अवश्य ही करना चाहिए जहाँ कि श्री हरि भगवान् सन्निहित रहा करते । यहाँ स्नानादि की क्रिया करने से मनुष्य उसी क्षण मे तुरन्त ही सब पापों से छुटकारा पाकर विशुद्ध आत्मा वाला हो जाया करता है । कितने प्रमाण वाली वसुन्धरा के दान का पुण्य फल यहाँ पर होता है—इस पर बताया जाता है कि शरीर में जितने रोमें हैं उतनी ही सख्या वाली पूर्ण वसुन्धरा के दान का पुण्य हुआ करता है । उन पुरुषो की कभी भी क्षीण न होने वाली वृद्धि प्राप्त हो जाती है और उनको सनातन लोको का लाभ हुआ करता है । श्रावण मास की अमावस्या तिथि मे अथवा पञ्चमी तिथि मे चन्द्रवार के दिन मे नागो का पूजन अवश्य ही करना चाहिए । दर्श मे श्राद्ध का भी विधान है । वह श्राद्ध भी अक्षय हुआ करता है तथा जो भी कोई वाञ्छित अर्थ होता है उसकी भी प्राप्ति हो जाया करती है ॥२६-३३॥

---

## ७८—अवन्तीमाहात्म्यवर्णन

भूयस्तु श्रोतुमिच्छामि त्वत्तोब्रह्मविदांवर ।
अवन्त्याश्चपरं पुण्यं महिमानं श्रुतं मया ॥१
त्वया ब्रह्मविदा प्रोक्तं वत्सरव्रतपारणम् ।
तीर्थस्यास्य सुविस्तारात्स्नातकाना द्विजोत्तम! ॥२
अचिरेणतुकालेन तीर्थस्यफलमश्नुते ।
सिद्धोभूत्वा नरोयाति तद्वदस्वद्विजोत्तम ॥३
गुह्याद्गुह्यतरं वत्स पृच्छसित्वं ममानघ ।
ततोहं तम्प्रवक्ष्यामि शृणुष्वत्वं समाहितः ॥४
महाकालं ततोगच्छेन्नियतोनियतात्मना ।
कोटितीर्थे नरस्स्नात्वा पुनर्जन्मनविद्यते ॥५

नास्तिवत्समहीपृष्ठे क्षिप्रायाःसदृशीनदी ।
यस्यानिरीक्षणान्मुक्ति.किञ्चिरात्सेवनेनवै ॥६
माधवेमासियोदेवं पूजयेत्पुरुषोत्तमम् ।
मोचनेमुच्यतेनित्यं तर्पणादेकवासरात् ॥७

महर्षि प्रवर श्री व्यासजी ने कहा—हे ब्रह्म के ज्ञान रखने वालों में परम वरिष्ठ ! मैंने अवन्ती की परम पुण्यपूर्ण महिमा का श्रवण कर लिया है किन्तु पुनः मैं कुछ आपसे श्रवण करने की अभिलाषा रखता हूँ। हे द्विजोत्तम ! आपने जो कि परम ब्रह्म वेत्ता हैं पूरे एक वर्ष के व्रत का पारण वर्णित किया था सो स्नातकों को उस व्रत का जो कि इस तीर्थ पर किया जाता है पूर्ण विस्तार के साथ वर्णन कीजिए। हे द्विजो में परम श्रेष्ठ ! अब यह बतलाइये कि कैसे मनुष्य बहुत स्वल्प समय में ही इस तीर्थ का फल प्राप्त कर लिया करता है और परम सिद्ध होकर प्रयाण करता है ? श्री सनत्कुमारजी ने कहा—हे वत्स ! हे निष्पाप ! आप तो इस समय में परम गोपनीय से भी गोपनीय बात मुझसे पूछ रहे हैं। अच्छा मैं आपको तो यह भी बतलाऊँगा। अब आप बहुत ही सावधान चित्त वाले होकर श्रवण कीजिए। इसके उपरान्त पूर्णतम नियत आत्मा से नियत होकर महाकाल तीर्थ में मनुष्य को गमन करना चाहिए। कोटि तीर्थ में मनुष्य स्नान करके फिर दूसरा जन्म ग्रहण नहीं किया करता है। हे वत्स ! इस मही मण्डल में क्षिप्रा के तुल्य अन्य कोई भी नहीं है। जिसके केवल निरीक्षण कर लेने ही से मनुष्य की मुक्ति हो जाया करती है, चिरकाल पर्यन्त सेवन करने की तो बात ही क्या कही जावे। माधव मास में जो कोई पुरुषोत्तम देव का पूजन किया करता है वह नित्य ही मुक्त हो जाया करता है और केवल एक ही दिन के तर्पण करने से भी मुक्त हो जाता है ॥१-७॥

अवन्त्यामङ्गपातास्थं ये पश्यन्ति जनार्दनम् ।
न तेषां पुनरावृत्तिः कल्पकोटिशतैरपि ॥८
इतिव्यासवचस्सर्ववदन्तिनियतात्मनः ।
वाराहमत्स्यकन्दाद्या लोमशश्चमहामुनिः ॥९

विधितथापितीर्थस्यस्रृणुपुण्यसमम्पुनः ।
योवैस्वल्पेनपुण्येनतीर्थस्यफलमिच्छति ॥१०
तस्यसर्वस्यवक्ष्यामिस्रृणुष्वेद तपोधन ।
सर्वतीर्थफलाकाङ्क्षी शुचिःप्रयतमानसः ॥११
अवगाहव्रतीयाति तीर्थानिचाष्टविंशतिः ।
ऊर्जेमाघेतथाषाढे वैशाखेचविशेषतः ॥१२
यवाकवापुरीं प्राप्य कर्तव्यंतीर्थमज्जनम् ।
सवतीर्थफलं प्राप्य शिवलोकेमहीयते ॥१३

अवन्ती मे जो अंगपात नाम वाले जनार्दन प्रभु का दर्शन किया करते हैं उनकी फिर करोड़ो कल्पों मे भी इस संसार में पुनरावृत्ति नहीं हुआ करती है अर्थात् वे फिर जन्म ग्रहण नही किया करते हैं। हे व्यास ! सभी नियत आत्मा वाले लोग इस वचन को कहा करते हैं। वाराह-मत्स्य और कन्द आदि तथा महामुनि लोमश यही कहते हैं। तो भी पुनः पुण्य सम तीर्थ की विधि का श्रवण कर लो। जो कोई स्वल्प पुण्य हो से तीर्थ के फल की इच्छा किया करता है उसका सभी कुछ मैं बताऊंगा। हे तपोधन ! इसे अब आप सुनिए। समस्त तीर्थों के फलो की आकांक्षा रखने वाला—शुचि (पवित्र) प्रयत मन वाला—अवगाहन के व्रत से युक्त अट्ठाईस तीर्थों को जाया करता है। आश्विन-माघ—आषाढ और विशेष रूप से वैशाख मास में जब कभी पुरी पहुंच कर तीर्थ का मज्जन करना चाहिए। वह सभी तीर्थों का पुण्य फल प्राप्त करके शिव लोक मे महिमान्वित होकर प्रतिष्ठित हुआ करता है ॥८-१३॥

क्षिप्रातीरेहिवर्तन्तेपुराख्यातानिसूरिभिः ।
पुण्यानितीर्थमुख्यानितानिमेगदतःस्रृणु ॥१४
पापादितःशुचिर्भूत्वा विष्णुविष्णुरितिस्मरन् ।
आदाय नियमं सर्वं स्नातकानाञ्च सत्तम! ॥१५
स्नात्वा रुद्रसरे नित्यं कृत्वा श्राद्धादिकं तथा ।
यथाशक्ति परां वत्स! गां दत्त्वा चैव काञ्चनीम् ॥१६

तीर्थराजनमस्तुभ्यं निजतीर्थविगाहने ।
अनुज्ञांदेहिमेनित्यं करिष्यामितवार्चनम् ॥१७
ततः प्रयातितत्तीर्थं कर्कराजाभिधं सरः ।
तत्र स्नानादिकं कृत्वा घृतपात्रंप्रदापयेत् ॥१८
नृसिंहाख्यंपरंतीर्थं तत्रस्नायाद्‌द्विजोत्तम! ।
कृष्णाजिनंततोदद्यात्मकार्यविशुद्धये ॥१९
सङ्गमो नीलगङ्गायाःक्षिप्रायाश्चं वसत्तम ।
तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वाद्दृष्ट्वाचगङ्गेश्वरम् ॥२०
वाहनञ्च ततो देयं द्विजातिभ्य.स्वलङ्कृतम् ।
भूषणानि च देयानि यानानि विधिनानि च ॥२१

श्री सनत्कुमार जी ने कहा—क्षिप्रा नदी के तट पर परम पुण्यमय तीर्थ मुख्य हैं जिनको कि पहले विद्वानों ने बतलाया है और परम प्रसिद्ध हैं उनको मैं बतलाता हूँ आप उन्हें सुनिए। पापों से जो मलिन है वह परम शुद्ध होकर 'विष्णु-विष्णु' इस तरह से भगवान् का स्मरण करते हुए हे श्रेष्ठतम ! स्नातकों के समग्र नियमों को ग्रहण करके नित्य ही उस सर में स्नान करके तथा श्राद्ध आदि की क्रियाओं का सम्पादन करके हे वत्स ! अपनी शक्ति के अनुसार काञ्चनी गौओं का दान करके यह तीर्थ से प्रार्थना करे—हे तीर्थराज ! आपकी सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित है। अपने इस तीर्थ में अवगाहन करने के लिए मुझे अनुज्ञा प्रदान कीजिए। मैं नित्य ही आपका अर्चन करूँगा। यही प्रार्थना करने का यहाँ पर मन्त्र है। इस प्रार्थना करने के पश्चात् ही कर्कराज नाम वाले सर पर आवे जो कि महान् तीर्थ है। वहाँ पर स्नान आदि करके घृतपात्र प्रदान करावे। हे द्विजोत्तम ! एक नृसिंह नाम वाला तीर्थ है वहाँ पर स्नान करना चाहिए। इसके अनन्तर अपने कार्य की विशुद्धि के लिए कृष्णाजिनका दान करना चाहिए। हे सत्तम ! वहीं पर नील गंगा और क्षिप्रा का संगम है। उसमें स्नान करके और शुचि होकर तथा गङ्गेश्वर प्रभु का दर्शन करके इसके पश्चात् द्विजों के लिए अलंकारों से विभूषित

किया हुआ वाहन का दान करे और भूषण देवे तथा विविध प्रकार के मानों का दान करना चाहिए ॥१४-२१॥

ततः प्रायाद् व्रती सम्यक् तीर्थं पैशाचमोचनम् ।
तत्र स्नात्वा च विधिवदाह्निकादि च कारयेत् ॥२२
गांसवत्सां ततो दद्याद्वेदवेदाङ्गपारिणे ।
सीदत्कुटुम्बिने नित्यं द्विजाय मुनिसत्तम ॥२३
महादानानि सर्वाणि तत्रदेयानि सत्तम ।
पिशाचेशं ततो दृष्ट्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२४
गन्धवतीर्थं गच्छेच्च नियमी व्रतकारकः ।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा श्राद्धं कुर्यात्समाहितः ॥२५
पष्टिजस्पेश्वरं देवं पूजयेद्विधिवद्विज .
ब्राह्मणेभ्यस्ततोदद्याद्गेहदानादिकं परम् ॥२६
दासीदासन्ततोदेयं सर्वकार्यार्थसिद्धये ।
धनवान् पुत्रवांल्लोके मृतो मोक्षमवाप्नुयात् ॥२७
ततो गच्छेद्व्रतीविप्रकेदारं तीर्थमुत्तमम् ।
तत्रस्नात्वामहादानं ब्राह्मणेभ्यस्समर्पयेत् । २८

इसके अनन्तर व्रत धारण करने वाले को पैशाच्य मोचन तीर्थ में अच्छी तरह से जाना चाहिए। वहाँ पर विधि-विधान के सहित स्नान करके आह्निक आदि करे। इसके पश्चात् किसी वेदों और वेदांगों के पारगामी द्विज के लिए वत्स से युक्त गौ का दान करना चाहिए। हे मुनिश्रेष्ठ! दान सर्वदा ऐसे ही ब्राह्मण को देना चाहिए जो धनाभाव से अवसन्न और कुटुम्बी हो। हे सत्तम! सभी महादान ऐसे ही द्विज को यहाँ पर देने चाहिए। इसके अनन्तर भगवान् पिशाचेश्वर के दर्शन करे जिससे मनुष्य सभी पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है। व्रत के करने वाले और नियमों में स्थित मानव को इसके उपरान्त गन्धर्व तीर्थ को जाना चाहिए। वहाँ पर स्नान करके शुचि हो जावे और फिर समाहित होकर उसको श्राद्ध करना चाहिए। हे द्विज! फिर षष्टि देवेश्वर देव की विधि के सहित अर्चा करे और फिर द्विजों को परम श्रेष्ठ गृह और

दान आदिक देना चाहिए। सब कार्यों की अर्थ सिद्धि के लिए दासी और दास भी देवे। इससे लोक में धन सम्पन्न और पुत्रों वाला होता है और अन्त में मृत्युगत होकर मोक्ष की प्राप्ति किया करता है। इसके अनन्तर व्रती पुरुष को अत्युत्तम तीर्थ केदार को हे विप्र! गमन करना चाहिए। वहाँ पर भी स्नान करे और ब्राह्मणों के लिए महादान देवे ॥२२-२८॥

शुभं गोमिथुनं दत्वा विधिवत्सत्रकारयेत्।
कम्बलाजिनवासांसि तत्रदेयानिसत्तम ॥२९
सर्वपापविशुद्धात्मा शिवलोके महीयते।
चक्रतीर्थे नरःस्नात्वा चक्रपाणिसमर्चयेत् ॥३०
शंखशस्त्रविमानानि तत्रदेयानि सत्तम।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोके महीयते ॥३१
सोमतीर्थे नरःस्नात्वा दृष्ट्वा सोमेश्वरं शिवम्।
निर्मलाङ्गो नरो भाति कुष्ठरोगो न बाधते ॥३२
इक्षुधेन्वादिकंदानं तत्रदेयं द्विजायते।
देवप्रयागं गच्छेच्च स्नानार्थं द्विजसत्तम ॥३३
तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वा देवं माधवमर्चयेत्।
गुडधेनुः प्रदातव्या विधिदृष्टेन कर्मणा ॥३४
सर्वपापविशुद्धात्मा देवलोके महीयते।
प्रयागे परमं व्यास वेणीतीर्थमनुत्तमम् ॥३५

हे सत्तम! अति सुभग दो गायों का जोड़ा दान करे जो कि पूर्ण शास्त्रोक्त विधान के साथ करना चाहिए वहाँ पर कम्बल—अजिन और वस्त्रों का भी दान देवे। ऐसा करने वाला पुरुष सभी पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर शिव लोक में समवस्थिति प्राप्त किया करता है। चक्र तीर्थ में मनुष्य स्नान करके उसे फिर भगवान् चक्रपाणि का अर्चन करना चाहिए। हे श्रेष्ठतम! वहाँ पर शंख शस्त्र और विमानों का दान देना चाहिए। वह मनुष्य समस्त प्रकार के घोरतम पापों से भी छुटकारा पाकर विशुद्ध हो जाया करता है और अन्त में विष्णुलोक में प्रतिष्ठित होता है। सोम तीर्थ में मनुष्य स्नान करके तथा सोमेश्वर भगवान् शिव

का दर्शन प्राप्त करके परम निर्मल अंगों वाला मनुष्य हो जाया करता है और अत्यन्त दीप्ति से शोभित हो जाता है कि कुष्ठ रोग उसको फिर बाधा नहीं देता है। ईख, धेनु आदि का दान वहाँ पर द्विजाति को देना चाहिए। हे द्विजों में परम वरिष्ठ ! और देव प्रयाग को गमन करे जहाँ पर पहुँचकर स्नान करना चाहिये। वहाँ स्नान करके परम शुचि हो जावे और फिर माधव देव का यजन करे। विधि में देखे हुए कर्म के अनुसार वहाँ पर गुड़ और धेनु का दान अवश्य ही करे। वह आदमी सभी पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर देवलोक में प्रतिष्ठित हुआ करता है। हे व्यास ! प्रयाग में परमोत्तम वे तीर्थ हैं ॥२९-३५॥

तत्र स्नानञ्चकर्त्तव्यं तिलामलकसंयुतम् ।
प्रयागेशमथाभ्यच्य सकलं फलमश्नुते ॥३६
तिलधेनुः प्रदातव्या विधिवद्द्विजपुङ्गवे ।
सर्वकामवरम्प्राप्य विष्णुलोके समोदते ॥३७
ततो गच्छेद् व्रती भूयो योगतीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा योगिनीश्वरमर्चयेत् ॥३८
जलधेनुं ततो दद्याद्दीर्घायुश्च सुखीभवेत् ।
कपिलाश्रमं परं तीर्थं नरोगच्छेत्ततःपरम् ॥३९
स्नानदानादिकं कृत्वा कपिलेश्वरमर्चयेत् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यस्तपोलोके स गच्छति ॥४०
घृतकुल्यापरं तीर्थं क्षिप्राकूलेच पश्चिमे ।
तत्र स्नात्वानरोनित्यं घृतधारेश्वरं शिवम् ॥४१
पूजयेद्विधिवद्विप्र घृतधेनुं समर्पयेत् ।
प्राप्यपुण्यकृतांल्लोकान् सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥४२

उस वेणी तीर्थ में तिल और आँवलों के साथ स्नान करे। इसके अनन्तर प्रयागेश्वर प्रभु का अभ्यर्चन करे। इसका ऐसा महान प्रभाव होता है कि मनुष्य सभी प्रकार के फलों का लाभ कर लिया करता है। वहाँ पर किसी श्रेष्ठ द्विज को तिलों और धेनु का विधिपूर्वक दान देना चाहिए वह मनुष्य समस्त कामनाओं की सिद्धि का वरदान प्राप्त करके

अन्त में विष्णु लोक मे सानन्द प्रतिष्ठित हुआ करता है। इसके पश्चात् उस तीर्थाटन के व्रतधारी पुरुष को अतीव उत्तम योगतीर्थ मे जाना चाहिए। वहाँ पर अवगाहन करके पहिले परम विशुद्धि प्राप्त कर लेवे और फिर श्रीयोगिनीश्वर प्रभु का समर्चन करना चाहिये ॥३६ ३८॥ वहाँ जल धेनु का दान करे। इससे दीर्घ आयु वाला और परम सुख से सम्पन्न हो जाता है। इसके पश्चात् परम श्रेष्ठ कपिलाश्रम नामक तीर्थ के लिए गमन करे वहाँ पहुचकर भी स्नान आदि समस्त प्रथम कर्त्तव्य सम्पादित करके फिर कपिलेश्वर भगवान की अर्चना करे। वह मनुष्य सब पापो से छुटकारा पा जाया करता है और फिर तपोलोक को गमन किया करता है। क्षिप्रा नदी के पश्चिम दिग्भाग मे तट पर एक घृत-कुल्या नाम वाला परम श्रेष्ठ तीर्थ है। वहाँ पर मनुष्य को नित्य स्नान करके घृतधारेश्वर शिव का विधान के सहित पूजन करना चाहिए। हे विप्र! वहाँ घृत धेनु का दान ब्राह्मण को समर्पित करना चाहिए। इस का यह पुण्य फल होता है कि पुण्य कृत लोको की पद प्राप्ति कर लेता है और इसके पूर्व ही सब पापो से विमुक्त हो जाया करता है ॥३६-४२॥

मधुकुल्यानरास्नात्वा पूजयित्वा महेश्वरम् ।
मधुदानं प्रकुर्वीत इक्षुधेनुं तत. परम् ॥४३
ऊषर परम तीर्थं सर्वतीर्थ फलप्रदम् ।
तत्र स्नात्वा नरः पश्येन्महेशमूषरेश्वरम् ॥४४
फलमूलादिकं देयं प्राप्यते मोक्ष उत्तमः ।
नरादित्यः स्थितो यत्र तत्र तीर्थं परं स्मृतम् ॥४५
तत्र स्नात्वा नर. पश्येत् क्षेत्रादित्येश्वर परम् ।
रथदानं ततोदत्वा नरलोकेसगच्छति ॥४६
केशवार्कोपरोदेवस्तस्यतीर्थं परं स्मृतम् ।
तत्र स्नानं विधेयञ्च केशवार्कसमर्चनम् ॥४७
अन्नं बहुविधं देयं तत्र तीर्थे द्विजोत्तम ।
कालभैरव आख्यातस्तत्रतीर्थे महाव्रती ॥४८

तत्रस्नात्वानरोनित्यं दृष्ट्वा भैरवमन्तकम् ।
दद्यात्पूर्णमहादानं नगच्छेद्यमशासनम् ॥४९

एक वहाँ पर मधुकुल्या नाम वाला भी तीर्थ है। वहाँ पर स्नान करके महेश्वर की पूजा करे—मधु का दान करे और इसके पश्चात् ईख और धेनु का दान दे। एक समस्त तीर्थों के फलों का देने वाला ऊपर नामक परमोत्तम तीर्थ है। वहाँ पर मनुष्य को स्नान करके ऊपरेश्वर महेश का दर्शन करना चाहिए। वहाँ फल और मूल-प्रभृति का दान देवे। इससे उत्तम मोक्ष की प्राप्ति की जाया करती है। जहाँ पर नरादित्य स्थित हैं वहाँ पर परमोत्तम तीर्थ कहा गया है। वहाँ पर मनुष्य को स्नान करके परम प्रभु क्षेत्रादित्येश्वर का दर्शन करना चाहिये। फिर रथ का दान करे। वह नरलोक में गमन किया करता है। केशवार्क सर्व शिरोमणि परम देव हैं अतएव उनका तीर्थ भी सर्वश्रेष्ठ है ऐसा कहा गया है। वहाँ स्नान और केशवार्क का अभ्यर्चन करना ही चाहिये। हे द्विजोत्तम! अनेक प्रकार का अन्न वहाँ पर तीर्थ में दान में देना चाहिए। उस तीर्थ में महाव्रती काल भैरव कहे गये हैं। वहाँ पर भी मनुष्य का परम कर्त्तव्य है कि नित्य स्नान करे अन्त तक भैरव का दर्शन करे। वहाँ पूर्ण महादान भी देना चाहिये। इसका यह प्रभाव होता है कि मनुष्य फिर यमराज के शासन में कभी प्राप्त नहीं हुआ करता है ॥४३-४९॥

द्वादशार्केति विख्यातं क्षिप्राकूले च दक्षिणे ।
तीर्थञ्च सर्वपापघ्नं सर्वकामवरप्रदम् ॥५०
तत्र स्नात्वाशुचिर्भूत्वा द्वादशार्कं समर्चयेत् ।
अजादानञ्चदेयंवैवासोऽलंकारसंयुतम् ॥५१
आरोग्यं सर्वदादेहे तस्यसम्पत्पदेपदे ।
तत्रापि ऋषयोदेवाः सन्ध्योपासनतत्पराः ॥५२
उपासाञ्चक्रिरेतस्य प्रातः कालेसदैवहि ।
तत्र तीर्थे नर स्नात्वाशुचिर्भूत्वासमाहितः ॥५३
एकानंशेति विख्याता भवानी पापनाशिनी ।
तामर्चयेद्द्विजश्रेष्ठदशाश्वमेधपंशिवम् ॥५४

तत्र देयं महादानं श्वेताश्वं समलङ्कृतम् ।
विप्रायवेदविदुषे विधिवद्दविसत्तम ! ॥५५
सर्वपापविशुद्धात्मा स्वर्गलोके महीयते ।
योऽसावङ्गारको देवो विख्यातो वै धरात्मजः ॥५६

क्षिप्रा नदी के दक्षिण दिग्भाग में तट पर एक द्वादशार्क तीर्थ परम विख्यात तीर्थ है । यह तीर्थ सभी पापों का हनन करने वाला और सभी कामनाओं के वरों का प्रदान करने वाला कहा गया है ॥५०॥ वहाँ पर अवगाहन करके परम पवित्र होकर द्वादशार्क प्रभु का समर्चन करना चाहिये । वहाँ वस्त्र और अलकारों से समन्वित अजा (बकरी) का दान देना चाहिये । उस दानी तीर्थ व्रती पुरुष के देह मे सर्वदा आरोग्य रहता है और उनके कदम-कदम पर सम्पत्ति विलास किया करती है । वहाँ पर देवगण और ऋषि वृन्द सन्ध्योपासना में तत्पर रहा करते हैं । प्रातः काल की वेला में वे सभी सर्वदा उनकी उपासना किया करते हैं । वहाँ पर उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके शुचि होकर समाहित हो जाया करता है । वहाँ पर एकानंशा—इस नाम से विख्यात पापों के नाश करने वाली भवानी विराजमान हैं । हे द्विजश्रेष्ठ ! वहाँ उस देवी का अभ्यर्चन करे और दशाश्वमेधय शिव का यजन भी करना चाहिए । वहाँ पर महादान देना चाहिए । एक श्वेत वर्ण का अश्व जो भूषणों से भली भाँति अलंकृत हो इसका दान दे ऋषि श्रेष्ठ ! वेदों के विद्वान् विप्र को देना चाहिए और विधान के साथ ही दान करे । वह मनुष्य सभी प्रकार के ऐहिक तथा पूर्व जन्मों के किये हुए पापों से मुक्त होकर परम विशुद्ध आत्मा वाला हो जाया करता है और अन्त में स्वर्ग लोक मे प्रतिष्ठित होता है । यहाँ पर एक धरात्मज अङ्गारक देव परम विख्यात हैं ॥५१-५६॥

तस्य तीर्थं परं व्यास सर्वतीर्थफलप्रदम् ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा मङ्गलेश्वरमर्चयेत् ॥५७
गुडान्नं वृषभं रक्तं सवासः समलंकृतम् ।
स्वलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो यो ददाति समाहितः ॥५८

तस्यहस्तगतालक्ष्मीः पुत्र दारादिसम्पदः ।
खगङ्गासङ्गमंतीर्थं गङ्गोद्भेदसमन्वितम् । ५९
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वागङ्गेश्वरं शिवम् ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोकेमहीयते ॥६०
तिलपात्रं प्रदातव्यं विधिवत्काञ्चनान्वितम् ।
सर्वं सौख्यकरं दानं सर्वपापहरं परम् ॥६१
ऋणमोचनकं तीर्थं सर्वपापहरं स्मृतम् ।
तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा ऋणतेश्वरमर्चयेत् ॥६२
घृतश्राद्धं प्रकुर्वीत दत्वास्वर्णञ्च शक्तितः ।
ऋणत्रयविनिर्मुक्तः स्वर्गलोके महीयते ॥६३

हे व्यासदेव ! उनका तीर्थ सबसे श्रेष्ठ तीर्थ है और अन्य सभी तीर्थों का जो कुछ भी पुण्य फल होता है उन सबका यह एक ही तीर्थ प्रदान कर देने वाला है । उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके उसे मगलेश्वर का अभ्यर्चन करना चाहिये । जो मनुष्य यहाँ पर गुड के सहित अन्न-वस्त्रों से परावृत रक्त वृषभ जो कि भूषणो से भली भाँति विभूषित हो उसका परम समाहित होकर स्वलकृत विप्रो को दान देना चाहिये । इसका यह प्रभाव होता है कि लक्ष्मी तो बिल्कुल उसके हाथ मे ही रहा करती है और पुत्र, दारा आदि की सम्पत्तियाँ भी सब प्राप्त हो जाया करती हैं । वहीं पर गगा के उद्‌भेद से सयुत एक ख (आकाश) गङ्गा का सगम तीर्थ है । उस तीर्थ में मनुष्य स्नान करके गगेश्वर भगवान् शिव का दर्शन प्राप्त करके समस्त पापो से मनुष्य मुक्त हो जाता है और अन्त मे विष्णु लोक मे प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है । वहाँ पर एक तिलो का भरा हुआ पात्र जो कि सुवर्ण से भी युक्त हो दान मे देना चाहिये । यह दान सभी प्रकार के सौख्यो का करने वाला है और सम्पूर्ण पापो का भी हरण करने में परम श्रेष्ठ है । एक ऋण मोचनक नाम वाला उत्तम तीर्थ है जो कि समस्त पापो के नाश करने वाला कहा गया है । उस तीर्थ में अवगहन करके मनुष्य को ऋणेश्वर देव का यजन अवश्य ही करना चाहिये ।

वहाँ पर घृत श्राद्ध करे और अपनी शक्ति के अनुसार सुवर्ण का दान करे। ऐसा करने वाला मनुष्य तीनों ऋणों से विमुक्त हो जाता है तथा स्वर्ग में प्रतिष्ठा प्राप्त किया करता है ॥५७-६३॥

ततो गच्छेन्नरो नित्यं शक्ति भेदमकल्मषम् ।
तीर्थानाञ्चैव सर्वेषामुत्तमं पापनाशनम् ॥६४
तत्र स्नात्वानरोव्यास शुचिः प्रयतमानसः ।
मातृगणाञ्चसर्वेषांदर्शनं कारयेद्बुधः ॥६५
कौमारीकार्त्तिकीमाता चर्पटावटमातरः ।
तथा भगवती देवी स्कन्दञ्चैवसमर्चयेत् ॥६६
तत्र श्राद्धानि देयानि विधिवद् द्विजसत्तम ! ।
दत्वा शय्यादिकं दानं कांस्यधेनुं तथेतरद् ॥६७
मातुर्ऋणं समुत्तीर्य सायुज्यं लभतेनरः ।
यत्तीर्थं वरं श्रेष्ठं पापमोचनसञ्ज्ञकम् ॥६८
तत्र स्नात्वानरैर्देयं छायादानञ्च सत्तम ।
सर्वपापविशुद्धात्मा जायते भुवि मानवः ॥६९
ततः परं परं व्यास तीर्थं त्रैलोक्य विश्रुतम् ।
प्रेतशिलेतिविख्यातं प्रेतमोक्षकरम्परम् ॥७०

इन सब तीर्थों की यात्रा समाप्त करके फिर मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह नित्य ही कल्मषों से रहित शक्तिभेद नामक तीर्थ को गमन करे। यह भी अन्य समस्त तीर्थों से उत्तम और पापों का विनाश करने वाला तीर्थ है। हे व्यास ! उसमें मनुष्य स्नान करके परम शुचि एवं प्रयत मन वाला होकर बुध को एवं मातृकों का दर्शन करना चाहिये। वहाँ पर कौमारी कार्त्तिकी माता हैं और चर्पटावट माताऐं हैं। उसी भाँति भगवती देवी और भगवान स्कन्द का अभ्यर्चन करे। हे द्विज सत्तम ! वहाँ पर विधिपूर्वक श्राद्ध भी देने चाहिए। शय्या आदि कांस्यधेनु तथा इतर दान देकर मनुष्य माता के ऋण से उऋण होकर सायुज्य की प्राप्ति किया करता है। एक परम श्रेष्ठ तीर्थों में वरिष्ठ पापमोचन सज्ञा (नाम) वाला तीर्थ है। हे सत्तम ! वहाँ पर मनुष्यों को स्नान करके छाया दान देना

चाहिये। वह मनुष्य फिर भूमि मे सब पापो से विशुद्ध आत्मा वाला होकर स्थित रहा करता है। हे व्यास ! इसके पश्चात् सबसे परमोत्तम एवं श्रेष्ठ एक तीर्थ है जो त्रिलोकी मे परम प्रसिद्ध है और यह 'प्रेतशिला'—इस नाम से ही विख्यात है। यह तीर्थ प्रेतो की मुक्ति करने के लिये तो परमोत्तम है ॥६४-७०॥

तत्र स्नात्वानरोदद्याच्छ्राद्ध द्विजसमाहित ।
तिलोदकप्रदानेन पितरोयान्तिसद्‌गतिम् ॥७१
घटदान ततोदेय क्षत्रोपानत्समन्वितम् ।
महिषीञ्चततोदद्याद्वासासि विविधानिच ॥७२
अन्नदान ततोदेय रसैनलवणान्वितम् ।
यमेश्वर समभ्यर्च्य निरयेनाधिगच्छति ॥७३
पितरस्तस्य सन्तुष्टा यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
पितृदोषा न बाधन्ते तेषाञ्च द्विजसत्तम ! ॥७४
तीर्थानामुत्तम तीर्थं भुविर्त्रं लोक्यवन्दितम् ।
नवनदीसङ्गमोयत्र तत्र तिष्ठति पार्वती ॥७५
तत्र स्नात्वा नरो नित्य शुचिर्भूत्वा समाहित ।
पूजयेद्‌भगवती भद्रा पार्वती विधिवत्ततः ॥७६
महादानानिकुर्याच्च हस्तिपान्नधरान्तिलान् ।
सुरभीदुग्धसहिता दद्यान्द्विजवरायच ॥७७

इस प्रेत शिला नामक तीर्थ मे स्नान करके हे द्विज ! मनुष्य को परम समाहित होकर श्राद्ध देना चाहिए। यहाँ पर तिलोदक के प्रदान करने से पितृगण सद्‌गति को प्राप्त हो जाया करते हैं, घट का दान-छत्र उपानह—महिषी और विविध भाँति के वस्त्रो का दान करना चाहिए। इसके अनन्तर अन्न का दान रस और लवण से समन्वित करके देना चाहिए। फिर यमेश्वर देव का अभ्यर्चन करके मनुष्य नरक मे अधिगमन किया करता है। उस अर्चना करने वाले के पितर भी परम सन्तुष्ट होकर सनातन ब्रह्म की प्राप्ति कर लिया करते हैं। हे द्विज श्रेष्ठ ! उनको पितृ दोष कुछ भी बाधाऐं नही किया करते हैं। सम्पूर्ण तीर्थो मे उत्तम एक

तीर्थ है जो इस भू मण्डल में विद्यमान है और त्रिलोकी के द्वारा बन्दित है । जहाँ पर नव नदियों का सङ्गम होता है वहाँ पर जगदम्बा पार्वती स्वयं विराजमान रहा करती हैं । उस तीर्थ में मनुष्य नित्य स्नान करके परम शुचि होकर समाहित होते हुए भगवती भद्रा पार्वती का विधि पूर्वक पूजन करना चाहिए । वहाँ पर महादान करे—हाथी—अन्न—धरा—तिल सुरभी जो दुग्ध सहित हो—इनका दान किसी परम श्रेष्ठ को देना चाहिए ॥७१-७७॥

सर्वपापविशुद्धात्मा साक्षाच्छम्भुर्भवेन्नरः ।
मन्दाकिनीततोगच्छेदात्मकार्य विशुद्धये ॥७८
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा पूजयेद्यः सदाशिवम् ।
दत्वा शकटमन्नाद्यं तिलद्रोणं प्रदापयेत् ॥७९
सर्वपापविशुद्धात्मा धनाधिपसमोभवेत् ।
ततोगच्छेद्व्रती विप्र तीर्थं पैतामहंपरम् ॥८०
तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा विधिवत्स्नानमाचरेत् ।
दत्वा दानानि सर्वाणि त्रीणि तत्र विशेषतः ॥८१
यथाशक्तिप्रदेयानि पृथ्वीगावःसुवर्णकम् ।
विप्राश्चभोजयेन्नित्यं विधिवद्भूरिदक्षिणैः ॥८२
ततस्तुपुनरागम्य रुद्रसरमनुत्तमम् ।
तस्मिन्स्नात्वाचनत्वाच दृष्ट्वा देवंमहेश्वरम् ॥८३
पूजयित्वायथान्यायं यात्रेश्वरमनुत्तमम् ।
तुलसीबिल्वपत्रैश्च पुष्पैर्विविधवासकैः ॥८४

इस तीर्थ में जाने वाला मनुष्य सब पापों से विशुद्ध आत्मा वाला होकर वह साक्षात् शम्भु ही हो जाया करता है । इसके उपरान्त मनुष्य को अपने कार्यों की विशुद्धि के लिये मन्दाकिनी पर जाना चाहिए । वहाँ जाकर स्नान करे—पवित्र हो जावे और फिर जो सदा शिव का पूजन किया करता है तथा शकट—अन्न आदि का एवं तिलों का द्रोण दान करता है वह सभी पापों से रहित एवं विशुद्धात्मा होकर धनाधिप (कुबेर)

के तुल्य ही हो जाया करता है। इसके उपरान्त तीर्थ यात्री पुरुष को हे विप्र ! परमोत्तम पैतामह तीर्थ पर गमन करना चाहिए। वहाँ स्नान कर शुचि होकर अर्थात् विधान के साथ ही स्नान का समाचरण करना चाहिए। यहाँ पर भी सभी प्रकार के दान देने किन्तु इनमें विशेष रूप से तीन ही दान होते हैं और वे ये हैं—अपनी शक्ति जितनी हो उसी के अनुसार भूमि—गौ और सुवर्ण का दान करे। नित्य ही विप्रों को भोजन कराये और उन विप्रों को विपुल दक्षिणा देनी चाहिए। इसके अनन्तर वहाँ से आकर पुनः सर्वोत्तम रुद्रसर में स्नान करे—उसको नमस्कार करे तथा महेश्वर देव का दर्शन करे। यथा विधि परमोत्तम यात्रा के ईश्वर देव का पूजन करे। देवेश्वर का पूजन विविध प्रकार के परम सुगन्धित पुष्पों से—तुलसी दलों से और बिल्व पत्रों से अभ्यर्चन करे ॥७८-८४॥

धूपदीपादिनैवेद्यैर्मुखवासोत्तरच्छदैः।
पूजयित्वा महादेवं यात्रेश्वरमुमापतिम् ॥८५
प्रार्थयेद् देवदेवेशं व्रतसम्पूर्णहेतवे।
यात्रेश्वर ! नमस्तुभ्यमुमानाथजगत्पते ! ॥८६
त्वत्प्रसादात्कृतां यात्रां सफलां कुरु मे प्रभो ! ॥८७
एवं यः कुरुतेयात्रामवन्त्याश्चद्विजोत्तम।
अवन्तीवासजं पुण्य प्राप्यतेनात्रसंशयः ॥८८
भुक्त्वा च विपुलान्भोगान् धनदारादिसम्पदम्।
सर्वपापविशुद्धात्मा मृतः शिवपुरं व्रजेत् ॥८९
ये शृण्वन्ति कथां पुण्यां पवित्रां पापहारिणीम्।
न तेषां दुर्लभं किञ्चिदिह लोके परत्र च ॥९०
माहात्म्यमेतच्छिवभक्तिवर्द्धनं यशस्करं पुण्यविवर्धनञ्च।
यःश्रावयेद्वा शृणुयाच्चभक्त्या कुलसमुद्धृत्य हरेःपदंव्रजेत् ॥९१

यात्रा के ईश्वर उमादेवी के स्वामी महादेव का यजन धूप—दीप—नैवेद्य—मुखवास और उत्तर छद के द्वारा भली भाँति करना चाहिए। पूजन के पश्चात् अपने व्रत की साङ्ग समाप्ति के लिये देव देवेश की प्रार्थना करनी चाहिए। हे उमा के नाथ ! हे इस सम्पूर्ण जगत् के

स्वामिन् ! आप तो यात्रा के अधिपति हैं आपकी पवित्र सेवा में मेरा नमस्कार समर्पित होवे । हे प्रभो मेरे द्वारा यह आपकी ही कृपा के प्रसाद से तीर्थों की यात्रा की गयी है अब मेरी इस यात्रा को आप सफल कर दो दीजिए ॥८५-८७॥ श्रीसनत्कुमारजी ने कहा—हे द्विजोत्तम ! इस रीति से जो भी कोई इस अवन्ती की यात्रा करता है वह अवन्ती पुरी में निवास से समुत्पन्न पुण्य को पूर्ण रूप से प्राप्त कर लिया करता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है । वह बहुत—से भोगों को भोग करके तथा धन—दारा आदि की प्राप्ति करके समस्त प्रकार के पापों का नाशकर विशुद्ध आत्मा वाला होकर अन्त में मृत्यु होने पर सीधा शिवपुर को ही गमन किया करता है । जो इस परम पवित्र-पुण्यमयी-पापों के हरण करने वाली कथा का श्रवण किया करते हैं उनको इस लोक में और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं है । यह महा माहात्म्य शिव की भक्ति को बढ़ाने वाला है—यश की वृद्धि करने वाला है तथा पुण्य का भी वर्धन करने वाला है । जो इसका स्वयं भक्ति की भावना से श्रवण किया करता है अथवा दूसरों को श्रवण कराया करता है वह अपने कुल का भली भाँति उद्धार करके स्वयं श्रीहरि के पद की प्राप्ति किया करता है ॥८८-९०॥

---

## ७९—गङ्गेश्वरमाहात्म्यवर्णन

द्वाचत्वारिंशत देवं गङ्गेश्वरमथो शृणु ।
यस्य दर्शनमात्रेणसर्वतीर्थ फलं लभेद् ।
ध्रुवाधार जगद्योनेः पद नारायणस्य तु ॥१
पदात्प्रवृत्ता या देवी गङ्गा त्रिपथगा नदी ।
सा प्रविश्य सुधायोनिं सोममाधारमभ्रसाम् ॥२
ततः सम्वर्द्धं मानार्करश्मिसङ्गनिपावनी ।
पपात मेरुपृष्ठे च सा चतुर्धा ततो ययौ ॥३
मेरुकूटतटान्तेभ्यो निपतन्ती यशस्विनी ।
विकीर्यमाणसलिला निरालम्बा पपात सा ॥४

मन्दरादिषु शैलेषु प्रविभक्तोदकासमम् ।
तत्र सीतेतिविख्याता ययौ चैत्ररथम्वनम् ॥५
तत्प्लावयित्वा च ययावरुणोद सरिद्वरा ॥६
तथ वालकनन्दाख्या दक्षिणे गन्धमादने ।
मेरुपादवनं गत्वा नन्दने देवनन्दने ॥७

श्रीहर ने कहा—इसके अनन्तर अब आप व्यालीसवें अध्याय में गणेश्वर देव के विषय में श्रवण करिए जिस के दर्शन मात्र से ही सब तीर्थों का फल मनुष्य प्राप्त कर लिया करता है। इस सम्पूर्ण जगत् की योनि अर्थात् समुत्पत्ति स्थल भगवान् नारायण का पद ( चरण ) ही इसका ध्रुव ( निश्चित ) आधार है। जो देवी भगवान् के पद से प्रवृत्त हुई गङ्गा त्रिपथगा ( तीन मार्गों में गमन करने वाली ) नदी है। उस गङ्गा ने जलों के आधार और सुधा का उत्पत्ति स्थान सोम में प्रवेश किया। इसके पश्चात् सूर्य्य की किरणों की सद्गति से पावन हो जाने वाली वह सम्बर्द्धमान होती हुई मेरु पर्वत के पृष्ठ भाग में गिरी थी। वहाँ से वह चार मार्गों में होकर गयी। वह यशस्विनी मेरु पर्वत के कूट तटान्तों से गिरती हुई फैले हुए जल वाली बिना अवलम्ब वाली गिरी। मन्दर आदि पर्वतों में प्रविभक्त होती हुई अर्थात् विभक्त जलों वाली होकर वहाँ पर 'सीता'—इस नाम से विख्यात हुई और वह चैत्ररथ वन में गयी। उस वन को प्लावित करके यह सरिताओं में परम श्रेष्ठ नदी अरुणोद को गमन कर गयी। दक्षिण गन्ध मादन पर्वत में यह अलकनन्दा नाम वाली हो गई। मेरुपाद के वन में जाकर फिर यह देवों का आनन्द देने वाले नन्दन वन में चली गयी थी ॥१-७॥

मानसञ्च महावेगात्प्लावयित्वासरोवरम् ।
तस्माच्चशैलराजानं रम्यत्रिशिखरं गता ॥८
तस्माच्च पर्वताः सर्वे प्लाविताःस्तत्क्षणात्प्रिये ! ।
तान्प्लावयित्वा सम्प्राप्ता हिमवन्तं महागिरिम् ॥९
मया धृता च तत्रैव जटाजूटेन पार्वति ! ।
न मुक्ता च यदा गंगा तदा क्रुद्धा ममोपरि ॥॥१०

गात्राणि प्लावयामास मदीयानि वरानने ।
मया च रुद्धाक्रोधेन जटामध्येयशस्विनि ।।११
तत्रैव सा तपश्चक्रे बहुकल्पशतानि च ।
भगीरथेनोपवासैः स्तुत्याचाराधितोह्यहम् ।।१२
तदामुक्ता मया देविगङ्गात्रिपथगामिनी ।
महाकालमनुप्राप्ता प्लावयित्वोत्तरान्कुरुन् ।।१३
समुद्रमहिषी जाता प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
सर्वासामुत्तमागगा समुद्रेण कृतातदा ।
स तया सहितो रेमे समुद्रः सरिताम्पतिः ।।१४

इसके अनन्तर यह अपने महान् वेग से मान सरोवर को एक दम प्लावित करके उस स्थान से परम रम्य तीन शिखरों वाले शैलराज पर पहुँच गयी । हे प्रिये ! वहाँ से इसने क्षण मात्र में ही समस्त पर्वतों को प्लावनि कर दिया । उन सब पर्वतों को सम्प्लावित करके महान् पर्वत हिमवान् में यह प्राप्त हो गई । हे पार्वति ! वहीं पर मैंने अपनी जटाजूट के द्वारा इसको धारण किया था । जब मैंने इसको अपनी जटाओं से नहीं छोड़ा था तो यह मेरे ऊपर बहुत ही क्रुद्ध हो गई । हे वरानने ! इसने मेरे समस्त अङ्गों को प्लावित कर दिया । हे यशस्विनि ! मैंने भी क्रोध से अपनी जटाओं के मध्य में इसको अवरुद्ध कर लिया । वहीं पर इसने बहुत से सैकड़ों कल्पों तक तपस्या की थी । इधर राजा भगीरथ ने उपवासों के द्वारा और स्तवन से मेरी परम उत्कृष्ट आराधना की थी । उस समय में हे देवि ! इस त्रिपथ गामिनी गंगा को अपनी जटाओं से मुक्त किया था । वहाँ से मुक्त होकर यह महाकाल में प्राप्त हुई और इसने उत्तर कुरुओं को प्लावित कर दिया । प्राणों से भी अधिक प्रिया यह समुद्र की महिषी हो गई । उसी समय में समुद्र ने नदियों में गङ्गा को सर्वोत्तम बना दिया । सरिताओं के स्वामी समुद्र इस गंगा के साथ रमण करता था ।।८-१४।।

ततः कदाचिद्ब्रह्माणमुपामाञ्चक्रिरे सुरा ।
तथार्णवोजगामाथ ब्रह्मलोकं सनातनम् ।

गंगया सहितो देवि ! दर्शनार्थं महोत्सवे ॥१५
अथ गंगा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात्पितामहम् ।
तस्यावासः समुद्धूतं मारुतेन शशिप्रभम् ॥१६
ततोऽभवन्सुरगणाः सहसाऽवाङ्मुखास्तदा ।
महाभिषस्तु राजर्षिर्निःशङ्को दृष्टवान्नदीम् ॥१७
तस्य भावं विदित्वाऽथ ब्रह्मणा स तिरस्कृतः ।
उक्तस्तु जातो मर्त्येषु पुनर्लोकानवाप्स्यसि ॥१८
गंगाशप्ताथ क्रुद्धेन समुद्रेणयशस्विनि ।
मां विहायान्यसक्तासितस्माद्यास्यसिमानुषम् ॥१९
लोकमल्पायुषदीना तत्रदुःखमवाप्स्यसि ।
तं शापं दारुणं श्रुत्वा गंगावचनमब्रवीत् ॥२०
विनापराधाच्छप्ताहं कस्माद्वै देवसंसदि ।
पतिव्रता पतिप्राणा पतिना परमार्थतः ॥२१

इसके अनन्तर किसी समय में सुरगणों ने ब्रह्माजी की उपासना की थी। उसी अवसर पर समुद्र उस सनातन ब्रह्मलोक मे गया। हे देवि ! इस समुद्र के साथ मे यह गंगा भी थी और उस महोत्सव में दर्शन के लिये गंगा को साथ मे लेकर वहाँ पहुँच गया। इसके अनन्तर वह सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा पितामह के समीप मे पहुंच गयी। मारुत ने उसका वास(वस्त्र)शशि प्रभु की ओर अमुद्धूत (उड़ाकर फेंक) कर दिया। तब तो सभी सुरगण सहसा नीचे की ओर मुख करने वाले हो गये। राजर्षि महाभिष ने निःशङ्क होकर नदी का देखा। उसके भाव को जानकर ब्रह्माजी ने उसका तिरस्कार कर दिया और उस को कहा गया कि मनुष्यों में समुत्पन्न होकर फिर लोकों को प्राप्त करेगा। हे यशस्विनि ! इधर परम क्रुद्ध होकर समुद्र ने गंगा को शाप दे दिया था कि तू मुझ को छोड़कर अन्य में समासक्त हो गई है इस लिये मनुष्य लोक को प्राप्त हो जायगी जो कि अल्प आयु वाला है। वहाँ पर दीन होकर अत्यन्त दुःख को प्राप्त करेगी। उस परम दारुण शाप को सुनकर गंगा यह वचन बोली। बिना ही अपराध के इस देवो की सभा मे क्यों मुझे शाप दिया

गया है। मैं तो पतिव्रता और पति को ही प्राण समझने वाली महिला हूँ और परमार्थ से पति के ही साथ रहने वाली हूँ ॥१५-२१॥

प्रमादाद्वस्त्रमुद्धूतं वायुना व्यापकेतु न।
प्रत्युवाच ततो ब्रह्मा तां नदीलोकपावनीम् ॥२२
वसूना कारणाद्देवि! शप्ता यस्मान्महानदि!।
भाव्यर्थे तोयनिधिना तस्माच्छीघ्रं व्रजाधुना ॥२३
महाकाल वने रम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते।
शिप्राया दक्षिणे भागे विद्यते लिंगमुत्तमम् ॥२४
सर्वसिद्धिकरं पुण्य सर्वपातकनाशनम्।
तमाराधय यत्नेन स ते दास्यति वाञ्छितम् ॥२५
पितामहवचः श्रुत्वा तुष्टा त्रिपथगामिनी।
गमनं तत्र मेऽभीष्टं विद्यते यत्सखी मम।
शिप्राऽपि मे प्रिया पुण्या महापातकनाशिनी ॥२६
इति सञ्चिन्त्य मनसा दिव्यादेवनदीतदा।
आजगाममहाकाले ह्यपश्यल्लिगमुत्तमम् ॥२७
पूजयामास पयसा दिव्येन विधिनातदा।
दृष्ट्वा शिप्रानदी तत्र सश्लेषचाभवत्तयो. ॥२८

इस व्यापक रहने वाले वायु ने प्रमाद से मेरे वस्त्र को अद्भूत कर दिया अर्थात् उड़ाकर उस ओर में कर दिया। इसके पश्चात् उस लोक पावनी नदी से कहा—हे देवि! हे महा नदि! कारण यह है कि वसुगण के कारण से तुझे यह शाप दिया गया है और आगे होने वाले अर्थ में ही तोयनिधि ने ऐसा किया है अतएव अब तुम बहुत ही शीघ्र सिद्ध और गन्धर्वों के द्वारा सेवित परम रम्य महाकाल वन में जाकर पहुँच जाओ। वहाँ पर शिप्रा नदी के दक्षिण भाग में एक उत्तम शिवजी का लिंग विद्यमान है। वह समस्त सिद्धियों के करने वाला और सभी पातकों के विनाश करने वाला है। तुम वहाँ जाकर उसी लिंग की समाराधना यत्न पूर्वक करो। वह आपको तुम्हारा वाञ्छित मनोरथ पूरा कर देंगे। पितामह के इस वचन का श्रवण करके त्रिपथ गामिनी गंगा परम

गंगया सहितो देवि ! दर्शनार्थं महोत्सवे ॥१५
अथ गंगा सरिच्छ्रेष्ठा समुपायात्पितामहम् ।
तस्यावासः समुद्धूतं मारुतेन शशिप्रभम् ॥१६
ततोऽभवन्सुरगणाः सहसाऽवाङ्मुखास्तदा ।
महाभिषस्तु राजर्षिर्निःशङ्को दृष्टवान्नदीम् ॥१७
तस्य भावं विदित्वाऽथ ब्रह्मणा स तिरस्कृतः ।
उक्तस्तु जातो मर्त्येषु पुनर्लोकानवाप्स्यसि ॥१८
गंगाशप्तायक्रुद्धेन समुद्रेणयशस्विनि ।
मां विहायान्यसक्तासितस्माद्यास्यसिमानुषम् ॥१९
लोकमल्पायुषदीना तत्रदुःखमवाप्स्यसि ।
तं शापं दारुणं श्रुत्वा गंगावचनमब्रवीत् ॥२०
विनापराधाच्छप्ताहं कस्माद्वै देवसंसदि ।
पतिव्रता पतिप्राणा पतिना परमार्थतः ॥२१

इसके अनन्तर किसी समय में सुरगणों ने ब्रह्माजी की उपासना की थी। उसी अवसर पर समुद्र उस सनातन ब्रह्मलोक में गया। हे देवि ! इस समुद्र के साथ में यह गंगा भी थी और उस महोत्सव में दर्शन के लिये गंगा को साथ में लेकर वहाँ पहुँच गया। इसके अनन्तर यह सरिताओं में श्रेष्ठ गंगा पितामह के समीप में पहुँच गयी। मारुत ने उसका वास(वस्त्र)शशि प्रभु की ओर समुद्धूत (उडाकर फैंक) कर दिया। तब तो सभी सुरगण सहसा नीचे को ओर मुख करने वाले हो गये। राजर्षि महाभिष ने निःशङ्क होकर नदी का देखा। उसके भाव को जानकर ब्रह्माजी ने उसका तिरस्कार कर दिया और उस को कहा गया कि मनुष्यों में समुत्पन्न होकर फिर लोकों को प्राप्त करेगा। हे यशस्विनि ! इधर परम क्रुद्ध होकर समुद्र ने गंगा को शाप दे दिया था कि तू मुझ को छोडकर अन्य में समासक्त हो गई है इस लिये मनुष्य लोक को प्राप्त हो जायगी जो कि अल्प आयु वाला है। वहाँ पर दीन होकर अत्यन्त दुःख को प्राप्त करेगी। उस परम दारुण शाप को सुनकर गंगा यह वचन बोली। बिना ही अपराध के इस देवों की सभा में क्यों मुझे शाप दिया

गया है। मैं तो पतिव्रता और पति को ही प्राण समझने वाली महिला हूँ और परमार्थ से पति के ही साथ रहने वाली हूँ ॥१५-२१॥

प्रमादाद्वस्त्रमुद्धूतं वायुना व्यापकेतु न।
प्रत्युवाच ततो ब्रह्मा तां नदीलोकपावनीम् ॥२२
वसूनां कारणाद्देवि ! शप्ता यस्मान्महानदि !।
भाव्यर्थं तोयनिधिना तस्माच्छीघ्रं व्रजाधुना ॥२३
महाकाल वने रम्ये सिद्धगन्धर्वसेविते।
शिप्राया दक्षिणे भागे विद्यते लिंगमुत्तमम् ॥२४
सर्वं सिद्धिकरं पुण्य सर्वपातकनाशनम्।
तमाराधय यत्नेन स ते दास्यति वाञ्छितम् ॥२५
पितामहवचः श्रुत्वा तुष्टा त्रिपथगामिनी।
गमनं तत्र मेऽभीष्टं विद्यते यत्सखी मम।
शिप्राऽपि मे प्रिया पुण्या महापातकनाशिनी ॥२६
इति सञ्चिन्त्य मनसा दिव्यादेवनदीतदा।
आजगाममहाकाले ह्यपश्यल्लिंगमुत्तमम् ॥२७
पूजयामास पयसा दिव्येन विधिनातदा।
दृष्ट्वा शिप्रांतस्थौ तत्र संश्लेषं चाभवत्तयोः ॥२८

इस व्यापक रहने वाले वायु ने प्रमाद से मेरे वस्त्र को उद्धूत कर दिया अर्थात् उड़ाकर उस ओर में कर दिया। इसके पश्चात् उस लोक पावनी नदी से कहा—हे देवि ! हे महा नदि ! कारण यह है कि वसुगण के कारण से तुझे यह शाप दिया गया है और आगे होने वाले अर्थ में ही तोयनिधि ने ऐसा किया है अतएव अब तुम बहुत ही शीघ्र सिद्ध और गन्धर्वों के द्वारा सेवित परम रम्य महाकाल वन में जाकर पहुँच जाओ। वहाँ पर शिप्रा नदी के दक्षिण भाग में एक उत्तम शिवजी का लिंग विद्यमान है। वह समस्त सिद्धियों के करने वाला और सभी पातकों के विनाश करने वाला है। तुम वहाँ जाकर उसी लिंग की समाराधना यत्न पूर्वक करो। वह आपको तुम्हारा वाञ्छित मनोरथ पूरा कर देंगे। पितामह में इस वचन का श्रवण करके त्रिपथ गामिनी गंगा परम

सन्तुष्ट हो गई। वहाँ का गमन करना तो मुझे परम अभीष्ट है क्यो कि यहाँ पर मेरी सखी विद्यमान है। शिप्रा भी मेरी बहुत प्यारी है और परम पुण्यमयी तथा महान् पातकों के नाश करने वाली है। उस समय में उस दिव्य देव नदी ने अपने मन से इस प्रकार से चिन्तन करके वह महाकाल में आगई थी और वहाँ पर उत्तम लिंग का दर्शन किया। उस समय में उसने विधि पूर्वक परम दिव्य पय से उनका पूजन किया। वहाँ पर अपनी सखी शिप्रा को देखा और उन दोनो का वहाँ पर संश्लेष हुआ अर्थात् सम्मिलन हो गया था ॥२२-२८॥

ततः प्रभृतिसञ्जाता साशिप्रापूर्ववाहिनी ।
त्रिपुलोकेषुविख्यातोदेवो ग गेश्वरः स्वयम् ।
ग गयाऽऽराधितो यस्मात्समीहितफलप्रदः ॥२९
संस्तुता देवगन्धर्वैर्गङ्गा देवनदी तदा ।
ऋषिभिर्वालखिल्याद्यैस्तयान्यैमु निभिमु दा ॥३०
समुद्रस्तत्र सम्प्राप्तो मानिता सा महानदी ।
लिंगेनोक्ता तदा ग ंगा कलया स्थीयतामिति ॥३१
तत्समीपे महापुण्ये यावत्तिष्ठति मेदिनी ।
अ ंगीकृत ंसमुद्रे ण यथोक्तञ्चतथास्त्विति ॥३२
एवमुक्त्वा गता ग ंगा कलया तत्र संस्थिता ।
ग गेश्वर ं तु यः पश्येत्स्नात्वा शिप्राम्भसि प्रिये ! ॥३३
गो सहस्रफलं तस्य जायते नात्र संशयः ।
सर्व तीर्थ फलं तस्य सर्वधर्मफल तथा ॥३४
सर्व यज्ञफल ं सम्यक्सर्व दानफल ं तथा ।
सर्व योगफल ं देवि ! प्राप्नोत्येव निरन्तरम् ॥३५

तभी से लेकर वह शिप्रा नदी पूर्व की ओर बहन करने वाली हो गई। तीनों लोकों में स्वयं देव भी तभी से गंगेश्वर नाम से विख्यात हो गये। क्यों कि वह देव गंगा के द्वारा समाराधित हुए अतएव सभी हित फलों के देने वाले हो गये। उस समय में देवों और गन्धर्वों के द्वारा वह देव नदी गंगा से संस्तुत हुई और बालखिल्य आदि ऋषियों ने एवं

अन्य मुनियों ने भी परम हर्ष के साथ गंगा का स्तवन किया। वहाँ पर समुद्र भी सम्प्राप्त हो गया और उसके द्वारा भी उस महा भेदी का सम्मान किया गया। उस अवसर पर शिव लिंग ने कहा कि एक कला से सस्थित रहो। महा पुण्यमय उनके समीप में जब तक भेदनी स्थित रहा —समुद्र ने जैसा भी कहा गया उसे 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होगा—यह कहकर स्वीकार कर लिया। इस प्रकार से कहकर गंगा चली गयी और एक कला से यहाँ पर सस्थित हो गई। हे प्रिये! शिप्रा नदी के जल में स्नान करके जो भी कोई भगवान् गणेश्वर का दर्शन करता है उसको एक सहस्र गौओं के दान करने का फल प्राप्त होता है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उस पुरुष को समस्त तीर्थों का पुण्य फल होता है तथा सब तरह के धर्मों का फल मिला करता है। सम्पूर्ण यज्ञों के करने का फल और भली भाँति किये गये सब प्रकार के दानों का फल प्राप्त होता है। हे देवि! यह मनुष्य सब भोगों का फल निरन्तर ही अवश्य प्राप्त कर लेता है॥२६-३५॥

तत्र तीर्थानि सुभगे! पृथिव्यां यानि कानिचिद्।
धर्मारण्य फल्गुतीर्थं पुष्कर नैमिष गया॥३६
प्रयागञ्च कुरुक्षेत्र केदारममरेश्वरम्।
चन्द्रभागा विपाशा च सरयूर्देविका कुहू.॥३७
गोदावरी शतद्रुश्च बाहुदा वेत्रवत्यपि।
सर्वा एवात्र सरितः सगताः सन्ति न गया॥३८
गुप्तानिपुण्यतीर्थानि सिद्धक्षत्राणिवैबहि।
तत्रगत्वाणिनिष्टन्ति कलामात्रेणपार्वति॥३९
एतेषाफलमाप्नोतियः पश्यतिनमाहित.।
स्नात्वागणेश्वर देव सत्यमेतन्मयोदितम्।
अतः पुण्यतमं स्थानं गीयते गणनिन्दते!॥४०
एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः।
गणेश्वरस्य देवस्य शृणु गारेदश्वरम्परम्॥४१

सन्तुष्ट हो गई। वहाँ का गमन करना तो मुझे परम अभीष्ट है क्यों कि वहाँ पर मेरी सखी विद्यमान है। शिप्रा भी मेरी बहुत प्यारी है और परम पुण्यमयी तथा महान् पातकों के नाश करने वाली है। उस समय में उस दिव्य देव नदी ने अपने मन से इस प्रकार से चिन्तन करके वह महाकाल में आगई थी और वहाँ पर उत्तम लिंग का दर्शन किया। उस समय में उसने विधि पूर्वक परम दिव्य पय से उनका पूजन किया। वहाँ पर अपनी सखी शिप्रा को देखा और उन दोनों का वहाँ पर संश्लेष हुआ अर्थात् सम्मिलन हो गया था ॥२२-२८॥

ततः प्रभृतिसञ्जाता साशिप्रापूर्ववाहिनी ।
त्रिपुलोकेषुविख्यातोदेवो गंगेश्वरः स्वयम् ।
गंगयाऽऽराधितो यस्मात्समीहितफलप्रदः ॥२९
संस्तुता देवगन्धर्वैर्गङ्गा देवनदी तदा ।
ऋषिभिर्वालखिल्याद्यैस्तथान्यैर्मुनिभिर्मुदा ॥३०
समुद्रस्तत्र सम्प्राप्तो मानिता सा महानदी ।
लिंगेनोक्ता तदा गंगा कलया स्थीयतामिति ॥३१
तत्समीपे महापुण्ये यावत्तिष्ठति मेदिनी ।
अंगीकृतं समुद्रेण यथोक्तञ्चतथास्त्विति ॥३२
एवमुक्त्वा गता गंगा कलया तत्र संस्थिता ।
गंगेश्वरं तु यः पश्येत्स्नात्वा शिप्राम्भसि प्रिये ! ॥३३
गो सहस्रफलं तस्य जायते नात्र संशयः ।
सर्वतीर्थफलं तस्य सर्वधर्मफलं तथा ॥३४
सर्वयज्ञफलं सम्यक्सर्वदानफलं तथा ।
सर्वयोगफलं देवि ! प्राप्नोत्येव निरन्तरम् ॥३५

तभी से लेकर वह शिप्रा नदी पूर्व की ओर वहन करने वाली हो गई। तीनों लोकों में स्वयं देव भी तभी से गंगेश्वर नाम से विख्यात हो गये। क्यों कि वह देव गंगा के द्वारा समाराधित हुए अतएव सभी हित फलों के देने वाले हो गये। उस समय में देवों और गन्धर्वों के द्वारा वह देव नदी गंगा से संस्तुत हुई और बालखिल्य आदि ऋषियों ने एवं

अन्य मुनियों ने भी परम हर्ष के साथ गंगा का स्तवन किया। वहाँ पर समुद्र भी सम्प्राप्त हो गया और उसके द्वारा भी उस महा नदी का सम्मान किया गया। उस अवसर पर शिव लिंग ने कहा कि एक कला से संस्थित रहो। महा पुण्यमय उसके समीप में जब तक मेदनी स्थित रहा —समुद्र ने जैसा भी कहा गया उसे 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होगा–यह कहकर स्वीकार कर लिया। इस प्रकार से कहकर गंगा चली गयी और एक कला से वहीं पर संस्थित हो गई। हे प्रिये! शिप्रा नदी के जल में स्नान करके जो भी कोई भगवान् गणेश्वर का दर्शन करता है उसको एक सहस्र गौओं के दान करने का फल प्राप्त होता है–इसमें कुछ भी संशय नहीं है। उस पुरुष को समस्त तीर्थों का पुण्य फल होता है तथा सब तरह के धर्मों का फल मिला करता है। सम्पूर्ण यज्ञों के करने का फल और भली भाँति किये गये सब प्रकार के दानों का फल प्राप्त होता है। हे देवि! वह मनुष्य सब योगों का फल निरन्तर ही अवश्य प्राप्त कर लेता है ॥२६-३५॥

सर्व तीर्थानि सुभगे! पृथिव्यां यानि कानिचित्।
धर्मारण्य फल्गुतीर्थं पुष्कर नैमिष गया ॥३६
प्रयागञ्च कुरुक्षेत्र केदारममरेश्वरम्।
चन्द्रभागा विपाशा च सरयूर्देविका कुहूः ॥३७
गोदावरी शतद्रुश्च बाहुदा वेत्रवत्यपि।
सर्वा एवात्र सरितः सगताः सन्ति न यया ॥३८
गुप्तानिपुण्यतीर्थानि सिद्धआपिचैवहि।
सन्नवाणितिष्ठन्ति कलामात्रेणपावति ॥३९
एतेषांफलमाप्नोतिमः पदयागिमाहितः।
स्नात्वाग गेश्वरं देव सत्यमेतन्मयोदितम्।
अतः पुण्यतमं स्थानं गीयते गणविन्दते! ॥४०
एष ते कथितो देवि प्रभावः पापनाशनः।
गणेश्वरस्य देवस्य श्रृणु गांगेश्वरेश्वरम् ॥४१

हे सुभगे ! इस पृथिवी में जो कोई भी तीर्थ हैं जैसे धर्म्मारण्य—फल्गुतीर्थ—केदार—अमरेश्वर—चन्द्रभागा—विपाशा—सरयू—देविका कुहू—गोदावरी—शतद्रु—वाहुदा—वेत्रवती ये सभी सरिताऐं यहाँ पर गङ्गा के साथ सङ्गत हुई हैं। जो गुप्त एवं पुण्य तीर्थ हैं तथा सिद्धक्षेत्र हैं वहाँ पर वे सभी स्थित रहा करते हैं। हे पार्वति ! कला मात्र से वहाँ पर सभी की संस्थिति है जो समाहित होकर दर्शन किया करता है वह इन सबका फल प्राप्त किया करता है। पहिले उसे गङ्गेश्वर देव का स्नान करके दर्शन करना चाहिए—सर्वथा सत्य ही मैंने कहा है। हे गण वन्दिते ! इसी लिए यह परम पुण्यतम स्थान गाया जाता है। हे देवि ! यह पापों के नाश करने वाला श्री गङ्गेश्वर देव का प्रभाव मैंने वर्णन कर दिया है। अब परम अङ्गारेश्वर का श्रवण करो ॥३६-४१॥

---

## ८०—प्रयागेश्वरमाहात्म्यवर्णन

प्रयागेश्वरसञ्ज्ञं तु सर्वकामकरं परम् ।
अष्टाधिकं विजानीहि पञ्चाशत्तममीश्वरम् ॥१
आसीत्प्रथमकल्पे तु मनुः स्वायम्भुवःपुरा ।
तस्यप्रियव्रतः पुत्रोयज्वापरमधार्मिकः ॥२
स चेष्ट्वाबहुभिर्यज्ञैः समाप्तवरदक्षिणैः ।
सप्तद्वीपेषु सम्प्राप्य भरतादीन्सुतान्प्रिये ॥३
स्वयं विशाला बदरी गत्वा तेपे महत्तपः ।
कालेन बहुना तत्रनारदः समुपस्थितः ॥४
पूजितो विप्रराघेण राज्ञा प्रियव्रतेन च ।
स पृष्टः पूजयित्वा तु किमाश्चर्यंवदस्वमे ॥५
इत्युक्तः कथयामास नारदो मुनिसत्तमः ।
श्वेतद्वीपे मया राजन्कन्या दृष्टा सरोवरे ॥६
सा च पृष्टा विशालाक्षी कस्मात्त्वमसि निर्जने ।
कासि भद्रे ! कथं वासि किं वा कार्यमिह त्वया ॥७

श्री ईश्वर ने कहा—यह प्रयागेश्वर नाम वाले प्रभु समस्त कामनाओं के पूर्ण करने वाले सर्वोपरि देव हैं। इन ईश्वर को अट्ठावन जानना चाहिए। पहिले प्रथम कल्प में स्वायाम्भुव मनु थे। उनके प्रियव्रत नाम वाला पुत्र था जो यजन करने वाला तथा परम धार्मिक हुआ था। उसने बहुत से यज्ञों का यजन किया था और परम श्रेष्ठ दक्षिणाएँ देकर उन्हें सांग समाप्त किया था। हे प्रिये! सात द्वीपों में भरत आदि सुतों की प्राप्ति उसने की थी। फिर वहाँ स्वयं परम विशाल बदरी में जाकर तपश्चर्या करने लग गया था। अधिक समय जब व्यतीत होगया तो वहाँ पर देवर्षि नारद जी समागत हो गये थे। राजा प्रियव्रत के द्वारा विष्टर एवं अर्घ्य से उनका पूजन किया गया था। पूजा करके राजा ने उनसे पूछा था कि आश्चर्य क्या है—यह मुझे आप बतलाइये। जब इस तरह से कहा गया था तो मुनियों में परम श्रेष्ठ नारद जी ने कहा था—हे राजन्! मैंने श्वेतद्वीप में सरोवर में एक कन्या को देखा था और मैंने उससे पूछा था कि इस निर्जन वन में आप किस कारण से निवास कर रही हैं। मैंने उस विशाल नेत्रों वाली से यह भी पूछा था—हे भद्रे! आप कौन हैं और यहाँ पर कैसे हैं। मुझे आपके लिए क्या सहायता करनी चाहिए ॥१-७॥

*कर्तव्यं चारुसर्वाङ्गि तन्ममाचक्ष्व शोभने! ।*
*एवमुक्तामयासाहिमादृष्ट्वामीलितेक्षणम् ।।८*
*स्मृत्वा तूष्णीस्थिता यावत्तावन्मे ज्ञानमुत्तमम् ।*
*विस्मृताः सर्ववेदाश्च सर्वशास्त्राणि चैव हि ।।९*
*ततोऽहं विस्मयाविष्टश्चिन्तामोहसमन्वितः ।*
*तामेवशरणं गत्वायावत्पश्यामिपार्थिव ।।१०*
*तावद्दिव्यःपुमांस्तस्याःशरीरेसमदृश्यत ।*
*तस्यापिपुंसोहृदयेद्वितीयस्तस्यचोरसि ।।*
*तस्यापि हृदये चान्यस्तृतीयस्तु व्यवस्थितः ।।११*
*ततः पृष्टा मया देवी सा कुमारी कथञ्चन ।*
*वेदा नष्टाममाशेषा भद्रे किन्नु हिकारणम् ।।१२*

माताहं सर्ववेदानां सावित्रानाम नामतः।
मां न जानासियेन त्वमतोवेदा हृतास्तव ॥१३
एवमुक्ते मया पृष्टा विस्मयेन महीपते!।
वेदानां त्वं तु माता वैकथयस्वममानघे ॥१४
त्वदीयहृदये देवि! क एते पुरुषाख्रयः ॥१५

मैंने उससे कहा था—हे शोभने! आपके तो सभी अंग प्रत्यंग परम रम्य हैं। आप स्पष्ट बतलाइये। इस तरह से मेरे द्वारा कही गयी उसने मीलित नेत्रों वाले मुझको देखकर वह स्मरण करके तब तक चुप चाप स्थित रह गयी थी जब तक मेरा उत्तम ज्ञान—समस्त वेद और सब शास्त्र विस्मृत हुए थे। इसके अनन्तर मैं परम विस्मय से समाविष्ट होकर चिन्ता और मोह से समन्वित हो गया था। हे पार्थिव! अब तक मैं उसी की शरणागति में जाकर देखता हूँ कि तब तक उसके शरीर में एक परम दिव्य पुमान् मुझे दिखलाई दिया था। उस पुरुष के भी हृदय में दूसरा और उस दूसरे के भी उरःस्थल में एक अन्य ही पुमान् था ऐसे यह तीसरा वहाँ पर व्यवस्थित था। इसके पश्चात मैंने फिर उस कुमारी देवी से किसी तरह पूछा था—हे भद्रे! मेरे समस्त वेद नष्ट हो गये हैं—इसका क्या कारण है? आप मुझे कृपा करके बतलाइये। उस कन्या ने कहा—मैं समस्त वेदों की माता हूँ। मेरा नाम सावित्री है। तुम मुझको नहीं जानते हो, इसीलिए आपके समस्त वेद हृत कर लिए गये हैं। हे महीपते! इस प्रकार से कहने पर मैंने अत्यन्त विस्मय से उससे पूछा था—हे अनघे जब आप समस्त वेदों की माता हैं तो मुझे यही बतलाओ कि हे देवि! आपके हृदय में ये तीन पुरुष कौन हैं?॥८-१५॥

य एष मच्छरीरस्थः शुभाङ्गश्चारुलोमनः।
एष ऋग्वेदनामा तु यजुर्वेदो द्वितीयकः ॥१६
सामवेदस्तृतीयस्तु त्रयो वेदा मयि स्थिताः।
अमोऽग्नयस्त्रयो देवा मच्छरीरे स्थिता द्विज! ॥१७
इत्युक्त्वा सा तदा कन्या पश्यतो मम भूपते!।
अन्तर्द्धानं गता सद्यस्ततोऽहं विस्मितोऽभवम् ॥१८

किं करोमि क्व गच्छामि शरणं यामि कं प्रभुम् ।
कथमाविर्भविष्यन्ति वेदाः शास्त्राणि साम्प्रतम् ॥१९
कामिकस्तीर्थराजस्तुप्रयागःश्रूयते श्रुतौ ।
अहं तत्रगमिष्यामिज्ञानं सम्यग्भविष्यति ॥२०
नष्टवेदेन रैम्येण प्राप्ता सिद्धिरनुत्तमा ।
सावित्री श्रूयते तत्र अक्षयवटसन्निधौ ॥२१

इस कन्या ने कहा—जो यह मेरे शरीर मे स्थित है जिसके परम शुभ अंग हैं और परम चारु एवं शोभा वाला है यही ऋग्वेद नाम वाला है । दूसरा यजुर्वेद है और तीसरा सामवेद है । ऐसे ये तीनों वेद मुझमे स्थित हैं । हे द्विज ! तीनो अग्नियाँ—तीनो देव मेरे शरीर मे स्थित रहा करते हैं । उसी समय मे यह कह कर वह कन्या हे भूते ! मेरे देखते-देखते तुरन्त ही अन्तर्धान हो गई थी । तब से मैं परम विस्मित हो गया हूँ । क्या करूँ—कहाँ पर जाऊँ और किस प्रभु की शरण ग्रहण करूँ । मेरे ये सब वेद तथा शास्त्र अब कैसे आविर्भूत होंगे । श्रुति मे ऐसा सुना गया है कि तीर्थों का राजा प्रयाग कामनाओं की पूर्ति करने वाला है । मैं तो वहीं पर जाऊँगा जिससे भली भाँति मुझे पुनः ज्ञान हो जायगा । वेदों के नष्ट होने पर रैम्य के द्वारा प्राप्त हुई सिद्धि भी उत्तमा नहीं होती है । वहाँ पर अक्षय वट की सन्निधि मे सावित्री को सुना जाता है अर्थात् वह वहाँ पर विद्यमान रहती हैं ऐसा सुनते हैं ॥१९-२१॥

एवं मनसि सन्ध्यायगतोऽहं नृपसत्तम! ।
प्रयागं कामिकं तीर्थं सर्वदेवनमस्कृतम् ॥२२
तपस्तीव्रं मया तत्र तप्तं परमदुष्करम् ।
अथाजगाम राजेन्द्र प्रयागोमूर्तिमान्स्वयम् ॥२३
उक्तोऽहं प्रणयात्तेन न मांतापय नारद ।
ब्रह्मपुत्र! प्रयागोऽहं भीपितस्तपसा तव ॥२४
भवतः पार्श्वमायातः प्रणयेन तपोधन! ।
धन्योऽसिसर्वथा ब्रह्मंस्तपसाचविशेषतः ॥२५

मया सार्धं त्वयाब्रह्मन्! गतिःकार्याऽविकल्पतः।
महाकालवनेरम्येतत्रतेज्ञानमुत्तमम् ॥
भविष्यति न सन्देहो मम कीर्त्तिश्च सुस्थिरा ॥२६
एवं हि ब्रुवतस्तस्य प्रयागस्य नृपोत्तम! ।
प्रादुर्बभूव सहहा पीतवासा जनार्दनः ॥२७
शङ्खचक्रगदापाणिर्गरुडस्थो वियद्गतः।
उवाच मेघगम्भीरं वाक्यं स पुरुषोत्तमः ॥२८

हे नृपसत्तम ! इस प्रकार से मैंने मन मे अच्छी तरह से ध्यान करके मैं सब देव गणो के द्वारा नमस्कार किये हुए कामिक तीर्थ प्रयाग को गया था। वहाँ पर मैंने अत्यन्त दुष्कर तीव्र तप किया था। हे राजेन्द्र ! वहाँ पर स्वयं मूर्तिमान् प्रयाग मेरे समक्ष मे आ गये थे। उस तीर्थराज ने बहुत ही प्रेम के साथ मुझसे कहा था—हे नारद ! मुझको अधिक मतक्ष मत करो। हे ब्रह्मपुत्र ! मैं प्रयाग हूँ और आपके इस अत्युग्र तपस्या से मैं भीपित हो गया हूँ। हे तपोधन ! मैं प्रणय से आपके पास आगया हूँ। हे ब्रह्मन् ! आप सवथा धन्य हैं और इस तपश्चर्या से आप विशेष रूप से धन्य हो गये हैं। हे ब्रह्मन ! मेरे ही साथ आपको बिना किसी विकल्प के गमन करना चाहिए। महाकाल वन परम रम्य है वहाँ पर आपको उत्तम ज्ञान हो जायगा—इसमे कुछ भी सन्देह नही है और मेरी कीर्ति सुस्थिर है। हे नृपोत्तम! इस प्रकार से प्रयाग जब बोल ही रहा था कि सहमा पीताम्बर धारी भगवान् जनार्दन वहाँ पर प्रादुर्भूत हो गये थे। उन प्रभु के चारो हाथो मे शङ्ख—चक्र और गदा आदि आयुध थे—वे गरुड पर समासीन थे और आकाश मे ही स्थित दिखलाई दिये थे ॥२२-२८॥

एहि नारद! गच्छामः प्रयागो यत्र यास्यति।
कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा मया प्रोक्तो जनार्दनः ॥२९
ज्ञानं मे देहि देवेश! कथं यास्यामि तद्वनम्।
महाकालं जगन्नाथ श्रुतज्ञानविवर्जितः ॥३०

इत्युक्तः श्रीधरेणाह महाकालवनं नृप ।
आनीतस्तत्क्षणाच्छीघ्रं प्रयागसहितस्तदा ॥३१
घण्टेश्वरस्य पूर्वे तु नवनद्यास्तु दक्षिणे ।
तत्र लिङ्गमनादि तु ज्योतीरूपं सनातनम् ॥३२
प्रयागः पूजयामास पश्यतो मम भूपते ।
लिङ्गेनोक्तं प्रसन्नेन किमर्थं त्वमिहागतः ॥३३
प्रयाग! प्रयतो भूत्वा प्रसन्नोऽहं सदा तव ।
दर्शनं च मदीयं तु विफलं न भविष्यति ॥३४
इत्युक्तस्तेन लिंगेन मदर्थं प्रार्थितस्तदा ।
ज्ञानं देहि द्विजायास्मै नारदाय महात्मने ॥३५

वह पुरुषोत्तम प्रभु मेघ के समान गम्भीर वचन बोले थे—हे नारद ! आइए, चलते हैं जहाँ पर यह प्रयाग जायगा । भगवान् श्री कृष्ण के इस वचन को सुनकर मैंने भगवान् जनार्दन से कहा था—हे देवेश ! मुझे आप ज्ञान प्रदान करें, मैं उस वन मे महाकाल में कैसे जाऊंगा । हे जगन्नाथ ! मैं तो श्रुत के ज्ञान विवर्जित हो रहा हूँ । हे नृप ! मैंने जब यह कहा तो मैं भगवान् श्रीधर के द्वारा उसी समय मे तुरन्त ही प्रयाग के सहित शीघ्र ही महाकाल वन मे ले गया था । वहाँ पर घण्टेश्वर के पूर्व मे और नव नदी के दक्षिण भाग मे अनादि ज्योति रूप सनातन लिंग है । हे भूपते ! मेरे देखते ही हुए प्रयाग ने उसकी पूजा की थी । लिंग ने उस समय मे परम प्रसन्न होकर प्रयाग से कहा था—हे प्रयाग ! तुम यहाँ किसलिए समागत हुए हो ? प्रयत हो जाओ । मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ । और मेरा यह दर्शन कभी भी विफल नहीं होगा । इस तरह से जब लिंग ने कहा तो प्रयाग ने मेरे लिए उसी समय मे प्रार्थना की थी कि इस द्विज के लिये जिसका नाम नारद है और जो महान् आत्मा वाला है आप ज्ञान प्रदान कीजिए ॥२६-३५॥

नष्टा वेदाश्च शास्त्राणि साविश्या दर्शनात्प्रभो! ॥३६
ततो लिंगात्समुत्तस्थौब्रह्मा वेदैर्वृतस्तदा ।
षडङ्गैःसरहस्यैश्च पुराणैःसहितस्तदा ॥३७

इत्युक्तोहं तदा देव्या सावित्र्या नृपसत्तम! ।
लिंगस्यास्य प्रभावेण प्रयागाभ्यर्थितस्य च ॥३८
प्रतिभास्यन्ति ते वेदा धर्मशास्त्राणिनारद! ।
इत्युक्ते वचने भूयःप्राप्ता वेदा मया नृप ॥३९
ज्ञानं षडंगसहितं शास्त्राणिविविधानिच ।
लब्धज्ञानेन राजेन्द्र मयाप्रोक्तंवचस्तदा ॥४०
प्रयागेनार्चितो देवो मम ज्ञानस्य कारणात् ।
प्रयागेश्वरसञ्ज्ञस्तु ख्याति लोकेषु यास्यति ॥ ४१
तदाप्रभृति तल्लिगं तीर्थकोटिशतैर्वृतम् ।
स्वर्गापवर्ग फलदं तत्र त्वं गन्तुमर्हसि ॥४२

हे प्रभो ! सावित्री के दर्शन से इसके वेद और शास्त्र सब नष्ट हो गये हैं। तब तो उस लिंग से उसी समय मे वेदो से युक्त ब्रह्माजी समुत्थित हुए थे। वे अ गो के तथा रहस्य के सहित वेदो से युक्त थे और पुराणों से भी समन्वित थे। हे नृप सत्तम ! उस समय में सावित्री देवी ने मुझसे कहा था कि—हे नारद ! इस लिंग के प्रभाव से जिसकी प्रार्थना प्रयाग के द्वारा की गई है आपको अब समस्त वेद और धर्म शास्त्र प्रतिभासित हो जायेंगे। हे नृप ! इस वचन के कहने पर मुझे सब वेद पुनः प्राप्त हो गये थे, षडङ्गों के सहित ज्ञान तथा विविध शास्त्र मैंने प्राप्त कर लिये थे। हे राजेन्द्र ! ज्ञान प्राप्त कर लेने वाले मैंने उस समय मे यह वचन कहा था—मुझे ज्ञान प्राप्त कराने के कारण से प्रयाग के द्वारा देव की अर्चना की गई थी। इसलिए लोको में यह प्रयागेश्वर नाम वाले होकर ख्याति को प्राप्त होंगे। तभी से लेकर वह लिंग सैकडो करोड तीर्थों से समावृत हो गये हैं और यह स्वर्ग तथा अप वर्ग के फल को प्रदान करने वाले हैं। वहाँ पर आप गमन करने के योग्य होते हैं ॥३६-४२॥

किमनेनाश्वमेधेन इष्टेन नपसत्तम ।
अश्वमेधशतफलं जायते तस्य दर्शनात् ॥४३
तपसा किं सुतप्तेन कायक्लेशकरेण तु ।
वाञ्छितं लभते सद्यः प्रयागेश्वरदर्शनात् ॥४४

नारदस्य वचः श्रुत्वा स्वायंभुवसुतोनृपः ।
प्रियव्रतोमहादेवि! महाकालवनं गतः ॥४५
ददर्श तत्र तल्लिगं नवनद्यास्तु दक्षिणे ।
दर्शनात्तस्य लिंगस्य मत्समीपं समागतः ॥४६
मया सम्मानितो देवि! गणनामधिपः कृतः ।
ये पश्यन्ति नरा भक्त्या प्रयागेश्वरमीश्वरम् ॥
ते धन्या मानुषे लोके क्लिश्यन्त्यन्ये निरर्थकाः ॥४७
या गतिर्योगयुक्तस्य सत्त्वस्थस्य मनीषिणः ।
सा गतिर्जायते सम्यक्प्रयागेश्वरदर्शनात् ॥४८
माघमासे समेष्यन्ति प्रयागेश्वरदर्शनम् ।
कर्तुं ये मानुषास्तेषामश्वमेधः पदे पदे ॥४९
एष ते कथितो देवि! प्रभावः पापनाशनः ।
प्रयागेश्वरदेवस्य शृणु सिद्धेश्वरं परम् ॥५०

इस नृप श्रेष्ठ ! इस यजन किए हुए अश्वमेध से क्या प्रयोजन है । उसके दर्शन मात्र से ही सो अश्वमेध यज्ञों का फल प्राप्त हो जाता है । अपनी काया को क्लेश देने वाले इस सुतप्त तप से क्या लाभ होगा प्रयागेश्वर प्रभु के केवल दर्शन ही से सभी प्रकार के अभीष्टों की सिद्धि तुरन्त ही हो जाया करती है । श्री ईश्वर ने कहा—हे महादेवि ! स्वायम्भुव मनु के पुत्र प्रिय व्रत ने देवर्षि श्री नारद जी के इस वचन को सुन कर वह महाकाल वन में चला गया था । वहाँ पर नव नदी के दक्षिण भाग में उस लिंग का दर्शन किया था । उस लिंग के दर्शन से वह मेरे समीप में आ गया था । हे देवि ! मैंने उसका सम्मान किया था और उसे गणों का अधिप बना दिया था । जो मनुष्य भक्ति भाव से प्रयागेश्वर ईश्वर का दर्शन किया करते है वे मनुष्य इस लोक में परम धन्य हैं अन्य लोग तो निरर्थक ही क्लेश उठाया करते हैं । जो सत्व में स्थित योग से युक्त मनीषी की गति हुआ करती है वही गति भली भाँति प्रयागेश्वर के दर्शन कर लेने से मनुष्यों की हो जाया करती है । माघ मास में जो

प्रयागेश्वर के दर्शन करने के लिये आयेंगे वे मनुष्य पद पद मे अश्वमेघ यज्ञ का पुण्य फल प्राप्त किया करेंगे। हे देवि! यह पापो का नाश करने वाला प्रयागेश्वर प्रभु का प्रभाव आपको बतला दिया है अब परम सिद्धेश्वर का श्रवण करो ॥४३-५०॥

---

※ अवन्ती खण्ड समाप्त ※

# स्कन्द पुराण

## रेवा खण्ड

—(*)—

### ८१—पुराण संहिता वर्णन

योनवेद पुराणंहिनस वेदान्नकिञ्चन ।
कतमः सहिधर्मोऽस्ति किवाज्ञानंतथा विधम् ।।१
अन्यद्वा तत्किमत्राह पुराणे यन्नदृश्यते ।
वेदाः प्रतिष्ठिताः पूर्वं पुराणे नात्रसंशयः ॥२
बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति ।
इतिहासपुराणंश्च कृतोऽयनिश्चयः पुरा ॥३
आत्मापुराणंवेदानां पृथगङ्गानितानिषट् ।
यच्चदृष्टं हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिभिः किल ॥४
उभाभ्यां यत्तुदृष्टं हि तत्पुराणेषुगीयते ।
पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणः स्मृतम् ॥५

नैमिषारण्य मे होने वाले सत्र मे वहाँ के कुलपति शौनकजी ने पुराणो के महान वक्ता सूतजी से कहा कि मैंने ब्राह्मी और विष्णु सरिताओं के विषय में श्रवण किया है, पर रौद्री सरिता ( नर्मदाजी ) के विषय मे अभी कुछ नही सुना है, कृपा करके उसका वर्णन करें। यह सुनकर महामति सूतजी सर्व प्रथम पुराण–सहिता की उत्पत्ति और महत्त्व बतलाते हुये कहने लगे—जो पुराणो को नही जानता है वह यहाँ पर कुछ भी नही जानता है । वह कौन–सा धर्म है और उस प्रकार का कौन सा ज्ञान है और अन्य भी वह क्या यहाँ पर हो गया है जो पुराण में दिखलाई नहो देता है । अर्थात् ऐसा कोई भी विषय या ज्ञान एवं धर्म नही है जिनको पुराण में नही कहा गया हो । पुराण में सब से पूर्व वेदों

की प्रतिष्ठा की गई है—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥१-२॥ वेद जो अल्पश्रुत पुरुष होता है उससे भय भीत होता है कि यह मुझको प्रतारित करेगा। पहिले ही इतिहास पुराणों के द्वारा यह निश्चय किया गया है ॥३॥ वेदों की आत्मा पुराण है और वे छै अङ्ग शास्त्र पृथक् हैं। और जो वेदों में देखा गया है वही स्मृतियों के द्वारा भी देखा गया है। इन दोनों वेदों और स्मृतियों के द्वारा जो देखा गया है वह सब पुराणों में गाया जाता है। पुराण समस्त शास्त्रों का ब्रह्मा का प्रथम कहा गया है ॥४-५॥

अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिर्गताः।
पुराणमेकमेवासीदस्मिन्कल्पान्तरे मुने ॥६
त्रिवर्गसाधनं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्।
स्मृत्वाजगादच मुनीन्प्रतिदेवश्चतुर्मुखा ॥७
प्रवृत्तिः सर्वशास्त्राणां पुराणस्याभवत्ततः।
कालेनाग्रहणं दृष्ट्वा पुराणस्यततोमुनिः ॥८
व्यासरूपं विभुः कृत्वा संहरेत्स युगेयुगे।
अष्टलक्षप्रमाणे तु द्वापरेद्वापरे सदा ॥९
तदष्टादशधाकृत्वाभूर्लोकेऽस्मिन्प्रभाष्यते।
अद्यापिदेवलोकेतच्छतकोटिप्रविस्तरम् ॥१०

इसके उपरान्त उनके मुखों से वेद विनिर्गत हुए। इस कल्पान्तर में एक ही पुराण था ॥६॥ चतुर्मुख ब्रह्माजी ने त्रिवर्ग का साधन स्वरूप—परम पुण्यमय और सौ करोड़ के प्रकृष्ट विस्तार वाला स्मरण करके देव ने मुनियों के प्रति कहा था ॥७॥ इसके अनन्तर समस्त शास्त्रों की प्रवृत्ति पुराण की ही गई। इसके उपरान्त कुछ काल में मुनि ने पुराण का ग्रहण न करना देखकर विभु ने व्यास का स्वरूप धारण किया और वह युग-युग में संहार करते थे। सदा द्वापर-द्वापर में आठ लाख प्रमाण होने पर इस भू लोक में अठारह प्रकार से करके प्रभावित किया जाता है। आज भी देवों के लोक में वह सौ करोड़ के विस्तार वाला है ॥८-१०॥

तदथाय चतुर्लक्षं संक्षेपेण निवेशितम् ।
पुराणानि दशाष्टौ चसाम्प्रतं तदिहोच्यते ।
नामतस्तानि वक्ष्यामि शृणु त्वमृषिसत्तम ! ॥११
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च ।
वंशानुचरितं चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥१२
ब्राह्मं पुराणं तत्राद्य संहितायां विभूषितम् ।
श्लोकाना दशसाहस्रं नानापुण्यकथायुतम् ॥१३
पाद्मं च पञ्चपञ्चाशत्सहस्राणि निगद्यते ।
तृतीयं वैष्णवं नामत्रयोविंशतिसंख्यया ॥१४
चतुर्थं वायुना प्रोक्तं वायवीयमिति स्मृतम् ।
शिवभक्तिसमायोगाच्छैव तच्चापराख्यया ॥१५
चतुर्विंशतिसंख्यातं सहस्राणितुशौनक ! ।
चतुर्भिः पर्वभिः प्रोक्तं भविष्यं पञ्चमंतथा ॥१६
चतुर्दशसहस्राणि तथा पञ्चशतानितत् ।
मार्कण्ड नव साहस्रं षष्ठं तत्परिकीर्तितम् ॥१७

यह यहाँ पर चार लाख संक्षेप से निवेशित किया है । पुराण अठारह हैं । इस समय वह यहाँ पर कहा जाता है । हे श्रेष्ठ ऋषिवर ! मैं नामोल्लेख करके उनको बतलाता हूँ । आप उनका श्रवण करिए ॥११॥ पुराण के पाँच लक्षण हुआ करते हैं—सर्ग—प्रतिसर्ग—वंश—मन्वन्तर और वंशों का अनुचरित पुराण मे वर्णित हुआ करते हैं ॥१२॥ इन पुराणों मे सब से प्रथम् आदि मे होने वाला ब्राह्म पुराण है जो कि संहिता में विभूषित है । इसमें दश सहस्र श्लोक हैं और यह अनेक परम पुण्यमयी कथाओं से युक्त है ॥१३॥ फिर पाद्म अर्थात् पद्म पुराण है जिसके श्लोकों की ( यहाँ सर्वत्र अनुष्टुप छन्द से तात्पर्य है ) पचपन सहस्र कही जाती हैं । तीसरा विष्णु पुराण है जिसके श्लोकों की संख्या तेईस सहस्र है ॥१४॥ चौथा वायुदेव के द्वारा वर्णित वायवीय अर्थात् वायु पुराण कहा गया है । शिव की भक्ति के समायोग से इसका दूसरा नाम शिवपुराण भी होता है ॥१५॥ हे शौनक ! यह चौबीस सहस्र की संख्या वाला है ।

पाचवाँ पुराण भविष्य है जो चार पर्वों के द्वारा कहा गया है ॥१६॥ इसके श्लोकों की संख्या साढ़े चार सहस्र है। छटवां मार्कण्डेय पुराण है जिसके श्लोकों की संख्या नौ सहस्र है ॥१७॥

आग्नेयं सप्तमं प्रोक्तं सहस्राणि तु षोडश ।
अष्टमं नारदीयं तु प्रोक्तं वै पञ्चविंशतिः ॥१८
नवमं भगवन्नाम भागद्वयविभूषितम् ।
तदष्टादशसाहस्रं प्रोच्यते ग्रन्थसंख्यया ॥१९
दशमं ब्रह्मवैवर्तं तावत्संख्यमिहोच्यते ।
लैङ्गमेकादशं ज्ञेयं तथैकादशसंख्यया ॥२०
भागद्वयं विरचितं तल्लिंगमृषिपुंगव ।
चतुर्विंशतिसाहस्रं वाराहं द्वादशं विदुः ॥२१
विभक्तं सप्तभिः खण्डैः स्कान्दं भाग्यवताम्वर ! ।
तदेकाशीतिसाहस्रं संख्यया वै निरूपितम् ॥२२
ततस्तु वामनं नाम चतुर्दशतमं स्मृतम् ।
संख्यया दशसाहस्रं प्रोक्तं कुलपते ! पुरा ॥२३
कौर्मं पञ्चदशं प्राहुर्भागद्वयविभूषितम् ।
दशसप्तसहस्राणिपुरा सांख्यपते कलौ ॥२४

आग्नेय अर्थात् अग्निपुराण सातवाँ पुराण बताया गया है जिसके श्लोकों की संख्या सोलह हजार है। आठवाँ नारदीय अर्थात् नारद पुराण है जिसके श्लोकों की संख्या पच्चीस सहस्र होती है ॥१८॥ नवम भागवत महापुराण है जो भगवान् के नाम से प्रसिद्ध है और दो भागों से विभूषित है, इस ग्रन्थ के श्लोकों की संख्या अठारह सहस्र है ऐसा कहा जाता है ॥१६॥ दशवाँ ब्रह्मवैवर्त पुराण है। इसके श्लोकों की संख्या भी उतनी ही अर्थात् अठारह हजार कही गई है। ग्यारहवाँ लिंग पुराण है। इसकी ग्यारह सहस्र संख्या है ॥२०॥ हे ऋषि श्रेष्ठ ! वह लिंग दो भागों में विरचित है। बारहवाँ पुराण वाराह है जिसके श्लोकों की संख्या चौबीस सहस्र होती है ॥२१॥ हे भाग्यवानों में परम श्रेष्ठ ! स्कन्द पुराण सात खण्डों में विभक्त है और इसके श्लोकों की संख्या इक्यासी हजार है। यह

संख्या में सबसे बड़ा है ॥२२॥ इसके पश्चात् चौदहवाँ पुराण वामन है। इसके श्लोकों की संख्या हे कुलपते ! पहिले दश सहस्र कही गयी है ॥२३॥ पन्द्रहवाँ कूर्म पुराण है। यह भी दो भागों में भूषित है। पहिले भाग में यह सत्रह सहस्र संख्या वाला होता है ॥२४॥

मात्स्यं मत्स्येनयत्प्रोक्तं मनवेपोडशांकमात् ।
तच्चतुर्दशसाहस्रं संख्ययावदताम्वर ॥२५
गारुडं सप्तदशमं स्मृतं चैकोनविंशतिः ।
अष्टादशं तु ब्रह्माण्डं भागद्वयविभूषितम् ॥२६
तच्च द्वादशसाहस्रं शतमष्टमन्वितम् ।
तथैवोपपुराणानि यानि चोक्तानिवेधसा ॥२७
इदं ब्रह्मपुराणस्य सुलभं सौरमुत्तमम् ।
संहिताद्वयसंयुक्तं पुण्यं शिवकथाश्रयम् ॥२८
आद्या सनत्कुमारोक्ता द्वितीया सूर्यभाषिता ।
सनत्कुमारनाम्ना हि तद्विख्यातं महामुने ! ॥२९
द्वितीयं नारसिंह च पुराणे पाद्मसंज्ञिते ।
शौकेयं हि तृतीयं तु पुराणे वैष्णवेमतम् ॥३०
वार्हस्पत्यं चतुर्थं च वायव्यं समनं सदा ।
दौर्वाससं पञ्चमं च स्मृतं भागवतेसदा ॥३१

सोलहवाँ पुराण मात्स्य है जिसको भगवान् मत्स्य ने मनु से कहा है। हे बोलने वालों में परम श्रेष्ठ ! इसके श्लोकों की संख्या चौदह सहस्र है ॥२५॥ सत्रहवाँ गरुड पुराण है जिसकी संख्या उन्नीस हजार है। अठारहवाँ ब्रह्माण्ड पुराण है जो दो भागों से विभूषित है ॥२६॥ इसके श्लोकों की संख्या बारह हजार आठ सौ है। उसी प्रकार से उपपुराण जो हैं वे वेधा के द्वारा कहे हैं ॥२७॥ यह ब्रह्म पुराण का सुलभ उत्तम और दो संहिताओं से संयुक्त है। यह परम पुण्यमय तथा शिव की कथा का आश्रय वाला है ॥२८॥ इन में पहली सनत्कुमार के द्वारा कथित है और दूसरी सूर्य देव के द्वारा वर्णित है। हे महामुने ! यह सनत्कुमार के नाम से ही विख्यात है ॥२९॥ द्वितीय पाद्म संज्ञा वाले पुराण में नारसिंह

है और तीसरा शौनेय है जो वैष्णव पुराण में माना गया है ॥३०॥ चौथा बार्हस्पत्य है जो सदा वायव्य सम्मत है । पञ्चम दौर्वासस है जो सदा भागवत में कहा गया है ॥३१॥

भविष्ये नारदोक्तं च सूरिभिः कथितं पुरा ।
कापिलं मानवं चैवतथैवोशनसेरितम् ॥३२
ब्रह्माण्डं वारुणं चाथकालिकाद्वयमेव च ।
माहेश्वरं तथासाम्बंसौरं सर्वार्थसञ्चयम् ॥३३
पाराशरं भागवतं कौमँचाष्टादशंक्रमात् ।
एतान्युपपुराणानिमयोक्तानियथाक्रमम् ॥३४
पुराणसंहितामेतांयः पठेद्वाश्रृणोति च ।
सोऽनन्तपुण्यभागीस्यान्मृतोब्रह्मपुरं व्रजेत् ॥३५

भविष्य में नारद के द्वारा उक्त है और पहिले सूरियों के द्वारा कथित है । ये कपिल के द्वारा—मनु के द्वारा और उशना के द्वारा कथित है ॥३२॥ ब्रह्माण्ड वारुण है । इसके अनन्तर कालिकाद्वय है । माहेश्वर —साम्ब—सौर सब अर्थों का सञ्चय है ॥३३॥ पाराशर भागवत है और क्रम से कौर्म है ऐसे ये अष्टादश हैं मैंने ये यथा क्रम उपपुराणों को बता दिया है ॥३४॥ इस पुराण संहिता को जो कोई पढ़ता है अथवा श्रवण करता है वह अनन्त पुण्य का भागी होता है और मृत होकर वह ब्रह्मपुर को गमन किया करता है ॥३५॥

## ८२—रेवा माहात्म्य वर्णन

नर्मदायास्तु माहात्म्यं कृष्णद्वैपायनोऽब्रवीत् ।
तत्तेऽहं सम्प्रवक्ष्यामि यत्त्वया परिपृच्छितम् ॥१
विस्तरं नर्मदायास्तु तीर्थानां मुनिसत्तम! ।
कोऽन्यः शक्तोऽस्ति व वक्तुमृते ब्रह्माणमीश्वरम् ॥२
एतमेव पुरा प्रश्नं पृष्टवाञ्जनमेजयः ।
वैशम्पायनरञ्जनु दिव्यं द्वैपायनस्य ह ॥३

रेवातीर्थाश्रितं पुण्यं तत्ते वक्ष्यामि शौनक ! ।
पुरा परीक्षितो राजा यज्ञदीक्षासु दीक्षित. ॥४
सम्भृते तु हविर्द्रव्ये वर्तमानेषु कर्मसु ।
आसीनेषु द्विजाग्र्येषु हूयमाने हुताशने ॥५
वर्तमानासु सर्वत्र तथा धर्मकथासु च ।
श्रूयमाणे तथा शब्दे जनैस्त्वहर्निशम् ॥६
यज्ञभूमौ कुलपतेदीयतामुज्यतामिति ।
विविधाश्चविनोदान्वै कुर्वाणेषु विनोदिषु ॥७
एवम्विधे वर्तमाने यज्ञे स्वर्गसदा समे ।
वैशम्पायनमासीनं पप्रच्छ जनमेजय ॥८

महामुनि श्रीकृष्ण द्वैपायन ने नर्मदा के माहात्म्य को कहा । जो तुमने पूछा है उसको मैं तुमको बतलाता हूँ ॥१॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! ब्रह्मा-जी के अतिरिक्त अन्य किस मे ऐसी शक्ति है जो नर्मदा के तीर्थों के माहात्म्य का विस्तार वर्णन कर सके ॥२॥ इसी प्रश्न को पहिले जनमेजय ने पूछा और यह प्रश्न द्वैपायन के शिष्य वैशम्पायनजी से पूछा गया था ॥३॥ हे शौनक ! रेवा तीर्थ का आश्रित जो पुण्य होता है उसे तुमको बतलाता हूँ । पुराने समय मे पारीक्षत राजा यज्ञ की दीक्षाओ मे दीक्षित हुआ था ॥४॥ वर्तमान कर्मों मे हविर्द्रव्य के सम्भृत होने पर श्रेष्ठ द्विजो के समासीन होने पर—हुताशन के हूयमान होने पर—वर्तमान धर्म कथाओ के सर्वत्र श्रूयमाण होने पर तथा अहर्निश जनों के द्वारा शब्द के कहने पर, यज्ञ भूमि मे हे कुलपते ! दो—भोग करो—इस अनेक विनोदो को विनोदी लोगो के द्वारा किये जाने पर इस प्रकार से यज्ञ के वर्त्तमान होने पर स्वर्ग वासियो के समान होने पर—जनमेजय ने समासीन वैश-म्पायनजी से पूछा था ॥५-८॥

द्वैपायनप्रसादेनज्ञानवानसिमेमत· ।
वैशम्पायनतस्मात्त्वा पृच्छामिऋषिसन्निधौ ॥९
ब्रूहि मे त्वं पुरावृत्तं पितृणा तीर्थसेवनम् ।
चिरं नानाविधान्क्लेशान्प्राप्तास्तदतिमे श्रुतम् ॥१०

कथं द्यूतजिताःपार्थाममपूर्वपितामहाः ।
आसमुद्रां महीविप्रभ्रमन्तस्तीर्थ लोभतः ॥११
केन ते सहितास्तात भूमिभागाननेकशः ।
चेरुः कथयतत्सर्वसर्वज्ञोऽसि मतोमम ।।१२
कथयिष्यामिभूनाथ! यत्पृष्टं तुत्वयाऽनघ ।
नमस्कृत्यविरूपाक्षं वेदव्यासं महाकविम् ॥१३
पितामहास्तु तेपञ्चपाण्डवाः सहकृष्णया ।
उपित्वाब्राह्मणैः सार्द्धं काम्यकेवनउत्तमे ।।१४

जनमेजय ने कहा—मेरा ऐसा मत है कि आप भगवान् द्वैपायनजी की कृपा से ही ज्ञानवान् हैं । हे वैशम्पायनजी ! ऋषियो की सन्निधि मे मैं आप से पूछता हूं ॥६॥ आप कृपया मुझे पहिले पितृगण के तीर्थों का सेवन का वृत्त बतलाइए । मैंने ऐसा श्रवण किया है कि बहुत समय तक उन्होंने अनेक प्रकार के क्लेशो को भोगा था ॥१०॥ मेरे पूर्व पितामह किस प्रकार से द्यूत मे जीत लिये गये और वे तीर्थों के लोभ से समुद्र पर्यन्त भूमि मे भ्रमण कर रहे थे ॥११॥ हे तात ! वे किस के सहित थे जिस समय मे अनेक भूमि के भागो मे उनने विचरण किया । यह सभी आप मुझको बतलाइए क्योंकि मेरे मत से आप सभी कुछ के पूर्ण ज्ञाता हैं ॥१२॥ वैशम्पायनजी ने कहा—हे भूनाथ ! आप तो निष्पाप हैं । जो भी कुछ आपने पूछा है वह मैं सभी कुछ आपको बतलाऊंगा । उन्होंने फिर महा कवि विरूपाक्ष वेदव्यास को नमस्कार किया था ॥१३॥ वैशम्पायन जी ने कहा—तुम्हारे पितामह पाँच पाण्डव थे जो कृष्णा के साथ में थे । उन्होंने परमोत्तम काम्यक वन मे ब्राह्मणो के साथ निवास किया था ॥१४॥

प्रधानोद्दालके तत्र कश्यपोऽथमहामतिः ।
विभाण्डकश्चराजेन्द्र गुरुश्चैवमहामुनिः ॥१५
पुलस्त्यो लोमशश्चैव तथाऽन्ये पुत्रपौत्रिणः ।
स्नात्वा निःशेषतीर्थेषु गतास्ते विन्ध्यपर्वतम् ॥१६

ते च तत्राश्रमं पुण्यं सर्ववृक्षैः समाकुलम् ।
चम्पकैः कर्णिकारैश्च पुन्नागैर्नागकेसरैः ॥१७
बकुलैः कोविदारैश्च दाडिमैरुपशोभितम् ।
पुष्पितैरर्जुनैश्चैव बिल्वपाटलकेतकैः ॥१८
कदम्बाम्रमधूकैश्च निम्बजम्बीरतिन्दुकैः ।
नालिकेरैः कपित्थैश्च खर्जूरपनसैस्तथा ॥१९
नानाद्रुमलताकीर्णं नानावल्लीभिरावृतम् ।
सपुष्पं फलितं कान्तं वनं चैत्ररथं यथा ॥२०
जलाश्रयैस्तु विपुलैः पद्मिनीखण्डमण्डितम् ।
सितोत्पलैश्च सञ्छन्नं नीलपीतैः सितारुणैः ॥२१

वहाँ पर प्रयागोद्दालक में, महामतिमान् कश्यप थे । हे राजेन्द्र ! महा मुनि गुरु विभाण्डक थे ॥१५॥ पुलस्त्य और लोमश तथा अन्य पुत्र एवं पौत्रों वाले वे सब समस्त तीर्थों में स्नान करके विन्ध्य पर्वत में गये थे ॥१६॥ उन्होंने वहाँ पर परम पुण्यमय आश्रम देखा जो सब प्रकार के वृक्षों से घिरा हुआ था । वहाँ पर चम्पक—कर्णिकार—पुन्नाग—नागकेसर—बकुल—कोविदार—दाडिम के वृक्षों से उस आश्रम की अत्यन्त शोभा हो रही थी । वहाँ फूलों से युक्त अर्जुन के वृक्ष—बिल्व—पाटल—केतक—कदम्ब—आम्र—मधूक—निम्ब—जम्बीर—तिंदुक—नारिकेर—कपित्थ—खर्जूर—पनस आदि अनेक प्रकार के द्रुमों का समुदाय और लताऐं थीं । यह आश्रम नानावल्लियों से समावृत था । पुष्पों से समन्वित—फलों वाला—सुन्दर चैत्ररथ वन के समान वहाँ का वन था ॥१७-२०॥ बहुत से वहाँ जलाशय ग्रहण करने वालों से वह संयुत था तथा पद्मिनी के षण्ड से भी वह आश्रम विभूषित था । वहाँ पर श्वेत कमल—नीलोत्पल—पीतसित वर्ण सभी वर्णों वाले कमल खिले हुए थे ॥२१॥

भृङ्गसारङ्गसंकीर्णं चक्रवाकोपशोभितम् ।
आटीकाकबलाकाभिः सेवितं कोकिलादिभिः ॥२२
गिरौ तथा वराहैश्च गजैश्च महोत्कटैः ।
महिषैश्च महानागैः कुरङ्गैश्चित्रकैः शनैः ॥२३

गण्डकैश्चैव खड्गैश्च गोमायुसुरभीयुतम् ।
सारंगैर्मल्लकैश्चैव द्विपदैश्च चतुष्पदैः ॥२४
तथा च कोकिलाकीर्णं मनःकान्तं सुशोभितम् ।
जीवंजीवकसङ्घैश्च नानापक्षिसमायुतम् ॥२५
दुःखशोकविनिर्मुक्तं सत्वोत्कटमनोरमम् ।
क्षुत्तृषारहितं कान्तं सर्वव्याधिविवर्जितम् ॥२६
सिंहीस्तनं पिबन्त्यत्र कुरङ्गाः स्नेहसंयुतम् ।
मार्जारमूषकौचोभावबलेह्तउन्मुखौ ॥२७
पञ्चास्याः पोतकेभाश्चभोगिनस्तुकलापिनः ।
दृष्ट्वातद्विपिनं रम्यं प्रविष्टाः पाण्डुनन्दनाः ॥२८

वह परम रम्य आश्रम अनेक तरह के पक्षियों से सुशोभित था। हंस और कारण्डवों से वह आश्रम एवं वन समाकीर्ण था तथा चक्रवाकों की शोभा वाला था। भाडो—काक—बलाकाओं तथा कोयल्न आदि के द्वारा वह आश्रम सेवित था ॥२२॥ वहाँ बहुत प्रकार के पशु भी सञ्चारण किया करते थे—सिंह—व्याघ्र—वराह—गज—महोत्कट महिष—महान् काया वाले कुरङ्ग—चित्रक—शश—गण्डक—खड्ग—गोमायु—और सुरभी से वह वन युक्त था। सारङ्ग—मल्लक—द्विपद और चतुष्पदों से भी वह समाकीर्ण हो रहा था ॥२३-२४॥ चारों ओर कोयलों से समन्वित मन को सुन्दर लगने वाला और शोभा से सम्पन्न था। जीवकों के सङ्घों से तथा नाना पक्षियों से समायुत था वहाँ पर किसी भी प्रकार का दुःख तथा शोक नहीं था। इस तरह की बाधाओं से वह छुटकारा पाया हुआ और अतीव उत्कट सत्त्व गुण के कारण परम सुन्दर प्रतीत होता था। भूख—प्यास—जैसी बाधाऐं वहाँ नहीं सताया करतीं थीं। वह परम सुन्दर एवं सभी तरह की व्याधियों से रहित था ॥२५-२६॥ उस आश्रम के वन में स्वाभाविक वैर भी नाम मात्र को नहीं था और कुरंग के बच्चे बड़े ही स्नेह से सिंहनी के स्तन को पीया करते थे। मार्जार और मूषक दोनों परस्पर में उन्मुख होकर अवलेहन किया करते थे ॥२७॥ सिंहनी के पुत्रों के गज स्नेह करते और मयूर एवं सर्प भी

एक दूसरे के साथ बड़े ही स्नेह से रहते। उस परमोत्तम एवं अतीव सुन्दर उस विपिन को देखकर पाण्डु के पुत्रों ने उसमें प्रवेश किया था ॥२८॥

मार्कण्डं दृष्टवांस्तत्रतरुणादित्यसन्निभम् ।
ऋषिभिःसेव्यमानं तुनानाशास्त्रविशारदैः ॥२९
कुलीनैः सत्त्वसम्पन्नैः शौचाचारसमन्वितैः ।
धीसङ्गतैः क्षमायुक्तैस्त्रिसन्ध्यजपतत्परैः ॥३०
ऋग्यजुःसामविहितं मन्त्रं होमपरायणैः ।
केचित्पञ्चाग्निमध्यस्थाः केचिदेकान्तसंस्थिताः ॥३१
ऊर्ध्वबाहुनिरालम्बा आदित्यभ्रमणाः परे ।
सायंप्रातर्भुजश्चान्येएकाहारास्तथापरे ॥३२
द्वादशाहाराश्चान्येअन्येमासार्द्धभोजनाः ।
दर्शादर्शतथाचान्येऽन्येशालभोजनाः ॥३३
पिण्याकमपरेऽभुञ्जन्येचित्पालाशभोजनाः ।
अपरेनियताहारावायुभक्ष्याम्बुभोजनाः ॥३४
एवम्भूतैस्तथा वृद्धैः सेव्यते मुनिपुङ्गवैः ।
ततो धर्मसुतः श्रीमानाश्रमं तं प्रविश्य सः ॥३५

वहाँ पर पाण्डवों ने अनेक शास्त्रों के महान् पण्डित ऋषियों के द्वारा सेव्यमान तथा तरुण सूर्य के समान तेज से समन्वित मार्कण्ड मुनि का दर्शन किया था। २९॥ ये ऋषि गण परम कुलीन—सत्त्वगुण से युक्त एवं शौच और आचार से संयुत थे। ये धी से सङ्गत—क्षमागुण से युक्त और तीनों कालों में सन्ध्योपासना एवं मन्त्रों के जाप करने में परायण रहा करते। उनमें कुछ तो पाँच अग्नियों के मध्य में स्थित होकर तप करने वाले और कुछ ऐसे थे जो बिल्कुल एकान्त में स्थित रहकर तापना किया करते थे ॥३०-३१॥ कुछ लोग ऊर्ध्व होकर निरालम्ब तपश्चर्या करने वाले थे। दूसरे आदित्य की परिक्रमा किया करते। कुछ सायं प्रातः भोजन किया करते और कम एक ही बार आहार करने वाले थे। कुछ बारह दिन में भोजन करने और मास भाग में आधा भोजन करने

वाले थे। दर्श—दर्श मे कुछ भोजन किया करते और कुछ केवल शैवाल का ही आहार करते। कुछ पिण्याक का आहार करते तो अन्य पालाश भोजी थे। दूसरे लोग नियत आहार वाले थे। कुछ केवल वायु तथा जल का ही आहार किया करते। इस प्रकार के परम वृद्ध श्रेष्ठ मुनियो के द्वारा उस आश्रम एवं वन का सेवन किया जाता था। इसके पश्चात् धर्म के पुत्र श्रीमान् युधिष्ठिर ने उस आश्रम में प्रवेश किया था ॥३२-३५॥

दृष्ट्वा मुनिवरं शान्तं ध्यायमानं परं पदम्।
प्रादक्षिण्येनसहसादण्डवत्पतितोऽग्रतः ॥३६
भक्त्यानुपतितं दृष्ट्वा चिरादादायलोचनम्।
कोभवानित्युवाचेदं धर्मंधीमानपृच्छत ॥३७
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दारकस्तत्समीपगः।
आहाऽयं धर्मराजस्तेदर्शनार्थं समागतः ॥३८
तच्छ्रुत्वा दारकेणोक्तं वचनं प्राह सादरः।
एह्येहि वत्सवत्सेति किञ्चित्स्थानाच्चलन्मुनिः।
तं तु स्नेहादुपाघ्राय आसने उपवेशयत् ॥३९
उपविष्टे सभार्यांतु पूजाकृत्वायथाविधि।
वन्यैर्धान्यैःफलैर्मूलै रसैश्च पृथग्विधैः ॥४०
पाण्डवाब्राह्मणैः सार्द्धंयथायोग्यम्प्रपूजिताः।
मुहूर्तादिथविश्रम्यधर्मपुत्रोयुधिष्ठिरः ॥४१
पृच्छति स्म मुनिश्रेष्ठं कौतूहलसमन्वितम्।
भगवन्सर्वलोकानां दीर्घायुस्त्वं मतो मम ॥४२

वहाँ पर परम पद का ध्यान करने वाले परम शान्तमय मुनि का दर्शन करके युधिष्ठिर सहसा प्रादक्षिण्य से उनके आगे चरणों मे दण्ड के समान गिर गये थे ॥३६॥ भक्ति भाव से अपने चरणों में पड़े हुए राजा को देखकर चिरकाल मे उन पर अपनी दृष्टि डालकर परम धीमान् मुनि ने धर्म पुत्र से पूछा—आप कौन हैं ॥३७॥ उन मुनिवर के इस वचन का श्रवण करके उनके समीप में स्थित दारक ने कहा—यह धर्मराज हैं,

इस समय मे यहाँ आपके दर्शन के लिये समागत हुए हैं ॥३८॥ दारक के द्वारा कथित वचन को सुनकर मुनि ने बहुत ही आदर के साथ कहा—हे वत्स ! हे वत्स ! यहाँ पर आओ—आगे चले आओ, मुनि अपने स्थान से कुछ चलित हो गये। उसको बड़े स्नेह से सूँघकर उनको आसन पर बिठा दिया था ॥३९॥ उस सभा मे भली भाँति बैठ जाने पर यथा विधि पूजा करके वन्य धान्य—फल—मूल और विभिन्न प्रकार के रसो के द्वारा सत्कार किया था ॥४०॥ ब्राह्मणो के साथ पाण्डव यथा योग्य पूजित हुए ? मुहूर्त मात्र विश्राम करके धर्म पुत्र युधिष्ठिर ने कौतूहल से समन्वित उन श्रेष्ठ मुनि से पूछा—हे भगवन् ! आप मेरे मत से समस्त लोको मे दीर्घ आयु वाले हैं। हे अनघ ! आप मेरे सामने अब सात कल्पो का पूर्ण रूप से वर्णन कीजिए और कल्प के क्षय मे भी स्थावर तथा जङ्गम लोक का वर्णन कीजिए ॥४१-४२॥

सप्तकल्पानशेषेण कथयस्वममाऽनघ ।
कल्पक्षयेऽपि लोकस्यस्थावरस्येतरस्य च ॥४३
न विनष्टोऽसि विप्रेन्द्र! कथ वाकेनहेतुना ।
गङ्गाद्या सरित सर्वा समुद्रान्ताश्चयामुने ॥४४
तासा मध्ये स्थिताः का. स्विल्लाश्चैव प्रलय गता. ।
का नु पुण्यजला नित्यं या नु न क्षयमागता ॥४५
एतत्कथयमेतातप्रसन्नेनान्तरात्मना ।
श्रोतुमिच्छाम्यशेषेणऋषिभिःसहबान्धवैः ॥४६
साधु साधु महाप्राज्ञ! धर्मपुत्रयुधिष्ठिर! ।
कथयामियथान्याय यत्पृच्छसिममानघ ॥४७
सर्वपापहर पुण्यं पुराणं रुद्रभाषितम् ।
यःशृणोतिनरोभक्त्या तस्यपुण्यफल शृणु ॥४८
अश्वमेधसहस्रेण वाजपेयशतेन च ।
तत्फलं समवाप्नोति राजन्नास्त्यत्र सशयः ॥४९

हे विप्रेन्द्र ! किस प्रकार से और किस हेतु से विनष्ट नहीं हुए हो ? हे मुने ! गङ्गा आदि समस्त सरिताऐं जो समुद्र के अन्त तक हैं उनके

मध्य मे कौन स्थित हैं और कौन प्रलय को प्राप्त हो गयी हैं ? कौनसी पुण्य जल वाली हैं और कौनसी क्षय को नहीं प्राप्त हुई हैं ॥४१-४५॥ हे तात ! यह सब आप अपने परम प्रसन्न अन्तःकरण से मेरे आगे कहिए । मैं पूर्णतया सुनने का इच्छुक हूं । मेरे साथ मेरे बान्धव और ऋषि गण भी इच्छुक हैं ॥४६॥ श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—हे धर्म के पुत्र युधिष्ठिर ! आप तो महाप्राज्ञ हैं । बहुत अच्छी बात है आपका प्रश्न अच्छा है । मैं न्याय पूर्वक सब कहता हूं । हे अनघ ! आप जो भी पूछ रहे हैं वह सभी बताता हूं ॥४७॥ समस्त प्रकार के पापो का हरण करने वाला परम पुण्यमय पुराण यही है जिस को भगवान् रुद्र ने कहा है । इस पुराण को जो मनुष्य भक्तिभाव से युक्त होकर श्रवण किया करता है । उसका जो पुण्य—फल होता है उसका श्रवण करो ॥४८॥ हे राजन् ! एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और सौ वाजपेय यज्ञ के समान ही उसका पुण्य फल होता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥४९॥

ब्रह्मघ्नश्च सुरापी च स्तेयी गोघ्नश्च यो नरः ।
मुच्यतेसर्वपापेभ्यो रुद्रस्यवचनं यथा ॥५०
गंगा तु सरिता श्रेष्ठा तथा चैव सरस्वती ।
कावेरी देविका चैव सिन्धुः सालकुटी तथा ॥५१
सरयूः शतरुद्रा च मही चर्मिलया सह ।
गोदावरी तथा पुण्या तथैव यमुना नदी ॥५२
पयोष्णीचा शतद्रुश्च तथाधर्मनदीशुभा ।
एताश्चान्याश्चसरित.सर्वपापहराः स्मृताः ॥५३
किं तु ते कारणं तात! वक्ष्यामि नृपसत्तम! ।
समुद्राः सरितः सर्वाः कल्पे कल्पे क्षयं गताः ॥५४
सप्तकल्पक्षये क्षीणे न मृता तेन नर्मदा ।
नर्मदैकैव राजेन्द्र! परं तिष्ठेत्सरिद्वरा ॥५५
तोयपूर्णा महाभाग! मुनिसङ्घैरभिष्टुता ।
गंगाद्याः सरितश्चान्याः कल्पेकल्पे क्षयं गताः ॥५६
एषा देवी पुरा दृष्टा तेन वक्ष्यामि तेऽनघ ॥५७

आश्चर्यभूता राजेन्द्र! त्रिपु लोकेपु विश्रुता ॥५८

ब्राह्मण की हत्या करने वाला–सुरा का पान करने वाला–चोरी का कर्म करने वाला–गाय का वध करने वाला जो मनुष्य होता है भगवान् रुद्र के ऐसे ही वचन है कि वह इस पुराण के श्रवण से सब पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥५०॥ गङ्गा सब सरिताओं में श्रेष्ठ है उसी प्रकार से सरस्वती—कावेरी—देविका—सिन्धु—सालकुटी—सरयू—शतरुद्रा—र्घमिला के साथ मही—गोदावरी ये भी सब नदियाँ परम पुण्यमयी हैं यमुना नदी—पयोष्णी—शतद्रु—शुभा धर्म नदी—ये तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी सरिताऐं हैं जो सब पापों के हरण करने वाली कही गयी हैं ॥५१-५३॥ हे नृप श्रेष्ठ ! क्या कारण है कि ये सब समुद्र और सरिताऐं कल्प—कल्प में क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं—इसे भी बतलाऊंगा ॥५४॥ सात कल्पों के क्षय के क्षीण होने पर यह नर्मदा कभी मृत अर्थात् विनष्ट नहीं होती है। यही एक नर्मदा ऐसी श्रेष्ठ सरिता है जो स्थित रहा करती है ॥५५॥ हे महाभाग ! यह जल से भरी हुई और मुनियों के सङ्घ के द्वारा अभिष्टुत होती हुई स्थित रहती है तथा अन्य गङ्गा आदि सब कल्प के क्षय होने पर क्षय को प्राप्त हो जाया करती हैं ॥५६॥ हे निष्पाप ! यह देवी पहिले उसके द्वारा दृष्ट है उसको बतलाऊँगा। हे राजेन्द्र ! यह आश्चर्य स्वरूप वाली है और तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥५७-५८॥

---

## ८३—नर्मदापञ्चदशनामवर्णन

ततोऽर्णवात्समुत्तीर्य्य त्रिकूटशिखरे स्थितम् ।
महाकनकवर्णाभे नानावर्णशिलाचिते ॥१
महाशृङ्गे समासीनं रुद्रकोटिसमन्वितम् ।
महादेवं महात्मानमीशानमजमव्ययम् ॥२
सर्वभूतमयं तात ! मनुना सह सुव्रत ! ।
भूयो ववन्दे चरणौ सर्वदेवनमस्कृतौ ॥३

मध्य में कौन स्थित हैं और कौन प्रलय को प्राप्त हो गयी हैं ? कौनसी पुण्य जल वाली हैं और कौनसी क्षय को नहीं प्राप्त हुई हैं ॥४३-४५॥ हे तात ! यह सब आप अपने परम प्रसन्न अन्तःकरण से मेरे आगे कहिए। मैं पूर्णतया सुनने का इच्छुक हूं। मेरे साथ मेरे बान्धव और ऋषि गण भी इच्छुक हैं ॥४६॥ श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—हे धर्म के पुत्र युधिष्ठिर ! आप तो महाप्राज्ञ हैं। बहुत अच्छी बात है आपका प्रश्न अच्छा है। मैं न्याय पूर्वक सब कहता हूं। हे अनघ ! आप जो भी पूछ रहे हैं वह सभी बताता हूं ॥४७॥ समस्त प्रकार के पापों का हरण करने वाला परम पुण्यमय पुराण वही है जिस को भगवान् रुद्र ने कहा है। इस पुराण को जो मनुष्य भक्तिभाव से युक्त होकर श्रवण किया करता है। उसका जो पुण्य—फल होता है उसका श्रवण करो ॥४८॥ हे राजन् ! एक सहस्र अश्वमेध यज्ञ और सौ वाजपेय यज्ञ के समान ही उसका पुण्य फल होता है—इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥४९॥

ब्रह्मघ्नश्च सुरापी च स्तेयी गोघ्नश्च यो नरः।
मुच्यतेसर्वपापेभ्यो रुद्रस्यवचनं यथा ॥५०
गंगा तु सरिता श्रेष्ठा तथा चैव सरस्वती।
कावेरी देविका चैव सिन्धुः सालकुटी तथा ॥५१
सरयूः शतरुद्रा च मही चर्मिलया सह।
गोदावरी तथा पुण्या तथैव यमुना नदी ॥५२
पयोष्णीचा शतद्रुश्च तथाधर्मनदीशुभा।
एताश्चान्याश्चसरितःसर्वपापहराः स्मृताः ॥५३
किं तु ते कारणं तात! वक्ष्यामि नृपसत्तम!।
समुद्राः सरितः सर्वाः कल्पे कल्पे क्षयं गताः ॥५४
सप्तकल्पक्षये क्षीणे न मृता तेन नर्मदा। .
नर्मदैकैव राजेन्द्र! परं तिष्ठेत्सरिद्वरा ॥५५
तोयपूर्णा महाभाग! मुनिसङ्घैरभिष्टुता।
गंगाद्याः सरितश्चान्याः कल्पेकल्पे क्षयं गताः ॥५६
एषा देवी पुरा दृष्टा तेन वक्ष्यामि तेऽनघ ॥५७

आश्चर्यभूता राजेन्द्र! त्रिपु लोकेपु विश्रुता ॥५८

ब्राह्मण की हत्या करने वाला—सुरा का पान करने वाला—चोरी का कर्म करने वाला—गाय का वध करने वाला जो मनुष्य होता है भगवान् रुद्र के ऐसे ही वचन हैं कि वह इस पुराण के श्रवण से सब पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥५०॥ गङ्गा सब सरिताओं में श्रेष्ठ है उसी प्रकार से सरस्वती—कावेरी—देविका—सिन्धु—सालकुटी—सरयू—शतरुद्रा—चर्मिला के साथ मही—गोदावरी ये भी सब नदियाँ परम पुण्यमयी हैं यमुना नदी—पयोष्णी—शतद्रु—शुभा धर्म नदी—ये तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी सरिताऐं हैं जो सब पापों के हरण करने वाली कही गयी हैं ॥५१-५३॥ हे नृप श्रेष्ठ ! क्या कारण है कि ये सब समुद्र और सरिताऐं कल्प—कल्प में क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं—इसे भी बतलाऊँगा ॥५४॥ सात कल्पों के क्षय के क्षीण होने पर यह नर्मदा कभी मृत अर्थात् विनष्ट नहीं होती है। यही एक नर्मदा ऐसी श्रेष्ठ सरिता है जो स्थित रहा करती है ॥५५॥ हे महाभाग ! यह जल से भरी हुई और मुनियों के सङ्घ के द्वारा अभिप्लुत होती हुई स्थित रहती है तथा अन्य गङ्गा आदि सब कल्प के क्षय होने पर क्षय को प्राप्त हो जाया करती हैं ॥५६॥ हे निष्पाप ! यह देवी पहिले उसके द्वारा दृष्ट है उसको बतलाऊँगा। हे राजेन्द्र ! यह आश्चर्य स्वरूप वाली है और तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥५७-५८॥

---

## ८३—नर्मदापञ्चदशनामवर्णन

ततोऽर्णवात्समुत्तीर्य्य त्रिकूटशिखरे स्थितम्।
महाकनकवर्णाभे नानावर्णशिलाचिते ॥१
महाशृङ्गे समासीनं रुद्रकोटिसमन्वितम्।
महादेवं महात्मानमीशानमजमव्ययम्॥२
सर्वभूतमयं तात ! मनुना सह सुव्रत।।
भूयो ववन्दे चरणौ सर्वदेवनमस्कृतौ॥३

आश्चर्यभूता राजेन्द्र! त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥५८

ब्राह्मण की हत्या करने वाला—सुरा का पान करने वाला—चोरी का कर्म करने वाला—गाय का वध करने वाला जो मनुष्य होता है भगवान् रुद्र के ऐसे ही वचन हैं कि वह इस पुराण के श्रवण से सब पापों से मुक्त हो जाया करता है ॥५०॥ गङ्गा सब सरिताओं में श्रेष्ठ है उसी प्रकार से सरस्वती—कावेरी—देविका—सिन्धु—सालकुटी—सरयू—शतरुद्रा—चर्मिला के साथ मही—गोदावरी ये भी सब नदियाँ परम पुण्यमयी हैं यमुना नदी—पयोष्णी—शतद्रु—शुभा धर्म नदी—ये तथा इनके अतिरिक्त अन्य भी सरिताऐं हैं जो सब पापों के हरण करने वाली कही गयी हैं ॥५१-५३॥ हे नृप श्रेष्ठ! क्या कारण है कि ये सब समुद्र और सरिताऐं कल्प—कल्प में क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं—इसे भी बतलाऊंगा ॥५४॥ सात कल्पों के क्षय के क्षीण होने पर यह नर्मदा कभी मृत अर्थात् विनष्ट नहीं होती है। यही एक नर्मदा ऐसी श्रेष्ठ सरिता है जो स्थित रहा करती है ॥५५॥ हे महाभाग! यह जल से भरी हुई और मुनियों के सङ्घ के द्वारा अभिष्टुत होती हुई स्थित रहती है तथा अन्य गङ्गा आदि सब कल्प के क्षय होने पर क्षय को प्राप्त हो जाया करती हैं ॥५६॥ हे निष्पाप! यह देवी पहिले उसके द्वारा दृष्ट है उसको बतलाऊँगा। हे राजेन्द्र! यह आश्चर्य स्वरूप वाली है और तीनों लोकों में प्रसिद्ध है ॥५७-५८॥

---

## ८३—नर्मदापञ्चदशनामवर्णन

सतोऽर्णवात्समुत्तीर्य्य त्रिकूटशिखरे स्थितम्।
महाकनकवर्णाभे नानावर्णशिलाचिते ॥१
महाशृङ्गे समासीनं रुद्रकोटिसमन्वितम्।
महादेवं महात्मानमीशानमजमव्ययम् ॥२
सर्वभूतमयं तात! मनुना सह सुव्रत!।
भूयो ववन्दे चरणौ सर्वदेवनमस्कृतौ ॥३

तपतस्तस्य देवस्य स्वेदः समभवत्किल ।
तंगिरिंप्लावयामास सस्वेदोरुद्रसंभवः ॥१६
तस्मादासीत्समुद्भूता महापुण्या सरिद्वरा ।
या सा त्वयार्णवे दृष्टा पद्मपत्रायतेक्षणा ॥१७
स्त्रीरूपं समवस्थाय रुद्रमाराधयत्पुरा ।
आद्ये कृतयुगे तस्मिन्समानामयुतं नृप ॥१८
ततस्तुष्टो महादेव उमया सह शङ्करः ।
ब्रूहि त्वं तु महाभागे यत्ते मनसि वर्त्तते ॥१९
प्रलये समनुप्राप्ते नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
प्रसादात्तव देवेश अक्षयाहं भवे प्रभो ! ॥२०
सरित्सु सागरेष्वेव पर्वतेषु क्षयिष्वपि ।
तव प्रसादाद्देवेश ! पुण्याक्षय्याभवे प्रभो ! ॥२१

ऋक्ष शैलपर समारोहण करके सर्वभूतात्म वशी शिवजी ने समस्त भूतों से अदृश्य होकर परम दारुण तप किया । तपस्या करते हुए उन देव के स्वेद हो गया । उस रुद्र से उत्पन्न होने वाले स्वेद ने उस गिरि का प्लावित कर दिया था ॥१५-१६॥ उससे यह महान् पुण्य वाली श्रेष्ठ सरिता समुत्पन्न हुई थी यह वही है जिसको तुमने पद्मदल के समान सुन्दर नेत्रों वाली अर्णव में देखा था ॥१७॥ पहले समय में स्त्री के स्वरूप में समास्थित होकर इसने भगवान् रुद्र की आराधना की थी। आद्य सत्युग में हे नृप ! उसने दश हजार वर्ष तक यह आराधना की इसके पश्चात् भगवान् शङ्कर उमादेवी के सहित परम प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हो गये । भगवान् शङ्कर ने उससे कहा—हे महाभागे ! तू बतला दे जो कुछ भी कामना तेरे मन मे हो ॥१८-१९॥ सरिता ने कहा—हे प्रभो ! हे देवेश ! प्रलय के प्राप्त होने पर जब कि स्थावर और जंगम सभी नष्ट हो जाया करते हैं आपके प्रसाद से उस समय में भी मैं इस जगत् में अक्षय होकर रहूँ । जब सब नदियाँ—सागर और पर्वतों के भी क्षयी हो जाने पर हे देवेश्वर ! मैं आपके ही प्रसाद से भव मे पुण्या और अक्षय रहूँ ॥२०-२१॥

पापोपपापकर्त्तुं क्ता महापातकिनोऽपि ये ।
मुच्यन्ते सर्वपापेभ्यो भक्त्या स्नात्वा तु शङ्कर ! ॥२२
उत्तरे जाह्नवी देशे महापातकनाशिनी ।
भवामि दक्षिणेमार्गेयद्येवं सुरपूजिता ॥२३
स्वर्गादागम्यगङ्गेतियथाख्याताक्षितौविभो ।
तथादक्षिणगङ्गेतिभवेयं त्रिदशेश्वर ॥२४
पृथिव्यां सर्वतीर्थेषु स्नात्वा यल्लभते फलम् ।
तत्फलं लभते मर्त्यो भक्त्या स्नात्वा महेश्वर ! ॥२५
ब्रह्महत्यादिकं पापं यदास्तेसञ्चितं क्वचित् ।
मास मात्रेण तद्देवक्षययात्ववगाहनात् ।.२६
यत्फलं सर्ववेदेषु सर्वयज्ञेषु शङ्कर ।
अवगाहेन तत्सर्वं भवत्विति मतिर्मम ॥२७
सर्वदानोपवासेषु सर्वतीर्थावगाहने ।
तत्फलं मम तोयेन जायतामिति शङ्कर ! ॥२८

हे शङ्कर ! पापों, उपपातकों से युक्त तथा जो महापातकी भी हों वे सब भक्ति से मुझ में स्नान करके अपने पापों से मुक्त हो जावें । उत्तर देश में जाह्नवी महान् पातकों के विनाश करने वाली है । उसी प्रकार से सुरों के द्वारा पूजित मैं दक्षिण मार्ग में हो जाऊं । हे विभो ! स्वर्ग से आकर गंगा जिस तरह से भूमि में विख्यात हो गयी हैं । हे त्रिदशेश्वर ! उसी भांति मैं भी दक्षिण गंगा की प्रसिद्धि वाली हो जाऊं । पृथिवी में समस्त तीर्थों में स्नान करके जो फल प्राप्त किया जाता है उसी पुण्य—फल को मनुष्य हे महेश्वर ! भक्ति भाव से मुझ में स्नान करके प्राप्त कर लेवें ॥२२-२४॥ ब्रह्म हत्या आदि पाप जो भी कुछ कहीं पर सञ्चित हों वे हे देव ! एक मास पर्यन्त मुझ में अवगाहन करने से वह सब पाप को प्राप्त हो जावे ॥२५॥ हे शङ्कर ! जो फल सब वेदों में और सब यज्ञों में होता है । वह सभी फल मुझ में अवगाहन करने से हो जावे—यही मेरी मति है ॥२६॥ सब प्रकार के दान तथा उपवासों में तथा सब तीर्थों

के अवगाहन मे जो फल होता है वही पूर्ण फल मेरे जल से हो जावे—यही मेरी कामना है ॥२७-२८॥

मम तीरे नरा ये तु अर्च्चयन्तिमहेश्वरम् ।
ते गतास्तव लोक स्युरेतदेवभवेच्छिव ॥२६
मम कूले महेशान उमया सह दैवतैः ।
वस नित्य जगन्नाथ एष एव वरो मम ॥३०
सुकर्मा वा विकर्मा वा शान्तो दान्तो जितेन्द्रियः ।
मृतो जन्तुर्मम जले गच्छतादमरावतीम् ॥३१
त्रिषु लोकेषु विख्याता महापातकनाशिनी ।
भवामि देवदेवेश प्रसन्नो यदिमन्यसे ॥३२
एतांश्चान्यान्वरान्दिव्यान्प्रार्थितो नृप सत्तम ।
नर्मदया ततः प्राह प्रसन्नोवृषवाहनः ॥३३
एव भवतुकल्याणि यत्त्वयोक्तमनिन्दिते ।
नान्यावराहॉलोकेषुमुक्त्वात्वा कमलेक्षणे ॥३४
यदैव मम देहात्त्व समुद्भूता वरानने ! ।
तदैव सर्वपापना मोचिनी त्व न सशय ॥३५

मेरे तट पर जो मनुष्य भगवान् महेश्वर का अर्चन किया करते हैं। हे शिव ! मैं यही चाहती हूँ कि वे सब आपके लोक मे चले जाया करें ॥२६॥ हे महेशान ! उमादेवी और देववृन्द के साथ आप मेरे ही तट पर नित्य निवास करे—यही मेरे लिये अभीष्ट वरदान है ॥३०॥ चाहे कोई सुन्दर कर्मों के करने वाला हो अथवा कोई कर्म रहित हो—शान्त—दान्त—जितेन्द्रिय—कैसा ही हो जो जन्तु मृत होकर मेरे जल मे आवे वह सीधा अमरावती को चला जाया करे ॥३१॥ हे देव देवेश ! यदि आप अपने को मुझ पर प्रसन्न हुए मानते हैं तो यह वरदान प्रदान करिये कि मैं तीनों लोकों में महा पातकों के विनाश करने वाली विख्यात हो जाऊ ॥३२॥ हे नृप श्रेष्ठ ! नर्मदा के द्वारा भगवान् शकर से ये तथा अन्य दिव्य वरदानों की प्राप्ति की प्रार्थना की थी । इसके पश्चात् भगवान् वृषभ के वाहन वाले शिव प्रसन्न हो गये थे ॥३३॥ श्रामहेश ने

कहा—हे अनिन्दित कल्याणि ! जो भी तूने याचित किया है वह ऐसा ही सब हो जावेगा । हे कमल के समान लोचनों वालो ! तुमको छोड़कर लोकों में अन्य कोई वरों के योग्य भी नहीं है ॥३४॥ हे वरानने ! जिस समय में तू मेरे शरीर से समुत्पन्न हुई उसी समय से तू समस्त पापों के मोचन कर देने वाली हो गयी थी—इस में तो कुछ भी संशय है ही नहीं ॥३५॥

कल्पक्षयकरे काले काले घोरे विशेषतः ।
उत्तरं कूलमाश्रित्य निवसन्ति चयेनराः ॥३६
अपिकीटपतंगाश्च वृक्षगुल्मलतादयः ।
आदेहपतनाद्देवि ! तेऽपियास्यन्तिसद्गतिम् ॥३७
दक्षिणं कूलमाश्रित्य ये द्विजा धर्मवत्सलाः ।
आमृत्योनिवसिष्यन्ति ते गताः पितृमन्दिरे ॥३८
अहं हि तव वाक्येन कस्मिश्चित्कारणान्तरे ।
त्वत्तीरे निवसिष्यामि सदैव ह्य मया समम् ॥३९
एव देवि ! महादेवि ! एवमेव न संशयः ।
ब्रह्मेन्द्रचन्द्रवरुणैः साध्यैश्च सह विष्णुना ॥४०
उत्तरेदेवि ! ते कूलेवसिष्यन्तिमगाज्ञया ।
दक्षिणे पितृभिः सार्द्धं तथाऽन्येसुरसुन्दरि ॥४१
वसिष्यन्ति मया सार्द्धं मेष ते वर उत्तमः ।
गच्छ गच्छ महाभागे ! मर्त्यान्पापाद्विमोचय ॥४२
सहिता ऋषिसंघैश्च तथासिद्धसुरासुरैः ।
एवमुक्त्वा महादेवउमयासहितोविभुः ॥४३
वन्द्यमानोऽथ मनुना मया चादर्शनं गतः ।
तेन चैषा महापुण्यामहापातकनाशिनी ॥४४

कल्पों के क्षय करने वाले काल में और विशेष रूप से महान् घोर काल में तेरे उत्तर तट का आश्रय ग्रहण करके जो नर निवास करते हैं तथा मनुष्य ही नहीं—कीट-पतंग-वृक्ष—गुल्म और लता आदि भी अपने देह के पात होने पर हे देवि ! ये सब भी सद्गति को प्राप्त हो जायेंगे

॥३६-३७॥ जो धर्म प्रिय मनुष्य (द्विज) दक्षिण तट का आश्रय ग्रहण कर मृत्यु पर्यन्त निवास करते हैं वे पितृ मन्दिर मे गये हैं ॥३८॥ मैं तो तेरे वचन से किसी अन्य कारण मे तेरे तीर पर सदा ही उमादेवी के सहित निवास करूंगा ॥३६॥ हे देवि। हे महादेवि ! ऐसा ही है-इसमें संशय नहीं है। ब्रह्मा—इन्द्र—चन्द्र-वरुण और साध्यगण देव वृन्द भगवान् विष्णु के साथ हे देवि ! उत्तर तट पर तेरे समीप मे ही मेरी आज्ञा से निवास करेंगे। हे सुर सुन्दरि ! तेरे दक्षिण तट पर उसी प्रकार से पितृगण के साथ अन्य देव गण वास करेंगे। तथा सिद्ध सुर और असुरो के सहित एवं ऋषिगण के समुदायो के साथ वहाँ पर सभी निवास करेंगे। इस प्रकार से कहकर विप्र श्री महादेव उमा के सहित मेरे द्वारा और मनु के द्वारा वन्द्यमान होते हुये अन्तर्धान हो गए थे। इसी से यह महान् पुण्यवासी महान पातकों के विनाश करने वाली है ॥४०-४४॥

कथिता पृच्छयते या ते मा ते भवतु विस्मयः।
एषा गंगा महापुण्या त्रिषु लोकेषु विश्रुता ॥४५
दशभिः पञ्चभिः स्रोतैः प्लावयन्ती दिशो दश।
शोणोमहानदश्चैवनर्मदा सुरसाकृता ॥४६
मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रकूटा तथैव च।
तमसाविदशा चैवकरभायमुनातथा ॥४७
चित्रोत्पलाविपाशाच रञ्जनावालुवाहिनी।
ऋक्षपादप्रसूतास्ताः सर्वावै रुद्रसंभवाः ॥४८
सर्वपापहरा. पुण्याः सर्वमंगलदाः शिवाः।
इत्येतैर्नामभिर्दिव्यैः स्तूयतेवेदपारगैः ॥४९
पुराणज्ञैर्महागंगराज्यपैः सोमपैस्तथा।
इत्येतत्सर्वमाख्यातं महाभाग्यं नरोत्तम ॥५०
मनुनोक्तं पुराब्रह्मन्नमृतायाः समुद्भवम्।
पुण्यं पवित्रमतुलं रुद्रोद्गीतमिदं शुभम् ॥५१
ये नराः कीर्त्तयिष्यन्ति भक्त्या शृण्वन्ति येऽपि च।
प्रातरुत्थाय नामानि दश पञ्च च भारत ! ॥५२

ते नराः सकलं पुण्यं लभिष्यन्त्यवगाहजम् ।
विमानेनार्कवर्णेनघण्टाशतनिनादिना ॥५३
त्यक्त्वा मानुष्यकं भाव यास्यन्ति परमां गतिम् ॥५४

जो आपके द्वारा पूछा जाता है वह सब ही कह दी गई है। इसमें आपको विस्मय नहीं करना चाहिये। यह महान पुण्यशालिनी गंगा है जो तीनों लोकों में प्रसिद्ध है। ४५॥ पन्द्रह स्रोतों के द्वारा दशों दिशाओं का प्लावन करती हुई यह नर्मदा है। महानद शोण—नर्मदा विदिशा—करभा—यमुना—चित्रोत्पला–विपाशा—रञ्जना—वालु वाहिनी और ऋक्षपाद प्रसूता ये सभी श्री रुद्रदेव से सम्भूत होने वाली हैं ॥४६-४८॥ ये समस्त पापों के हरण करने वाली सरितायें हैं–परम पुण्यमयी–सभी मंगलों के प्रदान करने वाली—शिवा हैं। इस दिव्य नामों के द्वारा वेदों के पारगामी विद्वानों के द्वारा सदा स्तुति की जाया करती है। इसका इसपन पुराणों के ज्ञाता—महाभाग राज्यों के स्वामी तथा सोम पान करने वालों के द्वारा किया जाता है। हे नरोत्तम ! यह सब महाभाग्य कह दिया गया है। इस यमुना का उद्भव पहिले मनु देव ने मुझसे कहा था। यह परम पुण्यमय–अतुल–पवित्र–शुभ और रुद्र के द्वारा समुद्गीत है। जो मनुष्य इसका कीर्तन करेंगे और जो भक्ति भाव से श्रवण करेंगे और हे भारत ! प्रातः उठकर इन दश और पाँच नामों का स्मरण करेंगे। वे मनुष्य अवगाहन से उत्पन्न सम्पूर्ण पुण्य को प्राप्त करेंगे। सौ घण्टाओं की ध्वनि वाले सूर्य के समान विमान के द्वारा इस मनुष्यत्व के भाव का परित्याग कर के वे परम गति को प्राप्त करेंगे ॥४६-५४॥

## ८४–नर्मदा स्तोत्र वर्णन

एतच्छ्रुत्वा वचो राजन्संहृष्टा ऋषयोऽभवन् ।
नर्मदा स्तोतुमारब्धाः कृताञ्जलिपुटा द्विजाः ॥१
नमोऽस्तु ते पुण्यजले नमोमकरगामिनी ।
नमस्ते पापमोचिन्यै नमो देवि ! वरानने ! ॥२

नमोऽस्तु ते पुण्यजलाश्रये ! शुभे !
विशुद्धसत्त्वे ! सुरसिद्धसेविते ।
नमोस्तु ते तीर्थ गण निषेविते
नमोऽस्तु रुद्रांगसमुद्भवे ! वरे ॥३
नमोऽस्तु ते देवि ! समुद्रगामिनि !
नमोनतु ते देवि वरप्रदेऽस्शिवे ।
नमोऽस्तु लोकद्वयसौख्यदायिनि !
ह्यनेकभूतौघसमाश्रितेऽनघे ॥४
सरिद्वरे ! पापहरे ! विचित्रिने !
गन्धर्वयक्षोरगसेवितान्ङ्गे ।
सनातनि ! प्राणिगणानुकम्पिनि !
मोक्षप्रदे ! देवि ! विधेहि शं नः ॥५
महागजौघैर्महिषैर्वराहैः ससेविते देवि महोर्मिमाले ! ।
गताः स्म सर्वे वरदे ! सुखप्रदे !
विमोचयास्मान्पशुपाशबन्धात् ॥६
पापैरनेकैरशुभैविबद्धा भ्रमन्ति तावन्नरकेषु मर्त्याः ।
महानिलोद्भूतनरंगमूत
यावत्तवाम्भो हि न सस्पृशन्ति ॥७

महामुनि श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजन् ! इस वचन का श्रवण कर ऋषिगण परम हर्षित हुए थे । द्विजगण हाथ जोड़कर नर्मदा की स्तुति करने लगे थे । १॥ हे परम पुण्य जल वाली ! आपकी सेवा में हमारा नमस्कार है । मकर गामिनी आपके लिए हमारा नमस्कार है ! हे देवि ! पापो के मोचन करने वाली आपको नमस्कार है । हे वरानने ! आपको हमारा प्रणाम है ॥२॥ हे पुण्य जल के आश्रय वाली ! हे परम शुभे ! आपको नमस्कार है । आप विशुद्ध सत्व वाली और सुरो के द्वारा सेवित हैं । समस्त तीर्थों के समुदाय के द्वारा सेवित और विशुद्ध तत्व सम्पन्न आपको नमस्कार है । आप सुरों और सिद्धो के द्वारा सदा सेवित हैं । आप भगवान् रुद्र के अंग से परम वरिष्ठ हैं आपको हमारा नमस्कार

है ।।३।। हे वरों के प्रदान करने वाली देवि ! हे शिवे ! आपको प्रणाम है । दोनो लोको मे सौख्य के प्रदान करने वाली देवि ! आप तो अनेकों भूतो के समुदायो को समाश्रय देने वाली और अनघ हैं आपको हमारा नमस्कार है ।।४।। आप समस्त सरिताओ मे श्रेष्ठ हैं । हे पाप हरे ! हे विचित्रिते । आप गन्धर्व—राक्षस—उरगों के द्वारा सेवित अङ्ग वाली हैं । हे सनातनि ! समस्त प्राणियो के गणों पर कृपा करने वाली हैं और मोक्ष के प्रदान करने वाली हैं । हे देवि ! आप हमारा कल्याण करें ।।५।। हे महान् ऊर्मियों की माला वाली ! हे देवि ! आप महान् गजो के समुदाय—महिष और वराहो के द्वारा भली भाँति सेवित हैं । हे वरदे ! हे सुखप्रदे ! हम सब नत हैं हमको पशुपाश के बन्ध से विमुक्त कराइये ।।६।। अनेक अशुभ पापों से विशेष रूप से बद्ध मनुष्य अभी तक नरको मे भ्रमण किया करते हैं जब तक महा निलोद्भूत आपके जल का वे स्पर्श नही करते हैं ।।७।।

> अनेकदु:खौघभयार्दितानां पापैरनेकैरभिवेष्टितानाम् ।
> गतिस्त्वमम्भोजसमानवक्त्रे द्वन्द्वैरनेकैरपि सम्वृतानाम् ।।८
> नद्यश्च पूता विमला भवन्ति
> त्वां देवि सम्प्राप्य न संशयोऽत्र ।
> दुःखातुराणामभयं ददासि
> शिष्टैरनेकैरभिपूजिताऽसि ।।९
> स्पृष्टं करैश्चन्द्रमसो रवेश्च
> सदैव दद्यात्परमं पदं तु ।
> यत्रोपलाः पुण्यजलाप्लुतास्ते ।
> शिवत्वमायान्ति किमत्र चित्रम् ।।१०
> भ्रमन्ति तावन्नरकेषु मर्त्या दुःखातुराः पापपरीतदेहाः ।
> महानिलोद्भूततरङ्गभङ्गं यावत्तवाम्भो न हि संश्रयन्ति ।।११

और दुःखों और भयों से पीड़ित और अनेक पापों से परिवेष्टित मानवों की आप ही गति हैं । हे अम्भोज के समान मुख वाली ! मनुष्य

संसार में अनेक द्वन्द्वों से सम्वृत हैं उन सबका उद्धार आप ही करने वाली हैं ।।८।। हे देवि ! आपको सम्प्राप्त करके नदियाँ विमल और पूत हो जाती हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है । जो दुःख से आतुर हैं उनको आप अभय दिया करती है और आप अनेक शिष्टों के द्वारा अभिपूजित हैं ।।९।। चन्द्रमा के करों से तथा सूर्य के करों से स्पृष्ट आपका जल उसी समय में परम पद प्रदान किया करता है जहाँ पर पुण्य जल में प्लुत हुए शिवत्व को प्रदान किया करते हैं—इसमें क्या विचित्र बात है ।।१०।। तभी तक मनुष्य पापों से परीत देहों वाले नरकों में दुःखों से आतुर होते हुए भ्रमण किया करते हैं जब तक महा निलोद्भूत तरङ्गों के भङ्ग वाले आपके जल का समाश्रय ग्रहण नहीं किया करते हैं ।।११।।

म्लेच्छाः पुलिन्दास्त्वथ यातुधानाः
पिबन्ति येऽम्भस्तव देवि पुण्यम् ।
मुक्ता भवन्तीह भयात्तु घोरात्
निःसंशयं तेऽपि किमत्र चित्रम् ।।१२
सरांसि नद्यः क्षयमभ्युपेता
घोरे युगेऽस्मिन्हि कलौ प्रदूषिते ।
त्वं भ्राजसे देवि जलौघपूर्णा
दिवीव नक्षत्रपथे च गङ्गा । १३
तव प्रसादाद्वरदे वरिष्ठे
कालं यथेमं परिपालयित्वा ।
यामोऽथ रुद्रं तव सुप्रसादा
द्वयं तथा त्वं कुरु वै प्रसादम् ।।१४

आपके परम पुण्यमय जल को म्लेच्छपुलिन्द-यातुधान सब पान करते हैं वे भी घोरभय से मुक्त हो जाया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है और इसमें विचित्रता ही क्या है ।।१२।। इस प्रदूषित कलियुग में जो परम घोर है सभी सर और नदियाँ क्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं । हे देवि ! आप तो जल के ओघ से परिपूर्ण हुई भ्राजमान रहती हैं जैसे दिवलोक में और नक्षत्र पथ में गङ्गा रहा करती हैं ।।१३।। हे

वरिष्ठे ! हे वरदे ! इस काल का परिपालन कर के आपके सुप्रसाद से हम रुद्र के समीप मे प्राप्त हो जावें उसी प्रकार का आप हमारे ऊपर प्रसाद करिए ।।१४।।

गतिस्त्वमम्बेव पितेव पुत्रां
स्त्वं पाहि नो यावदिमं युगान्तम् ।
काले त्वनावृष्टिहतं सुघोरं
यावत्तरामस्तव सुप्रसादात् ।।१५
पठन्ति ये स्तोत्रमिदं द्विजेन्द्राः
शृण्वन्ति ये चापि नराः प्रशान्ताः ।
ते यान्ति रुद्रं वृषसंयुतेन
यानेन दिव्याम्बरभूषिताश्च ।।१६
ये स्तोत्रमेतत्सततं पठन्ति
स्नात्वा तु तोये खलु नर्मदायाः ।
अन्ते हि तेषां सरिदुत्तमेयं
गतिं विशुद्धामचिराद्ददाति ।।१७
प्रातः समुत्थाय तथा शयानो
यः कीर्तयेताऽनुदिनं स्तवं च ।
स मुक्तपापः सुविशुद्धदेहः
समाश्रयं याति महेश्वरस्य ।।१८

अम्बा की भाँति आप ही गति हैं और आप पिता के समान जब तक इस युग का अन्त हो हमारी रक्षा करिए । काल में अनावृष्टि से हत सुघोर को हम तरण करें यह आपका ही सुप्रसाद है ।।१५।। जो द्विजेन्द्र इस स्तोत्र को पढ़ते हैं और जो परम प्रशान्त होकर मनुष्य इसका श्रवण किया करते हैं वे वृष से समन्वित यान के द्वारा दिव्य वस्त्रादि से विभूषित होते हुए यान के द्वारा रुद्र के समीप गमन किया करते हैं ।।१६।। जो मनुष्य नर्मदा के जल में स्नान करके इस स्तोत्र को निरन्तर पढ़ा करते हैं अन्त में शीघ्र ही यह उत्तमा सरित उनको विशुद्ध गति प्रदान किया करती है ।।१७।। प्रातः शय्या से उठकर या शयन करता हुआ जो प्रति

दिन इस सब का कीर्त्तन किया करता है। वह पापो से छुटकारा पाकर विशुद्ध देह वाला होते हुए भगवान महेश्वर का समाश्रय ग्रहण किया करता है ॥१८॥

## ८४—कावेरीसङ्गममाहात्म्यवर्णन

कावेरीति च विख्याता त्रिपु लोकेपु सत्तम ।
माहात्म्यं श्रोतुमिच्छामि तस्या मार्कण्ड तत्त्वतः ॥१
कीदृशं दर्शनं तस्याः फलं स्पर्शेऽथवाविभो ।
स्नानेजाप्येऽथवादानेउपवासेतथामुने ॥२
कथयस्व महाभागकावेरीसङ्गमेफलम् ।
धर्मःश्रुतोऽथदृष्टोवाकथितोवाकृतोऽपिवा ॥३
अनुमोदितो वा विप्रेन्द्र पुनातीति श्रुतं मया ।
यथा धर्मप्रसङ्गे तु मुनि धर्मोऽपिजायते ॥४
स्वर्गश्च नरकश्चैव इत्येवं वैदिकी श्रुतिः ॥५
साधुसाधुमहाभागयत्पृष्टोऽहं त्वयाऽधुना ।
शृणुष्वैकमनाभूत्वाकावेरीफलमुत्तमम् ॥६
अस्ति यक्षो महासत्त्वः कुबेरोनाम विश्रुतः ।
सोऽपि तीर्थप्रभावेण राजन्यक्षाधिपोऽभवत् ॥७

राजा युधिष्ठिर ने कहा—हे श्रेष्ठतम ! तीनो लोको मे कावेरी विख्यात है। हे मार्कण्ड ! तात्त्विक रूप से उसके माहात्म्य का श्रवण करना चाहता हूँ। हे विभो ! उसका दर्शन कैसा है अथवा स्पर्श करने मे क्या फल होता है ? हे मुने ! स्नान—जाप्य—अथवा दान तथा उपवास में क्या फल होता है ॥१-२॥ हे मुनिवर ! आप तो महान् भाग्य वाले हैं। इस कावेरी के सङ्गम मे जो भी फल होता है उसे कहिए। धर्म चाहे श्रुत हो—दृष्ट हो—कथित हो—कृत हो—अनुमोदित हो, हे विप्रेन्द्र ! वह पवित्र कर दिया करता है—ऐसा मैंने सुना है। हे मुने ! धर्म के प्रसंग मे जैसे धर्म भी होता है वैसे ही स्वर्ग और नरक भी है—इस

प्रकार की वैदिकी श्रुति है ॥३-५॥ श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे महाभाग ! बहुत ही अच्छा है जो कि आपने इस समय में मुझसे पूछा है। अब आप एक मन होकर कावेरी के उत्तम फल का श्रवण करिये। एक महान सत्व वाला यक्ष जो कि कुबेर—इस नाम से प्रसिद्ध था, हुआ था। वह भी तीर्थ के प्रभाव से हे राजन् ! यक्षों का राजा हो गया था ॥६-७॥

तच्छृणुष्व विधानेन भक्त्यापरमयानृप ।
सिद्धिं प्राप्तोमहाभागकावेरीसङ्गमेन तु ॥८
कावेर्या नर्मदायास्तुसङ्गमेलोकविश्रुते ।
तत्रस्नात्वाशुचिभूत्वाकुबेरःसत्यविक्रमः ॥९
विधिवन्नियमं कृत्वा शास्त्रयुक्त्या नरोत्तम ।
आराधयन्महादेवमेकचित्तः सनातनम् ॥१०
एकाहारोवसन्मासं तथापष्ठाह्नकालिकः ।
पक्षोपवासेन्यवसत्किञ्चित्कालं नृपोत्तम ॥११
मूलशाकफलैश्चान्यं कालं नयति बुद्धिमान् ।
किञ्चित्कालं वसंस्तत्र तोयं शैवालभोजनः ॥१२
पराकेणानयत्कालं कृच्छ्रेणापिचमानद ।
चान्द्रायणेनचाप्यन्यमन्यवाप्यम्बुभोजनः ॥१३
एवं तत्र नर श्रेष्ठ कामरागविवर्जितः ।
स्थितोवर्षशतं साग्रं कर्षयन्स्वं तथा वपुः ॥१४

हे नृप ! परम भक्ति के भाव से विधान से उसको आप श्रवण करिए। हे महाभाग ! कावेरी के संगम से तो सिद्धि को प्राप्त हो गया था ॥८॥ लोक में परम प्रसिद्ध कावेरी और नर्मदा का संगम है। उसमें स्नान करके और पवित्र होकर कुबेर सत्य विक्रम वाला हो गया था ॥९॥ कुबेर ने विधिपूर्वक नियम धारण करके हे नरोत्तम ! शास्त्रोक्त रीति से एक चित्त होकर सनातन महादेव की आराधना की थी। वह कुछ समय तक एक ही बार आहार करने वाला रहा था। फिर एक मास के पीछे छटवें दिन आहार लेने वाला और इसके पश्चात् पक्ष में एक बार

भोजन करने वाला होकर कुछ समय तक वहाँ उसने वास किया था ॥१०-११॥ उस बुद्धिमान ने अन्य काल को मूल-फल और शाक के आहार से व्यतीत किया था। कुछ समय तक केवल शैवाल का ही आहार करके वह वहाँ पर निवास करने वाला हुआ था ॥१२॥ हे मानद! उस कुबेर ने कुछ समय पराक—कृच्छ्र और चान्द्रायण व्रतों के द्वारा व्यतीत किया था और कुछ समय तक केवल जलपान को ही भोजन रखकर तपस्या की थी ॥१३॥ हे नर श्रेष्ठ! इस रीति से वहाँ पर काम और राग से विवर्जित होकर अपने शरीर को कर्षित करता हुआ वहाँ डेढ़ सौ वर्ष तक स्थित रहा था ॥१४॥

ततो वर्षशतस्यान्ते देवदेवो महेश्वरः ।
तुष्टस्तु परया भक्त्या तमुवाच हसन्निव ॥१५
भो भो यक्ष महासत्त्व वरं वरय सुव्रत ।
परितुष्टोऽस्मि ते भक्त्या तव दास्ये तथेप्सितम् ॥१६
यदि तुष्टोऽसि देवेश उमया सह शङ्कर ।
अद्यप्रभृति सर्वेषां यक्षाणामधिपो भवे ॥१७
अक्षयश्चाव्ययश्चैव तव भक्तिपुरस्सरः ।
धर्मे मतिं च मे नित्यं ददस्व परमेश्वर ॥१८
यत्त्वया प्रार्थितं सर्वं फलं धर्मस्य तत्तथा ।
इत्येवमुक्त्वा तं तत्र जगामादर्शनं हरः ॥१९
सोऽपि स्नात्वा विधानेन सन्तर्प्य पितृदेवताः ।
आमन्त्रयित्वा तत्तीर्थं कृतार्थश्च गृहं ययौ ॥२०
पूजितस्तत्र यक्षैस्तु सोऽभिषिक्तो विधानतः ।
चकार विपुलं तत्र राज्यमीप्सितमुत्तमम् ॥२१

इसके उपरान्त जब कि सौ वर्ष समाप्त हो गये थे तो उनके अन्त में देवों के भी देव भगवान महेश्वर प्रसन्न हुए थे और उसकी पराभक्ति से तुष्ट होकर हँसते हुए उससे बोले थे ॥१५॥ हे यक्ष! हे महान् सत्त्व वाले! हे सुव्रत! वरदान की याचना करो मैं तेरी भक्ति से परितुष्ट हो गया हूँ और तुझको जो भी तेरा अभीष्ट वर होगा उसे दे दूँगा ॥१६॥

यक्ष ने कहा—हे देवेश ! यदि आप मुझ पर परम तुष्ट हैं तो हे उमादेवी के सहित भगवान् शङ्कर ! मैं आज ही से लेकर समस्त यक्षों का स्वामी हो जाऊं और अक्षय्य तथा अव्यय हो जाऊं जिसमें आपकी भक्ति भरी हुई हो। हे परमेश्वर ! धर्म में नित्य ही मेरी मति आप प्रदान कीजिए ॥१७-१८॥ ईश्वर ने कहा—तूने जो भी प्रार्थना की है वह उसी भाँति धर्म का फल होगा—बस इतना ही कहकर भगवान् हर वहीं पर अन्तर्धान हो गए थे ॥१९॥ वह भी स्नान करके विधिपूर्वक पितृगण और देवों का भली भाँति तर्पण करके उस तीर्थ को आमन्त्रित करके कृतार्थ होता हुआ अपने घर को चला गया था ॥२०॥ वहाँ पर वह समस्त यक्षों के द्वारा पूजित हुआ और उसका विधान के साथ अभिषेक किया गया था। वहाँ पर उसने उत्तम और बहुत अपना इच्छित राज्य किया था ॥२१॥

तत्र चान्ये सुराः सिद्धायक्षगन्धर्वकिन्नराः।
गणाश्चाप्सरसांतत्रऋषयश्चतथाऽनघ ॥२२
कावेरीसङ्गमं तेन सर्वपापहारं विदुः।
स्वर्गागामपि सर्वेषां द्वारमेतद्युधिष्ठिर ॥२३
ते धन्यास्ते महात्मानस्तेषां जन्म सुजीवितम्।
कावेरीसगमे स्नात्वा यैर्दत्तं हि तिलोदकम् ॥२४
दश पूर्वे परे तात मातृतः पितृतस्तथा।
पितरः पितामहास्तेन उद्धृतानरकार्णवात् ॥२५
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन तत्र स्नायीतमानवः।
अर्चयेदीश्वरं देवं यदीच्छेच्छाश्वतीगतिम् ॥२६
कावेरीसगमे राजन्स्नानदानार्चनं नरैः।
श्रुतं भवता नरश्रेष्ठ अश्वमेधाधिकं फलम् ॥२७
होमेन चाक्षयः स्वर्गो जपादायुर्विवर्धते।
ध्यानतो निरमयाति पदं शिवकलात्मकम् ॥२८

हे अनघ ! वहाँ पर अन्य सुर—सिद्ध—यक्ष—गन्धर्व-किन्नर—अप्सराओं के गण तथा ऋषिवृन्द भी थे। इससे यह कावेरी का संगम

समस्त पापों का हरण करने वाला माना गया है। हे युधिष्ठिर! यह स्वर्गों का और अन्य समस्त लोकों का द्वार है ॥२२-२३॥ वे महान् आत्मा वाले पुरुष परम धन्य हैं और उनका जीवन अति सुन्दर जीवन है जिन्होंने कावेरी के संगम में स्नान करके तिलोदक समर्पित किया है ॥२४॥ हे तात! उसने माता और पिता दोनों के दश पूर्व के और दश पर के पितरों पितामहों को नरक के घोर अर्णव से उद्धार कर दिया है ॥२५॥ इसलिये सब प्रकार के प्रयत्न से मनुष्य को, वहाँ पर अवश्य ही स्नान करना चाहिए। यदि शाश्वत गति की इच्छा रखता है तो वहाँ पर देव ईश्वर को अर्चना करनी चाहिए ॥२६॥ हे राजन्! कावेरी के संगम में जिन मनुष्यों ने भक्ति की भावना से स्नान दान और अर्चन किया है हे नर श्रेष्ठ! उनको अश्वमेध यज्ञ से भी अधिक फल प्राप्त होता है ॥२७॥ होम से अक्षय स्वर्ग की प्राप्ति होती है और जाप करने से आयु की वृद्धि हुआ करती है तथा ध्यान करने से नित्य ही शिव के कलात्मक पद की प्राप्ति किया करता है ॥२८॥

अग्निप्रवेशं यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नरेश्वर।
अग्निलोकेवसेत्तावद्यावदाभूतसम्प्लवम् ॥२९
अनाशकं तु यः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप।
तस्य पुण्यफलं यद्वै तच्छृणुष्व नरोत्तम ॥३०
गन्धर्वाप्सरसङ्कीर्णे विमाने सूर्यसन्निभे।
वीज्यमानो वरस्त्रीभिर्देवतैः सह मोदते ॥३१
षष्टिवर्षसहस्राणि षष्टिवर्षशतानि च।
क्रीडते रुद्रलोकस्थस्तदन्ते भुवि चागतः ॥३२
भोगवान्दानशीलश्च जायते पृथिवीपतिः।
आधिशोकविनिर्मुक्तो जीवच्च शरदा शतम् ॥३३
एवंगुणगणाकीर्णा कावेरी सा सरिन्नृप।
त्रिषु लोकेषुविख्याताऽनर्मदा सगमेसदा ॥३४
जितवाक्कायचित्ताश्च ध्येयध्यानरतास्तथा।
कावेरीसंगमे तात तेऽपि मोक्षमवाप्नुयुः ॥३५

हे नरेश्वर ! उस तीर्थ मे जो कोई अग्नि मे प्रवेश किया करता है वह जब तक भूत सम्प्लव अर्थात् महा प्रलय होता है अग्नि लोक मे निवास प्राप्त किया करता है ॥२६॥ हे नराधिप ! उस तीर्थ में जो कोई अनाशक करे उसको जो भी पुण्य-फल होता है उसको सुनिये ॥३०॥ वह व्यक्ति गन्धर्व और अप्सराओ के द्वारा सङ्कीर्ण विमान मे जो कि सूर्य के समान होता है परम श्रेष्ठ स्त्रियो के द्वारा शोभ्यमान होता हुआ देवो के साथ आनन्द प्राप्त किया करता है ॥३१॥ वह साठ हजार साठ सौ वर्ष पर्यन्त रुद्र लोक में स्थित होकर क्रीडा किया करता है। इतने समय के पश्चात् ही वह इस भूलोक मे आता है ॥३२॥ यहाँ पर भी अत्यन्त अधिक भोगो से समन्वित होकर तथा परम दान देने वाला होता हुआ राजा हो जाता है। वह मानसिक व्यथा और शोक आदि से रहित होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है ॥३३॥ हे नृप ! इस प्रकार से अनेक गुणगण से वह कावेरी सरित युक्त है और तीनो लोको मे सदा नर्मदा के सगम में विख्यात है ॥३४॥ हे तात ! उस कावेरी के सगम मे अपने वचन-काया और चित के ऊपर विजय प्राप्त करके ध्येय के ध्यान मे रत होते हुए निवास किया करते हैं वे सभी मोक्ष को प्राप्त कर लिया करते हैं ॥३५॥

शृणु तेऽन्यत्प्रवक्ष्यामिआश्चर्यंनृपसत्तम ।
त्रिपुलोवैपुकात्यन्याद्दश्यमेसरितातमा ॥३६
लब्ध यैर्नमं दातोय ये चाकुर्यु प्रदक्षिणम् ।
ये पिबन्ति जलं तत्र ते पुण्यानाभसशय ॥३७
न तेषा सन्ततिच्छेदो दश जन्मानि पञ्च च ।
तेषा पाप विलीयेत हिमं सूर्योदये यथा ॥३८
ग गायमुनसगे वै यत्फलं लभत नर. ।
तत्फल लभते मर्त्यः कावरीस्नानमाचरन् ॥३९
भोमे तु भूनजायोगे व्यतीपाते वसक्रमे ।
राहुगोमसमायोगेतदेवाष्टगुणं स्मृतम् ॥४०

अशीतिश्च यवाः प्रोक्ता गंगायामुनसंगमे ।
कावेरीनर्मदायोगेतदेवाष्टगुणं स्मृतम् ॥४१
गंगा षष्टिसहस्रं स्तु क्षेत्रपालैः प्रपूज्यते ।
तदर्द्धै रन्यतीर्थानि रक्षन्ते नाऽत्र संशयः ॥४२

हे नृप सत्तम ! आप श्रवण करिए मैं आपको एक अन्य आश्चर्य बतलाता हूँ, तीनों लोकों में इस सरिता के समान अन्य कौन सी है अर्थात् कोई भी नहीं है। जिन्हो ने नर्मदा का जल प्राप्त कर लिया है और जो इसकी परिक्रमा करते हैं । जो वहाँ पर इसके जल का पान किया करते हैं वे परम पुण्यशाली हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥३६-३७॥ पन्द्रह जन्मों तक उनकी सन्तति का छेद नहीं होता है सूर्योदय के होने पर हिम के समान ही उनके सब पाप विलीन हो जाया करते है ॥३८॥ गंगा और यमुना के संगम मे जो फल मनुष्य प्राप्त करता है उसी पुण्य-फल को मनुष्य कावेरी के स्नान से प्राप्त करता है ॥३९॥ भौम मे भूतजा योग के होने पर-व्यतीपात में-सूर्य के सक्रमण मे तथा राहु और सोम के योग होने पर वही पुण्य-फल अठगुना बताया गया है ॥४०॥ गंगा और यमुना के संगम मे अशीति यव कहे गये है वही कावेरी और नर्मदा के संगम मे आठ गुना बताया गया है ॥४१॥ गंगा साठ हजार क्षेत्रपालों के द्वारा प्रकर्ष रूप से पूजी जाया करती है उनके आधो के द्वारा अन्य तीर्थ रक्षित किये जाया करते हैं—इसमे तनिक भी संशय नहीं है ॥४२॥

अमरेश्वरे तु सरितां ये योगाः परिकीर्तिताः ।
ते त्वशीतिसहस्रं स्तु क्षेत्रपालैस्तु रक्षिताः ॥४३
तथामरेश्वरे याम्ये लिंगं वैचपलेश्वरम् ।
द्वितीयं चण्डहस्ताख्यं द्वेलिंगेतीर्थ रक्षके ॥४४
शिवेन स्थापितं पूर्वं कावेर्याद्यभिरक्षके ।
लक्षेण रक्षिता देवी नर्मदा बहुकल्पगा ॥४५
धनुषां षष्टयभियुतैः पुरुषैरीशयोजितैः ।
ॐकारशतसाहस्रं । पर्वतश्चाभिरक्षितः ॥४६

अन्यदेशकृतं पापमस्मिन्क्षेत्रे विनश्यति ।
अस्मिस्तीर्थे कृतं पापं व्रजलेपो भविष्यति ।।४७
एषा ते कथिता तात कावेरी सरितां वरा ।
रुद्रदेहसमुत्पन्ना तेन पुण्यासरिद्वरा ।।४८

सरिताओं के अमरेश्वर योग में जो योग कीर्तित किये गये हैं वे अस्सी हजार क्षेत्रपालों के द्वारा रक्षित होते हैं ।।४३।। उसी प्रकार से अमरेश्वर के याम्य में चपलेश्वर लिंग है और दूसरा चण्डहस्त नामक लिंग है । ये दोनों लिंग तीर्थ संज्ञा वाले हैं ।।४४।। पहिले ही भगवान् शिव के द्वारा कावेरी—आदि के अभिरक्षक ये स्थापित किये गये । यह देवी नर्मदालक्ष के द्वारा रक्षित हुई है जो कि बहुत कल्पों में गमन करने वाली हैं ।।४५।। साठ धनुषों से अभियुत पुरुषों के द्वारा जो कि भगवान् ईश के द्वारा योजित हैं और सौ सहस्र ओङ्कारों से पर्वत अभिरक्षित होता है । अन्य स्थल में किया हुआ पाप इस क्षेत्र में विनष्ट हो जाया करता है ।।४६।। इस तीर्थ में समागत होकर जो भी पप किया जाता है वह वज्र लेप हो जाया करता है ।।४७।। हे तात ! तुम्हारे आगे यह समस्त सरिताओं में परम श्रेष्ठ नदी कावेरी का वर्णन किया गया है । यह कावेरी साक्षात् भगवान् रुद्र के देह से समुत्पन्न हुई है उसी से यह परम पुण्यमयी सरिता परम श्रेष्ठ है ।।४८।।

---

## ८६—शूलभेदप्रशंसावणन

तीर्थानां परमं तीर्थं तच्छृणुष्वनराधिप ।
रेवाया दक्षिणेकूले निर्मितं शूलपाणिना ।।१
मोक्षार्थं मानवेन्द्राणां निर्मितं नृपसत्तम ।
श्रुत्या मे विविधा धर्मास्तीर्थानि विविधानि च ।
दानधर्माः समस्ताश्च त्वत्प्रसादाद् द्विजोत्तम ।।२
अन्यच्च श्रोतुमिच्छामिसंसारश्छिद्यतेयथा ।
पुनरागमनं नास्तिमोक्षप्राप्तिभवेद्यथा ।।३

एतदाख्याहि मे सर्वं प्रसादाद् द्विजसत्तम ॥४
शृणुष्व कमना भूत्वा तीर्थात्तीर्थान्तरं महत् ।
श्रुते यस्य प्रभावे तु मुच्यते चाब्दिकादघात् ॥५
वाचिकं मानसं वापि शारीरञ्च विशेषतः ।
कीर्त्तनात्तस्य तीर्थस्य मुच्यते सर्वपातकैः । ६
पञ्चक्रोशप्रमाणं तु तच्च तीर्थं महीपते ।
भुक्तिमुक्तिप्रदं दिव्यं प्राणिनां पापकर्मिणाम् ॥७

महर्षि प्रवर श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा हे नराधिप समस्त तीर्थों मे जो परम शिरोमणि तीर्थ है उसके विषय में अब सावधान होकर श्रवण करिए । इस तीर्थ को साक्षात् भगवान् शूलपाणि ने रेवा नदी के दाहिने तट पर निर्मित किया है ॥१॥ हे नृपों में परम श्रेष्ठ ! इस तीर्थ का निर्माण मानवों के मोक्ष का सम्पादन करने के लिये ही किया गया है । युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजों में परमोत्तम ! आपकी कृपा से मैंने अनेक धर्म और नाना प्रकार के तीर्थों का श्रवण किया है—तथा समस्त दानों के धर्म भी सुन लिये हैं ॥२॥ हे भगवन् ! अब मैं और भी कुछ श्रवण करने की इच्छा रखता हूँ जिससे इस संसार के जन्म—मरण और बराबर लगे रहने वाले आवागमन का छेदन हो जावे और मरकर पुनः यहाँ पर जन्म ग्रहण कर आगमन न होवे तथा मोक्ष की प्राप्ति हो जाया करे ॥३॥ हे द्विजों मे परम श्रेष्ठ ! आप अपने प्रसाद के रूप मे यह सब कुछ मेरे समक्ष मे वर्णन कीजिए ॥४॥ श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—अब आप एकमन होकर तीर्थ से अन्य तीर्थ का श्रवण करिए जो कि परम महान् तीर्थ है जिसके प्रभाव के श्रुत मात्र से ही वर्ष के अघ से मुक्ति प्राप्त करली जाया करती है ॥५॥ वाचिक—मानसिक और शारीरिक समस्त पातकों से विशेष रूप से तीर्थ के कीर्त्तन करने से छुटकारा पा लिया जाता है ॥६॥ हे महीपते वह तीर्थ पाँच कोश के प्रमाण वाला है । यह तीर्थ पाप कर्मों के करने वाले प्राणियों को समस्त सांसारिक सुखों के उपभोग और मोक्ष दोनों का ही प्रदान करने वाला दिव्य तीर्थ है ॥७॥

रेवाया दक्षिणेकूलेपर्वतोभृगुसञ्ज्ञितः ।
तस्यमूर्ध्नि च तत्तीर्थं स्थापितं चैवशम्भुना ॥८
मूलभेदेतिविख्यातं त्रिपुलोकेपुभूपते ।
तत्रस्थिताश्रये वृक्षास्तीर्थाच्चं वचतुर्दिशम् ॥९
पतिताःशीलयं यान्ति रुद्रस्यनाऽत्रसशयः ।
मृतास्तत्रैवयेकेचिज्जन्तवो भुवि पक्षिणः ॥१०
ते यान्तिपरमं लोकं तत्रतीर्थं नसशयः ।
पातालान्नि.सृता ग गाभोगवतीतिसञ्ज्ञिता ॥११
निष्क्रान्ता मूलभेदाच्च सर्वपापक्षयङ्करी ।
या सा गीर्वाणनाम्न्यन्या वहेत्पुण्या महानदी ॥१२
पतिता कुण्डमध्ये तु यत्र भिन्नं त्रिशूलिना ।
शम्भुना च पुरा तात उत्पाद्य च सरस्वती ॥१३
सा तत्र पतिता राजंप्राचीनाघविमोचिनी ।
भास्वत्या त्रितयं यत्र शिला गीर्वाणसञ्ज्ञिता ॥१४

रेवा के दक्षिण तट पर एक भृगु सज्ञा वाला पर्वत है। उसके शिखर पर भगवान् शम्भु ने उस तीर्थ की स्थापना की है ॥८॥ हे भूपते ! वह मूलभेद इस नाम से विख्यात है और तीनो लोको में वेद प्रसिद्ध है। उसमे जा वृक्ष है जो कि उस तीर्थ के चारो दिशाओ मे है। वे जब गिरते है तो सीधे रुद्र के निलय मे जाकर प्राप्त हुआ करते हैं—इसमे सशय नही है वहाँ पर भूमि मे जो भी कोई ज तु एव पक्षी मृत होते हैं वे सब परम लोक को गमन किया करते है उस तीर्थ का यह प्रभाव है—इस मे कुछ भी सशय नहीं है। पाताल से निकली हुई गगा भोगवती—इस सज्ञा वाली है ॥९-११॥ यह मूलभेद से निष्क्रान्त हुई है जो कि समस्त पापो के क्षय करने वाली है। जा अन्य गीर्वाण नाम वाली है यह परम पुण्यमयी महानदी है ॥१२॥ यह कुण्ड के मध्य में पतित हुई है जहाँ पर शूलपाणि के द्वारा भिन्न की गई है। हे तात ! भगवान् शम्भु ने पहिले सरस्वती सरिता का उत्पादन किया था ॥१३॥ हे राजन् ! यह वहाँ पर पतित हुई थी जो पुराने-से भी पुराने अघों मे

मुक्त कर देने वाली है। जहाँ पर गीर्वाण संज्ञा वाली शिला है वहाँ सरस्वती के तीन रूप हैं ॥१४॥

सच तीर्थं च तत्तीर्थं न भूतं न भविष्यति।
केदारञ्च प्रयागञ्च कुरुक्षेत्रं गया तथा। १५
अन्यानि च सुतीर्थानि कलां नार्हन्ति षोडशीम्।
पञ्च स्थलानि तीर्थानि पृथग्भूतानि यानि च ॥१६
वक्ष्यामि च समासेन एकैकं च पृथक्पृथक्।
गया नाम्ना यथा पुण्यं चक्रतीर्थं च तत्समम् ॥१७
धर्मारण्ये यथा कूपं शूलभेदं च तत्समम्।
ब्रह्मयूपं यथा पुण्यं देवनद्यास्तथैव च ॥१८
यथा गयाशिरः पुण्यं सुराणां च यथा शिला।
यथा च पुष्करं स्थानं मार्कण्डह्लद एव च ॥१९
दत्वा पिण्डोदकं तत्र पितृणां च तथाक्षयम्।
यस्तत्रकुरुतेश्राद्धं तोयं पिबतिनित्यशः ॥२०
मुच्यते सर्वपापैस्तु उरग.कञ्चुकैरिव।
अनिन्द्यान्पूजयेद्विप्रान्दम्भक्रोधविवर्जितान् ॥२१

उस तीर्थ मे वह तीर्थ ऐसा है जो कभी न हुआ और न भविष्य में होगा। केदार—प्रयाग—कुरुक्षेत्र और गया हैं। अन्य जो सुतीर्थ हैं वे सोलहवी कला के भी योग्य नही हैं। जो पञ्च स्थान तीर्थ हैं और जो पृथग्भूत हैं उनको एक-एक को पृथक्-पृथक् संक्षेप मे बतलाऊंगा। नाभि मे गया जिस प्रकार का पुण्यमय तीर्थ है उसी के समान चक्रतीर्थ तीर्थ है ॥१५-१७॥ धर्मारण्य मे जैसा कूप है उसी के समान शूलभेद है। ब्रह्म-यूप जैसा पुण्यमय है उसी प्रकार का देवनदी का भी है। जिस प्रकार का गया का शिर पुण्यमय है और सुरो का शिला है। जैसा पुष्कर स्थल है और मार्कण्ड ह्लद भी वैसा ही है ॥१८-१९॥ वहाँ पर पितृगण को पिण्डोदक देकर जो वहाँ पर अक्षय श्राद्ध करता है वह नित्य ही जल का पान किया करता है ॥२०॥ जैसे सर्प अपनी केंचुली से मुक्त हो जाया करता है वैसे ही वह मनुष्य समस्त पापो से छुटकारा पा जाया करता

है। जो विप्र निन्दा करने के योग्य न होवें और दम्भ तथा क्रोध से रहित होवें उनकी पूजा करनी चाहिए ॥२१॥

त्रयोदशदिने दानं त्रयोदशगुणम्भवेत् ।
अभ्यर्चितं गुरुं दृष्ट्वा गणनाथं गजाननम् ॥२२
सर्वे विघ्नाविनश्यन्ति दृष्ट्वा कमलक्षेपम् ।
पूजयेत्परया भक्त्या शूलपाणिमहेश्वरम् ॥२३
देवस्य पूर्वभागे तु उमा पूज्या प्रयत्नतः ।
मार्कण्डेशं ततो भक्त्या पूजयेद् गुहवासिनम् ॥२४
मुच्यन्ते पातकैः सर्वैर्ज्ञानाज्ञानसञ्चितैः ।
गुहामध्ये प्रविष्टस्तु जपेन्मुक्तं तु त्र्यक्षरम् ॥२५
नीलपर्वतजं पुष्पं यशांशेन लभेत सः ।
नित्यशस्तत्र तिष्ठन्ति सान्निध्यमन्यैः सह ॥२६
सर्वं देवमयं स्थानं कोटिलिङ्गमनुत्तमम् ।
यथा नदीनदा सर्वे सागरे यान्ति संक्षयम् ॥२७
तथा पापानि नश्यन्ति शूलभेदस्य दर्शनात् ।
प्रत्यक्षो दृश्यतेऽद्यापि प्रत्ययो ह्यवनीपते ॥२८

त्रयोदश दिन का दिया हुआ दान तेरह गुना हो जाया करता है। अभ्यर्चना किये हुए गणनाथ गज के समान मुख वाले गुरु का दर्शन करके तथा कमलेक्षण प्रभु का देखकर सभी विघ्न विशेष रूप से नष्ट हो जाया करते हैं। परमाधिक भक्ति की भावना से महेश्वर शूलपाणि भगवान् की पूजा करनी चाहिए ॥२२-२३॥ देवेश्वर के पूर्व भाग में प्रयत्न पूर्वक जगदम्बा उमादेवी की पूजा करनी चाहिए। इसके अनन्तर भक्ति भाव से गुहवासी मार्कण्डेय की अर्चना करे ॥२४॥ इस पूजन के करने से ज्ञान तथा अज्ञान के द्वारा संचित समस्त पापों से मानव मुक्त हो जाया करता है। गुहा के मध्य में प्रविष्ट होकर त्र्यक्षर मन्त्र का जाप करना चाहिए ॥२५॥ वह व्यक्ति नील पर्वत से समुत्पन्न पुष्प को यशांश से प्राप्त किया करता है। वहाँ पर सान्निध्य गणों के साथ नित्य ही स्थित रहा करते हैं ॥२६॥ यह स्थान सम्पूर्ण देवमय है और यहाँ उत्तम कोटि लिङ्गों

से युक्त है। जिस प्रकार से सभी नदी और नद सागर मे सक्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं उसी भाँति भगवान् शूलभेद के दर्शन करने से सब पाप नष्ट हो जाया करते है। हे अवनीपते ! आज भी वह प्रत्यक्ष दिखलाई देते हैं और प्रत्यय होता है ॥२७-२८॥

विस्फुलिंगालिगमध्येस्पन्दन्तेस्नानयोगतः ।
द्वितीयःप्रत्ययस्तत्रतैलबिन्दुर्न्न सर्पति ।.२९
एवं हि प्रत्ययस्तत्र शूलभेदप्रभावजः ।
यः स्मरेच्छूलभेद तु त्रिकालं नित्यमेव च ॥३०
सपूतश्चभवेत्साक्षात्सबाह्याभ्यन्तरोनृप ।
नकस्यचिन्मयाख्यात पृष्टोऽहत्रिदशैरपि ॥३१
*गुह्याद्गुह्यतरं तीर्थं सदा गोप्यं कृतं मया ।*
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदोषघ्नमुत्तमम् ॥३२
सर्वतीर्थमयं तीर्थं शूलभेदं जनेश्वर ।
श्रुते यस्य प्रभावेतुमुच्यतेसर्वपातकैः ॥३३
शूलभेदं मयातातसक्षेपात्कथितं तव ।
यः श्रृणोतिनरोभक्त्या मुच्यते सर्वपातकै. ॥३४

स्नान के योग से लिंग के मध्य मे विस्फुलिंग स्पन्द किया करते हैं। दूसरा प्रत्यय है कि वहाँ पर तैल का बिन्दु सरण नहीं किया करता है ॥२९॥ इस प्रकार से वहाँ पर शूलभेद के प्रभाव से समुत्पन्न प्रत्यय होता है। जो पुरुष तीनो कालो मे नित्य हो भगवान् शूलभेद का स्मरण किया करता है हे नृप ! वह बाहिर और भीतर से साक्षात् पूत हो जाया करता है। यह बात मैंने किसी से भी कही थी यद्यपि देवो के द्वारा भी मुझ से पूछा गया था ॥३०-३१॥ यह गोपनीय से भी अधिक गोपनीय है अत. मैंने इस तीर्थ को गुप्त ही रक्खा था। यह सभी प्रकार के पापो का हरण करने वाला—पुण्यमय—उत्तम और समो दोषो का हनन करने वाला है ॥३२॥ हे जनेश्वर ! शूलभेद तीर्थ समस्त तीर्थों से परिपूर्ण तीर्थ है। इसके प्रभाव का श्रवण करने पर ही समस्त पापों से छुटकारा पा जाया करता है। हे तात ! यह शूलभेद तीर्थ का वर्णन मैंने तुम्हारे

सामने संक्षेप से कर दिया है। जो भी कोई मनुष्य भक्ति भाव से इसे श्रवण करता है वह सभी पातकों से मुक्त हो जाया करता है ॥३४॥

---

## ८७—कालरात्रिकृतजगत्संहरवर्णन

ततस्त ऋषयः सर्वेमहाभागास्तपोधनाः ।
गतास्तुपरमं लोकं ततः किजातमद्भुतम् ॥१
ततस्तेषु प्रयातेषु नर्मदातीरवासिषु ।
बभूव रौद्रसंहार सर्वभूतक्षयकरः ॥२
कैलासशिखरस्थं तु महादेवं सनातनम् ।
ब्रह्माद्याः प्रास्तुतन्देवमृग्यजुः सामभिः शिवम् ॥३
संहरस्व जगद्दे व ! सदेवासुरमानुषम् ।
प्राप्तोयुगसहस्रान्तः कालःसंहरणक्षमः ॥४
मद्रूप तु समास्थाय त्वया चैतद्विनिर्मितम् ।
वैष्णवी मूर्तिमास्थाय त्वयैतत्परिपालितम् ॥५
एका मूर्तिस्त्रिधा जाता ब्राह्मी शैवी च वैष्णवी ।
सृष्टिसंहाररक्षार्थं भवेदेव महेश्वर ! ॥६
एतच्छ्रुत्वावचस्तथ्यविष्णोश्चपरमेष्ठिनः ।
सगणः सपरिवारः सहताभ्यासहोमया ॥७
सप्तलोकान्विभिद्येमान्भगवान्नीललोहित. ।
भूराद्यब्रह्मलोकान्तं भित्वाऽण्ड परतः परम् ॥८

युधिष्ठिर ने कहा—इसके अनन्तर महान् भाग्य वाले तप ही जिनका धन था वे समस्त ऋषिगण परम लोक को चले गये थे। इसके पश्चात् क्या अद्भुत घटना हुई थी ? श्री मार्कण्डेय जी ने कहा—इसके अनन्तर उन नर्मदा के तट पर निवास करने वाले लोगों के प्रयाण कर जाने पर फिर समस्त प्राणियों का भयंकर क्षय करने वाला रौद्र संहार हुआ था। ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने कैलास पर्वत की शिखर पर समवस्थित सनातन शिव महादेव का ऋक्, यजु और सामवेदों के द्वारा स्तवन किया

से युक्त है। जिस प्रकार से सभी नदी और नद सागर में सदाय को प्राप्त हो जाया करते हैं उसी भाँति भगवान् शूलभेद के दर्शन करने से सब पाप नष्ट हो जाया करते हैं। हे अवनीपते! आज भी यह प्रत्यक्ष दिखलाई देते हैं और प्रत्यय होता है ॥२७-२८॥

विस्फुलिंगालिंगमध्येस्पन्दन्तेस्नानयोगतः।
द्वितीयःप्रत्ययस्तत्रतैलबिन्दुर्न्न सर्पति ।।२९
एवं हि प्रत्ययस्तत्र शूलभेदप्रभावजः।
यः स्मरेच्छूलभेद तु त्रिकालं नित्यमेव च ॥३०
सपूतश्चभवेत्साक्षात्सबाह्याभ्यन्तरोनृप।
नकस्यचिन्मयाख्यात पृष्टोऽहंत्रिदशैरपि ॥३१
गुह्याद्गुह्यतरं तीर्थं सदा गोप्यं कृतं मया।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदोषघ्नमुत्तमम् ॥३२
सर्वतीर्थमयं तीर्थं शूलभेदं जनेश्वर।
श्रुते यस्य प्रभावेतुमुच्यतेसर्वपातकैः ॥३३
शूलभेदं मयातातसंक्षेपात्कथितं तव।
यः श्रृणोतिनरोभक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः ॥३४

स्नान के योग से लिंग के मध्य में विस्फुलिंग स्पन्द किया करते हैं। दूसरा प्रत्यय है कि वहाँ पर तैल का विन्दु सर्पण नहीं किया करता है ॥२९॥ इस प्रकार से वहाँ पर शूलभेद के प्रभाव से समुत्पन्न प्रत्यय होता है। जो पुरुष तीनों कालों में नित्य ही भगवान् शूलभेद का स्मरण किया करता है हे नृप! वह बाहिर और भीतर से साक्षात् पूत हो जाया करता है। यह बात मैंने किसी से भी कही थी यद्यपि देवों के द्वारा भी मुझ से पूछा गया था ॥३०-३१॥ यह गोपनीय से भी अधिक गोपनीय है अत. मैंने इस तीर्थ को गुप्त ही रक्खा था। यह सभी प्रकार के पापों का हरण करने वाला—पुण्यमय—उत्तम और सभी दोषों का हनन करने वाला है ॥३२॥ हे जनेश्वर! शूलभेद तीर्थ समस्त तीर्थों से परिपूर्ण तीर्थ है। इसके प्रभाव का श्रवण करने पर ही समस्त पापों से छुटकारा पा जाया करता है। हे तात! यह शूलभेद तीर्थ का वर्णन मैंने तुम्हारे

सामने संक्षेप से कर दिया है। जो भी कोई मनुष्य भक्ति भाव से इसे श्रवण करता है वह सभी पातकों से मुक्त हो जाया करता है ॥३४॥

---

## ८७—कालरात्रिकृतजगत्संहरवर्णन

ततस्त ऋषयः सर्वेमहाभागास्तपोधनाः ।
गतास्तुपरमं लोकं ततः किंजातमद्भुतम् ॥१
ततस्तेषु प्रयातेषु नर्मदातीरवासिषु ।
बभूव रौद्रसंहार सर्वभूतक्षयकरः ॥२
कैलासशिखरस्थं तु महादेवं सनातनम् ।
ब्रह्माद्याः प्रास्तुतन्देवमृग्यजुः सामभिः शिवम् ॥३
संहरस्व जगद्देव ! सदेवासुरमानुषम् ।
प्राप्तोयुगसहस्रान्तः कालःसंहरणक्षमः ॥४
मद्रूपं तु समास्थाय त्वया चैतद्विनिर्मितम् ।
वैष्णवी मूर्तिमास्थाय त्वयंतत्परिपालितम् ॥५
एका मूर्तिस्त्रिधा जाता ब्राह्मी शैवी च वैष्णवी ।
सृष्टिसंहाररक्षार्थं भवेदेवं महेश्वर ! ॥६
एतच्छ्रुत्वावचस्तथ्यविष्णोश्चपरमेष्ठिनः ।
सगणः सपरीवारः सहताभ्यांसहोमया ॥७
सप्तलोकान्विभिद्येमान्भगवान्नीललोहितः ।
भूराद्यब्रह्मलोकान्तं भित्वाऽण्डं परतः परम् ॥८

युधिष्ठिर ने कहा—इसके अनन्तर महान् भाग्य वाले तप ही जिनका धन था वे समस्त ऋषिगण परम लोक को चले गये थे। इसके पश्चात् क्या अद्भुत घटना हुई थी ? श्री मार्कण्डेय जी ने कहा—इसके अनन्तर उन नर्मदा के तट पर निवास करने वाले लोगों के प्रयाण कर जाने पर फिर समस्त प्राणियों का भयंकर क्षय करने वाला रौद्र संहार हुआ था। ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने कैलास पर्वत की शिखर पर समवस्थित सनातन शिव महादेव का ऋक्, यजु और सामवेदों के द्वारा स्तवन किया

से युक्त है। जिस प्रकार से सभी नदी और नद सागर में सक्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं उसी भाँति भगवान् शूलभेद के दर्शन करने से सब पाप नष्ट हो जाया करते हैं। हे भवनीपते ! आज भी वह प्रत्यक्ष दिखलाई देते हैं और प्रत्यय होता है ॥२७-२८॥

विस्फुलिंगालिंगमध्येस्पन्दन्तेस्नानयोगतः ।
द्वितीयःप्रत्ययस्तत्रतैलबिन्दुर्न्न सर्पति ।.२९
एवं हि प्रत्ययस्तत्र शूलभेदप्रभावजः ।
यः स्मरेच्छूलभेदं तु त्रिकालं नित्यमेव च ॥३०
सपूतश्चभवेत्साक्षात्सबाह्याभ्यन्तरोनृप ।
नकस्यचिन्मयाख्यातं पृष्टोऽहंत्रिदशैरपि ॥३१
गुह्याद्गुह्यतरं तीर्थं सदा गोप्यं कृतं मया ।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदोषघ्नमुत्तमम् ॥३२
सर्वतीर्थमयं तीर्थं शूलभेदं जनेश्वर ।
श्रुते यस्य प्रभावेतुमुच्यतेसर्वपातकैः ॥३३
शूलभेदं मयातातसंक्षेपात्कथितं तव ।
यः शृणोतिनरोभक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः ॥३४

स्नान के योग से लिंग के मध्य में विस्फुलिंग स्पन्द किया करते हैं। दूसरा प्रत्यय है कि वहाँ पर तैल का बिन्दु सर्पण नहीं किया करता है ॥२६॥ इस प्रकार से वहाँ पर शूलभेद के प्रभाव से समुत्पन्न प्रत्यय होता है। जो पुरुष तीनों कालों में नित्य ही भगवान् शूलभेद का स्मरण किया करता है हे नृप ! वह बाहिर और भीतर से साक्षात् पूत हो जाया करता है। यह बात मैंने किसी से भी कही थी यद्यपि देवों के द्वारा भी मुझ से पूछा गया था ॥३०-३१॥ यह गोपनीय से भी अधिक गोपनीय है अतः मैंने इस तीर्थ को गुप्त ही रक्खा था। यह सभी प्रकार के पापों का हरण करने वाला—पुण्यमय—उत्तम और सभी दोषों का हनन करने वाला है ॥३२॥ हे जनेश्वर ! शूलभेद तीर्थ समस्त तीर्थों से परिपूर्ण तीर्थ है। इसके प्रभाव का श्रवण करने पर ही समस्त पापों से छुटकारा पा जाया करता है। हे तात ! यह शूलभेद तीर्थ का वर्णन मैंने तुम्हारे

सामने संक्षेप से कर दिया है। जो भी कोई मनुष्य भक्ति भाव से इसे श्रवण करता है वह सभी पातकों से मुक्त हो जाया करता है ॥३४॥

---

## ८७—कालरात्रिकृतजगत्संहरवर्णन

ततस्त ऋषयः सर्वेमहाभागास्तपोधनाः ।
गतास्तुपरमं लोकं ततः किंजातमद्भुतम् ॥१
ततस्तेषु प्रयातेषु नर्मदातीरवासिषु ।
बभूव रौद्रसंहार सर्वभूतक्षयकरः ॥२
कैलासशिखरस्थं तु महादेवं सनातनम् ।
ब्रह्माद्याः प्रास्तुवन्देवमृग्यजुः सामभिः शिवम् ॥३
संहरस्व जगद्देव ! सदेवासुरमानुषम् ।
प्राप्तोयुगसहस्रान्तः कालः संहरणक्षमः ॥४
मद्रूपं तु समास्थाय त्वया चैतद्विनिर्मितम् ।
वैष्णवीं मूर्तिमास्थाय स्वयंतत्परिपालितम् ॥५
एका मूर्तिस्त्रिधा जाता ब्राह्मी शैवी च वैष्णवी ।
सृष्टिसंहाररक्षार्थं भवेदेव महेश्वर ! ॥६
एतच्छ्रुत्वावचस्तथ्यविष्णोश्चपरमेष्ठिनः ।
सगणः सपरीवारः सहनाम्यासहोमया ॥७
सप्तलोकान्विभिद्येमान्भगवान्नीललोहितः ।
भूराद्यब्रह्मलोकान्तं भित्वाऽण्डं परतः परम् ॥८

युधिष्ठिर ने कहा—इसके अनन्तर महान् भाग्य वाले तप ही जिनका धन था वे समस्त ऋषिगण परम लोक को चले गये थे। इसके पश्चात् क्या अद्भुत घटना हुई थी ? श्री मार्कण्डेय जी ने कहा—इसके अनन्तर उन नर्मदा के तट पर निवास करने वाले लोगों के प्रयाण कर जाने पर फिर समस्त प्राणियों का भयंकर क्षय करने वाला रौद्र संहार हुआ था। ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने कैलास पर्वत की शिखर पर समवस्थित सनातन शिव महादेव का ऋक्, यजु और सामवेदों के द्वारा स्तवन किया

से युक्त है । जिस प्रकार से सभी नदी और नद सागर में सक्षय को प्राप्त हो जाया करते हैं उसी भाँति भगवान् शूलभेद के दर्शन करने से सब पाप नष्ट हो जाया करते हैं । हे भवनोपते ! प्राज भी वह प्रत्यक्ष दिखलाई देते है और प्रत्यय होता है ॥२७-२८॥

विस्फुलिगालिगमध्येस्पन्दन्तेस्नानयोगतः ।
द्वितीयःप्रत्ययस्तत्रतैलबिन्दुर्न्न सर्पति ।.२९
एवं हि प्रत्ययस्तत्र शूलभेदप्रभावजः ।
यः स्मरेच्छूलभेद तु त्रिकालं नित्यमेव च ॥३०
सपूतश्चभवेत्साक्षात्सबाह्याभ्यन्तरोनृप ।
नकस्यचिन्मयाख्यातं पृष्टोऽह्त्रिदशैरपि ॥३१
गुह्याद्गुह्यतरं तीर्थं सदा गोप्यं कृतं मया ।
सर्वपापहरं पुण्यं सर्वदोषघ्नमुत्तमम् ॥३२
सर्वतीर्थमयं तीर्थं शूलभेदं जनेश्वर ।
श्रुते यस्य प्रभावेतुमुच्यतेसर्वपातकैः ॥३३
शूलभेदं मयातातसक्षेपात्कथितं तव ।
यः शृणोतिनरोभक्त्या मुच्यते सर्वपातकैः ॥३४

स्नान के योग से लिंग के मध्य मे विस्फुलिंग स्पन्द किया करते हैं । दूसरा प्रत्यय है कि वहाँ पर तैल का बिन्दु सर्पण नही किया करता है ॥२९॥ इस प्रकार से वहाँ पर शूलभेद के प्रभाव से समुत्पन्न प्रत्यय होता है । जो पुरुष तीनो कालो मे नित्य ही भगवान् शूलभेद का स्मरण किया करता है हे नृप ! वह बाहिर और भीतर से साक्षात् पूत हो जाया करता है । यह बात मैंने किसी से भी कही थी यद्यपि देवों के द्वारा भी मुझ से पूछा गया था ॥३०-३१॥ यह गोपनीय से भी अधिक गोपनीय है अतः मैंने इस तीर्थ को गुप्त ही रक्खा था । यह सभी प्रकार के पापो का हरण करने वाला—पुण्यमय—उत्तम और सभी दोषो का हनन करने वाला है ॥३२॥ हे जनेश्वर ! शूलभेद तीर्थ समस्त तीर्थों से परिपूर्ण तीर्थ है । इसके प्रभाव का श्रवण करने पर ही समस्त पापो से छुटकारा पा जाया करता है । हे तात ! यह शूलभेद तीर्थ का वर्णन मैंने तुम्हारे

सामने संक्षेप से कर दिया है। जो भी कोई मनुष्य भक्ति भाव से इसे श्रवण करता है वह सभी पातकों से मुक्त हो जाया करता है ॥३४॥

---

## ८७—कालरात्रिकृतजगत्संहरवर्णन

ततस्त ऋषयः सर्वेमहाभागास्तपोधनाः ।
गतास्तुपरमं लोकं ततः किञ्जातमद्भुतम् ॥१
ततस्तेषु प्रयातेषु नर्मदातीरवासिषु ।
बभूव रौद्रसंहार सर्वभूतक्षयकरः ॥२
कैलासशिखरस्थं तु महादेवं सनातनम् ।
ब्रह्माद्याः प्रास्तुवन्देवमृग्यजुः सामभिः शिवम् ॥३
संहरस्व जगद्देव ! सदेवासुरमानुषम् ।
प्राप्तोयुगसहस्रान्तः कालः संहरणक्षमः ॥४
मद्रूप तु समास्थाय त्वया चैतद्विनिर्मितम् ।
वैष्णवी मूर्तिमास्थाय त्वयंतत्परिपालितम् ॥५
एका मूर्तिस्त्रिधा जाता ब्राह्मी शैवी च वैष्णवी ।
सृष्टिसंहाररक्षार्थं भवेदेव महेश्वर ! ॥६
एतच्छ्रुत्वावचस्तथ्यंविष्णोश्चपरमेष्ठिनः ।
सगणः सपरीवारः सहनाम्यासहोमया ॥७
सप्तलोकान्विभिद्येमान्भगवान्नीललोहितः ।
भूराद्यब्रह्मलोकान्तं भित्वाऽण्डं परतः परम् ॥८

युधिष्ठिर ने कहा—इसके अनन्तर महान् भाग्य वाले तप ही जिनका धन था वे समस्त ऋषिगण परम लोक को चले गये थे। इसके पश्चात् क्या अद्भुत घटना हुई थी ? श्री मार्कण्डेय जी ने कहा—इसके अनन्तर उन नर्मदा के तट पर निवास करने वाले लोगों के प्रयाण कर जाने पर फिर समस्त प्राणियों का भयंकर क्षय करने वाला रौद्र संहार हुआ था। ब्रह्मा आदि समस्त देवों ने कैलास पर्वत की शिखर पर समवस्थित सनातन शिव महादेव का ऋक्, यजु और सामवेदों के द्वारा स्तवन किया

था। हे देव ! आप इस सम्पूर्ण जगत् का जिसमे देव–असुर और मनुष्य सभी हैं संहार कीजिए क्योंकि अब एक सहस्र युगो का अन्तकाल प्राप्त हो गया है जो कि संहार करने मे समर्थ है। आपने ही मेरे स्वरूप को धारण करके इस जगत् का सृजन किया था फिर वैष्णवी मूर्त्ति को धारण करके अर्थात् विष्णु के स्वरूप से इस जगत का आपने ही परिपालन किया था। आपकी ही एक मूर्त्ति ब्राह्मी वैष्णवी और शैवी तीन प्रकार की हो गई थी। हे महेश्वर ! आपने जगत की सृष्टि, रक्षा और संहार करने के ही लिए ऐसा किया है। इस परमेष्ठी और भगवान् विष्णु के तथ्य वचन का श्रवण करके अपने गणो के साथ तथा उन दोनो के सहित और उमा देवी के साथ नील लोहित भगवान् ने इन सातो लोको का विभेद किया था। भू से आदि लेकर ब्रह्म लोक के अन्त तक पर से पर अण्ड का विभेदन कर दिया था ॥१-८॥

शैवं पदमजं दिव्यमाविशत्सह तैर्विभुः।
न तत्र वायुर्नाकाशं नाग्निस्तत्र न भूतलम् ॥९
यत्र संतिष्ठते देव उमया सह शंकरः।
न सूर्यो न ग्रहास्तत्र न ऋक्षाणिदिशस्तथा ॥१०
न लोकपाला न सुखं न च दुःखं नृपोत्तम ! ॥११
ब्राह्मं पदं यत्कवयो वदन्तिशवं पदं यत्कवयो वदन्ति।
क्षेत्रज्ञमीशप्रवदन्तिचान्येसांख्याश्चगायन्तिकिलादिमीशम्॥१२
यद्ब्रह्म आद्यं प्रवदन्ति केचिद्य सर्वमीशानमजं पुराणम्।
तमेकरूपं तमनेकरूपमरूपमाद्यं परमव्ययाख्यम ॥१३
अवर्णमप्ययं मनामगोत्रं तुर्यं पदं यत्कवयो वदन्ति।
ध्यानाय विज्ञानमयं सुसूक्ष्ममात्मस्थमीशानवरं वरेण्यम् ॥१४

वह विभु परम दिव्य—अज शैव पद मे उनके साथ प्रवेश कर गये। वहाँ पर न वायु है—न आकाश है और न अग्नि तथा भूतल ही है जहाँ पर कि देव शंकर उमादेवी के साथ स्थित रहा करते हैं। वहाँ सूर्य ग्रह नक्षत्र और दिशाऐं कुछ भी नहीं है। हे नृपोत्तम ! वहाँ पर न तो कोई लोकपाल ही है और न कोई सुख एवं दुःख ही है। जिसको कवि-

गए ब्राह्म पद कहा करते हैं और कवि उसे शैव पद भी कहते हैं। अन्य लोग उसी को क्षेत्रज्ञ ईश कहते हैं तथा साख्य लोग उसी को आदि मोक्ष कहकर पुकारा करते है। कुछ लोग उसको आद्य ब्रह्म कहते हैं जिसको सर्व—ईशान-अज और पुराण भी कहते हैं। उसको एक ही रूप वाला —अनेक रूपो से युक्त—बिना रूप वाला-आद्य—परम और अव्यय नाम वाला-भवर्ग भी अर्थ—अनाम—अगोत्र-तुर्य पद कवि लोग कहते हैं। ध्यान के लिए विज्ञानमय—मुमूक्ष्मस्थ-ईशान वर और वरेण्य भी कहते हैं ॥९-१४॥

ततस्त्रयस्ते भगवन्ततोश सम्प्राप्य सक्षिप्य भवन्त्यथैकम् ।
पृथक्स्वरूपैस्तु पुनस्त एव जगत्समस्त परिपालयन्ति ॥१५
संहार सर्वभूतानां रुद्रत्वे कुरुते प्रभुः ।
विष्णुत्वे पालयेल्लोकान्ब्रह्मत्वे सृष्टिकारकः ॥१६
प्रकृत्या सह सयुक्त. कालो भूत्वा महेश्वरः ।
विश्वरूपा महाभागा तस्य पार्श्वे व्यवस्थिता ॥१७
यामाहुः प्रकृति तज्ज्ञाः पदार्थानाविचक्षणाः ।
पुरुषत्वेप्रकृतित्वे च कारण परमेश्वरः । १८
तस्मादेतज्जगत्सर्वंतगुद्भूत चराचरम् ।
तस्मिन्नेवलय याति युगान्ते समुपस्थिते ॥१९
भगलिङ्गाकित सव व्याप्त व परमेष्ठिना ।
भगरूपो भवेद्विष्णुर्लिङ्गरूपो महेश्वरः ॥२०
भाति सव पु लोकेषु गीयते भूर्भु वादिषु ।
प्रविष्टः सर्वभूतेषुतेनविष्णुभग स्मृतः ॥२१

इसके उपरान्त वे तीनो देव एक ही ईश भगवान् को प्राप्त करके और मिलकर सक्षिप्त हो जाते हैं। वे ही फिर पृथक् स्वरूपो से युक्त होकर इस सम्पूर्ण जगत का परिपालन किया करते है। प्रभु सर्वभूतो के सहार को रुद्रत्व मे करते हैं। विष्णुत्व के रूप मे लोको का पालन करते हैं और ब्रह्मत्व रूप में सृजन का कार्य किया करते हैं। प्रकृति के साथ संयुक्त महेश्वर काल होकर स्थित रहते हैं। विश्वरूपा महाभागा उसी के पार्श्व

में व्यवस्थित रहा करती है । उसके ज्ञाता विचक्षण लोग पदार्थों के जानने वाले जिसको प्रकृति कहते हैं । पुरुषत्व के स्वरूप मे तथा प्रकृतित्व के रूप मे परमेश्वर ही एक कारण है । उससे ही यह सम्पूर्ण चर और अचर जगत् उत्पन्न हुआ है और युग के अन्त के उपस्थित होने उसी में पर लय होजाता है । परमेष्ठी के द्वारा यह समस्त भगलिंग से अंकित व्याप्त हो रहा है । भगरूप भगवान् विष्णु हैं और लिंग रूप महेश्वर हैं सब लोकों मे ही दीप्तिमान् होते हैं और भूभु वादि मे गान किये जाते हैं । समस्त भूतो मे प्रविष्ट हैं इसी कारण से विष्णु भग कहे गये हैं ॥१५-२१॥

विशनाद्विष्णुरित्युक्तः सर्वदेवमयो महान् ।
भासनाद्गमनाच्चैव भगसञ्ज्ञाप्रकीर्तिता ॥२२
ब्रह्मादिस्तम्बपर्यन्तं यस्मिन्नेतिलयं जगत् ।
एकभावं समापन्नं लिगं तस्माद्विदुर्बुधाः ॥२३
महादेवस्ततो देवीमाह पार्श्वे स्थितां तदा ।
सहरस्व जगत्सर्वं मा विलम्बस्व शोभने ! ॥२४
त्यज सौम्यमिदं रूपं सितचन्द्रांशुनिर्मलम् ।
रौद्ररूपं समास्थायसंहरस्व चराचरम् । २५
रौद्रैर्भूतगणैर्घोरैर्देवि त्वं परिवारिता ।
जीवलोकमिमं सर्वं भक्षयस्वाम्बुजेक्षणे ॥२६
ततोऽहं मर्दयिष्यामि प्लावयिष्ये तथा जगत् ।
कृत्वा चैकार्णवं भूयः सुखं स्वप्स्ये त्वया सह ॥२७

सर्व देवो से परिपूर्ण विष्णु विशन होने से ही विष्णु इस तरह नाम से कहे गये हैं । भासन होने और गमन होने से ही "भग" यह संज्ञा कीर्तित हुई है । ब्रह्मा से आदि लेकर स्तम्ब पर्यन्त यह जगत् जिसमे लय का प्राप्त होता है । एक भाव को समापन्न हो गया है इसीलिये बुध लोग इसे लिग कहा करते हैं । इसके अनन्तर उस समय मे महादेव ने पार्श्व भाग में स्थित देवी से कहा था—हे शोभने ! इस सम्पूर्ण जगत का संहार करो और अब विलम्ब मत करो । अब सित चन्द्र की किरणों से निर्मल इस सौम्य स्वरूप का त्याग कर दो और महान् रौद्र स्वरूप से समास्थित

होकर इस जड-जङ्गम चराचर जगत का सहार कर डालो। हे देवि ! परम घोर रौद्र रूप वाले भूतो के गणों से आप परिवारित होती हुई हे अम्बुजेक्षणे। इस समस्त जगत का भक्षण कर डालो। इसके पश्चात् मैं मर्दन कर डालूंगा और इस सम्पूर्ण जगत् को प्लावित कर डालूंगा सबको एकार्णव से युक्त करके फिर तुम्हारे साथ मे सुखपूर्वक शयन करूंगा ॥२२-२७॥

नाहं देवजगच्चैतत्संहरामि महाद्युते ।
अम्बा भूत्वा विचेष्टं न भक्षयामिभृशातुरम् ॥२८
स्त्रीस्वभावेन कारुण्यं करोति हृदय मम ।
कथं वै निर्दहिष्यामिजगदेतज्जगत्पते ॥२९
तस्मात्त्वं स्वयमेवेदं जगत्संहर शंकर ! ।
अथैवमुक्तस्तां देवी धूर्जटिर्नीललोहितः ॥३०
क्रुद्धो निर्भर्त्सयामास हुंकारेण महेश्वरीम् ।
ॐ हुं फट् स्वं स इत्याह कोपाविष्टरयेक्षणः ॥३१
हुंकारिताविशालाक्षीपीनोरुजघनस्थला ।
तत्क्षणाच्चाभवद्रौद्राकालरात्रीवभारत ॥३२
हुंकुर्वती महानादैर्नादयन्ती दिशोदश ।
व्यवर्धतमहारौद्रा विद्युत्सौदामिनीयथा ॥३३
विद्युत्सम्पातदुष्प्रेक्ष्या विद्युत्संघातचञ्चला ।
विद्युज्ज्वालाकुला रौद्रा विद्युदग्निनिभेक्षणा ॥३४
मुक्तकेशी विशालाक्षीकृशग्रीवा कृशोदरी ।
व्याघ्रचर्माम्बरधराव्यालयज्ञोपवीतिनी ॥३५

श्री देवी ने कहा—हे महाद्युते ! हे देव ! मैं इस सम्पूर्ण जगत का सहार नही करती हूँ। मैं अम्बा होकर विगत चेष्टा वाले और अत्यन्त आतुर का भक्षण कभी नही कर सकती हूँ। मैं स्त्री स्वभाव वाली हूँ मेरे हृदय मे कारुण्य होना है। हे जगत्पते ! मैं कैसे जगत् की अम्बा होती हुई इस जगत् का निर्दहन करूंगी। इसलिए आप ही स्वयं हे शङ्कर ! इस समस्त जगत के संहार का कार्य कीजिये। इसके अनन्तर इस प्रकार से

देवी के द्वारा कहे हुए धूर्जटि नीललोहित प्रभु ने अत्यन्त क्रुद्ध होकर उस देवी को निर्भत्सित किया था और महेश्वरी को हुंकार के द्वारा फटकार दी थी। उनने 'तुम हुंकट्'—यह कहा था। कोप से समाविष्ट नेत्रों के दृष्टि वालों के द्वारा वह पीन रुद्र और जघन स्थल वाली विशालाक्षी देवी हुङ्कारित हुई थी। हे भारत! उसी क्षण में वह परम रौद्रा काल रात्रि के समान हो गई थी। वह देवी महान् नादों से हुम् हुम् करती हुई और दशों दिशाओं को ध्वनित करने वाली विद्युत सौदामिनी की भाँति महारौद्र रूप वाली होकर बढ गई थी। विद्युत के सम्पात के ही समान वह दुष्प्रेक्षणीय थी तथा विद्युत् के संघात के समान चंचला थी। विद्युत के समान ही ज्वालाओं से समाकुल और विद्युत की अग्नि के तुल्य नेत्रों वाली रौद्र रूप वाली हो गई थी। युक्त केशों वाला उसका स्वरूप था। उस देवी के नेत्र परम विशाल थे—ग्रीवा कृश थी और वह कृश उदर वाली थी। वह उस समय में व्याघ्र के चर्म की अम्बर वाली थी तथा व्यालों के यज्ञोपवीत को धारण करने वाली थी ॥२८-३५॥

वृश्चिकैरग्निपुञ्जाभैर्गोनसैश्च विभूषिता।
त्रैलोक्यपूरयामासविस्तरेणोच्छ्रयेण च ॥३६
भासुराङ्गा तु सम्वृत्ता कृष्णसर्पककुण्डला।
चित्रदण्डोद्यतकरा व्याघ्रचर्मोपसेविता ॥३७
भयवर्धनमहारौद्राजगत्संहारकारिणी।
सृक्किणीलेलिहानाचक्रूरफूत्कारकारिणी ॥३८
व्यात्तास्या घुघुंरारावा जगत्सङ्क्षोभकारिणी।
खेलद्भूतानुगा क्रूरा निश्वासोच्छ्वासकारिणी ॥३९
जाताट्टहासादुर्नासावह्निकुण्डसमेक्षणा।
प्रोद्यत्किलकिलारावाददाहसकलजगत् ॥४०
दह्यमानाः सुरास्तत्र पतन्ति धरणीतले।
पतन्ति यक्षगन्धर्वाः सकिन्नरमहोरगाः ॥४१

पतन्ति भूतसङ्घाश्च हाहाहेहेविराविणः ।
तुम्बापातैः सनिर्घातैरुदितार्तस्वरैरपि ॥४२

अग्नि के पुञ्ज के समान आभा वाले वृश्चिकों (बिच्छुओं) से घोर गोनसों से विभूषित थी। उस देवी ने अपने विस्तार से घोर उत्सुप से सम्पूर्ण त्रैलोक्य को पूरित कर दिया था। कृष्ण सर्पों के कुण्डलों को धारण करने वाली वह भासुर अङ्गों वाली हो गई थी। कर में चित्र दण्ड धारण कर उद्यत हुई व्याघ्र के चर्म से समुपशोभित थी। वह देवी महारौद्र स्वरूप वाली समस्त जगत के संहार करने वाली बन गई थी। उस समय में वह देवी जीभ से सृक्किणियों (मुख के दोनों किनारों को) चाटती हुई और बहुत क्रूरता से फूत्कार करने वाली थी। देवी ने अपने मुख को फैला लिया था—घुर्घुर राव करने वाली—सम्पूर्ण जगत् के संक्षोभ को करने वाली थी और उसके अनुग भूत उसके पीछे गमन कर रहे थे—बहुत ही क्रूर स्वभाव वाली तथा निःश्वासों और उच्छ्वासों को करने वाली थी। वह अट्टहास करने वाली—बहुत बुरी नासिका से युक्त और अग्नि के कुण्ड के तुल्य जाज्वल्यमान नेत्रों वाली थी। किल-किला शब्द करती हुई वह बड़ी ही अधिक ध्वनि के साथ सम्पूर्ण जगत को दग्ध कर रही थी। समस्त सुरगण दह्यमान होकर धरणी तल पर गिर गये थे। यक्ष-गन्धर्व-किन्नर और महोरग गणों दग्ध होते हुए भूमि तल पर गिर रहे थे। हा हा-हे हे—ध्वनि करते हुए भूतों के संघ भी पतित हो रहे थे जो कि तुम्बापात—निर्घात-रुदित और आर्त स्वरों से युक्त थे ॥३६-४२॥

व्याप्तमासीत्तदा विश्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
सम्पतद्भिः पतद्भिश्च ज्वलद्भूतगणैर्मही ॥४३
जातैस्तटतटाशब्दैः पतद्भिर्गिरिसानुभिः ।
तत्र रौद्रोत्सवे जाताट्टानन्दविवर्धिनी ॥४४
विहिंसमानान्भूतानि नवमानाचरानपि ।
उदरं स्वमुपादाय शिवारावविराजिनी ॥४५

गलच्छोणितधारामिमुखादिग्धकलेवरा ।
चण्डशीलाऽभवच्चण्डीजगत्संहारकर्मणि ॥४६
येऽपि प्राप्ता महर्लोकं भृग्वाद्याश्च महर्षयः ।
तेऽपि नश्यन्ति शतशो ब्रह्मक्षत्रविशादयः ॥४७
देवासुराभयत्रस्ताः सयक्षोरगराक्षसाः ।
विशन्तिकेऽपिपातालं लीयन्ते चगुहादिषु ॥४८
सा च देवी दिशः सर्वा व्याप्य मृत्युरिव स्थिता ।
युगक्षयकरे काले देवेन विनियोजिता ॥४९

उस समय मे सम्पूर्ण विश्व और चर अचर से युक्त समस्त त्रैलोक्य व्याप्त था । यह महीतल जलते हुए गिरते हुए और सम्पतन शील भूत-गणो से व्याप्त हो गया था । 'चर चर' ध्वनि के साथ गिरकर टूटने वाली पर्वतो की शिखरों से पूर्ण यह मही उस रौद्रोत्सव मे भगवान् रुद्र के आनन्द को बढाने वाली हो गई थी । समस्त भूतो की विशेष रूप से हिंसा करती हुई और चर जीवो का चर्वण करने वाली उस गन्ध को प्राप्त कर रावा विराविणी अर्थात् भयंकर ध्वनि करने वाली—फैले हुए रुधिर की धाराओ से युक्त मुख वाली तथा समस्त दिग्ध कलेवर वाली वह शिवा चण्डत्व भाव से युक्त इस जगत के सहार कर्म मे साक्षात् चण्डी हो गई थी । जो भृगु आदि महर्षि गण महालोक को प्राप्त हो गए थे वे भी सैंकडो ही ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य आदि सब नष्ट भ्रष्ट हो रहे थे । महान् भय से डरे हुए देव और असुर यक्ष—उरग और राक्षसो के सहित कुछ तो पाताल लोक मे प्रवेश करने लगते हैं और कुछ गुफा आदि स्थलो मे जाकर छिप रहे थे । वह देवी समस्त दिशाओ मे व्याप्त होकर साक्षात् मृत्यु की ही भाँति स्थित हो गई थी । उस युग के क्षय करने वाले काल मे वह देवी महादेवजी के द्वारा विशेष रूप से नियोजित की गई थी ॥४३-४९॥

एकापि नवधा जाता दशधा दशधा तथा ।
चतुःषष्टिस्वरूपा च शतरूपाट्टहासिनी ॥५०

जज्ञे सहस्ररूपा चलक्षकोटितनुः शिवा ।
नानारूपायुधाकारानानावादानचारिणी ॥५१
एवं रूपाऽभवद्देवीशिवस्यानुज्ञया नृप ! ।
दिक्षु सर्वासु गगने विकटायुधशीलिनः ॥५२
रुन्धन्तो नश्यमानास्तान्गणा माहेश्वराः स्थिताः ।
विचरन्ति तया सार्द्धं शूलपट्टिशपाणयः ॥५३
ततो मातृगणाः केचिद्विनायकगणैः सह ।
व्यवर्धन्त महारौद्राजगत्संहारकारिणः ॥५४
ततस्तस्या व्यवर्धन्त दंष्ट्राः कुन्देन्दुसन्निभा. ।
योजनानां सहस्राणि अयुतान्यर्बुदानि च ॥५५
दंष्ट्रावलिः कररुहाः क्रूरास्तीक्ष्णाश्च कर्कशाः ।
वियद्दिशो लिखन्त्येव सप्तद्वीपा वसुन्धराम् ॥५६

वह एक ही देवी नौ प्रकार की बन गई थी और वह एक-एक दश-दश-दश रूपों में हो गई थी । चौंसठ स्वरूपों वाली वह शतरूपा और अट्टहास करने वाली थी । फिर वह सहस्र स्वरूपों वाली हो गई और वह शिवा लक्ष कोटि शरीरों के धारण करने वाली बन गई थी । उस महादेवी के अनेक रूपों वाले आयुध थे जिनके विविध आकार थे तथा वह नाना भाँति से वादनों के करने वाली हो रही थी । हे नृप ! उस समय में भगवान् शिव अनुज्ञा से इस प्रकार के विचित्र रूपों वाली बन गई थी । आकाश में सभी दिशाओं में विकट आयुधों के धारण करने वाले महेश्वर के गण नश्यमान उन सबको रुन्धित करते हुए स्थित थे । शूल-पट्टिश हथियारों को ग्रहण करके उसी देवी के साथ वे सब गण विचरण कर रहे थे । इसके अनन्तर कुछ मातृगण विनायक के गणों के सहित महान् रौद्र रूप वाले इस जगत के संहार करने वाले बढ़ गये थे । इसके पश्चात् उस देवी की दाढ़ें बढ़ गई थीं जो कुन्द के पुष्प और चन्द्र के तुल्य श्वेत थी । वे इतनी अधिक बढ़कर हो गई थी जो सहस्रों—अयुतों और अर्बुदों योजन लम्बी थी । उस देवी की दाढ़ों की पंक्ति और

नाखून महान् क्रूर—तीक्ष्ण तथा कर्कश थे जो आकाश—दिशाएँ तथा सात द्वीपों वाली पृथ्वी पर मानो लेखन-सा कर रहे हों ॥५०-५६॥

तस्याद ंष्ट्राभिसम्पातैश्चूर्णितावनपर्वताः ।
शिलासञ्चयसंघाताविशीर्यन्तेसहस्रशः ॥५७
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो गन्धमादनः ।
माल्यवांश्चैवनीलश्च श्वेतश्चैव महागिरिः ॥५८
मेरुमध्यमिलापीठं सप्तद्वीपं च सार्णवम् ।
लोकालोकेन सहितं प्राकम्पत नृपोत्तम ! ॥५९
दंष्ट्राशनिविस्पृष्टाश्च विशीर्यन्ते महाद्रुमाः ।
उत्पातैश्च दिशो व्याप्ताघोररूपैः समन्ततः ॥६०
तारा ग्रहगणाः सर्वे ये च वैमानिका गणाः ।
शिवासहस्रैराकीर्णा महामातृगणैस्तथा ॥६१
सा चचार जगत्कृत्स्नं युगान्ते समुपस्थिते ।
भ्रमद्भिश्च नृत्यद्भिश्च क्रोशद्भिश्च समन्ततः ॥६२
प्रमथद्भिगर्ज्वलद्भिश्च रौद्रे व्याप्तादिशोदश ।
विस्तीर्णं शैलसंघातं विघूर्णितगिरिद्रुमम् ॥६३
प्रभिन्नगोपुरद्वारं केशशुष्कास्थिसंकुलम् ।
प्रदग्धग्रामनगरं भस्मपुञ्जाभिसम्वृतम् ॥६४
चिताधूमाकुलं सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
हाहाकाराकुलं सर्वं महद्स्वननिस्वनम् ॥६५
जगदेतदभूत्सर्वं मशरण्यं निराश्रयम् ॥६६

उस चण्डी देवी की दाढ़ों के अभि सम्पातों के समस्त वन—पर्वत एक दम चूर्णित हो गये थे । सहस्रों शिलाओं के संघात जो कि संचित स्वरूप मे एकत्रित थे विशीर्ण हो गये थे । हे नृपोत्तम ! वह ऐसा भीषण संहार का काल होता है कि उसमे हिमवान्—हेमकूट—निषध—गन्धमादन—माल्यवान—नीलगिरि—श्वेत गिरि—महागिरि—मेरु पर्वत मध्य-रत्नापीठ और अर्णवों सहित सात द्वीप तथा लोकालोक के सहित सबके सब प्रकम्पित हो गये थे । दाढ़ रूपी अशनि (वज्र) से स्पर्श होते

हो महान् द्रुम भी विशीर्ण हो जाते थे। चारों ओर से घोर रूपों वाले उत्पातों से सभी दिशाऐं व्याप्त हो गई थी। तारा मण्डल-ग्रहगण और जो समस्त वैमानिक गण थे अर्थात् विमानों पर स्थित रहने वाले थे वे सब राहसो शिवाओ और मातृगणो से समाकीर्ण हो गये थे। उस युग के अन्त काल के समुपस्थित होने पर सम्पूर्ण जगत मे वह विचरण करती थी। दश दिशायें भ्रमणशील—बोलने वाले—चीखने वाले—प्रमथन करने वाले और जलते हुए रौद्रो से व्याप्त हो गई थी। गाँवों का सघात जहाँ पर विस्तीर्ण हो रहा था—गिरि—और द्रुम जिसमे विचूर्णित हो गए थे—गो पुर द्वार जिसमे विशीर्ण हो गये थे—जो केश एवं शुष्क अस्थियो से सकुल हो गया था—जिसमे ग्राम और नगर जल भुनकर नष्ट हो गये थे—जो राख के ढेरो से अभिसंवृत था, जहाँ पर चिताओ को धूमाँ भरी हुई थी ऐसा सम्पूर्ण चराचर त्रैलोक्य हो गया था। सर्वत्र हा हाकार से आकुलता थी और सभी जगह 'अहह' इस ध्वनि की परिपूर्णता थी। इस प्रकार से सम्पूर्ण जगत निराश्रय अरण्य के ही तुल्य बन गया था ॥५७-६६॥

---

## ८८—सृष्टिसहरणसरम्भवर्णन

ततो मातृसहस्रैश्च रौद्रैश्च परिवारिता।
कालरात्रिर्जगत्सर्वं हरते दीप्तलोचना ॥१

ततस्ता मातरो घोरा ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाः।
वाय्विन्द्रानलकौवेरा यमतोयेशशक्तयः ॥२

स्कन्दक्रोडनृसिंहाना विचरन्त्यो भयानकाः।
चक्रशूलगदाखड्गवज्रशक्त्यष्टिपट्टिशै. ॥३

खट्वाङ्गोल्मुकदीप्ताग्र्यचरन्मातरःक्षये।
उमासंनोदिताःसर्वाप्रधावन्त्योदिशोदश ॥४

तासाचरणविक्षेपैर्हुङ्कारोद्गारनिस्वनैः।
त्रैलोक्यमेतत्सकल विप्रदग्ध समन्ततः ॥५

हाहारवाक्रन्दितनिस्वनैश्च प्रभिन्नरथ्यागृहगोपुरैश्च ।
वभूव घोरा धरणी समन्तात्कपालकेशाकुलकर्बुराङ्गी ॥६
यदेतच्छतसाहस्रं जम्बूद्वीपं निगद्यते ।
सर्वमेव तदुच्छन्नं समाघृश्य नृपोत्तम ॥७

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके पश्चात् सहस्रों मातृगणों से तथा रौद्रों से परिवारित उस काल रात्रि ने जिसके बहुत ही प्रलोचन थे सम्पूर्ण जगत का संहरण किया। इसके पश्चात् उन परम घोर रूपों वाली मातृकाओं ने जो ब्रह्मा—विष्णु और शिव के स्वरूप वाली थीं तथा वायु—इन्द्र—अनल और कुबेर के रूप वाली थी तथा यम और वरुण की शक्ति से सम्पन्न थी एवं स्कन्द क्रोड और नृसिंहों के रूप में स्थित थी बहुत ही भयानक विचरण करती हुई चक्र—शूल—गदा—खड्ग—वज्र—शक्ति—ऋष्टि और पट्टिशों से तथा खटवाङ्ग और दीप्त उल्मुखों युक्त होकर मातृगण क्षय करने में विचरण कर रहे थे। ये सब माताऐं उमा देवी के द्वारा भली भाँति प्रेरणा प्राप्त की हुई थी और दशों दिशाओं के प्रधावन (दौड) करने वाली थी। उनके चरणों के विक्षेपों से तथा हुङ्कारों के उद्धार की ध्वनियों से यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य सभी ओर से विप्रदग्ध हो गया था। हा हाकार और आक्रन्दन के परम घोर शब्दों से—प्रकृष्ट रूप से छिन्न-भिन्न रथ्या, गृह और गोपुरों से यह सम्पूर्ण पृथ्वी सभी ओर से कपाल, केशों से समाकुल होती हुई विचित्र ही अङ्गों वाली हो गई थी। हे नृपोत्तम ! जो यह जम्बू द्वीप एक सौ सहस्र परिमाण वाला कहा जाता है वह सब समाघर्षित होकर उत्पन्न हो गया था ॥१-७॥

जम्बु शाकं कुशं क्रौञ्चं गोमेदं शाल्मलिस्तथा ।
पुष्करद्वीपसहिता ये च पर्वतवासिनः ॥८
ते ग्रस्ता मृत्युना सर्वे भूतमातृगणैस्तथा ।
महासुरकपालैश्च मांसमेदोवसोत्कटैः ॥९
महानादपरै घोरैर्वारुणीगन्धमोहितैः ।
ज्वाला सहस्रसम्वीताविद्युज्ज्वलितकुण्डला ॥१०

रुधिरोद्गारशोणाङ्गीमहामायासुभीषणा ।
पिबन्ती रुधिरं तत्रमहामांसवसाप्रिया ॥११
कपालहस्ता विकटा भक्षयन्ती सुरासुरान् ।
नृत्यन्ती च हसन्ती च विपरीता महारवा ॥१२
त्रैलोक्यसन्त्रासकरी विद्युत्स्फोटहासिनी ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्ता भक्षयित्वा च मेदिनीम् ॥१३
ततः स्वस्थानमगमद्यत्र देवो महेश्वरः ।
नर्मदातीरमाश्रित्यावसन्मातृगणैः सह ॥१४

जम्बू-शाक—कुश-क्रौञ्च-गोमेद-शाल्मलि और पुष्कर द्वीपों के सहित जो भी पर्वत वासी थे वे सभी मृत्यु के द्वारा ग्रस्त हो गये थे। तथा भूतगण-मातृगण—जो कि महासुरों के कपाल—समूह-मांस, मेद, वसा से उत्कट, महान् घोष में तत्पर, परम घोर और वारुणी की गन्ध से मोहित थे, इनके सहित सहस्रों ज्वालाओं से सम्वीत विद्युत के समान ज्वलित कुण्डलों वाली-रुधिर के उद्गारों से लाल अङ्गों वाली अत्यन्त भीषण स्वरूप वाली महा माया महा मांस और वसा से प्यार करने वाली रुधिर का पान कर रही थी। उस महामाया के हाथों में कपाल था और वह अत्यन्त विकट स्वरूप वाली थी। समस्त सुरों और असुरों का भक्षण करती हुई-नृत्य करने वाली, अट्टहास करती हुई, परम विपरीत और महान् घोष करने वाली थी। सम्पूर्ण त्रैलोक्य को त्रास देती हुई—विद्युत के स्फोट के समान भीषण हास्य करने वाली उसने सातों द्वीप और समुद्र के अन्त तक सम्पूर्ण मेदिनी का भक्षण कर लिया था। इसके उपरान्त वह अपने स्थान पर आ गई थी जहाँ पर साक्षात् देव महेश्वर विराजमान थे। नर्मदा के तट का समाश्रय ग्रहण करके वह समस्त मातृगणों के सहित निवास करने लगी थी ॥८-१४॥

अमराणां कटे तुङ्गे नृत्यन्ती हसितानना ।
अमरा देवताः प्रोक्ताः शरीरं कटमुच्यते ॥१५
तै. कटैरावृतो यस्मात्पर्वतोऽयं नृपोत्तम ।
छिन्नभिन्नास्थिनिकरैर्वसामेदोस्रविलुप्तैः ॥१६

अमरकट इत्येवं तेन प्रोक्तो मनीषिभिः ।
महापवित्रो लोकेयुशम्भुना सविनिर्मितः ॥१७
नित्यं सन्निहितस्तत्रशङ्करोह्युमयासह ।
ततोऽहं नियतस्तत्र तस्य पादाग्रसंस्थितः ॥१८
प्रह्वः प्रणतभावेन स्तौमि तं नीललोहितम् ।
ततस्तालकसंपातैर्गणैर्मातृगणैः सह ॥१९
सम्प्रनृत्यति संहृष्टो मृत्युना सह शङ्करः ।
खट्वाङ्गोल्मुकहस्तैश्च पट्टिशैःपरिघैस्तथा ॥२०
मांसमेदोवसाहस्ताहृष्टानृत्यन्तिसंघशः ।
वामनाजटिलामुण्डालम्बग्रीवोष्ठमूर्द्धजा ॥२१
महाशिश्नोदरभुजा नृत्यन्ति च हसन्ति च ।
विकृतैराननैर्घोरैर्भुजोल्वणमुखादिभिः ॥ २

अमरों के तुङ्ग (उन्नत) कट में नृत्य करती हुई और हसित मुख वाली देवी थी । अमर देवों को कहा गया है और शरीर का कहा जाता है । हे नृपोत्तम ! यह पर्वत उन्हीं कणों से समावृत है जो कि वसा–मेद और रक्त से विप्लुत छिन्न-भिन्न अस्थियों के समूहों वाले थे। इसी कारण से महर्षियों ने इसका नाम अमरकट, यह कहा है। समस्त लोक के कल्याण चाहने वाले शम्भु देव ने यह महान् पवित्र निर्मित किया है । वहाँ पर भगवान् शम्भु जगज्जननी उमा देवी के साथ नित्य ही सन्निहित रहा करते हैं । तभी से मैं भी वहाँ पर ही उनके चरणों के अग्रभाग में संस्थित रहा करता हूँ । मैं परम विनीत होकर अत्यन्त विनम्र भाव से उन भगवान नील लोहित प्रभु का स्तवन किया करता हूँ । फिर ताल के वृक्षों के सम्पात के समान सब मातृगणों के साथ भगवान् शंकर मृत्यु के साथ परम प्रसन्न होते हुए भली भाँति नृत्य किया करते हैं । खट्वाङ्ग, उल्मुक, पट्टिश, परिघों से युक्त, माँस, मेदा और वसा हाथों में लिए हुए, परम हर्षित संघ में मातृगण नृत्य किया करते हैं । अन्य गण भी जिनमें वामन (बौना), जटाधारी, मुण्डित, लम्बी गरदन वाले, लम्बे होंठ और केशों वाले थे वे भी महान् शिश्न, उदर और भुजाओं

वाले नृत्य करते हैं तथा हंसते हैं जिनके बहुत ही विकृत घोर मुख थे और उल्वण भुजाऐं तथा मुखों से वे युक्त थे। विपरीत काल के प्राप्त होने पर अमर को कण्टक उन्होंने कर दिया था ॥१९-२२॥

अमरं कण्टकं चक्रुःप्राप्तेकालविपर्यये ।
तेषां मध्ये महाघोरं जगत्सन्त्रासकारणम् ॥२३
मृत्युं पश्यामि नृत्यन्तं तडित्पिङ्गलमूर्द्धजम् ।
तस्य पार्श्वे स्थितां देवी विमलाम्बरभूषिताम् ॥२४
कुण्डलोद्घुष्टगण्डां तां नागयज्ञोपवीतिनीम् ।
विचित्रैरुपहारैश्च पूजयन्ती महेश्वरम् ॥२५
अपश्यं नर्मदां तत्र मातरं विश्ववन्दिताम् ।
नानातरङ्गां आवर्तां सुवेलार्णवसन्निभाम् ॥२६
महासरः सरित्पातैरदृश्यां दृश्यरूपिणीम् ।
वन्द्यमानांसुरैःसिद्धैर्मुनिसङ्घैश्चभारत ॥२७
एतस्मिन्नन्तरे घोरां सप्तसप्तकसञ्ज्ञिताम् ।
महावीच्योघफेनाढ्या कुर्वन्ती सजलं जगत् ॥२८

उन्हीं सबके मध्य महान घोर और जगत के सन्त्रास का कारण रूप, विद्युत के तुल्य पिंगल वर्ण वाले केशों से युक्त नृत्य करते हुए मृत्यु को देखता हूँ। उसी के पार्श्व भाग मे स्थित परम स्वच्छ वस्त्रों से विभूषित, कुण्डलों से उद्घुष्ट गण्ड स्थलों वाली-नागों के यज्ञोपवीत धारण करती हुई—विचित्र उपहारों के द्वारा महेश्वर भगवान को पूजती हुई विश्व के द्वारा वन्दित नर्मदा माता को भी वहाँ पर मैंने देखा था जिसमें नाना भाँति की तरंगें समुत्थित हो रही थीं, आवर्तों से युक्त थी तथा सुवेला मे अर्णव (समुद्र) के तुल्य थी। महान् सर और सरिताओं के पातों से अदृश्या, दृश्य रूप वाली सुरगणों से वन्द्यमान तथा सिद्ध और मुनियों के संघों द्वारा हे भारत ! वन्दनीय थी। इसी अन्तर में सप्त सप्तक सज्ञा (नाम) वाला, परम घोर महान् वीचों (लहर) के ओघ (समुदाय) और फैनों से समन्वित नर्मदा देवी को देखा था। जो सम्पूर्ण जगत को जल से युक्त कर रही थी ॥२३-२८॥

दृष्टवान्नर्मदां देवी मृगकृष्णाम्बरां पुनः ।
सधूमाशनिनिर्ह्रादैर्वर्तन्ती सप्तधा तदा ॥२९
इति संहारमतुलं दृष्टवान्राजसत्तम ।
नष्टचन्द्रार्ककिरणमभूदेतच्चराचरम् ॥३०
महोत्पातसमुद्भूतनष्टनक्षत्रमण्डलम् ।
अलातचक्रवत्तूर्णमशेषं भ्रामयस्ततः ॥३१
विमानकोटिसंकीर्णःसकिन्नरमहोरगः ।
महावातःसनिर्घातोयेनाकम्पच्चराचरम् ॥३२
रुद्रवक्त्रात्समुद्भूतःसम्वर्तोनामविश्रुतः ।
वायु संशोषयामासविततन्सप्तसागरान् ॥३३
उद्धूलिताङ्गः कपिलाक्षमूर्द्धजो जटाकलापैरवबद्धमूर्द्धजः ।
महारवोदीप्तविशालशूलधृक्सपातुयुष्मान्दिनेदिनेहरः ॥३४
शूली धनुष्मान्कवची किरीटी श्मशानभस्मोक्षितसर्वगात्रः ।
कपालमालकुलाकण्ठनालो महाहिसूत्रैरवबद्धमौलिः ॥३५

वह देवी नर्मदा मृग का कृष्ण वर्ण वाला अम्बर धारण कर रही थी। उस समय में धूम और अशनि ( वज्र ) के निर्ह्रादों के सहित सात भेदों से वहन कर रही थी। हे राजसत्तम ! इस तरह से मैंने अतुलित संहार देखा था जिसमें चन्द्र और सूर्य की किरणें भी नष्ट हो गई थी ऐसा यह चराचर जगत् हो गया था। महान् उत्पात से समुत्पन्न विनाश से सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल विनष्ट हो गया था। इसके उपरान्त इस सम्पूर्ण विश्व को अलात ( जलती हुई लकड़ी का अङ्गारा ) के चक्र के समान शीघ्रता से भ्रामित करते हुई किन्नर और महान् उरगों के सहित करोड़ों विमानों से सङ्कीर्ण और निर्घातों से युक्त महावात चलने लगा था जिसने इस चराचर जगत् को प्रकम्पित कर दिया था। यह रुद्र देव के मुख से समुत्पन्न हुआ था और सम्वर्त इस का नाम प्रसिद्ध था। इस वायु ने फैले हुए विशाल सातों सागरों को अच्छी तरह से शोषित कर दिया था। जिनके अङ्ग भस्म से उद्धूलित हो रहे हैं—कपिलवर्ण के नेत्र और जिन के केश हैं, जिन्होंने जटाओं के कलापों से केशों को बाँध रक्खा है—

महान् घोष से युक्त और परम दीप्त एवं विशाल त्रिशूल को धारण करने वाले वह भगवान् हर दिन प्रतिदिन आपकी रक्षा करें। भगवान् शूल के धारण करने वाले हैं—धनुष भी धारण किये हुए हैं—कवच धारी मस्तक पर किरीट पहिनने वाले हैं। श्मशान की भस्म से जिनके समस्त अङ्ग उक्षित हैं। जिन्होंने कपालों ( नर मुण्डों ) की माला से अपने कण्ठ नाल को समाकीर्ण कर रक्खा है और वे भगवान् शिव महान् सर्पों के सूत्र से अपने मस्तक को बद्ध करने वाले हैं ॥२९-३५॥

स गोनसौघैः परिवेष्टिताङ्गो विषाग्निचन्द्रामरसिन्धुमौलिः ।
पिनाकखट्वांगकरालपाणिः स कृत्तिवासा डमरुप्रणादः ॥३६
स सप्तलोकान्तरनिःसृतात्मा महाभुजावेष्टितसर्वगात्रः ।
नेत्रेण सूर्योदयसन्निभेन प्रवालकांकूरनिभोदरेण: ॥३७
सन्ध्याभ्ररक्तोत्पलपद्मभागसिन्दूरविद्युत्प्रकरारुणेन ।
तप्तेन लिंगेन च लोचनेन चिक्रीडमानःसयुगान्तकाले ॥३८
हिरण्मयेनेव समुत्सृजन्सदण्डेन यद्वद्भगवान्समेरुः ।
पादाग्रविक्षेपविशीर्णशैलः कुर्वञ्जगत्सोऽपि जगाम तत्र ॥३९
संहर्तुकामस्त्रिदिवं त्वशेषं प्रमुञ्चमानो विकृताट्टहासम् ।
जहार सर्वं त्रिदिवं महात्मा संक्षोभयन्वै जगदीश एकः ॥४०
तं देवमीशानमज वरेण्यं दृष्ट्वा जगत्संहरणं महेशम् ।
सा कालरात्रिः सहमातृभिश्चगणाश्चसर्वेशिवमर्चयन्ति ॥४१
नन्दी च भृंगी च गणादयश्च तं सर्वभूतं प्रणमन्ति देवम् ।
जगद्वरं सर्वजनस्य कारणं हर स्मरारातिमहर्निशं ते ॥४२

सृष्टि के संहरण काल मे भगवान् शम्भु के स्वरूप का वर्णन किया जाता है कि वे जो नसो के समूह से परिवेष्टित अङ्गो वाले हैं। मस्तक में जिनके विष की अग्नि—चन्द्रदेव और अमर सिन्धु ( गङ्गा ) विराजमान हैं। हाथो मे भगवान् शम्भु पिनाक धनुष और खट्वांग धारण करने वाले हैं। गज चर्म के वसन धारण करने वाले तथा डमरु के प्रणाद युक्त हैं। वह प्रभु सात लोकों के अनन्तर निःसृत आत्मा वाले हैं तथा वह भुजाओं से वेष्टित गात्र वाले हैं। प्रवालाङ्कुर सदृश मध्य भाग वाले सूर्योदय के

तुल्य नेत्र से उपलक्षित हैं। युगान्त काल में वह प्रभु सन्ध्या कालीन मेघ—रक्तकमल—पद्मराग—सिन्दूर और विद्रुम के प्रखर समान अरुण उस लिंग से और लोचन के द्वारा क्रीड़ा करने वाले थे। भगवान् की ही भाँति मेरु हिरण्मय दण्ड से ही समुत्सृजन करता हुआ वह भी पाशों के अग्रभाग दोलों को विशीर्ण करता हुआ यहीं पर चला गया था। महान् आत्मा वाले वह एक ही जगदीश सम्पूर्ण त्रिदिव के संहार करने की कामना वाले अत्यन्त विकार युक्त अट्टहास को छोड़ते हुए समस्त त्रिदिव को युक्त करते हुए उन्होंने सबका हरण किया था। उन ईशान—अज—वरेण्य देव का जो महेश इस जगत् के संहार करने वाले हैं, दर्शन करके वह कालरात्रि मातृगणों के साथ तथा समस्त अन्य गण सभी भगवान् शिव का समर्चन किया करते हैं। नन्दी—भृङ्गी और ये सब अन्य गण अहर्निश उन सर्व भूत देव को प्रणाम किया करते हैं जो इस जगत् में परम श्रेष्ठ हैं—सभी जनों के कारण हैं—कामदेव के भस्म करने वाले हर हैं ॥३६-४२॥

---

## ८६—ब्रह्मकृतशिवस्तुतिवर्णन

गणानुभिर्भूतगणैश्च घोरैर्वृतः समन्तात्स ननर्त शूली ।
गजेन्द्रचर्मावरणो वसानः संहर्तुकामश्च जगत्समस्तम् ॥१
महेश्वरः सर्वसुरेश्वराणां मध्ये स्वकेयूरकपालमाली ।
मेदोवसासृक्पिशितास्थिमांसकपालोद्यदहो भगवान् शम्भुः ॥२
स नागहारस्य महाहिमहात्मभोगो त्रिनेत्रः [illegible] ।
गन्धर्वसंघातसुः गणदानुनाथ [illegible] जगतो वरिष्ठः ॥३
स विस्फुलिङ्गोत्करपूर्णमिश्रं महोत्कटज्वालानिलानुरूपम् ।
तमोऽट्टहासं प्रमुमोच घोरं विदूरदन्तं वदनाद्दुरासम् ॥४
तस्य वक्त्रानिलाग्निनिभेन तेनाट्टहासेन दुरोद्दर्शन ।
भस्मीकृतास्तत्र दिशोदशं वगतोऽन्नताः सर्वमहार्णवाश्च ॥५
स ब्रह्मलोकं प्रजगाम नादो ब्रह्माण्डभाण्डं प्रददार सम्यक् ।
[illegible] प्रभया तु विष्णुः ॥६

प्रणम्य सर्वे सहसैव भीता ब्रह्माणमूचुः परमेश्वरेशम् ।
भीताश्च सर्वे ऋषयस्ततस्ते सुरासुरैश्चैव महोरगैश्च ॥७

महामहर्षिवर श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—वह भगवान् शूलधारी परम घोर भूतगणों तथा मातृगणों से चारों ओर समावृत होकर उस समय मे ताण्डव नृत्य बहुत ही प्रसन्न होकर किया करते हैं, उस नृत्य के समय मे वे गजेन्द्र के चर्म का प्रावरण लिये हुए इस सम्पूर्ण सृष्टि जगत् का संहार करने की इच्छा रखते हुए अपने नियत कर्त्तव्य के परिपालन समय को पाकर आनन्द मग्न हो नृत्य किया करते हैं ॥१॥ सब सुरों के भी ईश्वरों के अनेक मन्त्रों से भव बद्धमाली भगवान् महेश्वर शम्भु इस त्रैलोक्य के दाह करने मे मेदा—वसा—रक्त से चर्चित अगों वाले नृत्य किया करते थे ॥२॥ उन प्रभु महात्मा ने उस कालरात्रि की सहायता से युक्त होकर उस समय मे इस समस्त त्रिलोकी का संहार कर दिया था । सम्वर्त नामधारी—इस जगत् के सर्व श्रेष्ठ महानुभाव—महान् आत्मा वाले शम्भु ने विस्फुलिंगों के समुदाय और धूम से मिश्रित—महोल्का वज्र शनि और वात के तुल्य अत्यन्त घोर सर्व प्रथम अपने वडवा के मुख की आभा वाले समान आभा वाले मुख को फैलाकर अट्टहास किया था । वह उनका समुत्पन्न परम भीषण अट्टहास सहस्रों वज्रपात और अशनि सम्पात के सदृश था । उससे दशों दिशाएं भर गई थी और समस्त सागर सक्षोभ युक्त हो गये थे । सर्वत्र एक दम अट्टहास से हलचल मचाई थी । वह उनके अट्टहास का शब्द ब्रह्मलोक तो पहुँच गया था और उसने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड भाण्ड को विचलित कर दिया था । यह क्या परम घोर ध्वनि है जिसका इतना प्रबल प्रभाव छा गया है—इस स्वय समन्वित विचार मे बुद्धि और चेतना को खो बैठने वाले समस्त ऋषिलोग भयभीत हो गये थे । भय से अतिशय डरे हुए सबने सहसा ही परमेश्वरेश श्रीब्रह्माजी से प्रणाम करके कहा क्योंकि उस समय मे सुर असुर और महोरगों के सहित सभी ऋषिगण भय से परम वित्रस्त हो रहे थे ॥३-७॥

विद्युत्प्रभाभासुर भोगणांगः क एप विक्रीडति भूतलस्थः ।
कालानलं गात्रमिदं दधानो यस्याट्टहासेन जगद्विमूढम् ॥८

विन्नस्तरूपं प्रथमौ क्षणेन संहर्तुमिच्छेत्किमय त्रिलोकीम् ।
सार्धंत्वया सप्तभिरर्णवैश्च जनस्तपः सत्यमभिप्रयाति ।।९
संहर्तुकामो हि क एष देव एतत्सनस्तं कथयाऽप्रमेय ।
न दृष्टमेतद्विपमं कदापि जानासि तत्वं परमो मतो नः ॥१०
निशम्य तद्वाक्यमथावभाषे ।
ब्रह्मा समाश्वास्य सुरादिसंघान् ॥११
स एष कालखिदिवं त्वशेषं
संहर्तुकामोजगदक्षयात्मा ।
पूर्णे च शते परिवत्सराणां
भविष्यतीशानविभुनं चिरम् ॥१२
सम्वत्सरोऽयं परिवत्सरश्च
उद्वत्सरो वत्सरएष देवः ।
दृष्टोऽप्यदृष्टः प्रकृतः प्रकाशी
स्थूलश्च सूक्ष्मः परमाणुरेषुः ॥१३
नातः परं किञ्चिदिहाऽस्ति लोके
परापरोऽयं प्रभुरात्मवादी ।
तुष्येत मे कालसमानरूप
इत्येवमुक्त्वा भगवान्सुरेशः ॥१४
सनत्कुमारप्रमुखैः समेतः ।
सन्तोपयामास ततो यतात्मा ॥१५

हे ब्रह्मन् ! विद्युत की प्रभा के सदृश भासुर एवं महान् शोभा से सम्पन्न भूतल में समवस्थित यह कौन है जो देवों को पीड़ित कर रहा है ? यह तो अनन्त शरीर को धारण करने वाला है जिसके केवल इस महान् अट्टहास से ही यह सम्पूर्ण जगत् विद्रुत हो गया है ॥८॥ यह परम विशाल रूप से युक्त शोभित हो रहा है। क्या यह इस समय में समस्त त्रिलोकी के संहार करने की इच्छा कर रहा है। आपके ही साथ और सातों समुद्रों के सहित जनलोक और तपलोक सत्यलोक को जा रहे हैं। यह इस प्रकार से इन लोकेश्वर के संहार करने की इच्छा वाला है

देव ! कौन है । हे अप्रमेय ! आप कृपा करके यह सम्पूर्ण वृत्तान्त हमको बतलाइये हम लोगो ने ऐसी विषमता अभी तक पहिले कभी भी नहीं देखी थी—आप तो इसका पूर्णतत्त्व जानते ही है । हमतो आपको ही सर्वोपरि समझते हैं । देवर्षियों के इस वृच्छावाक्य को सुनकर ब्रह्माजी ने सुर आदि के पूरे समुदाय को समाश्वासन देते हुए कहा था—श्रीब्रह्माजी ने कहा—यह वह ही काल है जिसमे अक्षय आत्मा वाले प्रभु इस सम्पूर्ण जगत् को और त्रिदिव को सहार करने की इच्छा वाले हुआ करते हैं । परिवत्सरों के अर्थात् दिव्य वर्षों के पूरे सौ हो जाने पर यह ईशान विभु इसी प्रकार के स्वरूप वाले हो जांयगे—इसमे कोई भी विचित्र बात नही है । ऐसा तो हुआ ही करता है । यह सम्वत्सर है-परिवत्सर है-उद्वत्सर है और यह देव वत्सर है । यह दृष्ट भी अदृष्ट है—प्रहुत—प्रकाशी—स्थूल—सूक्ष्म और यह परशु है । यहाँ पर इससे पर कुछ भी नहीं है । लोक में यह परापर आत्मवादी प्रभु है । काल के समान रूप मुझे सन्तुष्ट करता है । इतना इस प्रकार से कहकर भगवान् सुरों के ईश सनत्कुमार जिनमे प्रमुख है उनके समेत तब वह यतात्मा सन्तोषित हुआ था ॥८-१५॥

नमोऽस्तु सर्वाय सुशान्तमूर्तये<br>
ह्यघोररूपाय नमोनमस्ते ।<br>
सर्वात्मने सव नमोनमस्ते<br>
महात्मने भूतपते नमस्ते ॥१६

ओंकारहुंकारपरिष्कृताय<br>
स्वधायषट्कार नमोनमस्ते ।<br>
गुणत्रयेशाय महेश्वराय ते<br>
त्रयीमयाय त्रिगुणात्मने नमः ॥१७

त्वं शंकरस्त्वहं हि महेश्वरोऽसि<br>
प्रधानमग्र्यं त्वमसि प्रविष्टः ।<br>
त्वं विष्णुरीशः प्रपितामहश्च<br>
त्वं सप्तजिह्वस्त्वमनन्तजिह्वः ॥१८

स्रष्टाऽसि सृष्टिश्च विभो त्वमेव
विश्वस्य वेद्यं च परं निधानम् ।
आहुर्द्विजा वेदविदो वरेण्यं
परात्परस्त्वं परतः परोऽसि ॥१९
सूक्ष्मातिसूक्ष्मं प्रवदन्ति यच्च ।
वाचो निवर्तन्तिमनो यतश्च ॥२०

श्रीब्रह्माजी ने कहा—परम शान्ति मूर्ति वाले सर्व के लिये नमस्कार है । अघोर स्वरूप वाले के लिये बारम्बार नमस्कार है । हे सर्व ! सबकी आत्मा आपके लिये बारम्बार नमस्कार है । हे समस्त भूतों के स्वामिन् महान् आत्मा वाले आपके लिये नमस्कार है । हे स्वाहा–स्वधा और वषट्कार स्वरूप वाले ! आपकी सेवा में मेरा बारम्बार नमस्कार है । तीनों गुणों के स्वामी–त्रयीमय–त्रिगुणात्मा महेश्वर आपके लिये नमस्कार है । आप शङ्कर हैं अर्थात् कल्याण करने वाले हैं । आप महेश्वर हैं–सर्वोत्तम प्रधान भी आप ही हैं और प्रविष्ट हैं । आप ही विष्णु हैं—ईश हैं और आप ही प्रपितामह हैं । आप सप्तजिह्व और अनन्त जिह्व हैं । हे विभो ! आप ही इस विश्व के जानने के योग्य परम निधान हैं । वेदों के ज्ञाता द्विज आप को वरेण्य कहते हैं । आप पर से भी पर हैं जिसको सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म कहते हैं और जिससे मन और वाणी भी निवृत्त हो जाया करते हैं ॥१६-२०॥

त्वया स्तुतोऽहं विविधैश्च मन्त्रैः
पुष्णामि शान्ति तव पद्मयोने ।
ईक्षस्व मां लोकमिमं ज्वलन्तं
वक्त्रैरनेकैः प्रसभं हरन्तम् ॥२१
एवमुक्त्वा स देवेशो देव्या सह जगत्पतिः ।
पितामहं समाश्वास्य तत्रैवान्तरधीयत ॥२२
इदं महत्पुण्यतमं वरिष्ठंस्तोत्रं निशम्येह गतिं लभन्ते ।
पापैरनेकैःपरिवेष्टिता ये प्रयान्ति रुद्रं विमलैर्विमानैः ॥२३

भयं च तेषां न भवेत्कदाचित्
पठन्ति ये स्तोत्रमिदं द्विजाग्र्याः ।
मद्ग्रामचोराग्निवने तथाऽब्धौ
तेषां शिवस्त्राति न संशयोऽत्र ॥२४

श्रीमहादेवजी ने कहा—हे पद्मयोने ! आपने अनेक मन्त्रों के द्वारा संस्तवन किया है । मैं आपकी शान्ति का पोषण करता हूँ । अनेक युगों के द्वारा बलात् संहरण करने वाले मुझको और जलते हुए लोक को देखो । इस प्रकार से वह समस्त जगत् पति देवेश्वर देवी के साथ महेश्वर पितामह को समाश्वासन देकर वहीं पर अन्तर्हित होगये थे । यह महान् सत्य और पवित्र स्तोत्र है । इस लोक में इसका श्रवण करके मनुष्य सद्गति को प्राप्त होते हैं । जो मनुष्य अनेक पापों से परिवेष्टित रहा करते हैं वे भी परम विमानों पर समारूढ़ होकर उसी द्वारा रुद्र लोक में गमन किया करते हैं । हे तात ! जो श्रेष्ठ द्विजगण इसका पाठ किया करते हैं । किसी भी समय में कोई भी भय नहीं हुआ करता है । संग्राम स्थल में —चोरों के द्वारा उपस्थित भय में—अग्नि काण्ड में—वन में तथा समुद्र में इस स्तोत्र के पाठ करने वालों को भगवान् शिव स्वयं परित्राण करते हैं—इसमें बिल्कुल भी संशय करने का कोई अवसर ही नहीं है ॥२१-२४॥

---

## ६०—द्वादशादित्यरूपेणजगत्संहरणवर्णन

एवं संस्तूयमानस्तु ब्रह्मणा मुनिपुङ्गवाः ।
ब्रह्मलोकगतस्तत्र संजहार जगत्प्रभुः ॥१
स तस्थौ महारौद्रं दर्शितं वाक्यमव्ययम् ।
महादंष्ट्रो महारावं पाताललसन्निभम् ॥२
शिवज्ज्वलन्नविशालं भैरवं लोमहर्षणम् ।
महाजिह्वं महादंष्ट्रं महागात्रं शिरोधरम् ॥३
महागुर्विनिशामानं महाप्रलयकारणम् ।
महाभ्रुटिनिर्हादवायावाग्निस्तं हरिः ॥४

वडवामुखसङ्काशं महादेवस्य तन्मुखम् ।
जिह्वाग्रेण जगत्सर्वं लेलिहानमपश्यत ॥५
योजनानांसहस्राणिसहस्राणाशतानिच ।
दिशोदशमहाघोरामांसमेदोवसोत्कटाः । ६
तस्य दंष्ट्राण्यवर्धन्तशतशोऽथ सहस्रशः
सासुरान्सुरगन्धर्वान्सयक्षोरगराक्षसान् ।
यस्य दंष्ट्राग्रसंलग्नान्स ददर्श पितामहः
दन्तयन्त्रान्तसम्विष्टविचूर्णितशिरोधरम् ॥७

महर्षि प्रवर श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—इस प्रकार से सस्तवन किये गये प्रभु ने जो कि ब्रह्मा आदि मुनि श्रेष्ठों ने ब्रह्मलोक मे समुपस्थित होकर शिव की बहुत स्तुति की थी सब सम्पूर्ण जगत् का संहार कर दिया था ॥१॥ उस संहरण करने के अवसर पर सबने भगवान् शिव का महान् रौद्र स्वरूप का दर्शन किया था वह रुद्र का स्वरूप अत्यन्त भयानक, दक्षिण वक्त्र, अव्यय, बडी दाढो वाला, उत्कट घोष से संयुत और पाताल तल के तुल्य था ॥२॥ विद्युत् और अग्नि के सदृश तीन नेत्रो वाला महान् भैरव एव रोमाञ्च खडे कर देने वाला वह स्वरूप था। महान् जिह्वा से युक्त—महा विकराल दाढो वाला और बडे २ विशाल सर्पों को सिर पर धारण करने वाला शिव का स्वरूप था ॥३॥ बड़े २ असुरो के मुण्डो की माला को धारण किये हुए, महा प्रलय का कारण स्वरूप, ग्रसते हुए समुद्र मे निहित वायु और जल से परिपूर्ण देवि, वडवाग्नि के मुख के तुल्य मुख वाला श्रीमहादेव का मुख था । उस मुख को जिह्वा के अग्रभाग से इस समस्त जगत् को चाटते हुए देखा था । भगवान् पितामह ने देखा था कि सैकडो और सहस्रो योजन दशो दिशाऐं जो महान् घोर थी और मास, मेदा और वसा से उत्कट थी तथा सुर, असुर, गन्धर्व, यक्ष, उरग और राक्षस सहस्रो की सख्या मे महादेव की दाढ़ो के अग्रभाग मे सलग्न हो रहे थे। सम्पूर्ण यह जगत् उनके दाँतों के यन्त्र मे अन्दर प्रविष्ट होता हुआ शिरोधरो से युक्त चूर्णित हो रहा था ॥४-७॥

जगत्पश्यामि राजेन्द्रविशन्तं व्यादिते मुखे ।
नानातरंगभंगांगामहाफेनौघसंकुलाः ॥८
यथा नद्यो लयं यान्ति समुद्रं प्राप्य सस्वनाः ॥९
तथा ततं विश्वमिदं समस्तमनेकजीवार्णवदुर्विगाह्यम् ।
विवेश रुद्रस्य मुखं विशाल ज्वलत्तदुग्रं घननादघोरम् ॥१०
ज्वालास्ततस्तस्य मुखात्सुघोराः
सविस्फुलिंगा बहुलाः सधूमाः ।
अनेकरूपा ज्वलनप्रकाशाः
प्रदीपयन्तीव दिशोऽखिलाश्च ॥११
ततो रविज्वालसहस्रमालि
बभूववक्त्रं चलजिह्वदंष्ट्रम् ।
महेश्वरस्याद्भुतरूपिणस्तदा
स द्वादशात्मा प्रबभूव एकः ॥१२
ततस्ते द्वादशादित्या रुद्रवक्त्राद्विनिर्गताः ।
आश्रित्य दक्षिणामाशा निर्दहन्तो वसुन्धराम् ॥१३

हे राजेन्द्र ! इस सम्पूर्ण जगत् को भगवान् शिव के फैलाये हुए मुख में प्रवेश करते हुए देखता हूँ । अनेक लहरों के भङ्गाङ्गों वाली और महान् फेनों के समुदाय से सकुल ध्वनियुक्त नदियाँ जिस प्रकार से समुद्र में प्राप्त होकर लय को प्राप्त हुआ करती हैं उसी भाँति अनेक जीवों के सागर से दुर्विगाह्य ( न पार होने के योग्य ) यह परम विशाल समस्त विश्व मेघ के समान परम घोर घननाद वाले जलते हुए अत्यन्त उग्र रुद्र के विशाल मुख में प्रवेश कर गया था । उन भगवान् रुद्र के मुख की ज्वालाऐं अत्यन्त घोर रूप वाली—धूम से और अग्नि कणों से युक्त विशाल रूप में निकल रही थी । उन ज्वालाओं के नाना भाँति के स्वरूप थे और वे अग्नि के ही तुल्य प्रकाश वाली थीं जो कि सभी दिशाओं को प्रदीप्त-सी कर रही हैं । इसके अनन्तर उन अद्भुत रूप वाले महेश्वर प्रभु का मुख सूर्य की सहस्रों ज्वालाओं की माला वाला हो गया था जिसमें जिह्वा और दाढ़ें चल रही थीं उस समय में बारह स्वरूपों वाले भी शिव एक ही रूप वाले हो गये

थे। इसके पश्चात् रुद्र के मुख से द्वादश आदित्य विनिर्गत हुए थे जो दक्षिण दिशा का समाश्रय ग्रहण करके इस सम्पूर्ण भूमि का निर्दहन करने वाले थे ॥८-१३॥

भोमं यज्जीवनंकिञ्चिन्नानावृक्षतृणालयम् ।
शुष्कं पूर्वमनावृष्टयासकलाकुलभूतलम् ॥१४
तद्दीप्यमानं सहसा सूर्यैस्तै रुद्रसम्भवैः ।
धूमाकुलमभूत्सर्वं प्रणष्टग्रहतारकम् ॥१५
जज्वाल सहसा दीप्तं भूमण्डलमशेषतः ।
ज्वालामालाकुलं सर्वमभूदेतच्चराचरम् ॥१६
सप्तद्वीपसमुद्रेषु सरित्सु च सरस्सु च ।
अग्निरहिजगत्सर्वमाज्याहुतिमिवाध्वरे ॥१७
विशालतेजसा दीप्तामहाज्वालासमाकुला ।
ददहुर्जगत्सर्वमादित्यारुद्रसम्भवाः ॥१८
आदित्यानां रश्मयश्चसंस्पृष्टा वै परस्परम् ।
एवं ददाहभगवांस्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१९
सप्तद्वीपप्रमाणस्तुसोऽग्निर्भूत्वामहेश्वरः ।
सप्तद्वीपसमुद्रान्तांनिर्ददाह वसुन्धराम् ॥२०
सुमेरुमन्दरान्तां च निर्दहुर्वसुधांतदा ।
भित्वा तु सप्तपातालंनागलोकंततोऽदहत् ॥२१

इस भूमि पर रहने वालों का जो भी जीवन था जिनका कि अनेक वृक्ष, तृण आदि निवास स्थान थे वह पहिले तो अनावृष्टि होने से शुष्क हो गया था और समस्त भूतल मूखा से समाकुल हो उठा था फिर यह सम्पूर्ण पृथ्वी तल रुद्र देव से समुत्पन्न उन सूर्यों से सहसा दीप्यमान हो गया था समस्त भूमि भाग धूँआ से समाकुल हो गया था और सम्पूर्ण ग्रह तथा तारागण नष्ट हो गये थे। सहसा पूरा मण्डल दीप्त होकर जल गया था और यह समस्त चराचर ज्वालाओं की मालाओं से आकुल हो गया था। सातों द्वीपों वाले समुद्रों में—सब सरिताओं में और सरोवरों में ही सम्पूर्ण

जगत् को अग्नि यज्ञ मे घृत की आहुति के समान भक्षण कर रहा था। परम विशाल तेज से प्रदीप्त—महान् ज्वालाओ से समाकुल—रुद्रदेव से समुत्पन्न आदित्यो ने इस सम्पूर्ण जगत् को दग्ध कर दिया था। भगवान् ने इस जड—जङ्गम त्रैलोक्य को इस प्रकार से जला दिया था कि आदित्यो की किरणें परस्पर मे भली भाँति स्पष्ट हो गई थी अर्थात् एक दूसरी से मिल गयी थी। वह महेश्वर भगवान् सात द्वीपो के प्रमाण वाला अग्नि स्वरूप ही हो गया था। या सात द्वीप और समुद्रो के अन्त पर्य्यन्त इस सब वसुन्धरा को जलाकर दग्ध कर दिया था। उस समय मे सुमेरु पर्वत से लेकर मन्दराचल पर्य्यन्त इस भूमि को दग्ध कर दिया था फिर सात पातालो का भेदन करके नागलोक को भी दग्ध कर दिया था ॥१४-२१॥

भूम्यध.सप्तपातालान्निर्दहन्स्तारकैः सह
चचाराग्निः समन्तात्तुनिर्दहन्वैयुधिष्ठिर ॥२२
धम्यमानइवागारैर्लोहराशिरिवज्वलन् ।
तथातत्प्राज्ज्वलत्सर्वसम्वर्त्ताग्निप्रदीपितम् ॥२३
निर्वृक्षा निस्तृणा भूमिर्निनिर्झरसरःसरित् ।
विशीर्णशैलश्रृगौघा कूर्मपृष्ठोपमाऽभवत् ॥२४
ज्वालामालाकुलं कृत्वा जगत्सर्वं चिदात्मकम् ।
महारूपधरो रुद्रो व्यतिष्ठत महेश्वरः ॥२५
समातृगणभूयिष्ठा सयक्षोरगराक्षसा ।
ततो देवी महादेवं विवेश हरिलोचना ॥२६
निर्वाणं परमापन्ना शान्तेव शिखिनःशिखा ।
जगत्सर्वं हि निर्दग्धं त्रिभिर्लोकैः सहाऽनघ ॥२७
रुद्रप्रसादान्मुक्त्वा मा नर्मदा चाप्ययोनिजाम् ।
युगानामयुतं देवो मया चाद्य बुभुक्षणात् ॥२८

हे युधिष्ठिर ! तारामो के सहित भूमि और अधोभाग मे सातो पातालो को निर्दग्ध करते हुए चारो ओर दाह करते हुए वह अग्नि संचरण करने लगा था। अगारों से धायमान की भाँति लोहराशि की

तरह जलते हुए उसने सम्वर्त्ताग्नि से प्रदीपित सबको प्रज्वलित कर दिया था। उस समय में इस भूमि की ऐसी दशा हो गई थी जैसे किसी कूर्म (कछुआ) की पीठ हो। भूमि पर एक भी कहीं वृक्ष नहीं रहा था—तृण नाम मात्र को नहीं था। न कोई झरना—सर और सरिता ही थी। सब पर्वतों की चोटियाँ टूट-फूटकर गिर गई थीं। इस सम्पूर्ण जगत को जो कि चिदात्मक था ज्वालाओं की मालाओं से समाकुल करके महान् रूप के धारण करने वाले महेश्वर समास्थित हो गये थे। बहुत-सी मातृगणों की पंक्तियों से युक्त और यक्ष उरग तथा राक्षसों के सहित हरिलोचना देवी ने महादेव में ही प्रवेश कर लिया था। हे अनघ! तीनों लोकों के सहित सम्पूर्ण जगत को निर्दग्ध कर दिया था और फिर शिखी की शिखा की तरह शान्त होती हुई परम निर्वाण को प्राप्त हो गई थी। अयोनिजा नर्मदा मुझको रुद्र के प्रसाद से मुक्त करके आज बुभुक्षण से मेरे द्वारा दश सहस्र युगों तक देव शूली की पहिले आराधना की गई थी ॥२२-२८॥

पुरा ह्याराधितः शूली तेनाहमजरामरः।
अघमर्षणघोरं च वामदेवं च त्र्यम्बकम् ॥२९
ऋषभं त्रिसुपर्णं च दुर्गां सावित्रमेव च।
बृहदारण्यकं चैव बृहत्साम तथोत्तरम् ॥३०
रौद्रीं परमगायत्री शिवोपनिषदं तथा।
यथा प्रतिरथं सूक्तं जप्त्वा मृत्युञ्जयं तथा ॥३१
सरित्सागरपर्यन्ता वसुधा भस्मसात्कृता।
वर्जयित्वा महाभागां नर्मदाममृतोपमाम् ॥३२
महेन्द्रो मलयः सह्योहेमकूटोऽथमाल्यवान्।
विन्ध्यश्चपारियात्रश्चसप्तैतेकुलपर्वताः ॥३३
द्वादशानित्यनिर्दग्धाः शैलाः शीर्णं शिलाः पृथक्।
भस्मीभूतास्तु दृश्यन्ते न नष्टा नर्मदा तदा ॥३४
हिमवान्हेमकूटश्च निषधो गन्धमादनः।
माल्यवांश्च गिरिश्रेष्ठो नीलः श्वेतोऽथ शृंगवान् ॥३५

एते पर्वतराजानोदेवगन्धर्वसेविताः ।
युगान्ताग्निविनिर्दग्धाःसर्वेशीर्णमहाशिलाः ॥३६
एवं मया पुरा दृष्टो युगान्ते सर्वसङ्क्षयः ।
वर्जयित्वा महापुण्यां नर्मदां नृपसत्तम ॥३७

भगवान् शूली की आराधना से मैं अजर-अमर हो गया। अघमर्षण घोर, वामदेव, त्र्यम्बक, ऋषभ, त्रिसुपर्ण, दुर्गा, सावित्र, बृहदारण्यक, बृहत्साम, उत्तर, रौद्री, परम गायत्री, शिवोपनिषद—पवित्र सूक्त और उसी भांति मृत्युञ्जय का जाप करके मैं अजर अमर हो गया था। सरिता और सागर पर्यन्त सम्पूर्ण वसुधा भस्म कर दी गई थी केवल परम महा भाग वाली अमृतोपमा नर्मदा का वर्णन कर दिया था। महेन्द्र, मलय, सह्य, हेमकूट, माल्यवान्, विन्ध्य, पारियात्र, ये सात कुल पर्वत कहे गये हैं। द्वादश आदित्यों के द्वारा निर्दग्ध हुए शैलों की सब शिलाऐं शीर्ण होकर पृथक हो गई थी। ये सब भस्मी भूत होकर दिखलाई दे रहे थे किन्तु उस समय में भी नर्मदा का नाश नहीं हुआ था। हिमवान् (हिमालय), हेम कूट, निषध, गन्धमादन, माल्यवान्, गिरियों में परम श्रेष्ठ नील गिरि, श्वेत और शृङ्गवान्, ये सब पर्वत राज हैं जो कि देवों और गन्धर्वों के द्वारा सेवित हैं। जब युगान्त की अग्नि प्रज्वलित हुई तो ये सब निर्दग्ध हो गये थे और इनकी समस्त महा शिलाऐं टूट-फूट गई थी। इस प्रकार से मैंने युग के अन्त में पहिले सबका संक्षय आँखों से देखा था। हे नृपसत्तम ! सबका तो संक्षय हुआ था किन्तु महान् पुण्य वाली नर्मदा का उस समय में भी विनाश अर्थात् क्षय नहीं हुआ था ॥३६-३७॥

---

## ८१—नर्मदामाहात्म्यवर्णन

निर्दग्धेऽस्मिस्ततो लोकेसूर्यैरीश्वरसम्भवैः ।
सप्तभिश्चार्णवैः शुष्कैर्द्वीपैः सप्तभिरेवच ॥१
ततो मुखात्तस्य घना महोल्वणा निश्चेरुरिन्द्रायुधतुल्यरूपाः ।
घोराः पयोदा जगदन्धकारं कुर्वन्त ईशानवरप्रयुक्ताः ॥२

नीलोत्पलाभाः क्वचिदञ्जनाभागोक्षीरकुन्देन्दुनिभाश्च केचित्।
मयूरचन्द्राकृतयस्तथाऽन्ये केचिद्विधूमानलसप्रभाश्च ॥३
केचिन्महापर्वतकल्परूपाः ।
केचिन्महामीनकुलोपमाश्च ।
केचिद्गजेन्द्राकृतयः सुरूपाः
केचिन्महाकूटनिभाः पयोदाः ॥४
चलत्तरङ्गोर्मिसमानरूपा
महापुरोधानिभाश्च केचित् ।
सगोपुराट्टालकसन्निकाशाः
सविद्युदुल्काशनिमण्डितान्ताः ॥५
समावृताङ्गः स बभूव देवः सम्वर्तकोनाम गणः सरौद्रः ।
प्रवर्षमाणो जगदप्रमाणमेकार्णवं सर्वमिदं चकार ॥६
ततो महामेघविवर्द्धमानमीशानमिन्द्राशनिभिर्वृताङ्गम् ।
ददर्श नाहं भयविह्वलाङ्गो गङ्गाजलौघेश्च समावृताङ्गः ॥७

महर्षि वर श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—ईश्वर से समुत्पन्न हुए सूर्यों के द्वारा इस सम्पूर्ण लोक के निर्दग्ध हो जाने पर और सातों समुद्रों के उतप्त होकर सूख जाने पर तथा सातों द्वीपों के शुष्क होकर नष्ट हो जाने पर फिर उनके मुख से इन्द्रदेव के आयुधों के तुल्य रूप वाले महान् उत्कट घन निकलकर संचरण करते लगे थे। परम श्रेष्ठ ईशान देव के द्वारा प्रयुक्त उन परम घोर पयोदों ने इस जगत में अन्धकार फैला दिया था ॥१-२॥ ये मेघ विभिन्न रूप और आकार वाले थे। कहीं तो वे मेघ नील कमल की आभा वाले थे। कहीं पर अञ्जन की आभा के तुल्य आभा वाले थे—और कुछ गो के दूध, कुन्द पुष्प और चन्द्र के समान थे। अन्य मोर और चन्द्रमा की आकृति वाले थे और कुछ विधूम अर्थात् धुआँ से रहित अग्नि की प्रभा के तुल्य थे। कुछ मेघ तो विशाल पर्वतों के ही बिल्कुल सदृश रूप वाले थे और कुछ महामीन (विशाल मछली) के कुल के समान थे। कुछ गजेन्द्र के समान आकृति वाले थे तथा कुछ मेघ महान्

चोटी के तुल्य सुन्दर रूप वाले थे ॥३-४॥ कुछ मेघ चलती, हुई तरंगों के समान रूप वाले थे और कुछ महा पुरोधान के तुल्य थे। कुछ गोपुर, अट्टालक के तुल्य थे जिनमे विद्युत, उल्का, अशनि से मण्डित अन्त वाले थे ॥५॥ वह देव सम्वृत अंगो वाला हो गया था, सम्वर्त्तक नाम वाला वह रौद्र गण प्रवर्षण करता हुआ इस समस्त जगत को अप्रमाण एक अर्णव वाला कर दिया था। इसके अनन्तर भय से विह्वल अङ्ग वाले मैंने गङ्गा के जल के ओघों से समावृत अंगों वाला महान् मेघों से निबद्ध्-मान और इन्द्र के वज्र से वृत अंगों वाले ईशान को देखा ॥६-७॥

गजाःपुनश्चैव पुनः पिबन्तो
जगत्समन्तात्परिदह्यमानम् ।
आपूरितं चैव जगत्समन्तात्
सर्वश्च तैर्जग्मुरदर्शनं च ते ।८
महार्णवाः सप्त सरांसि द्वीपा
नद्योऽथ सर्वा अथ भूर्भुवश्च ।
आपूर्यमाणाः सलिलौघजालै
रेकार्णवं सर्वमिदं बभूव ॥९
न दृश्यते किञ्चिदहो चराचरे
निरग्निचन्द्रार्कमयेऽपि लोके ।
प्रणष्टनक्षत्रतमोऽन्धकारे
प्रशान्तवातास्तमितैकनीडे ॥१०
महाजलौघेऽस्य विशुद्धसत्वा
स्तुतिर्मया भूप ! कृता तदानीम् ।
ततोऽहमित्येव विचिन्तयानः
शरण्यमेकं क्व नु यामि शान्तम् ॥११
स्मरामि देवं हृदि चिन्तयित्वा प्रभुं शरण्यं जलसन्निविष्टः ।
नमामि देवं शरणं प्रपद्ये ध्यानं च तस्येतिकृतं मया च ॥१२
ध्यात्वा ततोऽहं सलिलं ततार तस्य प्रसादादविमूढचेताः ।
ग्लानिः श्रमश्चैव मम प्रणष्टौ देव्याः प्रसादेन नरेन्द्रपुत्र ॥१३

चारों ओर से परिदह्यमान इस जगत् को पुनः पुनः गज पी रहे थे। सभी ओर से यह जगत् उनके द्वारा आपूरित होता हुआ था और फिर वे अदर्शन को प्राप्त हो गये थे ॥८॥ सातों महार्णव—सब सर—सात द्वीप—समस्त नदियाँ और भूर्भुवः स्वः जलों के ओघों के जालों से आपूर्यमाण होते हुए यह सब एकार्णव (समस्त समुद्रमय) हो गया था ॥९॥ अहो! अर्क—चन्द्र और अग्नि से रहित इस चराचर लोक में जो कि नक्षत्रों के नष्ट होने से अन्धकार पूर्ण और तमोमय था और वायु के भी प्रशान्त होने एक अस्तमित नीड हो रहा था कुछ भी दिखलाई नहीं दे रहा था ॥१०॥ हे भूप! उस महान् जलौघ में उस समय में मैंने इनकी विशुद्ध सत्व वाली स्तुति की थी। इसके पश्चात् मैं ही हूँ, ऐसी चिन्ता करता हुआ कि एक परम शान्त शरण्य की शरणागति मे कहाँ जाऊं? ॥११॥ जल में सन्निविष्ट मैं अपने हृदय मे परम शरण्य, देव प्रभु का चिन्तन करके स्मरण करता था। मैं देव को नमस्कार करता हूँ, शरण में जाता हूँ—इस तरह से मैंने उनका ध्यान किया था। इसके अनन्तर ध्यान करके उनके प्रसाद से अविमूढ़ चित्त वाला होकर सलिल में तरण किया था। ग्लानि और श्रम हे नरेन्द्र पुत्र! देवी के प्रसाद से मेरा सब नष्ट हो गया था ॥१२-१३॥

## ६२—वाराहकल्पवृत्तान्तवर्णन

ततस्त्वेकार्णवे तस्मिन्मुमूर्षुरहमातुरः।
कार्त्स्न्येनोच्छ्वासस्तरन्तोयं बाहुभ्यां नृपसत्तम! ॥१
शृणोम्यर्णवमध्यस्थो निःशब्दस्तिमिते तदा।
गम्भीरघनगोपम्यं दिशोदशविनादिनम् ॥२
हंसकुन्देन्दुसङ्काशां हारगोक्षीरपाण्डुराम्।
नानारत्नविचित्राङ्गीं स्वर्णशृङ्गां मनोरमाम् ॥३
खुरैःप्रवालकमयैर्लाङ्गूलध्वजशोभिताम्।
प्रलम्बघोणांनर्दन्तीं पुरं रणं वराहिनीम् ॥४

गा ददर्शाहमुद्विग्नो मामेवाऽभिमुखीं स्थिताम् ।
किङ्किणीजालमुक्ताभि. स्वर्ण घटासमावृताम् ॥५
तस्याश्चरणविक्षेपैः सर्वमेकार्णवजलम् ।
विक्षिप्तफेनपुञ्जोघैर्नृत्यन्तीव समन्ततः ॥६
ररास सलिलोत्क्षेपै. क्षोभयन्ती महार्णवम् ।
सा मामाह महाभाग । श्लक्ष्णगम्भीरया गिरा ॥७

महर्षि प्रवर श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—इसके उपरान्त उस एक मात्र सागर मे हे नृप सत्तम ! मैं अत्यन्त आतुर और कावृच्छ्वास होता हुआ अपनी बाहुओ से जल को तैर रहा था। अर्णव के मध्य मे स्थित मैं शब्द रहित सीमित काल मे उस समय मे अनुपम और दशो दिशाओ मे विशेष ध्वनि करने वाले जल के शब्द को सुनता हूँ ॥१-२॥ हस, कुन्द, (एक श्वेत रग का पुष्प) इन्दु (चन्द्रमा) के सदृश अर्थात् एक दम सफेद, हार, गाय का दूध के समान पाण्डुर, अनेक रगो से विचित्र अगो वाली, सुनहले सीगो से युक्त अतीव सुन्दर, प्रवालो से परिपूर्ण खुरो से युक्त, लागल (पूछ) और ध्वज से शोभा वाली, लम्बो नासिका वाली खुरो से अर्णव का गाहन करती हुई तथा नदन करने वाली गाय को मैंने अतीव उद्विग्न होते हुए देखा था जो कि मेरे ही सामने स्थित थी और किंकणी जाल मुक्ताओ से स्वर्ण के घण्टा से वह समावृत थी ॥३-५॥ उसके चरणो के विक्षेपो से वह समस्त एकार्णव का जल विक्षिप्त फेनो के पुजो के समूह से सभी ओर नाच सा रहा था। जल को ऊपर की ओर उत्क्षेपो से उस महार्णव मे क्षोभ करती हुई वह रास करती थी। वह मुझसे बोली—हे महाभाग ! उसकी वाणी उस समय मे बहुत ही श्लक्ष्ण और गम्भीर थी ॥६-७॥

मा भैर्वत्स वत्सेति मृत्युस्तव न विद्यते ।
महादेवप्रसादेन न मृत्युस्तेऽस्ति सुव्रत ॥८
ममाश्रयस्व लाङ्गूलं त्वामतस्तारयाम्यहम् ।
घोरादस्माद्भयाद्विप्र यावत्सम्प्लवते जगत् ॥९

क्षुत्तृषाप्रतिघातार्थं स्तनौ मे त्वं पिबस्व ह ।
पयोऽमृताश्रयं दिव्यं तत्पीत्वा निर्वृ तो भव ॥१०
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हर्षात्पीतो मया स्तनः ।
न क्षुत्तृषा पीतमात्रे स्तने मह्यं तदाऽभवत् ॥११
दिव्यं प्राणबलं जज्ञे समुद्रप्लवनक्षमम् ।
ततस्ता प्रत्युवाचेदं का त्वमेकार्णवीकृते ॥१२
भ्रमसे ब्रूहि तत्त्वेन विस्मयो मे महान्हृदि ।
भ्रमतोऽप्यममार्तस्य मुमूर्षोः प्रहतस्यह ॥१३
त्वं हि मे शरणं जाता भाग्यशेषेण सुव्रते ! ॥१४

हे वत्स ! हे वत्स ! डरो मत, तुम्हारी मृत्यु नहीं होगी । महादेव का प्रसाद ऐसा ही है कि उससे न तो तुम्हारी मृत्यु है और न मेरी ही । तुम मेरी पूंछ को पकड लो, मैं तुमको तार दूंगी । हे विप्र ! जब तक यह जगत में सप्लव होता है मैं तब तक इस अति घोर भय से मैं उद्धार करती हूं । अपनी क्षुधा और पिपासा के प्रतिघात करने के लिए तुम मेरे स्तनों का पान करो । यह मेरा अमृताश्रय परम दिव्य पय है उसको पीकर निवृ त हो जाओ । उसके इस वचन का श्रवण करके मैंने बहुत ही हर्ष से उसका स्तन पिया था । उस समय मे उस स्तन के पीते ही भर से मुझे क्षुधा और तृषा नही रही थी । मुझमे उस समय मे परम दिव्य प्राण बल समुत्पन्न हो गया था जो कि समुद्र के प्लवन की सामर्थ्य रखने वाला था । इसके पश्चात् मैंने उससे कहा था—आप कौन हैं ? जो इस एकार्णवी भूत हुए जल मे इस तरह से भ्रमण कर रही हैं । आप इसको तात्विक रूप से मुझे बतलाइये । मेरे हृदय मे इस बात का बडा भारी विस्मय हो रहा है । यहा पर परम आर्त भ्रमण करते हुए मेरी, जो कि प्रहत और मरने वाला हो रहा हूं हे सुव्रते ! मेरे भाग्य की शेषता होने से हा आप सरक्षण करने वाली हो गई हैं ॥८-१४॥

किमहं विस्मृता तुभ्यं विश्वरूपामहेश्वरी ।
नर्मदाधर्मदानृणास्वर्गशर्मबलप्रदा ॥१५

दृष्ट्वा त्वां सीदमानं तु रुद्रेणाऽहं विसर्जिता ।
तं द्विजं तारयस्वार्ये मा प्राणांस्त्यजतां जले ॥१६
गोरूपेण विभोर्वाक्यात्त्वत्सकाशमिहागता ।
मा मृषावचनः शम्भुर्भवेदिति च सत्वरा ॥१७
एवमुक्तस्तयाऽहं तुइन्द्रायुधानिभंशुभम् ।
*लांगूलमव्ययं ज्ञात्वाभुजाभ्यामवलम्बितः ॥१८*
ततोऽन्तरं तं जलधिलांगूलध्वजमाश्रितः ।
असौ देवो महादेव इति मां प्रत्यभाषत ॥१९
ततो युग सहस्रान्तमहं कालं तया सह ।
व्यचरं वै तमोभूते सर्वतः सलिलावृते ॥२०
महार्णवे ततस्तस्मिन्भ्रमन्गोः पुच्छमाश्रितः ।
निर्वाते चान्धकारे च निरालोके निरामये ॥२१

गौ ने कहा—क्या आपने मुझको भुला दिया है ? मैं विश्वरूप वाली महेश्वरी हूँ । मेरा नाम नर्मदा है और मैं मनुष्यों को धर्म के देने वाली तथा स्वर्ग कल्याण और बल प्रदान करने वाली हूँ । तुमको अत्यन्त पीडित होते हुए देखकर भगवान् रुद्र ने मुझे छोड दिया है और उन्होंने मुझे यहाँ भेजते हुए आज्ञा दी थी कि हे आर्ये ! उस द्विज का तारण करो । यह इस जल मे अपने प्राणों का परित्याग न कर देवे । विभु के ही इस वचन से मैं गौ के रूप मे तुम्हारे समीप मे यहाँ पर समागत हुई हूँ कि भगवान् शम्भु का वचन मिथ्या न होने पावे । इसीलिए मैंने बड़ी शीघ्रता से आगमन किया है । इस प्रकार से उसके द्वारा कहे हुए मैंने इन्द्र के आयुध के तुल्य परम शुभ एवं अव्यय समझकर उसकी पूंछ को दोनों बाहुओं से पकड लिया था । इसके अनन्तर लांगूल ध्वज उस जलधि के आश्रित यह देव महादेव हैं यह मुझसे कहा था । इसके पश्चात् मैं उसके साथ एक सहस्र युग के अन्त तक समय मे सब ओर से जल से समावृत उस अन्धकार पूर्ण मे विचरण करता रहा था । इसके उपरान्त उस महार्णव में गौ की पूंछ का आश्रय ग्रहण करने वाला मैं बिना वायु वाले आलोक रहित निरामय अन्धकार मे भ्रमण कर रहा था ॥१५-२१॥

अकस्मात्सलिले तस्मिन्नतसीपुष्पसन्निभम् ।
विभिन्नांञ्जनसंकाशमाकाशमिव निर्मलम् ॥२२
नीलोत्पलदलश्यामं पीतवाससमव्ययम् ।
किरीटेनार्कवर्णेनविद्युद्विद्योतकारिणा ॥२३
भ्राजमानेनशिरसाखमिवात्यन्तरूपिणम् ।
कुण्डोद्घट्टगल्लं तुहारोद्यमोतितवक्षसम् ॥२४
जाम्बूनदमयैर्दिव्यैर्भूषणै रुपशोभितम् ।
नागोपधानशयनं सहस्रादित्य वर्चसम् ॥२५
अनेकबाहूरुधरं नैकवक्त्रं मनोरमम् ।
सुप्तमेकार्णवे वीरं सहस्राक्षशिरोधरम् ॥२६
जटाजूटेन महतास्फुरद्विद्युत्समार्चिषा ।
एकार्णवं जगत्सर्वं व्याप्यदेवं व्यवस्थितम् ॥२७
ग्रसित्वा शंकरं सर्वं सदेवासुरमानवम् ।
प्रपश्याम्यहमीशानं सुप्तमेकार्णवे प्रभुम् ॥२८

अचानक उस जल भ्रल मे अलसी के पुष्प के सदृश, विभिन्न अंजन के तुल्य, आकाश के समान निर्मल, नोलकमल के सदृश श्याम, पीत वस्त्र धारी अव्यय, विद्युत के तुल्य विद्योतकारी, सूर्य के समान किरीट से शोभित भ्राजमान, शिर से आकाश की भाँति अत्यन्त रूप वाले उस एकार्णव मे शयन करने वाले ईशान प्रभु को मैंने देखा था । जो कुण्डलो से उद्घुष्ट गालो वाले थे । सुवर्ण मय दिव्य आभूषणो से वह शोभित थे । जिनकी शय्या पर नागों का ही उपधान (तकिया) था और जो सहस्रो आदित्यो के तुल्य वर्चस वाले थे । उनके अनेक बाहु और ऊरु थे तथा अनेक मुखो से युक्त वे अत्यन्त ही मनोरम थे । सहस्रो नेत्र एव मस्तको के धारण करने वाले वह वीर उस एकार्णव मे सुप्त थे । विद्युत् के समान अर्चियो वाले अर्थात् ज्योति की ज्वालाओ से युक्त महान् जटाजूटो से समुपलक्षित थे । उस एकार्णव सम्पूर्ण जगत् को व्याप्त करके वे देव अवस्थित थे । सबका ग्रास करके जिस विश्व मे देव असुर और मानव सभी थे ऐसे शंकर प्रभु का मैंने दर्शन किया था ॥२२-२८॥

सर्वव्यापिनमव्यक्तमनन्तं विश्वतोमुखम् ।
तस्यपादतलाभ्याशेस्वर्णकेयूरमण्डिताम् ॥२९
विश्वरूपां महाभागां विश्वमायावधारिणीम् ।
श्रीमयी ह्लीमयी देवी धीमयीं वाङ मयी शिवाम् ॥३०
सिद्धि कीर्ति रतिं ब्राह्मी कालरात्रिमयोनिजाम् ।
तामेवाहं तदात्यन्तमीश्वरान्तिकमास्थिताम् ॥३१
अद्राक्षं चन्द्रवदनां धृतिं सर्वेश्वरीमुमाम् ॥३२
शान्तं प्रसुप्तं नवहेमवर्णमुमासहायं भगवन्तमीशम् ।
तमोवृतं पुण्यतमं वरिष्ठं प्रदक्षिणीकृत्य नमस्करोमि ॥३३
ततः प्रसुप्तः सहसा विबुद्धो
रात्रिक्षये देववरः स्वभावात् ।
विक्षोभयन्बाहुभिरर्णवाम्भो
जगत्प्रणष्टं सलिले विमृश्य ॥३४
किं कार्यमित्येव विचिन्तयित्वा
वाराहरूपोऽभवदद्भुताङ्गः ।
महाघनाम्भोधरतुल्यवर्चाः
प्रलम्बमालाम्बरनिष्कमाली ॥३५

यह भगवान् सर्वव्यापी—अव्यक्त और अनन्त तथा विश्वतो मुख थे उनके चरण तलों के समीप में ही सुवर्ण के रचित केयूरों से मण्डित—विश्वरूप वाली—महाभागा विश्वमाया की अवधारिणी—श्रीमयी—ह्लीमयी—धीमयी—वाङ्मयाशिवा—देवी—सिद्धि—कीर्ति—रति-ब्राह्मी—अयोनिजा—कालरात्रि उसी को मैंने ईश्वर के अत्यन्त समीप में समास्थित उस समय में देखा था जो कि चन्द्रमा के तुल्य मुख वाली—धृति और सर्वेश्वरी उमा थी। परम शान्त—सोये हुए—नूतन हेम के सदृश वर्ण वाले—उमा की सहायता वाले—तम से आवृत—पुण्यतम—वरिष्ठ—भगवान् ईश को प्रदक्षिणा करके मैंने नमस्कार किया था। इसके अनन्तर सोये हुए वे देववर सहसा रात्रि के क्षय होने पर विबुद्ध हो गये थे अर्थात् जाग गये थे। स्वभाव से बाहुओं से उस अर्णव के जल को विक्षुब्ध

कर रहे थे । उस जल में सम्पूर्ण जगत् को नष्ट हुआ सोचकर अब क्या करना चाहिए—यही विशेष रूप से चिन्तन करके अद्भुत अङ्ग एवं रूप वाले वे बाराह रूप वाले हो गये थे । जो महान् घन पम्भोधर के समान वर्चस वाले और प्रलम्ब माला और अम्बर तथा निष्क ( गले का भूषण ) की माला के धारण करने वाले थे ॥२९-३५॥

सशंखचक्रासिधरः किरीटी सवेदवेदाङ्गमयो महात्मा ।
त्रैलोक्यनिर्माणकरः पुराणो देवत्रयीरूपधरश्च कार्य ॥३६

स एव रुद्रः स जगज्जहार
सृष्टयर्थमीशः प्रपितामहोऽभूत् ।
सरक्षणार्थं जगतः स एव
हरिः सुचक्रासिगदाब्जपाणिः ॥३७

तेषां विभागो न हि कर्तुमर्हो
महात्मनामेकशरीरभाजाम् ।
मीमांसहेत्वर्थं विशेषतर्कै
र्यस्तेषु कुर्यात्प्रविभेदमज्ञः ॥३८

स याति घोरं नरकं क्रमेण
विभागकृद्द्वेषमतिर्दुरात्मा ।
या यस्य भक्तिः स तयैव नूनं
देहं त्यजन्स्वं ह्यमृतत्वमेति ॥३९

सम्मोहयन्मूर्तिभिरत्र लोकं
स्रष्टा च गोप्ता क्षयकृत्स देवः ।
तस्मान्न मोहात्मकमाविशेत
द्वेषं न कुर्यात्प्रविभिन्नमूर्तिः ॥४०

वाराहमीशानवरोऽप्यतोऽसौ
रूपं तमास्थाय जगद्धिताय ।
नष्टे त्रिलोकेऽर्णवतोयमग्ने
विमार्गितोयौघमयेऽन्तरात्मा ॥४१

वह देव शंख—चक्र और असि ( खड्ग ) के धारण किये हुए थे—किरीटधारी—वेदों और वेदाङ्गो से परिपूर्ण—महान् आत्मा वाले—त्रिलोकी के निर्माण को करने वाले—पुराण और कार्य मे, तीन देवों के रूप धारण करने वाले हैं। वही रुद्रदेव इस जगत् का हरण करने वाले हुए थे। वह ही सृष्टि की रचना करने के लिये ईश प्रपितामह हुए थे। इस जगत् की रक्षा करने के लिये वह ही चक्र,गदा,खड्ग और पकज को धारण करने वाले श्रीहरि हुए हैं। एक ही शरीर को धारण करने वाले उन महात्माओ का विभाग नही करने योग्य है। मीमासा—हेतु—अर्थ विशेष और तर्कों के द्वारा जो कोई उन मे विभाग करता है या प्रभेद मानता है वह बहुत ही अज्ञानी एव मूढ है ॥३६-३८॥ इस प्रकार से विभाग करने वाला द्वेष बुद्धि से युक्त दुष्टात्मा क्रम से घोर नरक मे गमन किया करता है। जिस पुरुष को उस देवी की भक्ति होती है वह उसी के प्रभाव से निश्चय ही अपने देह का त्याग करता हुआ अमृतत्व को प्राप्त होता है ॥३९॥ यहाँ पर इन मूर्त्तिया के द्वारा लोक को सम्मोहित करते हुए वही सृजन करने वाले—सरक्षण करने वाले और क्षय करने वाले हैं। इसीलिए यह भिन्न २ मूर्त्तिधारी है—ऐसा मोहात्मक द्वेष नही करना चाहिए। यह ईशान वर वाराह के स्वरूप मे समास्थित होकर इस जगत् के विधाता हैं। इस त्रैलोक्य के नष्ट हो जाने पर और अर्णव के जल मे निमग्न होने पर विमार्गी जल के समूह से पूर्ण मे अन्तरात्मा अर्णव के जल का भेदन करके अन्तर मे स्थित पाताल मे क्षणभर मे प्रवेश कर गये थे। जल मे डूबी हुई कमल के दल के तुल्य नेत्रो वाली इस सम्पूर्ण धरणी का स्पर्श किया था ॥४०-४१॥

भित्त्वार्णवं तोयमथान्तरस्थं
विवेश पातालतलं क्षणेन ।
जले निमग्नां धरणी समस्तां
समस्पृशत्पङ्कजपक्षनेत्राम् ॥४२
विशीर्णशैलोत्पलशृङ्गकूटां
वसुन्धरां तां प्रलये प्रलीनाम् ।

दंष्ट्रैकया विष्णुरतुल्यसाहसा
समुद्दधार स्वयमेव देवः ॥४३
सा तस्य दंष्ट्राग्रविलम्बिताङ्गी
कैलासशृङ्गाग्रगतेव ज्योत्स्ना ।
विभ्राजते साप्यसमानमूर्तिः
शशाङ्कशृङ्गे च तडिद्विलग्ना ॥४४
तामुज्जहारार्णवतोयमग्नां
करी निमग्नामिव हस्तिनी हठात् ।
नावं विशीर्णामिव तोयमध्या
दुदीर्णसत्त्वोनुपमप्रभावः ॥४५
स तां समुत्तार्य महाजलौघात्
समुद्रमार्गो व्यभजत्समस्तम् ।
महार्णवेष्वेव महार्णवाम्भो
निक्षेपयामास पुनर्नदीषु ॥४६
शीर्णाश्च शैलान्स चकार भूयो
द्वीपान्समस्ताश्च तथार्णवांश्च ।
शैलोपलैर्ये विचिताः समन्ता
च्छिलोच्चयास्तान्स चकार कल्पे ॥४७
अनेकरूपं प्रविभज्य देहं चकार देवेन्द्रगणान्समस्तान् ।
मुखाच्च वह्निर्मनसश्च चन्द्रश्चक्षोश्च सूर्यः सहसा बभूव ॥४८
जज्ञेऽस्य तस्येश्वरयोगमूर्तेः प्रध्यायमानस्य सुरेन्द्रसंघः ।
वेदाश्चयज्ञाश्चतथैव वर्णास्तथा हि सर्वौषधयोरसाश्च ॥४९

विशीर्ण हुए शैलों के उत्पल शृंगकूटों वाली—प्रलय मे प्रलीन उस वसुन्धरा को अतुल्य साहस वाले देव विष्णु ने स्वयं ही एक दंष्ट्रा से उठा लिया था ॥४३॥ वह धरणी उनकी दाढ़ के अग्र भाग में लटके हुए अंगों वाली कैलास पर्वत की चोटी के अग्रभाग मे फैली हुई ज्योत्स्ना के समान शोभित हो रही थी । असमान मूर्त्ति वाली वह भी शशाङ्क के शृंग मे विलग्न तडित् जैसी थी ॥४४॥ उस धरणी को जो कि अर्णव के जल

में निमग्न थी जल में डूबी हुई हथिनी को हर पूर्वक उद्धार करने वाले हाथी की भाँति वाराह भगवान् ऊपर उठा लिया था। उदीर्ण सत्व वाले तथा अनुपम प्रभाव से समन्वित उन देव ने जल के मध्य से विशीर्ण हुई नौका की भाँति उस भूमि को महान् जल के समूह से ऊपर उठाकर उनने सम्पूर्ण समुद्र का विभाग कर दिया था। महार्णव के जल को महान् अर्णवों में और फिर नदियों में निक्षिप्त कर दिया था। क्षीर्ण हुए पर्वतों को उन्होने पुनः कर दिया था। उसी तरह से समस्त द्वीपों को और अर्णवों को भी यथास्थित कर दिया था। उन्होंने जो शैलों के उपलों से चारों ओर में विचित थे उन शैलोच्चयों को कल्प में कर दिया था। अपने देह को अनेक स्वरूपों में विभक्त करके फिर समस्त देवेन्द्र गणों को कर दिया था। उनके मुख से अग्नि समुत्पन्न हुई—मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई—चक्षु से सहसा सूर्य देव समुत्पन्न हुए थे ॥४५-४८॥ प्रकृष्ट रूप से ध्यान करने वाले योगभूति उन ईश्वर से सुरेन्द्रों का संघ समुत्पन्न हुआ था। समस्त वेद-यज्ञ-वर्ण-सर्वोषधियाँ और समस्त रस उत्पन्न हुए थे ॥४६॥

जगत्समस्तं मनसा बभूव
यत्स्थावरं किञ्चिदिहाऽण्डजं वा ।
जरायुजं स्वेदजमुद्भिजं वा
यत्किञ्चदाकीटपिपीलकाद्यम् ॥५०

ततो विजज्ञे मनसा क्षणेन
अनेकरूपाः सहसा महेशः ।
चकार यन्मूर्तिभिरव्ययात्मा
अष्टाभिराविश्य पुनः स तत्र ॥५१

लीलां चकाराऽथ समृद्धतेजा अतोऽत्र मे पश्यत एव विप्राः ।
तेषां मया दर्शनमेव सर्वं यावन्मुहूर्तात्समकारि भूप ॥५२

कृत्वा त्वशेषं किल लीलयैव स देवदेवो जगतां विधाता ।
सर्वत्रदृक्सर्वग एव देवो जगाम चाऽदर्शनमादिकर्ता ॥५३

यत्तन्मुहूर्तादिह नामरूपं तावत्प्रपश्यामि जगत्तथैव ।
द्वीपैःसमुद्रैरभिसम्वृतं हि नक्षत्रताराादिविमानकीर्णम् ॥५४

वियत्पयोदग्रहचक्रचित्रं
नानाविधैः प्राणिगणैर्वृतं च ।
तां वै न पश्यामि महानुभावां
गोरूपिणीं सर्वसुरेश्वरीं च ॥५५

क्व साम्प्रतं सेति विचिन्त्य राजन्
विभ्रान्तचित्तस्त्वभवं तदैव ।
दिशो विभागानवलोकयान
ऋते पुनस्तां कथमीश्वरांगीम् ॥५६

यह सम्पूर्ण जगत् मन से ही हुआ था जो भी स्थावर कुछ है अथवा यहाँ अण्डज है। कीट—पिपीलिका आदि से लेकर जो कुछ भी जरायुज-स्वेदज और उद्भिज सृष्टि है। इसके उपरान्त भगवान् महेश ने क्षणभर में सहसा अनेक रूपों वाली सृष्टि का सृजन मन से ही किया था। वह अव्यय आत्मा वाले ने यहाँ पर पुनः आठ मूर्तियों में आविष्ट होकर यह सब किया था। हे विप्रो ! मेरे देखते हुए ही समृद्ध तेज वाले प्रभु ने इस के पश्चात् लीला की थी। हे भूप ! मुहूर्त मात्र तक मैंने उनके समस्त दर्शन जब तक किये थे। जगतों के विधाता देवों के देव ने यह सब लीला ही से करके सर्वत्र दिखलाई देने वाले और सभी जगह गमन करने वाले वह देव आदिकर्त्ता अदर्शन को प्राप्त हो गये थे। यहाँ पर मुहूर्त मात्र में ही यह नाम और रूप वाला जगत् उसी प्रकार का समुत्पन्न हुआ मैं देखता हूँ जो कि समस्त द्वीपों और समुद्रों से अभि संवृतथा तथा नक्षत्र और तारादि विमानों से भी संकीर्ण हो रहा था। यह अन्तरिक्ष पयोद ( मेघ )—ग्रहों के चक्र से चित्रित था और नाना प्रकार के प्राणियों के समुदाय से भी समावीर्ण था। फिर मैं उन महानुभावा गाय स्वरूप वाली सर्वेश्वरी को नहीं देखता था। हे राजन् ! उस समय में वह कौन थी—यह विचिन्तन करके मैं विभ्रान्त चित्त वाला हो गया

था। फिर ईश्वरांगी उसके अभाव में कैसे दिशाओं के विभागों को देखने वाला होता ॥५०-५६॥

पश्यामि तामत्र पुनश्च शुभ्रां
महाभ्रनीलां शुचिशुभ्रतोयाम्।
वृक्षैरनेकैरुपशोभितांगी
गजैस्तुरङ्गैर्विहगैर्वृतां च ॥५७
यथा पुरा तीरमुपेत्य देव्याः
समास्थितश्चाप्यमरकण्टके तु।
तथैव पश्यामि सुखोपविष्ट
आत्मानमव्यग्रमवाप्तसौख्यम् ॥५८
तथैव पुण्यामलतोयवाहां
दृष्ट्वा पुनः कल्पपरिक्षयेऽपि।
अम्बामिवार्यामनुकम्पमाना
मक्षीणतोयां विरुजां विशोकः ॥५९
एवं महत्पुण्यतमं च कल्पं
पठन्ति शृण्वन्ति च ये द्विजेन्द्राः।
महावराहस्य महेश्वरस्य
दिने दिने ते विमला भवन्ति ॥६०
अशुभशतसहस्रं ते विधूय प्रपन्ना
स्त्रिदिवममरजुष्टं सिद्धगन्धर्वयुक्तम्।
विमलशशिनिभाभिःसर्वएवाप्सरोभिः
सहविविधविलासैःस्वर्गसौख्यं लभन्ते ॥६१

मैं फिर यहाँ पर उसको महान् अभ्र के (मेघ के) समान नील वर्ण वाली—शुचि एवं शुभ्र जल वाली और परम शुभ्र उसका दर्शन करता हूँ। वह अनेक वृक्षों से उपशोभित अंगों वाली तथा गज, अश्व और विहगों से समावृत थी। जिस प्रकार से पहिले तीर को प्राप्त होकर देवी के समीप में अमर कण्टक में समास्थित हो गया और उसी भाँति अव्यग्र प्राप्त हुए सौख्य वाले आत्मा को सुख पूर्वक उपविष्ट होकर देखता

हूँ। उसी प्रकार से परम पुण्यमय एवं अमल जल के वहन करने वाली को देखकर फिर कल्प के परिक्षय मे भी अम्बा की भाँति अनुकम्पा करती हुए क्षीणता रहित जल वाली विरजा भार्या को शोक रहित होकर देखता हूँ। जो द्विजेन्द्र इस प्रकार से इस महान् पुण्यतम महा वराह महेश्वर के कल्प को पढते हैं और श्रवण करते हैं वे दिन—दिन मे विमल हो जाया करते हैं। वे सैंकडो और सहस्रो अशुभों का विनाश करके प्रपन्न हुए देवो से सेवित और सिद्ध तथा गन्धर्वों से समन्वित स्वर्ग के परम सुख का उपभोग किया करते हैं जो स्वच्छ चन्द्र के तुल्य अप्सराओ के साथ विविध प्रकार के विलासो से युक्त होता है ॥५७-६१॥

---

## ८३—मेघनादतीर्थमाहात्म्यवर्णन

जलमध्ये महादेवः केनतिष्ठति हेतुना ।
उत्तरं दक्षिणं कूलं वर्जयित्वा द्विजोत्तम ॥१
एतदाख्यानमतुलं पुण्यं श्रुतिसुखावहम् ।
पुराणे यच्छ्रुतं तात तत्तं वक्ष्याम्यशेषत. ॥२
त्रेतायुगे महाभाग रावणो देवकण्टकः ।
त्रैलोक्यविजयी रौद्रः सुरासुरभयङ्करः ॥३
देवदानवगन्धर्वैः पिभिश्च तपोधनैः ।
अवध्योऽस्य विमानेन यावत्पर्यटतेमहीम् ॥४
तावद्विन्ध्यगिरेर्मध्येदानवोबलदर्पितः ।
मयोनामेतिविख्यातोगुहावासी तपश्चरन् ॥५
तस्य पार्श्वंगतो रक्षो विनयादवनिगतः ।
पूजितो दानसन्मानैरिदं वचनमब्रवीत् ॥६
कस्येयं पद्मपत्राक्षी पूर्णचन्द्रनिभानना ।
किंनामधेया तपति तप उग्रं कथं विभो ॥७

युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजोत्तम ! महादेव जल के मध्य मे उत्तर और दक्षिण कूल को वर्जित करके किस हेतु से स्थित रहा करते हैं ? श्रीमार्क-

ण्डेयजी ने कहा—यह आख्यान तो बहुत ही अनुपम है और परम पुण्य पूर्ण है तथा श्रवणों को सुख प्रदान करने वाला है। हे तात! पुराण में मैंने जो कुछ भी सुना है उस सबको मैं आपको बतलाता हूँ। हे महाभाग! त्रेतायुग में देवों के लिये कण्टक रावण हुआ था जो त्रिलोकी को पराजित कर विजय प्राप्त करने वाला, महान् रौद्र और सुर, असुर सबके लिये बहुत ही भयकर था। वह देवों, दानवों, गन्धर्वों, ऋषियों और तपोधनों के द्वारा वध करने के योग्य नहीं था। वह विमान के द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी पर पर्यटन किया करता था। जैसे ही वह पर्यटन कर रहा था वैसे ही विन्ध्य गिरि के मध्य में एक बल के दर्प वाला मय नाम वाला दानव था जो परम प्रसिद्ध था और गुफाओं में निवास करते हुए तपश्चर्या कर रहा था। उसके समीप में जाकर राक्षस ने विनय से अवनत होकर भूमि में अवस्थिति की थी। दान और सम्मानों के द्वारा उसकी पूजा की थी और अन्त में उसने मय से यह वचन कहा था—यह कमल दल के समान नेत्रों वाली तथा पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य मुख वाली यह क्या नाम वाली है, हे विभो! यह क्यों ऐसी उग्र तपश्चर्या कर रही है? ॥१-७॥

दानवाना पतिः श्रेष्ठो मयोऽहं नाम नामतः।
भार्या तेजोवती नाम तस्यास्तु तनया शुभा ॥८
मन्दोदरीतिविख्यातातपते भर्तृकारणात्।
आराधयन्तीभर्त्तारमुमयादयितंशुभम् ॥९॥१०
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य रावणोमदमोहितः।
प्रसृन प्रणतो भूत्वा मयम्वचनमब्रवीत्।
पौलस्त्यान्वयसञ्जातो देवदानवदर्पहा।
प्रार्थयामिमहाभागसुता त्वं दातुमर्हसि ॥११
ज्ञात्वार्पतामहं वृत्त मयेनाऽपि महात्मना।
रावणायमुनादत्ता पूजयित्वाविधानतः ॥१२
गृहीत्वा ता तदा रक्षोऽभ्यर्च्यमानो निशाचरैः।
देवोद्याने विमानैश्च क्रीडते न तया सह ॥१३

हूँ। उसी प्रकार से परम पुण्यमय एवं अमल जल के वहन करने वाली को देखकर फिर कल्प के परिक्षय में भी अम्बा की भाँति अनुकम्पा करती हुए क्षीणता रहित जल वाली विरजा मार्या को शोक रहित होकर देखता हूँ। जो द्विजेन्द्र इस प्रकार से इस महान् पुण्यतम महा वराह महेश्वर के कल्प को पढ़ते हैं और श्रवण करते हैं वे दिन—दिन में विमल हो जाया करते हैं। वे सैकड़ो और सहस्रों अशुभों का विनाश करके प्रसन्न हुए देवों से सेवित और सिद्ध तथा गन्धर्वों से समन्वित स्वर्ग के परम सुख का उपभोग किया करते हैं जो स्वच्छ चन्द्र के तुल्य प्रसं-रामों के साथ विविध प्रकार के विलासों से युक्त होता है ॥५७-६१॥

## ६३—मेघनादतीर्थमाहात्म्यवर्णनं

जलमध्ये महादेवः केनतिष्ठति हेतुना।
उत्तरं दक्षिणं कूलं वर्जयित्वा द्विजोत्तम ॥१
एतदाख्यानमतुलं पुण्यं श्रुतिसुखावहम्।
पुराणे यच्छ्रुतं तात तत्ते वक्ष्याम्यशेषतः ॥२
त्रेतायुगे महाभाग रावणो देवकण्टकः।
त्रैलोक्यविजयी रौद्रः सुरासुरभयङ्करः ॥३
देवदानवगन्धर्वैश्चं पिभिश्च तपोधनैः।
अवध्योऽस्य विमानेन यावत्पर्यटतेमहीम् ॥४
तावद्विन्ध्यगिरेर्मध्येदानवोबलदर्पितः।
मयोनामेतिविख्यातोगुहावासी तपश्चरन् ॥५
तस्य पार्श्वगतो रक्षो विनयादवनिगतः।
पूजितो दानसन्मानैरिदं वचनमब्रवीत् ॥६
कस्येयं पद्मपत्राक्षी पूर्णचन्द्रनिभानना।
किंनामधेया तपति तप उग्रं कथं विभो ॥७

युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजोत्तम ! महादेव जल के मध्य में उत्तर और दक्षिण कूल को वर्जित करके किस हेतु से स्थित रहा करते हैं ? श्रीमार्क-

ण्डेयजी ने कहा—यह आख्यान तो बहुत ही अनुपम है और परम पुण्य पूर्ण है तथा श्रवणों को सुख प्रदान करने वाला है। हे तात ! पुराण में मैंने जो कुछ भी सुना है उस सबको मैं आपको बतलाता हूँ। हे महाभाग ! त्रेतायुग में देवों के लिये कण्टक रावण हुआ था जो त्रिलोकी को पराजित कर विजय प्राप्त करने वाला, महान् रौद्र और सुर, असुर सबके लिये बहुत ही भयकर था। वह देवों, दानवों, गन्धर्वों, ऋषियों और तपोधनों के द्वारा वध करने के योग्य नहीं था। वह विमान के द्वारा सम्पूर्ण पृथ्वी पर पर्यटन किया करता था। जैसे ही यह पर्यटन कर रहा था वैसे ही विन्ध्य गिरि के मध्य में एक बल के दर्प वाला मय नाम वाला दानव था जो परम प्रसिद्ध था और गुफाओं में निवास करते हुए तपश्चर्या कर रहा था। उसके समीप में जाकर राक्षस ने विनय से अवनत होकर भूमि में अवस्थिति की थी। दान और सम्मानों के द्वारा उसकी पूजा की थी और अन्त में उसने मय से यह वचन कहा था—यह कमल दल के समान नेत्रों वाली तथा पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य मुख वाली यह क्या नाम वाली है, हे विभो ! यह क्यों ऐसी उग्र तपश्चर्या कर रही है ? ॥१-७॥

दानवाना पतिः श्रेष्ठो मयोऽहं नाम नामतः ।
भार्या तेजोवती नाम तस्यास्तु तनया शुभा ॥८
मन्दोदरीतिविख्यातातपते भर्तृकारणात् ।
आराधयन्तीभर्त्तारमुमयादयितंशुभम् ॥९।१०
तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य रावणोमदमोहितः ।
प्रसृतःप्रणतो भूत्वा मयम्वचनमब्रवीत् ।
पौलस्त्यान्वयसञ्जातो देवदानवदर्पहा ।
प्रार्थयामिमहाभागसुता त्वं दातुमर्हसि ॥११
ज्ञात्वार्पतामहं वृत्तं मयेनाऽपि महात्मना ।
रावणायसुतादत्ता पूजयित्वाविधानतः ॥१२
गृहीत्वा ता तदा रक्षोऽभ्यर्च्यमानो निशाचरैः ।
देवोद्याने विमानैश्च क्रीडते स तया सह ॥१३

केनचित्त्वथ कालेन रावणो लोकरावणः ।
पुत्रवतां श्रेष्ठो जनयामास भारत ।।१४

मय ने कहा—दानवों का परम श्रेष्ठ पति नाम से मय नाम वाला हूँ। मेरी भार्या तेजोवती नाम वाली है और उसकी यह शुभा पुत्री है। उसका नाम मन्दोदरी प्रसिद्ध है और यह अपने स्वामी की प्राप्ति के लिये ही तपस्या कर रही है। उमा देवी के परम शुभ स्वामी की आराधना करती हुई अपने भर्ता की कामना करती है। मद से मोहित रावण उसके इस वचन का श्रवण करके परम प्रहृत एवं प्रणत होकर मय से यह वचन बोला था—मैं पौलस्त्य वंश में समुत्पन्न हुआ हूँ और मैंने देवों तथा दानवों के दर्प का भली भाँति हनन किया है। हे महाभाग ! मैं यह प्रार्थना करता हूँ कि इस अपनी सुता को आप मुझे देने के योग्य हैं। महात्मा मय ने भी पितामह ( पुलस्त्य ) के वृत्त को समझकर उस मन्दोदरी अपनी पुत्री को विधि पूर्वक पूजकर रावण के लिये दे दिया था। उस समय में निशाचरों के द्वारा अभ्यर्च्य मान होता हुआ वह राक्षस रावण उस समय में उस मन्दोदरी को ग्रहण करके फिर देवोद्यान में विमानों के द्वारा उस मन्दोदरी के साथ क्रीड़ा किया करता था। हे भारत ! कुछ समय व्यतीत होते हुए उस लोकों को भयभीत करने वाले उस रावण ने जो पुत्रवालों में परम श्रेष्ठ था, पुत्र समुत्पन्न किया था ।।८-१४।।

तेनैवजातमात्रेणरावो मुक्तोमहात्मना ।
सम्वर्त्तकस्यमेघस्य तेन लोकाजडीकृताः ।।१५
श्रुत्वातन्नर्दितं घोरं ब्रह्मालोकपितामहः ।
नाम चक्रे तदा तस्य मेघनादोभविष्यति ।।१६
एवंनामा कृतसोऽपि परमं व्रतमास्थितः ।
सोपपापास देवेशमुमया सह शङ्करम् ।।१७
व्रतैर्न्नियमदानैश्च होमजाप्यविधानतः ।
कृच्छ्रचान्द्रायणैर्नित्यं कृशं कुर्वन्कलेवरम् ।।१८

एवमन्यद्दिने तात ! कैलासं धरणीधरम् ।
गत्वालिंगद्वयंगृह्यप्रस्थितोदक्षिणामुखः ॥१६
नर्मदातटमाश्रित्य स्नातुकामो महाबलः ।
निक्षिप्य पूजयन्देवं कृतजाप्यो नरेश्वर ! ॥२०
तत्रायतनवासेन स्नातो हुतहुताशनः ।
कृतकृत्यमिवात्मानं मानयित्वा निशाचरः ॥२१

महात्मा उस पुत्र ने समुत्पन्न होते ही एक परम भयानक राव अर्थात् ध्वनि की थी। वह राव सम्वर्त्तक मेघ का-सा था और उससे समस्त लोकों जडीभूत बना दिया था। उस परम घोर नदित को सुनकर लोकों के पितामह ब्रह्माजी ने उस समय में यह मेघनाद होगा—ऐसा नाम कर दिया था। इस प्रकार का नाम प्राप्त करने वाला वह भी परम व्रत में समास्थित हो गया था। उसने भी उमादेवी के सहित देवेश्वर शङ्कर को अपनी तपश्चर्या से तोषित कर दिया था। व्रत—नियम—दान—होम—जाप्य – और कृच्छ्र चान्द्रायणों के विधि विधान से करते हुए उसने अपने कलेवर को बहुत ही कृश कर दिया था। हे तात! इस प्रकार से अन्य दिन में धरणीधर कैलास पर जाकर लिंग द्वय को ग्रहण करके वह दक्षिण दिशा की ओर अभिमुख होकर प्रस्थान कर गया था। नर्मदा नदी के तट पर हे नरेश्वर! वह पहुँच कर महान् बलवान् स्नान करने की इच्छा वाला हो गया था। वहीं पर देव को स्थापित कर उनकी पूजा करता हुआ जाप करने लगा था। वहाँ पर [आयतन वास के द्वारा स्नान करने वाला तथा अग्नि में हवन करता हुआ वह निशाचर अपने आपको कृत कृत्य मानकर हे नृप श्रेष्ठ! वह लङ्का में परम मार्ग से गमन करने की इच्छा वाला हो गया था ॥१६-२१॥

गन्तुकामः परं मार्गं लंकाया नृपसत्तम ! ।
एकमुद्धरतो लिङ्गं प्रणतः सव्यप्राणिना ॥२२
द्वितीयं तु द्वितीयेन भक्त्या पौलस्त्यनन्दनः ।
तावदेव महालिङ्गं पतितं नर्मदाऽम्भसि ॥२३

याहियाहीति चेत्युक्त्वा जलमध्ये प्रतिष्ठितः।
नमित्वा रावणिस्तस्य देवस्य परमेष्ठिनः ॥२४
जगामाकाशमाविश्य पूज्यमानोनिशाचरैः।
तदाप्रभृतितत्तीर्थंमेघनादेतिविश्रुतम् ॥२५
पूर्वं तु गर्जनं नाम सर्वपापक्षयकरम्।
तस्मिंस्तीर्थे तु राजेन्द्र ! यस्तु स्नानं समाचरेत् ॥२६
अहोरात्रोपितोभूत्वाअश्वमेधफललभेत्।
पिण्डदानंतुयः कुर्यात्तस्मिंस्तीर्थे नराधिप ॥२७
यत्फलं सत्रयज्ञेन तद्भवेन्नाऽत्र संशयः।
तेन द्वादशवर्षाणि पितरः सम्प्रतर्पिताः ॥२८

वह पौलस्त्य नन्दन एक लिङ्ग को प्रणत होते हुए सव्यपाणि से उद्धृत कर रहा था और दूसरे को भक्ति पूर्वक दूसरे हाथ से उतार रहा था। उतने ही मे वह महालिङ्ग नर्मदा के जल मे गिर गया था। "जाओ —जाओ"—यह कहकर जल के मध्य में उसकी प्रतिष्ठा करदी था। रावण के पुत्र मेघनाद ने उस परमेष्ठी देव को प्रणाम करके फिर वह निशाचरों के द्वारा पूज्यमान होता हुआ आकाश मे प्रविष्ट होकर चला गया था तभी से लेकर यह तीर्थ 'मेघनाद तीर्थ'—इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था। पहिले तो गर्जन नाम था जो सब पापो के क्षय करने वाला था। हे राजेन्द्र ! उस तीर्थ मे जो कोई स्नान करता है और अहोरात्र उपोषित होता है वह अश्वमेध यज्ञ का पुण्य-फल प्राप्त किया करता है। हे नराधिप ! जा कोई उस तीर्थ मे पिण्ड दान किया करता है उसका फल सत्र यज्ञ के तुल्य होता है—इसमे लेशमात्र भी संशय नही है। इस के करने से पितृगण बारह वर्ष तक सन्तर्पित हो जाया करते है ॥२२-२८॥

यस्तु भोजयते विप्रं षड्रसाऽन्नेनभारत !।
अक्षयं पुण्यमाप्नोति तत्र तीर्थे नरोत्तम ॥२९
प्राणत्यागं तु यः कुर्याद्भावितो भावितात्मना।
स वसेच्छांकरे लोके यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३०

एषा ते नरशार्दूल ! गर्जनोत्पत्तिरुत्तमा ।
कथिता स्नेहबन्धेन सर्वपापक्षयंकरी ॥३१

हे भारत जो कोई वहाँ पर षट्रसों वाले अन्न से विप्र को भोजन कराता है हे नरोत्तम ! उस तीर्थ में वह अक्षय पुण्य प्राप्त किया करता है। भावित आत्मा के द्वारा भावित होते हुए जो वहाँ पर प्राणों का त्याग किया करता है वह मनुष्य जब तक समस्त भूतों का सम्प्लव होता है तब तक भगवान् शङ्कर के लोक में निवास किया करता है। हे नरशार्दूल ! यह इस गर्जनोत्पत्ति नामक तीर्थ की उत्तम उत्पत्ति आपको बतलादी है। मैंने स्नेह के बन्धन के कारण ही यह बतलादी है। यह सम्पूर्ण प्रकार के पापों का क्षय कर देने वाली है ॥२६-३१॥

---

## ६४—भीमेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णन

भीमेश्वरं ततो गच्छेत्सर्वपापक्षयकरम् ।
सेवितं ऋषिसंघैश्चभीमव्रतधरैः शुभैः ॥१
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा सोपवासो जितेन्द्रियः ।
जपेदेकाक्षरं मन्त्रमूर्ध्वबाहुर्दिवाकरे ॥२
तस्यजन्मार्जितं पापतत्क्षणादेव नश्यति ।
सप्तजन्मार्जितं पापगायत्र्यानश्यते ध्रुवम् ॥३
दशभिर्जन्मभिर्जातं शतेनतुपुराकृतम् ।
सहस्रेण त्रिजन्मोत्थं गायत्रीहन्तिकिल्बिषम् ॥४
वैदिकं लौकिकं वापिजाप्यं जप्तं नरेश्वर ।
तत्क्षणाद्दहते सर्वं तृणन्तुज्वलनायथा ॥५
न देवबलमाश्रित्य कदाचित्पापमाचरेत् ।
अज्ञानान्नश्यतेक्षिप्रं नोत्तरं तु कदाचन ॥६
तत्र तीर्थे तु यो दानं शक्तिमाश्रित्य चाचरेत् ।
तदक्षय्यफलं सर्वं जायते पाण्डुनन्दन ! ॥७

श्रीमार्कण्डेय महर्षि ने कहा—इसके अनन्तर भीम व्रतों के धारण करने वाले परम शुभ ऋषियों के संघों के द्वारा सेवित भीमेश्वर नाम

वाले तीर्थ पर गमन करना चाहिए जो समस्त पापो के क्षय करने वाला है। उस तीर्थ पर जो भी कोई स्नान करके अपनी इन्द्रियो पर नियन्त्रण रखते हुए उपवास करता है और सूर्य की ओर बाहुओं को ऊंचा उठाकर एकाक्षर मन्त्र का जाप किया करता है उस मनुष्य के पूर्व जन्मो में अर्जित किये हुए समस्त पाप उसी क्षण मे नष्ट हो जाते हैं। गायत्री के जाप से तो सात जन्मों के पापो का निश्चय ही विनाश हो जाया करता है। दश बार गायत्री का जाप करने से इसी जन्म मे जो पाप किये हैं उनका नाश होता है—सो बार जप करने से पूर्व मे किये हुए पापो का क्षय हुआ करता है और एक सहस्र बार जप करने से तीन जन्मो के किये हुए पापों का विनाश गायत्री कर दिया करती है। हे नरेश्वर! वैदिक अथवा लौकिक जाप्य का किया हुआ जप उसी क्षण मे तिनको के ढेर को अग्नि के समान समस्त पापो को नष्ट कर देता है। देव का बल प्राप्त करके कभी भी पाप का समाचरण नही करना चाहिए। जो पाप अज्ञान वश बन गया है वह तो तुरन्त ही नष्ट हो जाया करता है और ज्ञान पूर्वक जान बूझकर किया जाता है वह कभी नष्ट नही करता है। उस तीर्थ मे जो मनुष्य अपनी शक्ति क अनुसार दान करता है हे पाण्डु नन्दन! उस दान का भी अक्षय्य फल हुआ करता है जो कभी भी क्षय को प्राप्त नही हुआ करता है ॥१-७॥

---

## ६५—नरादेश्वरतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्रनारदेश्वरमुत्तमम्।
तीर्थाना परमं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु ॥१
नारदेन मुनिश्रेष्ठ कस्मात्तीर्थं विनिर्मितम्।
एतदाख्याहि मे सर्वंप्रसन्नोयदिसत्तम ! ॥२
परमेष्ठिसुतः पार्थ ! नारदो मुनिसत्तमः।
रेवायाश्चोत्तरे कुले त्वपस्तेन पुरा कृतम् ॥३
नवनाडीनिरोधेन काष्ठावस्था गतेन च।
तोषितः पशुभर्त्ता वै नारदेन युधिष्ठिर ! ॥४

तुष्टोऽहं तव विप्रेन्द्र ! योगिनाथ अयोनिज ! ।
वरं प्रार्थय मे वत्स यत्ते मनसिवर्त्तते ॥५
त्वत्प्रसादेन मे शम्भो योगश्चैव प्रसिध्यतु ।
अचलातेभवेद्भक्ति: सर्वकालं ममैव तु ॥६
स्वेच्छाचारी भवे देव वेदवेदाङ्गपारगः ।
त्रिकालज्ञोजगन्नाथगीतज्ञोऽहं सदा भवे ॥७

श्री महर्षि मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त परमोत्तम नारदेश्वर नामक तीर्थ पर गमन करना चाहिये। यह सभी अन्य तीर्थों में अति श्रेष्ठ तीर्थ है और इसको स्वयं देवर्षि श्री नारदजी ने ही बनाया था। युधिष्ठिर ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो हे सत्तम ! मुझे यह सभी बतलाइये कि नारदजी ने इस तीर्थ का निर्माण किस कारण से किया था। श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—उन परमेष्ठी ब्रह्माजी के पुत्र मुनियों में परम श्रेष्ठ नारदजी ने हे पार्थ ! रेवा नदी के उत्तर तीर पर पहिले तपस्या की थी। हे युधिष्ठिर ! नव नाड़ियों के निरोध करने से काष्ठावती में प्राप्त हुए श्री नारद ने पशुपति प्रभु को परम तोषित कर दिया था। श्री ईश्वर ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! आप तो योगियों के भी स्वामी हैं। हे अयोनिज ! मैं आपसे अत्यन्त प्रसन्न हो गया हूँ। हे वत्स ! अब जो भी कुछ आपके मन को सुहाता हो वही वरदान मुझसे प्राप्त कर लो। देवर्षि श्री नारद ने कहा—हे शम्भो ! आपके प्रसाद से मेरा योग प्रसिद्ध हो जावे और सर्वदा मेरे हृदय में आपके चरणों में अविचल भक्ति हो जावे। समस्त वेदों और वेदों के सम्पूर्ण अङ्ग शास्त्रों का पारगामी होकर मैं स्वेच्छया जहाँ भी चाहूँ वहीं भ्रमण करने वाला हो जाऊँ। त्रिकाल की बातों का ज्ञाता और सदा जगत के स्वामी का गुण गान करने वाला हो जाऊँ ॥१-७॥

दिनेदिने यथा युद्धं देवदानवमानुषं ।
पातालेमर्त्यलोके वा स्वर्गं वाऽपि महेश्वर ॥८
पश्येयं त्वत्प्रसादेन भवन्तं पार्वती तथा ।
तीर्थं लोकेषुविख्यातं सर्वपापक्षयंकरम् ॥९

एवं नारद ! सर्वं तु भविष्यति न संशयः ।
चिन्तितं मत्प्रसादेनसिद्धिर्यतेनात्रसंशयः ॥१०
स्वेच्छाचारो भवेर्वत्स स्वर्गे पातालगोचरे ।
मर्त्ये वा भ्रम वै योगिन्न केनाऽपि निवार्यसे ॥११
सप्त स्वरास्त्रयो ग्रामा मूर्च्छनाश्चैकविंशतिः ।
ताना एकोनपञ्चाशत्प्रसादान्मे तव ध्रुवम् ॥१२
मम प्रियंकरं दिव्यं नृत्यगीतं भविष्यति ।
कलिं च पश्यसेनित्यं देवदानवकिन्नरैः ॥१३
त्वत्तीर्थं भूतले पुण्यं मत्प्रसादाद्भविष्यति ।
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो ह्यशेषज्ञानकोविदः ।
एकस्त्वमसि निःसङ्गो मत्प्रसादेन नारद ॥१४

हे महेश्वर ! पाताल मे—स्वर्ग मे और मनुष्य लोक मे जो आये दिन देवो के, दानवो के और मनुष्यो के युद्ध हो वे सब मैं आपके प्रसाद से देख लिया करूँ तथा सदा आपको और जगदम्बा पार्वती का भी दर्शन प्राप्त किया करूँ । यह लोको मे अति विख्यात तीर्थ हो जावे जो सभी पापों का क्षय करने वाला बन जावे । श्री ईश्वर ने कहा—हे नारद ! इसी प्रकार से मेरे प्रसाद से यह आपके द्वारा सोचा हुआ सभी कुछ हो जायगा—इसमे कुछ भी संशय नही है । यह सभी सिद्ध होगा—इसमे संशय का कोई भी अवसर नही आयेगा । हे वत्स ! आप स्वेच्छा से समाचरण करने वाले हो जाओगे चाहे जहा भी स्वर्ग-पाताल और गोचर स्थल एवं मनुष्य लोक मे भ्रमण करो । हे योगिन् ! आपका निवारण किसी के भी द्वारा नही किया जायगा । षड्ज आदि सातो स्वर—तीनो ग्राम—इक्कीस मूर्च्छनाए और उनचास तान ये सभी मेरे प्रसाद से आपको ज्ञात हो जायेंगे—यह परम निश्चित है ॥८-१२॥ आपका नृत्य और गीत मेरी दिव्य प्रीति के करने वाला होगा । देव दानवो तथा किन्नरो के द्वारा होने वाले कलह को आप नित्य ही देखा करेंगे । यह आपके नाम से प्रसिद्ध तीर्थ भी मेरी कृपा से परम विख्यात बन जायगा । हे नारद ! आप वेदों और वेदागो के तत्वो के ज्ञाता तथा अशेष ज्ञान के

महा मनीषी ज्ञाता हो जायेंगे। आप एक ही सङ्ग रहित होकर मेरे प्रसाद से विचरण करने वाले होवेंगे ॥१३-१४॥

इत्युक्त्वान्तर्दधे देवो नारदस्तत्र शूलिनम्।
स्थापयामास राजेन्द्र सर्वसत्त्वोपकारकम् ॥१५
पृथिव्यामुत्तमं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु।
तत्र तीर्थे नृपश्रेष्ठ यो गच्छेद्विजितेन्द्रियः ॥१६
मासि भाद्रपदे पार्थ ! कृष्णपक्षे चतुर्दशी।
उपोष्य परया भक्त्या रात्रौ कुर्वीत जागरम् ॥१७
छत्रं तत्र प्रदातव्यं ब्राह्मणे शुभलक्षणे।
शस्त्रेणतु हता येवै तेषां श्राद्धं प्रदापयेत्।
ते यान्ति परमं लोकं पिण्डदानप्रभावतः ॥१८
कपिलातप्रदातव्यापितॄनुदिश्यभारत।
इत्युच्चार्यंद्विजेदेव्यायान्तु ते परमांगतिम् ॥१९
अस्य श्राद्धस्य भावेन ब्राह्मणस्यप्रसादतः।
नर्मदातोयभावेनन्यायार्जितधनस्यच।
तेषां चैव प्रभावेण प्रेता यान्तु परां गतिम् ॥२०
इत्युच्चार्य द्विजे देया दक्षिणा च स्वशक्तितः।
हविष्यान्नं विशालाक्ष ! द्विजानां चैव दापयेत् ॥२१

देवेश्वर भगवान् शम्भु इतना कहकर वहीं पर अन्तर्हित हो गये थे और वहाँ पर फिर देवर्षि श्री नारदजी ने इस धरातल में यह परम उत्तम तीर्थ निर्मित किया था। हे नृप श्रेष्ठ ! उस तीर्थ में जो भी कोई गमन किया करता है और इन्द्रियों को जीत लेने वाला होता है। हे पार्थ ! इस उत्तम तीर्थ में गमन करने का श्रेष्ठ समय भाद्रपद मास होता है। भाद्रपद में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि में वहाँ पहुँचकर उपवास करे और परम उत्कृष्ट भक्ति की भावना से रात्रि में जागरण करना चाहिए। किसी शुभ लक्षणों से युक्त ब्राह्मण को छत्र का दान करे। जो कोई भी शस्त्रों के द्वारा निहित हुए हो उनके लिए वहाँ पर श्राद्ध देना चाहिये। वहाँ पर पिण्डदान करने का ऐसा प्रभाव होता है कि वे सब परमोत्तम लोक

को चले जाया करते हैं। हे भारत ! वहाँ पर अपने पितरों का उद्देश्य लेकर कपिला गौ का दान करना चाहिये। उस समय मेरा सा उच्चारण भी करे कि मेरे पितृगण इस कपिला के दान के प्रभाव से परम गति को प्राप्त होवें। इस श्राद्ध के प्रभाव से—ब्राह्मण की कृपा से—नर्मदा के जल के भाव से न्याय से उपार्जित धन से किया हुआ दान-पुण्य और उनके प्रभाव से सभी प्रेत परम गति को प्राप्त करें—ऐसा उच्चारण करके अपनी शक्ति अनुसार द्विज को दक्षिणा देनी चाहिये। हे विशालाक्ष ! द्विजों को हविष्यान्न देना चाहिए ॥१५-२१॥

दीपं भक्त्या प्रदातव्यं नृत्यं गीतं च कारयेत् ।
अवाप्तं तेन वै सर्व्वं यः करोतीश्वरालये ॥२२
स याति रुद्रसान्निध्यमिति रुद्रः स्वयं जगौ ।
विद्यादानेन चैकेन अक्षयां गतिमाप्नुयात् ॥२३
धूर्वहास्तत्रदातव्याभूमिः सस्यवती नृप ।
चित्रभानुं शुभैर्मन्त्रैःप्रीणयेत्तत्रभक्तितः ॥२४
भव्येन सुप्रभूतेन होमद्रव्येणभारत ।
ये यजन्ति सदा भक्त्या त्रिकालं नृत्यमेव च ॥२५
तीर्थे नारदनामाख्ये रेवायाश्चोत्तरे तटे ।
चित्रभानुमुखादेवाः सर्वदेवमयो ऋषिः ॥२६
ऋषिणा प्रीणिताः सर्वे तस्मात्प्रीत्येहुताशनः ।
पूजितो हव्यवाहे तु दारिद्रं च नैव जायते ॥२७
धनेन विपुला प्रीतिर्जायते प्रतिजन्मनि ।
कुलीनाश्च सुवेषाश्च सर्वकालं धनेन तु ॥२८

परम भक्ति की भावना से दीप दान करे, नृत्य और गान भी करना चाहिए। उस ईश्वर के आलय में जो भी कोई ऐसा करता है उसने सभी कुछ प्राप्त कर लिया है। वह अन्त समय में भगवान् रुद्र को सन्निधि प्राप्त किया करता है, ऐसा भगवान् रुद्र ने स्वयं कहा था। एक विद्या के दान से मनुष्य अक्षय गति को प्राप्त किया करता है। हे नृप ! वहाँ पर सस्यवती धूर्वहा भूमि का दान करना चाहिये। वहाँ पर भक्ति के भाव से

शुभ मन्त्रों के द्वारा चित्रभानु को प्रसन्न करना चाहिए। धन से, प्रभूत होम के द्रव्य के द्वारा हे भारत! जो लोग सदा यजन किया करते हैं और त्रिकाल मे नृत्य करते हैं। रेवा नदी के उत्तर तट पर नारद नाम वाले तीर्थ मे चित्रभानु जिनमें प्रधान हैं ऐसे सब देवता हैं और सर्व देवो से परिपूर्ण ऋषि हैं। ऋषि के द्वारा समस्त देवों को प्रसन्न किया गया था। इससे हुताशन को अर्थात् अग्नि देव को प्रसन्न करना चाहिये। हव्य वाह के (अग्नि के) पूजित करने पर मनुष्य को दरिद्रता कभी नहीं हुआ करती है। धन से प्रति जन्म मे बहुत अधिक प्रीति हुआ करती है। धन से कुलीन और सभी कालो में सुन्दर वेषो वाले होते हैं ॥२७-२८॥

प्लवो नदीना पतिरङ्गनाना राजा च सद्वृत्तरतः प्रजानाम्।
धनं नराणामृतवस्तरूणा गतं गतं यौवनमानयन्ति ॥२९
धनदत्वं धनेशेन तस्मिंस्तीर्थे ह्युपार्जितम्।
यमेनच यमत्वं हि इन्द्रत्वं चैववज्रिणा ॥३०
अन्यैरपि महीपालैः पार्थिवत्वमुपार्जितम्।
नारदेश्वरमहात्म्याद्ध्रुवो निश्चलता गतः ॥३१
सर्वतीर्थवरं तीर्थं निर्मितं नारदेन तु।
पृथिव्या सागरान्ताया रेवायाश्चोत्तरे तटे।
तद्वरं सर्वतीर्थाना महापातकनाशनम् ॥३२

नदियों का प्लव—अगनाओं का पति, प्रजाओं का सद्वृत्त में रमण करने वाला राजा—मनुष्यों का धन तरुओ की ऋतुऐं गत-गत यौवन को प्राप्त किया करते हैं। धनेश कुबेर ने धन दत्व का पद उसी तीर्थ मे उपार्जित किया था—यमराज ने यमत्व होने का पद तथा वज्री ने इन्द्रत्व का यह तथा अन्य महीपालो ने भी पार्थिव होने का पद उपार्जित किया था। नारदेश्वर प्रभु के माहात्म्य ही से ध्रुव निश्चल पद को प्राप्त हुआ था इस प्रकार से देवर्षि श्री नारदजी ने यह तीर्थ समस्त अन्य तीर्थों मे परम श्रेष्ठ निर्मित किया है। इस सागरो का समाप्ति वाली पृथिवी में रेवा नदी के उत्तर दिशा वाले तट पर इस तीर्थ की प्रतिष्ठा हुई है जो

सब तीर्थों मे श्रेष्ठतम है और सभी महापातकों के भी विनाश करने वाला है ॥२६-३२॥

## ६६—दधिस्कन्धमधुस्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र ! तीर्थं द्वयमनुत्तमम् ।
दधिस्कन्दं मधुस्कन्दं सर्वपापक्षयंकरम् ॥१
दधिस्कन्दे नरः स्नात्वा यस्तु दद्याद् द्विजे दधि ।
उपतिष्ठे ततस्तस्य सप्तजन्मनि भारत ! ॥२
न व्याधिर्न जरा तस्य च शोको नैव मत्सरः ।३
मधु स्कन्देऽपि मधुना मिश्रितान्यस्तिलान्ददेत् ॥४
मधुनासह सम्मिश्र पिण्डं यस्तुप्रदापयेत् ।
तस्यपौत्रप्रपौत्रेम्योदारिद्र्यंनैवजायते ॥५
दधिभिः सहसंमिश्रं पिण्डं यस्तु प्रदापयेत् ।
तस्मिस्तीर्थे नरः स्नात्वा विधिवद्दक्षिणामुखः ॥६
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामह. ।
द्वादशाब्दानि तृप्यन्ति नाऽत्र कार्या विचारणा ॥७

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके अनन्तर दधिस्कन्द और मधुस्कन्द नामक तीर्थद्वय को गमन करे । यह दोनों तीर्थ सभी पापों का क्षय करने वाले हैं । प्रथम मनुष्य दधि स्कन्द में स्नान करे, ब्राह्मणों को दही का दान दे । उस जगह उपतिष्ठ रहने पर हे भारत ! सात जन्मो तक कोई व्याधि, वृद्धावस्था, शोक एवं मत्सर की व्याप्ति नहीं होती ॥१-३॥ फिर मधुस्कन्द में मधु मे तिल मिलाकर दान दान दे । तथा मधु से मिश्रित पिंड प्रदान करे तो उसके पौत्र-प्रपौत्र भी दरिद्री नहीं होते । यदि दही मिलाकर पिण्ड दे और स्नान कर विधिवत् दक्षिणा दे तो उसके पिता, पितामह और प्रपितामह आदि बारह वर्ष तक तृप्त रहते हैं इसमें विचार करने की कोई बात नहीं है ॥४-७॥

## ८७—सुवर्णशिलातीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततोगच्छेन्महीपाल सौवर्णं शिलमुत्तमम् ।
प्रख्यातमुत्तरे कूले सर्वपापक्षयंकरम् ॥१
समन्ताच्छतपातेन मुनिसंघैः पुराकृतम् ।
रेवायां दुर्लभंस्थानं सङ्गमस्यसमीपतः ॥२
विभक्तं हस्तमात्रं च पुण्यक्षेत्रं नराधिप ।
सुवर्णशिलकेस्नात्वापूजयित्वा महेश्वरम् ॥३
नत्वा तु भास्करं देवं होतव्यं च हुताशने ।
बिल्वेनाऽऽज्यविमिश्रेण बिल्वपत्रैरणाऽपिवा ॥४
प्रीयतां मे जगन्नाथो व्याधिर्नश्यतु मे ध्रुवम् ।
द्विजाय काञ्चने दत्ते यत्फलं तच्छृणुष्व मे ॥५
बहुस्वर्णस्य यत्प्रोक्तं यागस्यफलमुत्तमम् ।
तथाऽप्नोलभतेसर्वं काञ्चनं यःप्रयच्छति ॥६
तेन दानेनपूतात्मा मृतः स्वर्गमवाप्नुयात् ।
रुद्रस्तानुचरस्तावद्यावदिन्द्राश्चत् र्दश ॥७
ततः स्वर्गादवतीर्णस्तु जायते विशदे कुले ।
धनधान्यसमोपेतः पुनः स्मरति तज्जलम् ॥८

श्री मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे महीपाल ! इसके उपरान्त अति उत्तम सौवर्णशिल नाम वाले तीर्थ में गमन करना चाहिये जो उत्तर कूल में प्रख्यात है और सब पापों के क्षय करने वाला है। मुनियों के संघ ने पहिले चारों ओर शत पात के द्वारा किया था। रेवा नदी में यह परम दुर्लभ स्थान है जो कि संगम के समीप मे है। हे नराधिप ! एक हाथ परिमाण वाला पुण्य क्षेत्र विभक्त है। इस सुवर्ण शिल नामक तीर्थ में स्नान करके और महेश्वर प्रभु का अभ्यर्चन करके, भास्कर देव को नमन करके हुताशन में हवन करना चाहिए। होम घृत से मिश्रित बिल्व पत्रों से अथवा केवल बिल्व पत्रों मे ही करे ॥१-४॥ यह कहना चाहिये-जगन्नाथ प्रभु मुझ पर प्रसन्न होवें और मेरी व्याधि निश्चित

रूप से नष्ट हो जावे। द्विज के लिये सुवर्ण के दान करने पर जो फल होता है उस फल का मुझसे श्रवण करो ॥५॥ बहुत स्वर्ण वाले याग को जो उत्तम फल कहा गया है उसी भाँति यह प्राप्त किया करता है जो सम्पूर्ण काञ्चन दिया करता है। उस दान से पवित्र आत्मा वाला मृत होकर स्वर्ग की प्राप्ति किया करता है। वह उस समय तक भगवान रुद्र का अनुचर रहा करता है जब तक चौदह इन्द्र अपना कार्य सम्पादन किया करते हैं अर्थात् चौदह इन्द्र परिवर्त्तित हुआ करते हैं। फिर वह अवधि पुण्य फल की समाप्त हो जाने पर स्वर्ग से अवतीर्ण होकर यहाँ लोक में किसी परम उत्तम कुल में वह समुत्पन्न हुआ करता है। धन और धान्य से समन्वित हुआ वह पुनः उस जल का स्मरण किया करता है ॥६-८॥

---

## ९८—करञ्जतीर्थमाहात्म्यवर्णन

करञ्जाख्ये ततो गच्छेत्सोपवासो जितेन्द्रियः।
तत्र स्नात्वा तु राजेन्द्र ! सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१
अर्चयित्वामहादेवं दत्त्वादानं तु भक्तितः।
सुवर्णं रजतं वाऽपि मणिमौक्तिकविद्रुमान् ॥२
पादुकोपानहौ छत्रं शय्यां प्रावरणानि च।
कोटि कोटिगुणं सर्वं जायतेनात्रसंशयः ॥३

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! फिर करञ्ज संज्ञक तीर्थ में उपवासपूर्वक जाकर स्नान करे तो सभी पापों से मुक्त हो जाता है। वहाँ भगवान महादेवजी का पूजन करके भक्ति सहित स्वर्ण, चाँदी, मणि, मुक्ता आदि का दान दे और पादुका, जूते, छत्री, शय्या आदि वस्तुएं प्रवर पुरुषों को दे तो यह सभी वस्तुयें करोड़ों गुनी होकर प्राप्त होती हैं, इसमें संशय नहीं है ॥१-३॥

---

## ९९—कामदतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेन्महीपाल तीर्थं परमशोभनम्।
सौभाग्यकरणं दिव्यं नरनारीमनोरमम् ॥१

तत्रयादुर्भगानारीनरोवा नृपसत्तम ।
स्नात्वाऽर्च्चयेदुमारुद्रौसौभाग्यं तस्यजायते ॥२
तृतीयायामहोरात्र सोपवासोजितेन्द्रियः ।
निमन्त्रयेद् द्विजं भक्त्या सपत्नीकं सुरूपिणम् ॥३
गन्धमाल्यैरलङ्कृत्य वस्त्रधूपादिवासितम् ।
भोजयेत्पायसान्नेन कृसरेणाथ भक्तितः ॥४
भोजयित्वाथदान्यायं प्रदक्षिणमुदाहरेत् ।
प्रीयतां मे महादेवः सपत्नीकोवृषध्वजः ॥५
यथा ते देवदेवेश ! न वियोगः कदाचन ।
ममाऽपि करुणां कृत्वा तथाऽस्त्विति विचिन्तयेत् ॥६
एवं कृते ततस्तस्य यत्पुण्यं समुदाहृतम् ।
तत्सर्वं प्रवक्ष्यामि यथाऽदेवेनभाषितम् ॥७

हे महीपाल ! इसके अनन्तर परम शोभा सम्पन्न कामद तीर्थ पर गमन करना चाहिये जो अति 'दम्य सौभाग्य का करने वाला और नरों तथा नारियों के लिए बहुत ही मनोरम है । हे नृप सत्तम ! वहाँ पर उस तीर्थ में चाहे नर हो या दुर्भगा नारी हो स्नान करके उमा देवी और रुद्रदेव का अभ्यर्चन किया करता है उसका परमोत्तम सौभाग्य समुत्पन्न हो जाया करता है । तृतीया तिथि में एक पूरे अहोरात्र उपवास करके इन्द्रिय जीत रहे और भक्ति के भाव से सुन्दर रूप सम्पन्न पत्नी के सहित एक द्विज को निमन्त्रित करे । उस दम्पती को गन्ध माला आदि से समलंकृत करके वस्त्र धूपादि से सुवासित करे और पायसान्न से अथवा कृसर से भक्ति के साथ भोजन करावे । भोजन कराकर न्यायानुसार उस दम्पती की प्रदक्षिणा करनी चाहिये और प्रार्थना करे—पत्नी के सहित वृषध्वज भगवान् महादेव मुझ पर प्रसन्न होवें । हे देव देवेश ! मेरे ऊपर परम करुणा करते हुए ऐसा ही कीजिये कि जिससे हम दोनों का कभी भी वियोग न होवे । ऐसा ही होवे—ऐसा चिन्तन करना चाहिए । ऐसा करने पर जो उसका पुण्य फल होता है वह मैं सभी आपको बतलाता हूँ जो कि देवेश्वर ने स्वयं अपने मुख से कहा था ॥१-७॥

दौर्भाग्यं दुर्गतिश्चैव दारिद्रयं शोकबन्धनम् ।
वन्ध्यत्वं सप्तजन्मानि जायते न युधिष्ठिर ! ॥८
ज्येष्ठमासे सिते पक्षे तृतीयायां विशेषतः ।
तत्र गत्वा यो भक्त्या पञ्चाग्निं साधयेत्ततः ॥९
सोऽपि पापैरशेषैस्तु मुच्यते नाऽत्र संशयः ।
गुग्गुलं दहते यस्तु द्विधाचित्तविवर्जितः ॥१०
शरीरं भेदयेद्यस्तु गौर्याश्चैव समीपतः ।
तस्मिन्कर्म प्रविष्टस्य उत्क्रान्तिर्जायते यदि ॥११
देहपाते व्रजेत्स्वर्गमित्येवं शङ्करोऽब्रवीत् ।
सितरक्तैस्तथा पीतैर्वस्त्रैश्च विविधैः शुभैः ॥१२
ब्राह्मणीं ब्राह्मणं चैव पूजयित्वा यथाविधि ।
पुष्पैर्नानाविधैश्चैव गन्धपुष्प- सुशोभनैः ॥१३
कण्ठसूत्रकसिन्दूरैः कुंकुमेन विलेपयेत् ।
कल्पयेत स्त्रियं गौरीं ब्राह्मणं शिवरूपिणम् ॥१४

हे युधिष्ठिर ! उस मनुष्य को सात जन्मों तक दौर्भाग्य—दुर्गति—दरिद्रता—शोक बन्धन—बन्ध्यात्व दोष आदि नहीं हुआ करते हैं । ज्येष्ठ मास में—शुक्ल पक्ष में विशेष करके तृतीया तिथि में वहाँ पर जाकर जो भी कोई भक्ति की भावना से प्रञ्चाग्नियों का साधन किया करता है वह समस्त पापों से मुक्त हो जाया करता है—इसमें लेश मात्र भी संशय नहीं है । जो दुविधा युक्त चित्त से रहित होकर गुग्गल का होम किया करता है और जो गौरी के समीप में शरीर का भेदन किया करता है उसमें कर्म में प्रविष्ट हुए की यदि उत्क्रान्ति होती है तो वह उस देह के पात हो जाने पर स्वर्ग में गमन किया करता है—इस प्रकार से यह भगवान् शङ्कर ने कहा था । सफेद—लाल और पीले अनेक प्रकार के परम शुभ वस्त्रों से ब्राह्मण और ब्राह्मणी का विधि के अनुसार पूजन करके उनको अनेक प्रकार के सुन्दर सुगन्धित पुष्पों से समलङ्कृत कर कण्ठ सूत्र धारण करावे और सिन्दूर एवं कुंकुम से विलेपन करे । उस ब्राह्मणी को साक्षात् गौरी

तथा ब्राह्मण को साक्षात् शिव स्वरूप मनमे कल्पना करके ही अभ्यर्चन करना चाहिए ।।८-१४।।

तेषां तद्रूपकं कृत्वा दानमुत्सृज्यते ततः ।
कंकणं कर्णवेष्टं च कण्ठिकामुद्रिकातथा ।।१५
सप्तधान्यं तथा चैव भोजनं नृपसत्तम ! ।
अन्यान्यपि च दानानि तस्मिंस्तीर्थे ददाति यः ।।१६
सर्वदानैश्च यत्पुण्यं प्राप्नुयान्नात्रसंशयः ।
सहस्रगुणितं सर्वं नात्र कार्या विचारणा ।।१७
शङ्करेण समं तस्माद्भोगं भुङ्क्ते ह्यनुत्तमम् ।
सौभाग्यं तस्य विपुलं जायते नाऽत्र संशयः ।।१८
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् ।
राजेन्द्र ! कामदं तीर्थं नर्मदाया व्यवस्थितम् ।।१९

उन दोनो ( ब्राह्मण-ब्राह्मणी ) का ऐसा रूपक करके फिर दान का उत्सृजन करना चाहिए । कंकण,कर्णवेष्ट, कण्ठिका,भद्रिका, सात प्रकार के धान्य और हे नृप सत्तम ! भोजन-इनका दान करे। इनके अतिरिक्त अन्य भी जो दान उस महातीर्थ मे देता है वह समस्त प्रकार के दानो से जो पुण्य—फल होना है उसे प्राप्त कर लेता है—इसमे तनिक भी संशय नही है ।।१५-१६।। यहाँ पर दिया हुआ दान सहस्र गुना हो जाया करता है-इसमे कुछ भी विचार नही करना चाहिए ।।१७।। इससे वह भगवान् शङ्कर के ही साथ मे पूर्वोत्तम भोगो का उपभोग किया करता है । उसका महान् सौभाग्य होता है-इसमे भी कुछ संशय नहीं है । जिस मनुष्य के पुत्र नही है वह पुत्र होने की प्राप्ति कर लिया करता है । जो निर्धन पुरुष हो वह विपुल धन का लाभ लिया करता है । हे राजेन्द्र ! इस तीर्थ का नाम 'कामद' है अर्थात् सभी कामनाओ को पूर्ण करने वाला है और यह तीर्थ नर्मदा मे व्यवस्थित है ।।१८-१९।।

---

## १०० —भण्डारीतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत राजेन्द्र ! भण्डारीतीर्थ मुत्तमम् ।
दरिद्रच्छेदकरणं युगान्येकोनविंशतिः ॥१
धनदेनतपस्तस्तप्त्वा प्रसन्ने पद्मसम्भवे ।
तत्रैव स्वल्पदानेन प्राप्तं वित्तस्यरक्षणम् ॥२
तत्र गत्वा तु यो भक्त्या स्नात्वा वित्तं प्रयच्छति ।
तस्य वित्तपरिच्छेदो न कदाचिद्भविष्यति ॥३

श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके उपरान्त श्रेष्ठ भण्डारी तीर्थ मे गमन करे । यह तीर्थ इक्कीस युगों तक की दरिद्रता का उच्छेद करने वाला है । वहाँ कुबेर का तप करता हुआ पद्मसंभव ब्रह्माजी को प्रसन्न करे तो थोड़ा-सा दिया हुआ दान ही धन की रक्षा प्राप्त कराने वाला होता है । वहाँ जाकर भक्ति पूर्वक स्नान और धन-दान करे तो भविष्य मे कभी भी उसका धन से विच्छेद नही होता अर्थात् वह कभी रंक नही हो पाता ॥१-३॥

---

## १०१—स्कन्दतीर्थमाहात्म्यवर्णन

नर्मदादक्षिणेकूले तीर्थं परमशोभनम् ।
स्कन्देन निर्मितं पूर्वं तपः कृत्वासुदारुणम् ॥१
स्कन्दस्यचरितं सर्वमाजन्मद्विजसत्तम ।
तीर्थस्यचविधिपुण्यं कथयस्वयथार्थतः ॥२
देवदेवेन वै तप्तं तपः पुत्रं युधिष्ठिर ।
विज्ञप्तेनसुरैः सर्वैरुमादेवी विवाहिता ॥३
नास्ति सेनापतिः कश्चिद्देवानां सुरसत्तम ! ।
नीयन्ते दानवैर्घोरैः सर्वे देवाः सवासवाः ॥४
यथा निशा विना चन्द्रं दिवसो भास्करं विना ।
न शोभते मुहूर्तं वै तथा सेना विनायका ॥५

एवं ज्ञात्वा महादेव परया दययाविभो।
सेनानीर्दीयतांकश्चित्त्रिपुलांकेपुविश्रुतः ॥६
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं देवानां परमेश्वरः।
कामयान उमा देवी सस्मार मनसा स्मरम् ॥७

महामहर्षि श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—नर्मदा महानदी के दक्षिण तट पर एक अत्यन्त शोभा से सम्पन्न तीर्थ है जिसको पहिले परम दारुण तपस्या करके भगवान् स्कन्द ने निर्मित किया था। युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजो में परम श्रेष्ठ ! भगवान् स्कन्द का जन्म से लेकर पूरा चरित और उस तीर्थ की विधि तथा पुण्य-फल यह सभी कुछ यथार्थ रूप से कहिए। श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—हे युधिष्ठिर ! पहिले देवों के भी देव ने अतिघोर तप का यहाँ पर तपन किया था और समस्त सुरगणों के द्वारा प्रार्थना किये जाने पर उन्होंने उमादेवी के साथ विवाह कर लिया था। देवों ने उन देवेश्वर की प्रार्थना की थी कि हे सुरों में परम श्रेष्ठ ! इस समय में देवगणों में कोई भी सेना का स्वामी नहीं है। परम घोर दानवों के द्वारा इन्द्र के सहित सब देवगण पकड़कर ले जाये जाते हैं। जिस प्रकार से रात्रि चन्द्रमा के बिना शोभित नहीं होती है और दिन भगवान् भास्कर के बिना शोभा हीन रहता है और थोड़ी देर तक भी शोभा नहीं दिया करते हैं उसी तरह से बिना किसी नायक के सेना होती है। इस तरह से समझकर हे महादेव ! हे विभो ! परम दया करके आप कोई लोकों में परम प्रसिद्ध सेनानी हमको प्रदान कीजिए। देवों के इस वचन का श्रवण करके परमेश्वर ने उमादेवी की कामना करते हुए मन से कामदेव का स्मरण किया था ॥१-७॥

तेन मूच्छितसर्वाङ्गः कामरूपो जगद्गुरुः।
कामयामास रुद्राणी दिव्यं वर्षशतं किल ॥८
देवराजस्ततो ज्ञात्वा महामैथुनगं हरम्।
सम्मन्त्र्य दैवतैः सार्धं प्रेषयज्जातवेदसम् ॥९
तेन गत्वा महादेव ! परमानन्दसंस्थितः।
सहसा तेन दृष्टोऽसौ हाहेत्युक्त्वा समुत्थितः ॥१०

ततः क्रुद्धा महादेवी शापवाचमुवाच ह ।
वेपमाना महाराज श्रृणुयत्तोवदाम्यहम् ॥११
अहं यस्मात्सुरैः सर्वैर्याचितापुत्रजन्मनि ।
कृतारतिश्चविफलाश्सम्प्रेष्यजातवेदसम् ॥१२
तस्मात्सर्वे पुत्रहीनाभविष्यन्तिन संशयः ।
हरेणोक्तस्ततोवह्निरस्माकंबीजमावह ॥१३
यथा भवति लोकेषु तथा त्वं कर्तुमर्हसि ।
मम तेजस्त्वया शक्यं गृहीतुं सुरसत्तम ।
देवकार्यार्थ सिद्धयर्थं नान्य. शक्तो जगत्त्रये ॥१४

उससे सर्वांगो मे मूच्छित होने वाले कामरूप जगद्गुरु ने दिव्य सौ वर्ष तक रुद्राणी की कामना की थी इसके अनन्तर देवराज ने यह जान कर कि इस समय मे भगवान् हर महा मैथुन मे प्रवृत्त हो रहे हैं। देवराज ने देवगणो के साथ मन्त्रणा करके जातवेदा ( अग्नि ) को वहाँ पर भेज दिया था। उसने वहाँ जाकर कहा—हे महादेव! इस समय मे आप तो आनन्द मे सस्थित हो रहे हैं। सहसा महादेवजी ने उस अग्नि को देखा तो, "हा-हा"—यह कहकर वे रतिक्रिया छोड़कर उठ खड़े हुए थे। इसके पश्चात् महादेवी अत्यन्त क्रुद्ध हो गई थी और उन्होने शाप दे दिया था। कांपते हुए महादेवी ने कहा—हे महाराज ! आप श्रवण कीजिए मै आप से कहती हूँ क्यो कि मुझसे समस्त सुरो ने याचना की थी कि मैं पुत्र को जन्म दू । अब इस जातवेदा को प्रेषित करके मेरी रति विफल करदी है। इसलिये ये सब देवगण पुत्र हीन हो जायगे—इसमे कुछ भी सशय नही है। इसके पश्चात् भगवान् हर ने अग्नि से कहा—हमारे बीज को धारण करो। जैसा लोको मे होता है वैसा ही तुम करने के योग्य होते हो। यह मेरा तेज है सुरसत्तम ! तुम ही ग्रहण कर सकने हो और देवो के कार्य की सिद्धि भी हो सकेगी। तुम्हारे अतिरिक्त अन्य इन तीनो लोको मे कोई भी समर्थ नही है ॥८-१४॥

तेजस्त्वव मे देवकाशक्तिर्धारणेविभो ।
करोतिभस्मसात्सर्वं त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥१५

*उदरस्थेन बीजेन यदि ते जायते रुजा ।*
तदा क्षिपस्व तत्तेजो गङ्गातोये हुताशन ।।१६
एवमुक्त्वा महादेवो अमोघं बीजमुत्तमम् ।
हव्यवाहमुखे सर्वं प्रक्षिप्यान्तरधीयत ।।१७
गते चादर्शनं देवे दह्यमानो हुताशनः ।
गङ्गातोये विनिक्षिप्य जगामस्वं निवेशनम् ।।१८
असहन्ती तु तत्तेजो गंगाऽपि सरिताम्वरा ।
शरस्तम्बे विनिक्षिप्य जगामाऽऽशु यथागतम् ।।१९
तत्र जातं तु तद् दृष्ट्वा सर्वे देवाः सवासवाः ।
कृत्तिका प्रेषयामासुः स्तन्यं पाययितुं तत्र ।।२०
दृष्ट्वा ता आगताः सर्वा गङ्गागर्भं महामतेः ।
षण्मुखैः षण्मुखो भूत्वा पिपासुरपिवत्स्तनम् ।।२१

अग्नि ने कहा—हे विभो ! हे देव ! आपके तेज को धारण करने की मुझमे क्या शक्ति है । आपका तेज तो इस सम्पूर्ण जगत् और त्रैलोक्य तथा चराचर सबको भस्मसात् कर दिया करता है । ईश्वर ने कहा—हे हुताशन ! यदि मेरे इस बीज के तुम्हारे उदर मे स्थित होने पर कोई पीडा होतो उसी समय मे उस तेज को गगा के जल मे प्रक्षिप्त कर देना । इस प्रकार से कहकर महादेवजी ने वह अपना अत्युत्तम एव अमोघ बीज सम्पूर्ण उस अग्नि के मुख मे डाल कर वे वही पर अन्तर्धान हो गये थे । देवेश्वर के अन्तर्हित होने पर हुताशन दह्यमान हो गया था और उसने उस महादेव के बीज को गगा के जल मे फेककर वह अपने निवास स्थान पर चला गया था । सरिताओ मे परम श्रेष्ठ वह गगा भी उस तेज को सहन नही करती हुई उसको उसने भी शरस्तम्ब मे निक्षिप्त कर दिया था और जहाँ से वह आई थी वही पर शीघ्र चलीगई थी । वहाँ पर समुत्पन्न हुए उसको देखकर इन्द्र के सहित समस्त देवो ने उस समय मे स्तन पिलाने के लिये वहा पर कृत्तिका को प्रेषित किया था । उन सबको आई हुई इन्होने महामति के गगा गर्भ को देखा था कि वह स्तन पान करने की इच्छा वाला था और फिर वह षण्मुख होकर

अर्थात् छै मुखों वाला होकर उसने छै मुखों से स्तन का पान किया था ॥१५-२१॥

जातकर्मादिसंस्कारान्वेदोक्तान्पद्मसम्भवः ।
चकारसर्वान्राजेन्द्रविधिदृष्टेनकर्मणा ॥२२
षण्मुखात्षण्मुखो नाम कात्तिकेयस्तु कृत्तिकात् ।
कुमारश्च कुमारत्वाद्‌गंगागर्भोऽग्निजोऽपरः ॥२३
एवं कुमारः सम्भूतो ह्यनधीत्य स वेदवित् ।
शास्त्राण्यनेकानि वेद चचार विपुलं तपः ॥२४
देवारण्येषु सर्वेषु नदीषु च नदेषु च ।
पृथिव्यां यानितीर्थानि समुद्राद्यानिभारत ॥२५
ततः पर्यायचोगेन नर्मदातटमाश्रितः ।
नर्मदादक्षिणे कूले चचार विपुलं तपः । २६
ऋग्यजुःसामविहितं जपञ्जाप्यमहर्निशम् ।
ध्यायमानोमहादेवं शुचिर्धमनिसन्ततः ॥२७
ततो वर्षसहस्रान्ते पूर्णे देवो महेश्वरः ।
उमया सहितः काले तदा वचनमब्रवीत् ॥२८

हे राजेन्द्र ! पद्म सम्भव (ब्रह्माजी) ने विधि दृष्ट कर्म के द्वारा वेदोक्त जात कर्मादि सम्पूर्ण संस्कार किये थे । छै मुख होने से इनका षण्मुख—यह नाम पड़ गया था और कृत्तिका से पोषण प्राप्त करने के कारण इनका नाम कात्तिकेय हो गया था । कुमारत्व होने से इनका नाम कुमार हुआ और गङ्गा गर्भ अग्निज ये भी दूसरे नाम थे । इस प्रकार से कुमार समुत्पन्न हुए थे । वे कुछ भी अध्ययन न करके वेदों के ज्ञाता थे वे अनेक शास्त्रों को जानते थे और उन्होंने विपुल तपस्या की थी । हे भारत ! समस्त देवरण्यों मे—नदियों में, नदों में और इस पृथिवी मे समुद्रादि जो भी तीर्थ हैं उन सबमें होकर फिर पर्य्याय (पारी) के योग से नर्मदा के तट के समाश्रित हुए थे । नर्मदा नदी के दक्षिण तट पर विपुल तपश्चर्या की थी । ऋग्-यजु और सामवेदों में विहित जाप्य का जप करते हुए अहर्निश श्री महादेवजी का ध्यान करने वाले परम शुचि एवं धमनि

सन्तत हो गये थे। इसके अनेक सहस्र वर्षों के पूर्ण होने पर अन्त में महेश्वर देव उमादेवी के साथ वहाँ पर समागत हुए और उस समय में यह वचन बोले—॥२२-२८॥

अहं ते वरदस्तात गौरी माता पिता ह्यहम् ।
वरं वृणीष्व यच्चेष्टं त्रिषु लोकेषु दुर्ल्लभम् ॥२९
यदि तुष्टो महादेव उमया सह शङ्कर ।
वृणोमि मातापितरौ नान्यागतिर्मतिर्मम ।।३०
एतच्छ्रुत्वा शुभं वाक्यं पुत्रस्य वदनाच्च्युतम् ।
तथेत्युक्त्वा तु स्नेहेन प्रेम्णा तं परिषस्वजे ।।३१
ततस्तं मूर्ध्न्युपाघ्राय ह्युमयोवाच शङ्करः ।।३२
अक्षयश्चाव्ययश्चैव सेनानीस्त्वं भविष्यसि ।।३३
शिखी च ते वाहनं दिव्यरूपो
दत्तो मया शक्तिधरस्य सङ्ख्ये ।
सुरासुरादींश्च जयेति चोक्त्वा
जगाम कैलासवरं महात्मा ।।३४
गते चाऽदर्शनं देवे तथा स शिखिवाहनः ।
स्थापयित्वा महादेवं जगाम सुरसन्निधौ ।।३५

ईश्वर ने कहा—हे तात ! मैं आपको वरदान देने वाला आ गया हूँ। आपकी यह गौरी माता है और मैं आपका पिता हूँ। जो भी आप चाहते हैं वरदान का वरण कर लो जो तीनों लोकों मे भी दुर्लभ हो षण्मुख ने कहा—हे महादेव ! यदि आप मुझ पर परम सन्तुष्ट एवं प्रसन्न हैं तो हे शङ्कर ! उमादेवी के साथ मैं आपको माता-पिता वरण करता हूँ। इसके अतिरिक्त अन्य मेरी मति और गति नहीं है। इस अतीव शुभ वाक्य को जो कि अपने पुत्र के मुख से निकला था 'तथास्तु' अर्थात् ऐसा ही होवे—यह कहकर बड़े ही प्रेम से उनका समालिंगन किया था। इसके उपरान्त उमा के साथ उसके मस्तक का उपघ्राण करके भगवान शंकर उससे बोले—ईश्वर ने कहा—आप अक्षय-अव्यय और सेनानी होगे। शिखी (मोर) आपका वाहन होगा। युद्ध में शक्ति के धारण करने वाले

आपको दिव्य रूप प्रदान किया है। असुर गुरों और असुरों पर विजय प्राप्त करो—यह महात्मा क्रौंच पर्वत कैलाश पर चले गये थे। देवेश्वर के चले जाने पर दर्शन न होने पर उनके वध से यह शिखि वाहन महादेवजी को स्नान कराकर गुरो के समीप चले गये थे ॥२८-३५॥

तदाप्रभृति तत्तीर्थं स्कन्दतीर्थमिति श्रुतम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं मर्त्यानां भुवि दुर्लभम् ॥३६
तत्र तीर्थे तु यो राजन्भक्त्या स्नात्वाऽर्चयेच्छिवम् ।
गन्धमाल्याभिषेकैश्च याज्ञिकं स लभेत्फलम् ॥३७
स्कन्दतीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवताः ।
तिलमिश्रेण तोयेन तस्य पुण्यफलं शृणु ॥३८
पिण्डदानेनचैकेन विधियुक्तेन भारत ।
द्वादशाब्दानि तृप्यन्ति पितरो नात्र संशयः ॥३९
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र शुभं वा यदि वा शुभम् ।
इहलोके परे चैव तत्सर्वं जायतेऽक्षयम् ॥४०
तत्र तीर्थे तु यः कश्चित्प्राणत्यागं करिष्यति ।
शास्त्रयुक्तेन विधिना स गच्छेच्छिवमन्दिरम् ॥४१
कल्पमेकं वसित्वा तु देवगन्धर्वपूजितः ।
अत्र भारतवर्षे तु जायते विमले कुले ॥४२
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञः सर्वव्याधिविवर्जितः ।
जीवेद्वर्षशतं साग्रं पुत्रपौत्रसमन्वितः ॥४३
इदं ते कथितं राजन्स्कन्दतीर्थस्य सम्भवम् ।
धन्यं यशस्यमायुष्यं सर्वदुःखघ्नमुत्तमम् ।
सर्वपापहरं पुण्यं देवदेवेन भाषितम् ॥४४

तभी से यह तीर्थ 'स्कन्द तीर्थ'—इस नाम से सिद्ध हुआ है। यह तीर्थ समस्त पापों के हरण करने वाला है और परम पुण्य स्वरूप तथा इस भूमण्डल में अत्यन्त ही दुर्लभ है। हे राजन्! उस तीर्थ में जो भी कोई भक्ति भाव से स्नान करके भगवान् शिव का अभ्यर्चन किया

करता है तथा गन्ध माल्य आदि उपचारो के द्वारा अभिषेक करता है वह मनुष्य यज्ञ से समुत्पन्न फल को प्राप्त करता है। उस स्कन्द तीर्थ मे जो स्नान करके पितृगण और देवो का यजन करता है तथा तिलो से मिश्रित जल से सन्तर्पण करता है उसका जो पुण्य फल होता है उसे सुनो। हे भारत! विधि से युक्त एक ही पिण्ड के दान से पितृगण बारह वर्ष तक के लिए तृप्त एव तुष्ट हो जाया करते हैं—इस कथन मे बिल्कुल भी संशय नही है। हे राजेन्द्र! उस तीर्थ मे शुभ कर्म हो या अशुभ हो वह इस लोक मे और परलोक मे सभी अक्षय हो जाया करता है। उस तीर्थ मे जो भी कोई अपने प्राणो का परित्याग करता है और शास्त्रोक्त विधि से किया करता है वह सीधा भगवान शिव के मन्दिर मे चला जाया करता है। वहाँ पर एक कल्प पर्यन्त निवास करके देवो और गन्धर्वों के द्वारा पूजित होता है। अवधि के समाप्त होने पर वह फिर भारत मे किसी परम विमल कुल मे समुत्पन्न होता है। यहाँ जन्म ग्रहण करके वह वेदो और वेदाग शास्त्रो के तत्त्वो का ज्ञाता होता है तथा सभी व्याधियो से रहित होता है। वह यहाँ पर साग्र सौ वर्ष तक जीवित रहा करता है तथा पुत्र-पौत्रादि से युक्त रहता है। हे राजन्! यह आपको हमने स्कन्द तीर्थ की उत्पत्ति बतला दी है। यह परम धन्य—यश देने वाला—आयु वर्धक समस्त दुःखो का नाशक—अ युत्तम—पुण्यमय और सभी पापो के हरण करने वाला है—ऐसा देवो के भी देव ने स्वय अपने मुख से बतलाया है ॥३६-४४॥

---

## १०२—अङ्गिरसतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततो गच्छेत्तु राजेन्द्र तीर्थं माङ्गिरसस्य तु।
उत्तरे नर्मदाकूले सर्वपापविनाशनम् ॥१
पुराऽऽसीदङ्गिरानाम ब्राह्मणोवेदपारगः।
पुत्रहेतोर्मुगस्याऽदौ वचारविपुलं तपः ॥२
नित्यं त्रिषवणस्नायीजपन्देव सनातनम्।
पूजयंश्चमहादेवं कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ॥३

द्वादशाब्दे ततः पूर्णे तुतोष परमेश्वरः ।
वरेण च्छन्दयामास द्विजमांगिरसं वरम् ॥४
वव्रे स तु महादेवं पुत्रं पुत्रवतां वरम् ।
वेदविद्याव्रतस्नातं सर्वशास्त्रविशारदम् ॥५
देवानां मन्त्रिणं राजन्सर्वलोकेषु पूजितम् ।
महालक्ष्म्याः सदावासमक्षयं चाव्ययं सुतम् ॥६

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् फिर आंगिरस तीर्थ को गमन करना चाहिए जो नर्मदा नदी के उत्तर तट पर स्थित है और समस्त पापों के विनाश करने वाला है। पुरातन समय में अंगिरा नाम वाला एक वेदों का पारगामी ब्राह्मण था। युग के आदि काल में उसने पुत्र की प्राप्ति के लिए बहुत भारी उग्र तप किया था। वह नित्य ही तीनों कालों में स्नान करने वाला होकर सनातन देव का जाप किया करता था। जब बारह वर्ष पूर्ण हो गये थे तब परमेश्वर प्रभु प्रसन्न हुए थे। तब उस आंगिरस द्विज को वरदान प्रदान करने के लिये कहा था ॥१-४॥ उसने महादेवजी से पुत्रवानों में भी परम श्रेष्ठ पुत्र होने का वरदान माँगा था जो कि वेद विद्या के व्रत में स्नात हो और समस्त शास्त्रों का विद्वान् हो। ऐसा पुत्र होना चाहिये जो देवों का मन्त्री हो और हे राजन् ! उस अंगिरा ने समस्त लोकों में पूजित—महालक्ष्मी का सदा आवास स्थान—अक्षय—अव्यय सुत की याचना की थी ॥१-६॥

तथाभिलषितःपुत्रः सर्वविद्याविशारदः ।
भविष्यति न सन्देहस्त्वमुक्त्वाप्ययोहरः ॥७
वर्गरङ्गिरसश्चापि बृहस्पतिरजायत ।
यथाऽभिलषितः पुत्रो वेदवेदांगपारगः ॥८
जाते पुत्रेऽङ्गिरास्तत्र स्थापयामास शंकरम् ।
*हृष्टतुष्टमना भूत्वा जगामोत्तरपर्वतम् ॥९*
तत्र चांगिरसे तीर्थे यः स्नात्वा पूजयेच्छिवम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो रुद्रलोकं स गच्छति ॥१०

अपुत्रो लभते पुत्रमधनो धनमाप्नुयात् ।
इच्छते यश्च यं कामं स तं लभतिमानवः ॥११

उसी प्रकार तेरा चाहा हुआ पुत्र जो समस्त विद्याओं का विशारद होगा तुझे मिलेगा–इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है—ऐसा कहकर भगवान् शम्भु वहाँ से चले गये थे। इन शम्भु के दिये हुये वरदानों से अंगिरा के बृहस्पति पुत्र ने जन्म ग्रहण किया था जो कि जैसा उनको अभिपित था वैसा ही वेद-वेदांगों का पारगामी विद्वान् पुत्र उत्पन्न हुआ था। उस पुत्र के उत्पन्न होने पर अंगिरा मुनि ने वहाँ पर भगवान् शंकर की स्थापना की थी। फिर वह परम हृष्ट और सन्तुष्ट मन वाला होकर उत्तर पर्वत पर चला गया था। वहाँ पर उस आंगिरस तीर्थ में जो भी कोई स्नान करके भगवान् शिव का पूजन किया करता है वह सम्पूर्ण पापों से विमुक्त होकर रुद्रलोक को गमन किया करता है और निर्धन मनुष्य इस तीर्थ की पुण्य-प्रभाव से अतुल धन की प्राप्ति कर लेता है। मनुष्य वहाँ पर जाकर जो भी कामना करता है उसी को पा लेता है ॥७-११॥

---

## १०३—कोटितीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततोगच्छेत्तु राजेन्द्रकोटितीर्थमनुत्तमम् ।
ऋषिकोटिर्गताऽत्र परांसिद्धिमुपागता ॥१
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा भोजयेद्‌ ब्राह्मणाञ्छुचिः ।
एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ॥२
तत्र तीर्थे तु यः स्नात्वा पूजयेत्पितृदेवताः ।
पूजिते तु महादेवे वाजपेयफलं लभेत् ॥३

श्री मार्कण्डेयजी ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके बाद अति उत्तम कोटि तीर्थ को गमन करे। वहाँ ऋषि कोटि में जाने पर परम सिद्धि की उपलब्धि होती है। उस तीर्थ में स्नान करके पवित्र ब्राह्मणों को भोजन करावे। यहाँ विप्रगण जितना एक बार भोजन करते हैं वह करोड़ गुना हो जाता है। उस तीर्थ में स्नान करके पितृ देवता का पूजन करे और

महादेवजी का भी पूजन करे तो वाजपेय यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है ॥१-३॥

---

## १०४ केदारेश्वरमाहात्म्यवर्णन

सप्तषष्टिकसङ्ख्याकं केदारेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
देवं शृणु वरारोहे दर्शनात्पापनाशनम् ॥१
सृष्टिकाले पुरादेवि देवा व्याप्ताहिमेनहि ।
शीतार्ताविह्वलाः सर्वे ब्रह्माणं शरणं गताः ॥२
हिमाद्रिणाऽर्दिताः सर्वे वयं देवजगत्पते ।
त्राहिभीतांश्चतुर्वक्त्रपितामहनमोऽस्तु ते ॥३
देवानां वचनं श्रुत्वा प्रोक्तं वै ब्रह्मणा प्रिये ।
पीडिता हिमवत्सेन शङ्करश्वशुरेण च ॥४
नाहं त्रातुं समर्थोऽस्मि सत्यमेतन्मयोदितम् ।
महादेवमृतेदेवागतिरन्या न विद्यते ॥५
स एव शरणं देवः सर्वेषां नो भविष्यति ।
तस्याज्ञया मया सर्वे पर्वताश्चरचिताः पुरा ॥६
कृतासृष्टिर्विचित्रा च हिमाद्रिश्चमयाकृतः ।
अप्रेक्ष्यःसर्वजन्तूनामधृष्योदुर्गमोगिरिः ॥७

ईश्वर ने कहा हे वर ( श्रेष्ठ ) आरोह ( अङ्ग गठन ) वाली ! सड़सठ संख्या वाले केदारेश्वर नाम से युक्त प्रभु हैं। उन देव के विषय में आप श्रवण करो। जिनके केवल दर्शन से ही समस्त पापों का विनाश हो जाया करता है ॥१॥ हे देवि ! प्राचीन समय में पहिले सृष्टि के समय में सब देवता लोग हिम से व्याप्त होते हुए शीत से अत्यन्त दुःखित होकर विह्वल हो गये थे। सब देवगण फिर परम पिता ब्रह्माजी की शरणागति में गये थे ॥२॥ देवों ने कहा—हे जगत् के स्वामिन् ! हे देव ! हम सब लोग हिमाद्रि से पीड़ित हैं। हे चार मुखों वाले पितामह ! हम बड़े डरे हुए हैं, आप हमारी रक्षा कीजिए, आपको सेवा में प्रणाम है ॥३॥ हे

प्रिये ! देवों के इन प्रार्थना के वचनों का श्रवण करके ब्रह्माजी ने कहा—हे देवगण ! आप लोग हिमवान् पर्वत से पीडित हैं जो कि भगवान् शङ्कर का श्वशुर है। अतएव मैं तो वहां जाने में समर्थ नही हूँ—मैंने यह बिल्कुल सत्य एवं स्पष्ट आपको बतला दिया है। हे देवगण ! महादेवजी के सिवाय वहाँ पर अन्य कोई भी दूसरी गति नही है ॥४-५॥ वह ही महादेवजी आप सबके रक्षा करने वाले होंगे। उनकी ही आज्ञा से मैंने पहिले इन समस्त पर्वतों की रचना की थी। मैंने यह बहुत ही अद्भुत सृष्टि की थी और इस हिमवान् पर्वत का भी सृजन मैंने ही किया था किन्तु यह गिरि हिमवान् सब जन्तुओं के सेवन करने के योग्य नही है। यह धर्षण के अयोग्य और महान् दुर्गम पर्वत है ॥६-७॥

हिमाचलस्य तस्यैव शास्ता देवो महेश्वरः।
तस्माद्यास्याम हे देवाः कैलासं पर्वतोत्तमम् ॥८
यत्र तिष्ठति विश्वात्मा देवदेवो महेश्वरः।
एवमुक्त्वा गतो ब्रह्मा देवैः सार्द्धं ममान्तिकम्।
दृष्टोऽहं पूजितस्तैस्तु स्तुतोऽहं विविधैः स्तवैः ॥९
मया सम्मानिता देवाश्चतुर्वक्त्रः प्रपूजितः।
पूजयित्वामयापृष्टो ब्रह्मा गमनकारणम् ॥१०
कि कार्यं त्रिदशैःसार्द्धमागतोऽसि पितामह।
कथितं ब्रह्मणा सर्वं श्रुतं सर्वं मया प्रिये ॥११
हिमाचलं समाहूय मर्यादा च कृता मया।
शैलानाराजराजत्वे हिमाद्रिश्चप्रतिष्ठितः ॥१२
देवानां विषयाश्चैव गन्धर्वाणा तथैव च।
यक्षाणामथ नागानां किन्नराणां तथैव च ॥१३
विद्याधराणां क्रीडार्थं पृथक्पृथङ् निवेशिताः।
रूपतो भाति शैलेन्द्रः शुद्धस्फटिकसन्निभः ॥१४
जाह्नवीनिर्झरोष्णीषः शर्वाणीजनकस्तथा ॥१५

उस हिमाचल गिरि के ऊपर शासन करने वाले केवल महेश्वर देव ही हैं। हे देवगण ! इस कारण से हम सब लोग श्रेष्ठ पर्वत कैलास पर

ही चले जहाँ पर सम्पूर्ण विश्व—ब्रह्माण्ड के आत्मा—देवों के भी देव भगवान् महेश्वर साक्षात् विराजमान रहा करते हैं। इस प्रकार से देवों को समझाकर परमेष्ठी ब्रह्माजी समस्त देवगणों के साथ मेरे समीप में उपस्थित हुए थे। उन सबने मेरा दर्शन करके पूजा की और नाना प्रकार के स्तोत्रों के द्वारा मेरा उन सबने स्तवन भी किया था ॥८-९॥ हे देवि ! मैंने भी उस समय में उन सब देवताओं का आदर—सम्मान किया था और ब्रह्माजी की विशेष रूप से पूजा की थी। ब्रह्माजी से उनका समचन करके मैंने उनके वहाँ पर समागमन करने का कारण पूछा था ॥१०॥ मैंने पूछा—हे पितामह ! क्या कारण है कि आप इन देवगणों के साथ यहाँ पर समागत हुए हैं। ब्रह्माजी ने सब वृत्तान्त कह दिया था और हे प्रिये ! मैंने वह सब सुन लिया था ॥११॥ मैंने हिमाचल को बुलाकर एक मर्यादा स्थापित कर दी थी और समस्त शैलों का राजाधिराज उसे प्रतिष्ठित कर दिया था। वहाँ पर देवों के देश—गन्धर्वों—यक्षों—नागों और किन्नरों तथा विद्याधरों के रहने एवं क्रीडा—विहार करने के लिये पृथक्—पृथक् स्थान नियत कर दिये थे ॥१२-१३॥ शैलों का स्वामी हिमवान् रूप लावण्य से विशुद्ध स्फटिक मणि के तुल्य ही था। गङ्गा के प्रवाह का ही उसके मस्तक पर शिरोवेष्टन वस्त्र था और वह शर्वाणी ( पार्वती देवी ) का जनक था ॥१४-१५॥

सर्वदेवमयो दिव्यः सर्वतीर्थमयः कृतः ।
सर्वाश्रमनिवासश्च सर्वामरनिषेवितः ॥१६
एवं संस्थाप्यशैलेन्द्रं लिङ्गमूत्तिरहंस्थितः ।
विख्यातस्त्रिपुलोकेषु केदारेश्वरनामतः ॥१७
उदकं निर्मितं तत्र मन्त्रपूर्णं मया प्रिये । ।
माहात्म्यं विविधं प्रोक्तं लिङ्गस्यचजलस्यच ॥१८
योऽत्रागत्य नरो भक्त्या सम्यङ्मा पूजयिष्यति ।
जलं योऽत्रैव गृह्णाति विधानेन वरानने ! ॥
तस्योदरे भविष्यामि लिंगरूपी न संशयः ॥१९

इत्युक्ते वचने देवि ! सदेवासुरपन्नगा ।
यक्षरक्ष पिशाचाश्च भूतवेतालकिन्नरा ॥२०
विद्याधरगणाश्चैव मम दर्शन लालसा ।
समायाता वरारोहे ! पीत्वा तत्र जलं शुभम् ।
दृष्टोऽहं विधिना तैस्तु लिङ्गमूर्त्तिगत प्रिये ! ॥२१

हिमवान् समस्त देवों से परिपूर्ण दिव्य और सम्पूर्ण तीर्थों से समन्वित बना दिया था। वह सभी आश्रमों का निवास क्षेत्र और समस्त देवों के द्वारा निषेवित हो गया था। इस तरह का उस शैलराज को प्रतिष्ठित करके मैं लिङ्ग मूर्ति वाला होकर वहाँ पर स्थित हो गया था। उसी समय से तीनों लोकों मे मैं केदारेश्वर—इस नाम से प्रसिद्ध हो गया था ॥१६-१७॥ हे प्रिये ! वहाँ पर मैंने मन्त्र पूत उदक जल) का निर्माण किया था। नाना प्रकार का माहात्म्य लिङ्ग का और जल का कहा गया है ॥१८॥ जो मनुष्य यहाँ पर आकर भक्ति से अच्छी रीति से मेरी पूजा करेगा हे वरानने ! जो यहीं पर विधान पूर्वक जल ग्रहण किया करता है मैं उसके उदर मे लिङ्ग के रूप वाला हो जाऊंगा—इसमें संशय नहीं है ॥१९॥ हे देवि ! इस प्रकार से कहने पर समस्त देवगण-असुर-पन्नग—यक्ष—राक्षस—पिशाच—भूत—वेताल—किन्नर और विद्याधर गण मेरी दर्शन—लालसा वाले होते हुए यहाँ पर समागत हुए थे। हे वरारोहे ! उन्होंने इस शुभ जल का पान किया था। फिर हे प्रिये ! उनके द्वारा लिंग मूर्ति मे स्थित मुझको विधि के सहित देखा गया था ॥२०-२१॥

मम तुल्याश्च ते जातास्तस्मिन्नद्रिवरे स्थिता ।
जनलोकगतं सिद्धे पूज्यमाना वरानने ! ॥२२
अथ कालेन बहुना श्रुत्वा माहात्म्यमुत्तमम् ।
केदारेश्वरदेवस्य जलस्य च विशेषत ॥२३
मनुष्याः समुपायातास्ते रजोबहुलास्तत ।
तम प्रायाविशालादि ! तदाह माहिषवनु ॥२४

कृतवांस्तद्वधार्थाय न च ते भीतिमागताः ।
इह देवोऽत्र देवोऽत्र वभ्रमुस्तेदिदृक्षयः ॥२५
न तैर्दृष्टो मह देवि ! यतोऽहं माहिषाकृतिः ।
स्थितोऽस्म्यलक्ष्यरूपेण ततस्ते दीनमानसाः ॥
उद्विग्ना निश्वसन्तश्च वैराग्यं परमं गताः ॥२६
नात्र देवोनतीर्थानि न गङ्गः पुण्यदायिनी ।
न धर्मो न परो लोका मर्वमेतद्विडम्बनम् ॥२७
एवं किल पुराणेपु श्रूयते सर्वदा श्रुतौ ।
हिमालये च केदारं लिङ्गं मोक्षप्रदायकम् ॥२८

हे परम श्रेष्ठ मुख वाली ! वे सब मेरे ही समान हो गये थे और उस गिरिश्रेष्ठ पर समवस्थित हो गये थे । जनलोक में स्थित सिद्धों के द्वारा वे पूज्यमान हुए थे ॥२२॥ इसके पश्चात् जब बहुत अधिक समय व्यतीत हो गया था उस समय में केदारेश्वर देव का और विशेष रूप से जल का उत्तम माहात्म्य का श्रवण करके मनुष्यगण वहाँ पर समागत हुए थे । क्यों कि हे विशाल नेत्रों वाली ! वे सब प्रायः अधिक रजोगुण वाले और तमोगुण से परिपूर्ण थे । उस समय में मैंने माहिष रूप कर लिया था ॥२३-२४॥ यह माहिष स्वरूप मैंने उनके वध करने के लिये ही धारण किया था किन्तु वे भयभीत नहीं हुए थे और यहीं पर केदारेश्वर देव विद्यमान हैं"—ऐसा कहते—विचरते हुए वे मेरे दर्शन करने की इच्छा से युक्त होकर भ्रमण कर रहे थे ॥२५॥ हे देवि ! उन्होंने मुझे नहीं देखा था क्यों कि मैं तो उस समय में महिष की आकृति में स्थित था । जब मैं इस प्रकार से अलक्ष्य रूप से वहाँ पर स्थित हो गया था तो वे अधिक दीन मन वाले हो गये थे और बहुत अधिक उद्वेग से युक्त होते हुए खिन्नता से लम्बी श्वास लेने लगे एवं अधिक वैराग्य उत्पन्न हो गया था ॥२६॥ वे कहने एवं सोचने लगे कि न तो यहाँ पर कोई देव है न तीर्थ ही हैं और न पुण्य प्रदान करने वाली गंगा नदी ही है । न कोई धर्म क्षेत्र है और परमोत्तम लोक ही है—यह सब विडम्बना मात्र ही है ॥२७॥ पुराणों में और वेदों में यह सर्वदा सुना

जाया करता है कि हिमालय पर्वत में मोक्ष प्रदान करने वाली केदारेश्वर भगवान् की लिंग मूर्त्ति विराजमान रहती है—यह क्या बात है—यह कथन प्रयथार्थ तो नहीं होना चाहिए ॥२८॥

एवं तु वदतां तेषां मानुषाणां यशस्विनि! ।
आकाशाद्धुत्थिता वाणी मया प्रोक्तानुकम्पया ॥२९
अमार्गं मा वन्दन्त्वत्र न निन्द्याः श्रुतयोऽव्ययाः ।
पुराणं नान्यथा प्रोक्तं ब्रह्मणा लोककर्तृणा ॥३०
ये निन्दन्ति पुराणानि धर्मशास्त्राणि नस्तिकाः ।
ते यान्ति नरकं घोरं यावदाभूतसम्प्लवम् ॥३१
सदा देवोऽत्रकेदारः स्वर्गमोक्षप्रदायकः ।
विद्यते त्रिदशैः पूज्यः सततं नैव दृश्यते ॥३२
करोति पूजां हिमवान्मामानष्टो च शाश्वतान् ।
हिमाद्रिस्तेन पुण्येन नगेन्द्रस्तु कृतो नगैः ।
सेव्यश्च रमणीयश्च सर्वतीर्थनमस्कृतः ॥३३
सर्वरत्ननिधानश्च देवानां वल्लभस्तथा ।
ग्रीष्मे चैत्र वसन्ते च देवदेवोऽत्र दृश्यते ॥३४
नियतेनैव कालेन मानुषाणा च सर्वदा ।
यदिबुद्धिः परा जाता सर्वदा मम दर्शने ॥३५

हे यशस्विनि ! जब इस प्रकार से वे सब लोग परस्पर में बात चीत कर रहे थे तो उन मनुष्यों पर मुझे दया आगई थी और उस समय में अनुकम्पा करके मेरे हो द्वारा कही गई आकाश से एक वाणी हुई थी ॥२९॥ "आप लोग यहाँ पर भिन्न मार्ग की बातें मत करो। अव्यय वेद और पुराण निन्दा करने के योग्य नहीं हैं लोकों की रचना करने वाले ब्रह्माजी ने पुराणों को असत्य नहीं लिखा एवं बतलाया है। ये सभी सत्य हैं जो नास्तिक लोग पुराणों और धर्म शास्त्रों की बुराई किया करते हैं और उन्हें असत्य बतलाते है वे महान् घोर नरक में जाकर गिरा करते हैं और यह प्रलय काल पर्य्यन्त उसी में पड़े हुए यातनाऐं सहा करते हैं ॥३०-३१॥ भगवान् केदारेश्वर देव यहाँ पर सर्वदा ही विराजमान रहा

करते हैं जो परम पुरुषार्थ मोक्ष के प्रदान करने वाले हैं तथा स्वर्ग का निवास भी दिया करते है। वे केदारेश्वर प्रभु देवों के द्वारा पूजा करने के योग्य विद्यमान है किन्तु सदा दिखलाई नही दिया करते हैं ॥३२॥ यह हिमवान् पर्वत निरन्तर आठ मास तक उनकी पूजा किया करता है। उसी पुण्य के प्रभाव से इस को समस्त पर्वतो ने पर्वतो का स्वामी बना दिया है और यह परम सेव्य-रमणीय एवं सभी तीर्थों के द्वारा वन्द्यमान है ॥३३॥ यह समस्त प्रकार के रत्नो की खान है और देवगण का परम प्रिय है। यहाँ पर ग्रीष्म एवं वसन्त ऋतु मे वे देवो के भी देव दिखलाई दिया करते हैं। यदि मनुष्यो की बुद्धि मेरे दर्शन करने में सर्वदा परमोत्कृष्ट रूप से समुत्पन्न हो जाया करती है तो नियत काल मे दर्शन होता है ॥३४-३५॥

आख्यास्ये तदुपायं च श्रूयतां सावधानतः।
मा विकल्पोऽत्रकर्त्तव्यः सर्वान्कामानवाप्स्यथ ॥३६
क्षेत्राणामुत्तमं क्षेत्रं भुक्तिमुक्तिप्रदायकम्।
प्रलयेऽप्यक्षयं प्रोक्तं महाकालवनं नराः ॥३७
तत्राहं सम्भविष्यामि लोकानामनुकम्पया।
लिंगरूपेणशिप्रायास्तटेपुण्ये सुशोभने ॥३८
सोमेश्वरस्य देवस्यपश्चिमे स्थानमुत्तमम्।
प्रसिद्धमुपयास्यामि केदारेश्वरनामतः ॥३९
सर्वदा दर्शनं तत्रमयासार्द्धं भविष्यति।
सर्वेषां चप्रदास्यामिसर्वान्कामान्नसंशयः ॥४०
इह यावत्फलंतस्माद्दास्यामि ह्यधिकं ततः।
इतितेमानवाः सर्वे श्रुत्वावाणीमनोरमाम् ॥
आकाशादुत्थितां दिव्यां मनः प्रह्लादकारिकाम् ॥४१
गता वनं महाकालं संस्मरन्तो महेश्वरम्।
विकल्पेन विचित्रेणसत्यमेवेतिनान्यथा ॥४२

मैं उसका उपाय भी अभी बतलाऊँगा। आप लोग परम सावधान होकर उसका श्रवण करो। इस विषय मे तुमको अपने हृदय में किसी

प्रकार का विकल्प नहीं करना चाहिए। प्राप लोगों की सभी कामनाएं परिपूर्ण होंगी ॥३६॥ हे मनुष्यो ! समस्त क्षेत्रों में अत्युत्तम क्षेत्र तथा भुक्ति और मुक्ति के प्रदान करने वाला है और इस महाकाल वन को प्रलय में भी न क्षीण होने वाला कहा गया है ॥३७॥ लोगों पर कृपा करके मैं वहाँ पर शिप्रा नदी के परम पुण्यमय सुन्दर तट पर लिंग के स्वरूप में रहने वाला प्रकट होऊंगा ॥३८॥ सोमेश्वर देव के पश्चिम भाग में अत्यन्त उत्तम स्थान है मैं वहाँ पर केदारेश्वर नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त होऊंगा ॥ ९॥ वहाँ पर मेरे साथ में सर्वदा दर्शन होगा। मैं वहाँ पर सबके समस्त मनोरथों को पूर्ण कर दूंगा। इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥४०॥ यहाँ पर जितना पुण्य—फल होता है उससे भी अधिक वहाँ पर दूंगा। उन सब मनुष्यों ने आकाश से होने वाली—परम दिव्य एवं मन को प्रसन्न करने वाली परम मनोरम वाणी का श्रवण किया था और फिर सबके सब भगवान् महेश्वर महाकाल का विविध विकल्प से स्मरण करते हुए महाकाल वन में चले गये थे। सब लोग यहीं कहते हुए जा रहे थे कि यह बिल्कुल सत्य है और इसमें तनिक भी अन्यथा नहीं है ॥४१-४२॥

स्नात्वा शिप्राजले पुण्ये यावत्पश्यन्ति भास्करम्।
तावद्दृष्टिपथोत्पन्नं लिङ्गं पापप्रणाशनम् ॥४३
अथ ते हर्षिताः प्रोचुः केदारोऽयं न संशयः।
दृष्टोऽस्माकं न सन्देहो गंगा शिप्राजले स्थिता ॥४४
ततस्ते पूजयामासुः पुष्पैर्नानाविधैस्तथा।
पूजितोऽहं विशालाक्षि तैस्तदा तुष्टो वरानने ॥४५
दुर्लभोऽतिवरो दत्तः कैलासे स्थानमुत्तमम्।
अक्षयञ्च पदं दत्तम्पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥४६
अतोऽहं त्रिदशैः प्रोक्तः केदारेश्वरनामतः।
प्रार्थितः परयाभक्त्या लोकानामनुकम्पया ॥४७
इहागत्य नरा ये च त्वां पश्यन्ति शुभत्तिताः।
तेषां फलं त्वया देव! दातव्यमधिकं यतः ॥४८

हिमाद्रौहिमनाथस्ययात्राया.प्रत्यहं फलम् ।
लभन्तेचनरानित्यंनात्रकार्याविचारणा ॥४६

परम पुण्यमय शिप्रा नदी के जल में स्नान करके जब तक भगवान् भुवन भास्कर का दर्शन करते हैं तभी तक समस्त पापो के विनाश कर देने वाले लिंग का दर्शन उन सब लोगो की दृष्टि में समागत हो गया था अर्थात् सबने लिंगेश्वर का दर्शन प्राप्त कर लिया था ॥४३॥ इसके पश्चात् वे सब अत्यधिक प्रसन्न हुए थे और उनको यह निश्चय हो गया था कि यही भगवान् केदारेश्वर प्रभु हैं—इसमे कुछ भी सशय नही रहा है हम लोगो ने अब उनका दर्शन प्राप्त कर लिया है और कोई भी सन्देह करने का अवसर नही है । शिप्रा नदी के जल मे गगा स्थित है ॥४४॥ इसके अनन्तर उन्होने अनेक तरह के पुष्पो से अर्चना की थी । हे विशाल नेत्रों वाली ! हे परम श्रेष्ठ एवं सुन्दर मुख वाली ! जब मेरी उन्होने पूजा की तो मैं उनपर तुष्ट एव प्रसन्न हो गया था. ॥४५॥ मैंने उनको अत्यन्त श्रेष्ठ एवं दुर्लभ वरदान दिया था—कैलास गिरि पर उत्तम स्थान और पुनरावृत्ति ( दुबारा जन्म ग्रहण करना ) से रहित कभी क्षीण न होने वाला पद प्रदान किया था ॥४६॥ इसी लिये मैं देवों के द्वारा केदारेश्वर—इस नाम से पुकारा गया था और लोगो पर दया करके परम भक्ति से उन्होंने मेरी प्रार्थना की थी कि जो भी मनुष्य यहाँ पर आकर भक्ति पूर्वक आपका दर्शन करते हैं हे देव आपके द्वारा उनको अधिक फल अवश्य ही देना चाहिए क्यो कि हिमाचल मे हिमनाथ की यात्रा का प्रतिदिन फल मनुष्य नित्य ही प्राप्त किया करते है—इसमे कुछ भी विचार करने की आवश्यकता नही है ॥४७-४६॥

ब्रह्महा वासुरापोवास्तेयीवागुरुतल्पगः ।
तत्सम्पर्कीनरोयस्तुत्वाहृष्ट्वाकिल्विषाकरः ॥५०
सोऽपि याति परं स्थानं पुनरावृत्तिवर्जितम् ।
चान्द्रायणाना विधिवच्छताना चव यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोतिकेदारेश्वरदर्शनात् ॥५१

ते नराः पशवो लोके तेषां जन्मनिरथ कम् ।
यैर्न दृष्टोमहाकालेकेदारेश्वरसञ्ज्ञकः ॥५२
कौमारेयौवने बाल्ये वार्द्धकेयद्दुपार्जितम् ।
तत्पापंसंक्षयं यातिकेदारेश्वरदर्शनात् ॥५३
हिमालयकृता यात्रा तस्याः प्रोक्तं च यत्फलम् ।
तत्फलं समवाप्नोति केदारेश्वरदर्शनात् ॥५४
इत्युक्तोऽहं तदा देवि ! देवैः प्रणतिपूर्वकम् ।
तथेति चमयाप्रोक्तंतेऽपिदेवादिवं गताः ॥५५
एष ते कथितो देवि ! प्रभावः पापनाशनः ।
केदारेश्वरदेवस्य पिशाचाख्यमतः शृणु ॥५६

ब्राह्मण की हत्या करने वाला—सुरापान करने वाला—चोरी का कर्म करने वाला और गुरु की शय्या पर गमन करने वाला हो अथवा इन महापापात्मा पुरुषों के साथ सम्पर्क रखने वाला हो और चाहे कैसा भी किल्विषों की खान क्यों न हो आपका मनुष्य दर्शन प्राप्त करके वह भी उस परम पद को प्राप्त हो जाया करता है जहाँ पहुँचकर फिर यह जीवात्मा दूसरा जन्म ग्रहण नहीं किया करता है। विधि पूर्वक किये हुए एक सौ चान्द्रायण व्रतों का जो फल प्राप्त होता है वही फल भगवान् केदारेश्वर के दर्शन से प्राप्त हो जाया करता है।।५०-५१।। वे मनुष्य इस लोक में पशु के ही समान हैं और उनका इस संसार में जीवन धारण करना भी निरर्थक ही हुआ करता है जिन्होंने महाकाल वन में भगवान् केदारेश्वर नाम वाले प्रभु का दर्शन प्राप्त नहीं किया है। ५२।। कुमार अवस्था में—यौवन में—बाल्यावस्था में और वार्धक्य में जो भी कुछ बुरे कर्म या पाप हों उनका सक्षय केवल केदारेश्वर के दर्शन से हो जाता है ॥५३॥ हिमवान् पर्वत की यात्रा और उसका जो भी कुछ फल होता है वह सब कह दिया है उसका जो भी कुछ पुण्य फल होता है वह केवल केदारेश्वर के दर्शन से प्राप्त हो जाता है ॥५४॥ हे देवि ! उस समय देवों के द्वारा प्रणाम करते हुए मुझसे इस प्रकार कहा गया था और मैंने भी ऐसा होगा—यह कह दिया था। फिर सब देवगण स्वर्ग लोक को चले

गये थे ॥५५॥ हे देवि ! आपके समक्ष में यह पापों का विनाश करने वाला केदारेश्वर भगवान् के दर्शन का प्रभाव बतला दिया है। अब यहाँ से आगे पिशाचेश्वर नामक भगवान् के विषय में श्रवण करो ॥५६॥

---

## १०५—पिशाचेश्वरमाहात्म्यवर्णन

अष्टषष्टिकसंख्याकं पिशाचाख्यमथेश्वरम् ।
शृणु देविप्रयत्नेन दर्शनात्पापनाशनम् ॥१
आदौकलियुगेदेविशूद्रोबहुधनोऽभवत् ।
सोमोनामसुविख्यातोनास्तिकोवेदनिन्दकः ॥२
अब्रह्मण्यो नृशंसश्च कदर्यो निरपत्रपः ।
विश्वासघातकश्चैव परस्वहरणे रतः ॥३
त्रिवर्गं हन्ता चान्येषामात्मकामानुवर्तकः ।
स कदाचिन्मृतो देवि ! कष्टेन परमेण च ॥४
मरुदेशे पिशाचोऽभून्नम्नोदीनो भयावहः ।
नाशकृत्तत्पिशाचानां स्वपक्षोच्छेदकारकः ॥५
बहवो मर्द्दितास्तेन पिशाचा बलवत्तराः ॥६

ईश्वर ने कहा—इसके अनन्तर अड़सठ संख्या वाले पिशाच नामक ईश्वर का श्रवण अब हे देवि ! आप यत्न पूर्वक करिए जिसके दर्शन मात्र से ही समस्त पापों का विनाश हो जाया करता है ॥१॥ हे देवि ! आदि में इस कलियुग में शूद्र बहुत धन वाला हुआ करता था जिसका सोम यह नाम परम प्रसिद्ध था। यह महान नास्तिक (ईश्वर की सत्ता का न मानने वाला) और वेदों की निन्दा करने वाला हुआ था ॥२॥ यह ब्राह्मण की सुरक्षा न करने वाला—महान् क्रूर स्वभाव से युक्त—कदर्य (अत्यन्त नीच)—निरपत्रप (निर्लज्ज)—विश्वास का घात करने वाला—सदा पराये धन का अपहरण करने मे रति रखने वाला था ॥३॥ यह अन्य तीनों वर्ग अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णों का हनन कर्त्ता और

केवल अपनी ही अभिलाषाओं की पूर्ति करने वाला था। हे देवि! वह किसी समय में परमाधिक कष्ट सहन करते हुए मृत हो गया था ॥४॥ यह अपने-अपने किए हुए घोर पाप पूर्ण कर्मों के कारण मरने के पश्चात् मरुभूमि (मारवाड) में जहाँ जल के अभाव के कारण प्राणी मर जाया करते हैं, पिशाच हुआ था जो परम नग्न—दीन और भयावना था। यह अपने पक्ष वाले पिशाचों का भी नाश करने वाला स्वपक्ष का ही उच्छेदन करने वाला था। इसने बड़े २ अत्यधिक बलवान् पिशाचों का भी मर्दन कर दिया था ॥५-६॥

अथतेनैवमार्गेणकदाचिच्छाकटायनः।
स्वाध्यायनिरतो विद्वान्वाग्मीशमपरायणः ॥७
उदयादित्यसकाशोविभावसुसमद्युतिः।
शकटेन सदा याति स पश्यन्पर्वतात्मजे ॥८
गतो ददर्श तं रौद्रं पिशाचं च भयावहम्।
स पिशाचः क्षुधाविष्टो भोक्तुकामोऽभ्यधावत ॥९
दृष्ट्वा तं शकटारूढं ब्राह्मणं शाकटायनम्।
शकटस्य ध्वनिंश्रुत्वा रूपं दृष्ट्वाद्विजस्य च ॥१०
तथारूपः पिशाचस्तु कर्णाभ्यां बधिरीकृतः।
आत्मत्राणपरो भूत्वा नष्टः कष्टेन धावति।
तं धावन्तं समालोक्य पिशाचं ब्राह्मणोऽब्रवीत् ॥११
पिशाच त्रस्तरूपोऽसि त्वरितश्चैव लक्ष्यसे।
क्व धावसि समाचक्ष्व कुतस्ते भयमागतम् ॥१२
शकटस्यास्यमहतोघोषं श्रुत्वाभयङ्करम्।
कर्णाभ्यांबधिरोजातोविसंज्ञस्त्वदर्शनात् ॥१३
पिशाचानां बलिष्ठाश्च श्रूयन्ते ब्रह्मराक्षसाः।
स त्वं मां भोक्तुकामोऽसि विख्यातो ब्रह्मराक्षसः ॥१४

हे हिमाचल की पुत्रि! इसके अनन्तर एक बार ऐसी घटना घटित हुई थी कि किसी समय में उसी मार्ग से शाकटायन महर्षि निकले थे जो वेद वेदांगों के स्वाध्याय करने में सदा निरत रहा करते थे बहुत ही

अधिक विद्वान्—वाग्मी (बोलने वाले) और सर्वदा शम में परायण रहने वाले थे ।।७।। इन महर्षि का स्वरूप उदित हुए सूर्य के समान तेजस्वी था और यह विभावसु के तुल्य द्युति वाले थे । यह सदा शकट से ही गमन किया करते थे । वे उधर से जा रहे थे तभी उन्होंने उस अत्यन्त भयानक—रौद्र रूप वाले पिशाच को वहाँ पर देखा । वह पिशाच अत्यन्त भूखा था और वह इन शाकटायन महर्षि को खाने के लिए उस ओर दौड़ गया था ।।८-९।। उस पिशाच ने एक शकट पर समारूढ़ शाकटायन ब्राह्मण को देखकर तथा शकट ध्वनि का श्रवण किया था । उसने उस ने उस शकट मे स्थित द्विज के स्वरूप का अवलोकन किया था ।।१०।। उस प्रकार के स्वरूप वाला वह पिशाच उसी समय मे कानों से बहरा हो गया था । हे पार्वति ! वह अपनी हो रक्षा करने में व्यस्त होता हुआ बहुत ही कष्ट से नष्ट-सा हो गया था । इधर-उधर दौड़ लगाते हुए उस पिशाच को देखकर उस शाकटायन ब्राह्मण ने उससे कहा था— ।।११।। हे पिशाच ! तू बहुत ही डरा हुआ-सा और अधिक शीघ्रता से दिखलाई दे रहा है । तू इस समय मे कहाँ को जाने के लिए दौड़ लगा रहा है और तुझे किस का भय व्याप्त हो रहा है ? ।।१२।। पिशाच ने कहा—इस शकट की महती भयानक ध्वनि सुनकर मैं कानों से बहिरा हो गया हूँ और आपको देखकर मैं मूच्छित अर्थात् अचेतन-सा हो गया हूँ ।।१३।। ब्राह्मण ने कहा—पिशाचों मे सबसे अधिक बलशाली ब्रह्म राक्षस सुने जाया करते हैं । अहो तू अब मुझे खाने की इच्छा वाला है और तू ब्रह्म राक्षस परम विख्यात है ।।१४ ।

पिशाचानां समर्थोऽस्मि नष्टोऽहं तव दर्शनात् ।
दुःखं हि मृत्युः सर्वेषां जीवितं च सुदुर्ल्लभम् ।
अतो भीतः पलायामि जीवहेतोः सुखार्थतः ।।१५
कुतः पिशाचसौख्यतेमरणंश्रेय एव ते ।
पैशाची कुत्सितायोनिःपापिनामेवजायते ।।१६
सर्वत्र हि गतो जीवोभवत्येवसुखाश्रयः ।
तस्माज्जीवितुमिच्छामिप्रसीदब्रह्मराक्षस ।।१७

नाहं त्वां भोक्तुकामोऽस्मि ब्राह्मणोऽहं न राक्षसः ।
सर्वभूतहितार्थाय विचरामि महीतले ॥१८
सर्वेषामेव जन्तूनां मैत्रो ब्राह्मण उच्यते ।
माकुरुष्वभयं मत्तो मित्रभावगतो ह्यहम् ॥१९
तस्य तद्वचनं श्रुत्वापिशाचः स्वस्थमानसः ।
प्रणम्यप्रत्युवाचेदं ब्राह्मणं शाकटायनम् ॥२०
यदि ते सर्वभूतानां दत्ता ह्यभयदक्षिणा ।
कर्मणा मनसावाचा मित्रभावं गतो यदि ॥२१

उस पिशाच ने कहा था—हे ब्राह्मण ! निस्सन्देह मैं समस्त पिशाचों में महान् बलवान हूँ एवं परम समर्थ भी हूँ किन्तु तुम्हारे दर्शन से तो मैं नष्ट-सा हो गया हूँ—मेरी सारी शक्ति क्षीण हो गई है । यह मौत तो दुःखदायिनी हुआ करती है और यह जीवन अत्यन्त दुर्लभ हुआ करता है । इसलिये मैं सुखपूर्वक जीवन रखने के लिए इस जीवन के ही कारण भयभीत होकर दौड़ रहा हूँ ॥१५॥ ब्राह्मण ने कहा—हे पिशाच ! तुमको इस जीवन जीने मे सुख कहाँ है ? तेरा तो मरना ही कल्याण करने वाला है । तुझे जो यह पिशाच बन जाने की योनि प्राप्त हुई है । यह तो बहुत ही बुरी है और महापापियों को ही यह मिला करती है । पिशाच ने कहा—कही भी रहे सर्वत्र ही यह जीवात्मा सुख के ही आश्रय वाला हुआ करता है । इसीलिये मैं जीवित रहना चाहता हूँ हे ब्रह्म राक्षस ! आप मुझ पर प्रसन्न होकर कृपा कीजिए ॥१६-१७॥ ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्रह्म राक्षस नहीं हूँ । मैं तो ब्राह्मण हूँ । मैं तुझे खाना भी नहीं चाहता हूँ । मैं इस भूमण्डल में समस्त प्राणियों के हित करने के लिये ही विचरण किया करता हूँ ॥१८॥ देखो, यह ब्राह्मण वर्ण ऐसा होता है कि यह सभी प्राणियों का हित करने वाला और सबका मित्र कहा जाया करता है । मुझसे हे पिशाच ! तुम किसी भी प्रकार का भय मत करो मैं तो तुम्हारे साथ मित्र भाव को ही प्राप्त हो गया हूँ ॥१९॥ उसके उस वचन का श्रवण कर पिशाच स्वस्थ मन वाला हो गया । उस पिशाच ने शाकटायन विप्र को प्रणाम करके यह वचन बोला

था ॥२०॥ यदि आपने समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने की दक्षिणा दे दी है और यदि आप मन—कर्म तथा वचन से मित्र भाव को प्राप्त हो गये हैं अर्थात् पूर्णतया आप मेरा हित ही चाहते हैं ॥२१॥

पृच्छामि त्वां महाभाग संशयो हृदये स्थितः ।
श्रुत्वाऽनुकम्पया सम्यक्तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥२२
केन कर्मविपाकेन पैशाचं याति मानवः ।
पिशाचत्वात्कथं मुक्तिःप्राप्यतेपापकर्मभिः ॥२३
इति तस्य वचः श्रुत्वा पिशाचस्यवरानने ।
ममत्वेनावृतस्तस्मै प्रावोचच्छाकटायनः ॥२४
अपहृत्य च विप्रस्वं देवस्वं च विशेषतः ।
तेनपापेन पापिष्ठाः पिशाचत्वंप्रयान्तिच ॥२५
पितरं मातरं चैव स्त्रियं बालं द्विजं तथा ।
वञ्चयित्वा हरत्यर्थं स पिशाचो भवेन्नरः ॥२६
राजद्रव्यं गृहीत्वा तु न यजेन्नददातियः ।
आत्मानमेव पुष्णातिपिशाचत्वंसगच्छति ॥२७
विश्वासघातका ये च परदाररताश्चये ।
प्राप्नुवन्ति पिशाचत्वं तथा ये वेदनिन्दकाः ॥२८

हे महाभाग ! मेरे हृदय में एक बड़ा भारी संशय उत्पन्न हो गया है। उसके विषय में मैं आपसे पूछ रहा हूँ। आप उसे सुनकर कृपया अच्छी तरह से व्याख्या करके समझाने के योग्य हैं ॥२२॥ यह मनुष्य किस कर्म के विपाक से इस पिशाच की योनि को प्राप्त किया करता है ? और यह भी बतलाइये कि वे कौन से कर्म हुआ करते हैं जिनके करने से इस पिशाचता प्राप्त कराने वाले पापपूर्ण कर्मों से मनुष्य मुक्ति को प्राप्त किया करते हैं ? ॥२३॥ हे वरानने ! उस पिशाच के उस वचन को सुनकर ममता से भर कर शाकटायन उससे कहने लगा ॥२४॥ ब्राह्मण का धन और विशेष रूप से देवोत्तर सम्पत्ति का अपहरण करके ही उस महापाप से पापिष्ठ लोग पिशाच की योनि प्राप्त किया करते हैं ॥२५॥

माता-पिता, स्त्री, बालक और द्विज को प्रतारित करके जो इनके धन का हरण करता है वह मनुष्य भी पिशाच हो जाता है ॥२६॥ जो राजा का द्रव्य ग्रहण कर न तो उससे यजन करता है और न दान ही देता है उससे केवल अपना ही पोषण किया करता है वह भी पिशाचत्व को प्राप्त हो जाया करता है ॥२७॥ जो विश्वास के घात करने वाले होते हैं और पराई स्त्रियों से रति रक्खा करते हैं तथा जो वेदों की निन्दा करने वाले हैं वे भी पिशाच-योनि को प्राप्त हो जाया करते हैं ॥२८॥

निन्दन्ति ये पुराणानि धर्मशास्त्राणि सर्वदा ।
ते भवन्ति पिशाचाश्च ये सदा पिशुना नराः ॥२९
इति ते कथितं सर्वं वेदप्रामाण्यतोऽधुना ।
इदानीं कथयिष्यामि यस्त्वं जातोऽसि तच्छृणु ॥३०
सोमकोनाम शूद्रस्त्वं परमर्मप्रकाशकः ।
विश्वासघातको जातो देवब्राह्मणदूषकः ॥३१
नास्तिको भिन्नमर्यादो जन्मन्यत्रापि सप्तमे ।
सकुलं पातयित्वात्र नरकेदारुणेभृशम् ॥३२
पिशाचयोनिं सम्प्राप्त. पुनः प्राप्स्यसिरौरवम् ।
महारौरवसञ्ज्ञं तु कच्चं कालसूत्रकम् ।
यन्त्रपीडनकं रौद्रं मथनं कुम्भवालुकम् ॥३३
इत्येवं वदतस्तस्य ब्राह्मणस्य यशस्विनि ।
सस्मार प्राक्तनं जन्म सत्सङ्गात्कुत्सितं स्वकम् ॥३४
दुःखाभिभूतो निश्चेष्टो धिग्धिगित्यमकृद्ब्रुवन् ।
पतितो भूतले देवि इदं वाक्यमथाब्रवीत् ॥३५

जो पुरुष सदा पुराणों की और धर्म शास्त्रों की बुराई किया करते हैं और जो चुगलखोर होते हैं वे मनुष्य पिशाच हो जाते हैं ॥२९॥ यह सब इस समय मैंने वेदों के प्रमाण के आधार पर ही बतला दिया है और अब मैं वह बात बतलाता हूँ जिसके कारण से तुम पिशाच हो गये हो इसे सुन लो ॥३०॥ तुम सोमक नामधारी शूद्र थे और हमेशा दूसरों के मर्म (रहस्य) को प्रकट करने वाला था। तुम विश्वास का घात करने

वाले तथा देवो और ब्राह्मणों की बुराई किया करते थे ॥३१। परम नास्तिक—मर्यादा को तोड देने वाला इस सातवें जन्म मे भी बराबर रहा था। तुमने अपने आपके सम्पूर्ण कुल को अत्यन्त दारुण नरक में डालकर इस पिशाच की योनि को प्राप्त किया है। फिर भी तुम अभी आगे रौरव—महारौरव—क्रकच—काल सूत्रक—यन्त्र पीडिनक—रौद्र—मथन—कुम्भ बालुक आदि महा घोर नरको को प्राप्त करोगे। हे यशस्विनि ! वह ब्राह्मण इस प्रकार से कह ही रहा था कि उस पिशाच ने अपने पूर्व जन्म का इस विप्र के सत्सङ्ग से स्मरण कर लिया था जो कि बहुत ही बुरा था ॥३२-३४॥ मुझे धिक्कार है—मैं धिक्कार का पात्र ही हूँ—ऐसा बारम्बार कहता हुआ वह पिशाच अत्यन्त दुःखित होकर बेहोश हो हे देवि ! भूतल में गिरकर यह वाक्य बोला—॥३५॥

अहोकेनापि पुण्येन भवता सह दर्शनम् ।
जातं ममाल्पपुण्यस्य दीनस्यकृपणस्य च ॥३६
नास्ति धर्मसमं मित्रं नास्ति धर्मसमागतिः ।
नास्तिधर्मसमं त्राणं स च नास्ति मम प्रभो ॥३७
मग्नोऽहं दुःखजलधौ मग्नोऽहं पापकर्दमे ।
भ्रान्तोऽहमन्धतमसिततस्त्वांशरणं गतः ॥३८
नमस्तेऽस्तु महाभाग किं करोमि प्रशाधि माम् ।
तत्पौनर्ल्निर्दिष्टमिदं प्राप्तं मयाऽधुना ॥३९
एवं निगदतस्तस्य पिशाचस्य वरानने ।
कथयामास माहात्म्य सविप्रःशाकटायनः ॥४०
पृथिव्यायानितीर्थानि आसमुद्रगतानिवै ।
क्षेत्राणियानिसन्तीहतेषांक्षेत्रं सुपुण्यदम् ॥४१
महाकालवनं क्षेत्रं प्रलयेऽप्यक्षयं गतम् ।
लिङ्गं तत्र महाक्षेत्रे पिशाचत्वविनाशनम् ॥४२
ढुण्ढेश्वरस्य देवस्यदक्षिणेत्रिदशार्चितम् ।
पैशाचं विद्यतेभूयः पिशाचयोनिनाशनम् ।
तस्य दर्शनमात्रेण पिशाचत्वात्प्रमोक्ष्यसे ॥४३

प्रो हो ! मेरा न मालूम कौन-सा कोई ऐसा पुण्य का उदय हुआ है जिससे आपका यह दर्शन मुझे प्राप्त हो गया है अन्यथा मैं तो महापापी दीन घोर कृपण हूँ ।।३६।। धर्म के समान अन्य कोई मित्र नहीं है और धर्म के तुल्य कोई दूसरी गति ही है। यह धर्म ही परम रक्षक है। इसके अतिरिक्त रक्षा करने वाला अन्य कुछ भी नहीं है। हे प्रभो ! वह धर्म ही मेरा लेश मात्र भी नहीं है ।।३७।। मैं तो दुःखों के अपार सागर में मग्न हो गया हूँ और पापों के दलदल में गड़ा हुआ हूँ। मैं इस परम घोर अन्धकार में भ्रम रहा हूँ इसलिए अब मैं आपकी शरण में प्राप्त हो गया हूँ ।।३८।। हे महाभाग ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे आप प्रशासित कीजिये कि मैं क्या करूँ। आपके इस तपस्या के बल से निर्देश किया हुआ मैंने अब यह प्राप्त कर लिया है ।।३९।। हे वरानने ! इस प्रकार से उस पिशाच के कहने पर उस विप्र शाकटायन ने माहात्म्य कहा था ।।४०।। इस भूमण्डल में समुद्र पर्यन्त जो भी तीर्थ हैं और जितने भी यहाँ पर धर्म के क्षेत्र हैं उन सबका सुपुण्य प्रदान करने वाला क्षेत्र एक ही है ।।४१।। यह महाकाल वन नामक क्षेत्र है जो प्रलय काल में भी जब कि सभी कुछ नष्ट हो जाया करते हैं अक्षय बना रहा करता है। उस महाक्षेत्र में शिव लिंग हैं जो कि इस पिशाच की योनि का विनाश कर देने वाले हैं।।४२।। कुण्डेश्वर देव के दक्षिण भाग में देवों के द्वारा समर्चित पैशाच लिंग है जो पिचाश की योनि का नाश कर देने वाला है। उसके दर्शन करने का ही ऐसा अद्भुत प्रभाव होता है कि इससे ही मनुष्य पिशाच योनि से प्रयुक्त हो जाया करता है ।।४३।।

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा स पिशाचो वरानने ! ।
आजगामत्वरायुक्तो नमस्कृत्यद्विजं तदा ।।४४

महाकालवने पुण्ये समीहितफलप्रदे ।
ददर्श तत्र तल्लिङ्गं स्नात्वा शिप्राजले शुभे ।।४५

दर्शनात्तस्य लिङ्गस्यसपिशाचो वरानने !।
तत्क्षणाद्दिव्यदहस्तु दिव्याभरणभूपितः ।।४६

दिव्यं विमानमारूढो गतो लोके सनातने ।
उद्धृत्यसकलं गोत्रं मातृकं पैतृकं तथा ॥४७
दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यमाहात्म्यातिशयं प्रिये ! ।
प्रोक्तं देवैर्विमानस्थैः सिद्धै राकाशगैस्तथा ॥४८
पिशाचोऽपि गतः स्वर्गमस्य लिंगस्य दर्शनात् ।
अतो देवः स विख्यातो भविष्यति महीतले ॥
पिशाचेश्वरसञ्ज्ञस्तु सर्वपापप्रणाशनः ॥४९

हे वरानने ! उस ब्राह्मण के इस वचन का श्रवण करके वह पिशाच उस ब्राह्मण शाकटायन का प्रणाम करके उसी समय में बड़ी ही शीघ्रता से युक्त होकर वहाँ पर समागत हो गया था ॥४४॥ अभीष्ट फल के प्रदान करने वाले परम पुण्यमय उस महाकाल वन में पहुँचकर उसने शिप्रा के शुभ जल में स्नान किया और फिर उस लिंग का दर्शन किया था ॥४५॥ हे वरानने ! वह पिशाच उस लिंग के दर्शन से उसी क्षण में दिव्य देह धारण करके परम दिव्य आभरणों से विभूषित हो गया था और फिर परम दिव्य विमान में समारूढ़ होकर सनातन लोक को चला गया था और फिर उसने इसी के प्रभाव से अपने पितृकुल तथा मातृकुल के पितरों का भी उद्धार कर दिया था ॥४६-४७॥ हे प्रिये ! उस महान् आश्चर्य से भरे हुए इस माहात्म्य के अतिशय को देख कर देवगण भी जो विमानों में संस्थित थे और आकाशगामी सिद्ध गण भी कहने लगे थे—अहो हो ! क्या अद्भुत माहात्म्य है कि इस लिंग के केवल दर्शन से यह महान् पापात्मा परम निकृष्ट पिशाच भी स्वर्ग में चला गया है । इसी लिये वह देव इस महीतल में पिशाचेश्वर संज्ञा वाला विख्यात हो जायगा क्योंकि यह तो पिशाचों के भी समस्त पापों का नाश करने वाला है ॥४८-४९॥

येपश्यन्तिनरादेवि ! पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
तेषांहिपितरः सद्योयेचापिनिरयेस्थिताः ।
पिशाचत्वाद्विमुच्यन्ते स्वर्गं यान्ति न संशयः ॥५०

अश्वमेधस्य यज्ञस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम् ।
तत्फलं लभते सोऽपि पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥५१
गयायां पिण्डदानेनयत्पुण्यं समुदाहृतम् ।
तत्पुण्यमधिकं ज्ञेयं पिशाचेश्वरदर्शनात ॥५२
ये पश्यन्ति चतुर्दश्यां पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
प्रेतत्वंचपिशाचत्वं कुलेतेषांनजायते ॥५३
न वियोनिं नरो याति नरकं चनपश्यति ।
प्रमङ्गेनापियः पश्येत्पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥५४
सर्वैश्वर्यसमायुक्तः सर्वबन्धुसमन्वितः ।
मोदतेपितृलोके स पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥५५
कीर्त्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा स्वर्गं च गच्छति ।
स्पर्शनादस्त लिंगस्य पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥५६
तदैव स नरो मुक्तः संसारनिगडादिभिः ।
यदैव वीक्षतेलिङ्गं पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥५७
यज्ञानां तपसां चैव दानानां चैवयत्फलम् ।
तत्फलं कोटिगुणितं जायतेतस्यदर्शनात् ॥५८
यदि पश्येच्चतुर्दश्यां वैशाखे कार्त्तिकेतथा ।
तस्यपुण्यमसंख्यातं जायतेनात्रसंशय ॥५९
एपते कथितो देवि ! प्रभावः पापनाशनः ।
पिशाचेश्वरदेवस्य श्रूयतां सङ्गमेश्वरम् ॥६०

हे देवि ! जो मनुष्य इस पिशाचेश्वर नामक लिंग का दर्शन किया करते हैं उनके समस्त पितर जो भी नरकों में यातनाऐं भोग रहे हैं तुरन्त ही पिशाचता से मुक्त होकर स्वर्ग को गमन किया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥५०॥ भली भाँति यजन किये हुए अश्वमेध यज्ञ का जो फल होता है उसी पुण्य-फल को मनुष्य भगवान् पिशाचेश्वर के दर्शन से प्राप्त कर लेता है ॥५१॥ गया में पिण्डों के दान से जो पुण्य बताया गया है उससे भी अधिक पुण्य पिशाचेश्वर के दर्शन से होता है ॥५२॥ चतुर्दशी में जो पिशाचेश्वर का दर्शन करते हैं उनके कुल में प्रेतत्व

दिव्यं विमानमारूढो गतो लोके सनातने ।
उद्धृत्यसकलं गोत्रं मातृकं पैतृकं तथा ॥४७
दृष्ट्वा तन्महदाश्चर्यंमाहात्म्यातिशयं प्रिये ! ।
प्रोक्तं देवैर्विमानस्थैः सिद्धै राकाशगै स्तथा ॥४८
पिशाचोऽपि गतः स्वर्गं मस्य लिंगस्य दर्शनात् ।
अतो देवः स विख्यातो भविष्यति महीतले ॥
पिशाचेश्वरसञ्ज्ञस्तु सर्वपापप्रणाशनः ॥४९

हे वरानने ! उस ब्राह्मण के इस वचन का श्रवण करके वह पिशाच उस ब्राह्मण शाकटायन को प्रणाम करके उसी समय मे बड़ी ही शीघ्रता से युक्त होकर वहाँ पर समागत हो गया था ॥४४॥ अभीष्ट फल के प्रदान करने वाले परम पुण्यमय उस महाकाल वन में पहुँचकर उसने शिप्रा के शुभ जल में स्नान किया और फिर उस लिंग का दर्शन किया था ॥४५॥ हे वरानने ! वह पिशाच उस लिंग के दर्शन से उसी क्षण में दिव्य देह धारण करके परम दिव्य आभरणों से विभूषित हो गया था और फिर परम दिव्य विमान में समारूढ़ होकर सनातन लोक को चला गया था और फिर उसने इसी के प्रभाव से अपने पितृकुल तथा मातृकुल के पितरों का भी उद्धार कर दिया था ॥४६-४७॥ हे प्रिये ! उस महान् आश्चर्य से भरे हुए इस माहात्म्य के अतिशय को देख कर देवगण भी जो विमानों में संस्थित थे और आकाशगामी सिद्ध गण भी कहने लगे थे—अहो ही ! क्या अद्भुत माहात्म्य है कि इस लिंग के केवल दर्शन से यह महान् पापात्मा परम निकृष्ट पिशाच भी स्वर्ग में चला गया है। इसी लिये यह देव इस महीतल में पिशाचेश्वर संज्ञा वाला विख्यात हो जायगा क्योंकि यह तो पिशाचों के भी समस्त पापों का नाश करने वाला है ॥४८-४९॥

येऽर्चयन्तिवरारोहे ! पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
तेषांहिपितरः सद्योयेचापिनिरयेस्थिताः ।
पिशाचयोनिमुक्तास्ते स्वर्गं यान्ति न संशयः ॥५०

अश्वमेधस्य यज्ञस्य सम्यगिष्टस्य यत्फलम् ।
तत्फलं लभते सोऽपि पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥५१
गयाया पिण्डदानेनयत्पुण्यं समुदाहृतम् ।
तत्पुण्यमधिकं ज्ञेयं पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥५२
ये पश्यन्ति चतुर्दश्या पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ।
प्रेतत्वंचपिशाचत्वं कुलेतेषानजायते ॥५३
न वियोनिं नरो याति नरकं चनपश्यति ।
प्रसङ्गेनापिय पश्येत्पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥५४
सर्वैश्वर्यसमायुक्तः सर्वबन्धुसमन्वितः ।
मोदतेपितृलोके स पिशाचेश्वरदर्शनात् ॥५५
कीर्त्तनान्मुच्यते पापाद् दृष्ट्वा स्वर्गं च गच्छति ।
स्पर्शनादस्त लिङ्गस्य पुनात्यासप्तमं कुलम् ॥५६
तदैव स नरो मुक्त सपारनिगडादिभि ।
यदैव वीक्षतेलिङ्गं पिशाचेश्वरसञ्ज्ञकम् ॥५७
यज्ञाना तपसा चैव दानाना चं वयत्फलम् ।
तत्फलंकोटिगुणितं जायतेतस्यदर्शनात् ॥५८
यदि पश्येच्चतुर्दश्या वैशाखे कार्त्तिकेतया ।
तस्यपुण्यमसंख्यातं जायतेनात्रसंशय ॥५९
एपते कथितो देवि ! प्रभाव. पापनाशनः ।
पिशाचेश्वरदेवस्य श्रूयता सङ्गमेश्वरम् ॥६०

हे देवि ! जो मनुष्य इस पिशाचेश्वर नामक लिंग का दर्शन किया करते हैं उनके समस्त पितर जो भी नरकों में यातनाएं भोग रहे हैं तुरन्त ही पिशाचता से मुक्त होकर स्वर्ग को गमन किया करते हैं—इसमें कुछ भी संशय नहीं है ॥५०॥ भली भाँति यजन किये हुए अश्वमेध यज्ञ का जो फल होता है उसी पुण्य-फल को मनुष्य भगवान् पिशाचेश्वर के दर्शन से प्राप्त कर लेता है ॥५१॥ गया में पिण्डों के दान से जो पुण्य बताया गया है उससे भी अधिक पुण्य पिशाचेश्वर के दर्शन से होता है ॥५२॥ चतुर्दशी में जो पिशाचेश्वर का दर्शन करते हैं उनके कुल में प्रेतत्व और

पिशाचता कभी नही होती है । ॥५३॥ वह वियोनि और नरक मे नही जाता है । जो अन्य प्रसङ्ग से भी पिशाचेश्वर का दर्शन कर लेता है वह सब ऐश्वर्य और बान्धवों से युक्त हो जाता है तथा पितृ लोक मे भी परम प्रसन्न रहता है । कीर्त्तन से ही पापमुक्त हो जाता है । दर्शन से स्वर्ग मिला करता है । लिंग के स्पर्श से सात कुलो को पवित्र कर देता है । ज्योंही दर्शन करता है वैसे ही ससार के बन्धनो से मुक्त हो जाता है । यज्ञ—तप—दानों का जो फल है उनसे करोड़ गुना फल दर्शन से होता है । वैशाख—कार्त्तिक मे चतुर्दशी के दर्शन से जो पुण्य होता है वह असख्य है—इसमे संशय नही है । हे देवि ! यह पापों का नाशक प्रभाव कह दिया है ॥५४-६०॥

———

## १०६—अग्नितीर्थ,सर्पतीर्थमाहात्म्यवर्णन

ततोगच्छेत्तु राजेन्द्र ! अग्नितीर्थमनुत्तमम् ।
तत्र स्नात्वा तु पक्षादौ मुच्यते सर्वकिल्विषैः ॥१
तत्रतीर्थे तु यः कन्यां दद्यात्स्वयमलङ्कृताम् ।
तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्व नरोत्तम ॥२
अग्निष्टोमातिरात्राभ्यां शतं शतगुणीकृतम् ।
प्राप्नोति पुरुषो दत्त्वा यथाशक्त्या ह्यलङ्कृताम् ॥३
तस्याः पुत्रप्रपौत्राणां या भवेद्रोमसङ्ख्यतिः ।
स याति तेन मानेन शिवलोके परां गतिम् ॥४

श्रीमार्कण्डेय मुनि ने कहा—हे राजेन्द्र ! इसके पश्चात् सर्वोत्तम अग्नि तीर्थ को गमन करना चाहिए पक्ष के आदि मे वहाँ पर स्नान करके मनुष्य समस्त किल्विषो से मुक्त होकर विशुद्ध हो जाया करता है ॥१॥ जो कोई मनुष्य उस तीर्थ मे स्वय समलकृत करके किसी कन्या का दान दिया करता है उसका जो पुण्य—फल बताया गया है वह हे नरोत्तम ! मुझसे श्रवण कीजिए । अग्निष्टोम और अतिरात्र इन दोनो के पुण्य से सौ—सौ गुना पुण्य फल अलकारो से यथाशक्ति विभूषित कन्या का दान करके पुरुष प्राप्त किया करता है ॥२-३॥ उस कन्या के पुत्र और पुपौत्रों

के जितने भी शरीर के रोमावलि होती है उन्ही के मास से वह पुरुष शिव लोक मे परागति को प्राप्त करता है ॥४॥

ततो गच्छेन्महाराज सर्पतीर्थ मनुत्तमम् ।
यत्र सिद्धा महासर्पास्तपस्तप्त्वा युधिष्ठिर ! ॥५

वासुकिस्तक्षकोघोरः सर्प ऐरावतस्तथा ।
कालियश्चमहाभागः कर्कोटकधनञ्जयौ ॥६

शङ्खचूडो महातेजा धृतराष्ट्रो वृकोदरः ।
कुलिको वामनश्चैवतेषा ये पुत्रपौत्रिणः ॥७
तत्र तीर्थे महापुण्ये तपस्तप्त्वा सुदुष्करम् ।
भुञ्जन्ति विविधान्भोगान्क्रीडन्ति च यथासुखम् ॥८

तत्र तीर्थे तुयः स्नात्वातर्पयेत्पितृदेवताः ।
वाजपेयफलं तस्य पुरा प्रोवाच शङ्कर ॥९
स्नातानांसर्पतीर्थेतुनराणां भुविभारत ।
सर्ववृश्चिकजातिभ्योम भयविद्यतेक्वचित् ॥१०

श्री मार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे महाराज ! इसके अनन्तर सर्वोत्तम सर्प तीर्थ मे गमन करे । हे युधिष्ठिर ! जहाँ पर महा सर्पों ने तपश्चर्या करके सिद्धि प्राप्ति की है । उन महा सर्पों के नाम बतलाये जाते हैं—वासुकि—तक्षक—परम घोर सर्प ऐरावत—महाभाग कालिय—कर्कोटक—धनञ्जय—शंखचूड़—महान् तेज वाला धृतराष्ट्र—वृकोदर—कुलिक और वामन ये महा सर्प कहे जाते हैं । इनके जो भी पुत्र और पौत्र थे वे भी सब है । उस महा पुण्यमय तीर्थ मे य परम दुष्कर तपस्या करके नाना प्रकार के भोगो का उपभोग किया करते हैं और सुख पूर्वक क्रीड़ा करते हैं ।।५-८।। उस तीर्थ मे जो कोई भी मनुष्य स्नान करके अपने पितृगण और देवो का तर्पण किया करता है भगवान् शंकर ने पहिले ही कहा था कि उस पुरुष को वाजपेय यज्ञ करने का फल होता है ॥९॥ हे भारत ! इस भूलोक मे इस सर्प तीर्थ मे स्नान किये हुए पुरुषो को सर्प तथा वृश्चिक ( विच्छू ) जातियो से कहीं भी कभी कोई भय नही होता है ॥१०॥

मृतो भोगवती गत्वापूज्यमानोमहोरगैः ।
नागकन्यापरिवृतो महाभोगपतिर्भवेत् ॥११
मार्गशीर्षस्य मासस्य कृष्णपक्षे च याऽष्टमी ।
सोपवासः शुचिर्भूत्वा लिङ्गं सम्पूरयेत्तिलैः ॥
यथाविभवसारेण गन्धपुष्पैः समर्चयेत् ॥१२
एवं विधाय विधिवत्प्रणिपत्यक्षमापयेत् ।
तस्य यत्फलमुद्दिष्टं तच्छृणुष्वनरेश्वर ॥१३
तिलास्तत्र च यत्सख्याः पत्रपुष्पफलानि च ।
तावत्स्वर्गपुरे राजन्मोदते कालमीप्सितम् ॥१४
ततः स्वर्गात्परिभ्रष्टो जायते विमले कुले ।
सुरूपः सुभगश्चैवधनकोटिपतिर्भवेत् ॥१५

वह मनुष्य मृत्युगत होकर भोगवती पुरी पहुँच जाता है और वहाँ पर महान् उरगों के द्वारा पूज्यमान हो जाता है। उसको नाग कन्याएँ चारों ओर से घेरे रहा करती हैं और अन्त में वह महाभोग पति हो जाया करता है ॥११॥ मार्गशीर्ष मास के कृष्णपक्ष में जो अष्टमी तिथि है उसमें उपवास के साथ पवित्र होकर लिंग को तिलों से पूरित कर देवे और अपने विभव की शक्ति के अनुसार गन्ध पुष्पादि उपचारों के द्वारा लिंग का अभ्यर्चन करना चाहिए। इस प्रकार से विधि—विधान के साथ करके प्रणाम करे और अपराध—क्षमापन कराना चाहिए। हे नरेश्वर ! उसका जो भी पुण्य—फल होता है उसको सुनिए। जितनी संख्या में वहाँ पर जो तिल होते हैं तथा जो संख्या पत्र पुष्प और फलों की होती है हे राजन् ! उतने ही वर्षों तक वह पूजा करने वाला अभिन ईप्सित काल पर्यन्त स्वर्ग में आनन्द प्राप्त किया करता है। फिर उस लम्बी स्वर्ग निवास करने की अवधि समाप्त हो जाने पर वहाँ से भ्रष्ट होकर यहाँ इस भूमण्डल में किसी विमल कुल में जन्म ग्रहण किया करता है। वह परम सुभग और सुन्दर सुरूप वाला होते हुए धन का भी करोड़ पति हुआ करता है ॥१२-१५॥

---

## १०७—श्रीकपालतीर्थमाहात्म्यवर्णन

चतुर्थं संप्रवक्ष्यामि देवस्य चरितं महत् ।
श्रुतमात्रेण येनैवसर्वपापैः प्रमुच्यते ॥१
कपाली कान्थिको भूत्वा यथा स ह्यचरन्महीम् ।
पिशाचै राक्षसैर्भूतै र्डाकिनीयोगिनीवृतः ॥२
भैरवं रूपमास्थाय प्रेतासनपरिग्रहः ।
त्रैलोक्यस्याऽभयं दत्त्वाचचार विपुलं तपः ॥३
आषाढीं तु कृतातश्चाषाढं नामविश्रुतम् ।
कन्थामुक्ता ततोऽन्यत्रदेवेकपरमेष्ठिना ॥४
तदाप्रभृतिराजेन्द्र स कन्थेश्वर उच्यते ।
तस्य दर्शनमात्रेण ह्यश्वमेधफलं लभेत् ॥५
देवो मार्गे पुनस्तत्र भ्रमते चयदृच्छया ।
विक्रीणातिबलाकारो दृष्ट्वाचोक्तोहरेणतु ॥६
यदि भद्रन चेत्कोपं करोपिमयिसाम्प्रतम् ।
बलाभिर्भैरमेलिंगं ददामिबहुने धनम् ॥७

श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—अब मैं देवेश्वर प्रभु का चौथा महान् चरित कहता हूँ जिसके केवल श्रवण कर लेने ही से मनुष्य सभी प्रकार के पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है। भगवान् शम्भु कपाली और कन्था धारण करने वाले होकर सम्पूर्ण महीमण्डल पर विचरण किया करते थे और उनके साथ पिशाच-राक्षस-भूत डाकिनी और योगिनियाँ रहा करती थीं ॥१-२॥ परम भैरव स्वरूप धारण करके त्रैलोक्य को अभय का दान देकर प्रेतासन पर स्थित होकर परम दुश्चर तपस्या की थी। वहाँ पर उन्होंने आषाढी की थी अतएव आषाढ़ी यह नाम विश्रुत हो गया था। इसके अनन्तर परमेष्ठी देव ने अन्यत्र कन्था मुक्त करदी थी। हे राजेन्द्र ! तभी से वह कन्थेश्वर कहे जाते हैं। उनके दर्शन मात्र से ही मनुष्य अश्वमेध यज्ञ करने का फल प्राप्त किया करता है। फिर देव मार्ग में वहाँ पर यदृच्छा से भ्रमण करते थे। एक बलाकार विक्रय किया करता था।

भगवान् हर ने उसे देखकर उससे कहा—हे भद्र यदि आपको कोई क्रोध न हो तो और मुझ पर आप नाराज नही होवें तो आप बलाओ से मेरे लिंग को भर दीजिए। मैं आपको बहुत अधिक धन दूँगा ।।३-७।।

एवमुक्तोऽथ देवेन स वणिग्लोभमोहितः ।
योजयामास वल्का लिंगे चोत्तममध्यमान् ॥८
तावद्यावत्क्षयं सर्वे गताः काले सुसञ्चिताः ।
स्थितं समुन्नतं लिंगं दृष्ट्वा शोकमुपागतम् ॥९
कृत्वा तु खण्डखण्डानि स देवः परमेश्वरः ।
उवाच प्रहसन्वाक्यं तं दृष्ट्वागतसाध्वसम् ॥१०
नचमे पूरितं लिंगं यास्यामियदिमन्य से ।
ददामि तत्रवित्तं तेयदि लिंगं प्रपूरितम् ॥११
अथन्योक्तपुन्योऽहं निग्राह्य परमेश्वर ।
तवप्रियमकुर्वाण चोष्येशाश्वतीः समाः ॥१२
एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य वणिक्पुत्रस्य भारत ।
असक्षयं धनं दत्त्वास्थितस्तत्रमहेश्वर ॥१३
तदा प्रभृति राजेन्द्र । वलाकैरिव भूषितम् ।
प्रत्ययार्थं स्थितं लिंगं लोकानुग्रहकाम्यया ॥१४

जब इस तरह से शम्भु के द्वारा उस बनिये से कहा गया तो वह वणिक लोभ से मोहित होकर उत्तम—मध्यम वलकाओ को उनके लिंग पर योजित करने लग गया था। वह तब तक उन्हें योजित करता हो चला गया जब तक सुसचित वे सब क्षय को प्राप्त हो गई थीं अर्थात् सब समाप्त हो गई थी जो उसने एकत्रित कर रक्खी थी किन्तु उस लिंग की पूर्ति नहीं हुई थी क्योंकि वह तो वैसा ही समुन्नत होकर स्थित हो रहा था—यह देखकर वह वणिक बड़े भारी शोक को प्राप्त हो गया था। वह परमेश्वर देव खण्ड—खण्ड करके हँसते हुए बोले और उसको भयगत देखकर उससे कहा—मेरे लिंग को पूरित नहीं किया गया है यदि ऐसा तुम मानते हो तो मैं अब चला जाऊगा। यदि मेरा लिंग प्रपूरित हो गया होता तो मैं वहीं पर तुझे धन दे देता। उस वणिक् ने कहा—हे

परमेश्वर ! मैं बहुत ही अधन्य और विना पुण्य वाला हूँ और निग्रह करने के योग्य हूँ। आपका प्रिय न करता हुआ मैं बहुत वर्षों तक चिन्ता करूंगा। हे भारत ! इस वचन को सुनकर उस वणिक् पुत्र को अक्षय धन देकर महेश्वर वहीं पर स्थित हो गये थे। हे राजेन्द्र ! तभी से मकर बलाको से भूषित की भाँति लोकों पर अनुग्रह करने की कामना से विश्वास कराने के लिये वह लिंग स्थित हो गया था ॥८-१४॥

देवेन रचितं पार्थं क्रीडया सुप्रतिष्ठितम् ।
देवमार्गमिति ख्यातं त्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ।
पश्यन्प्रपूजयन्वाऽपि सर्वं पापैः प्रमुच्यते ॥१५
देवमार्गे तु यो गत्वापूजयेद्बलाकेश्वरम् ।
पञ्चायतनमासाद्यरुद्रलोकं स गच्छति ॥१६
देवमार्गे मृतानां तुनराणांभावितात्मनाम् ।
न भवेत्पुनरावृत्तीरुद्रलोकात्कदाचन ॥१७
देवमार्गस्य माहात्म्यं भक्त्या श्रुत्वा नरोत्तम ! ।
मुच्यते सर्वपापेभ्यो नाऽत्र कार्या विचारणा ॥१८

हे पार्थ ! देवेश्वर ने क्रीडा से ही सुप्रतिष्ठित देवमार्ग की रचना की थी जो परम विख्यात और तीनों लोकों में विश्रुत था। इसका दर्शन करना अथवा इसकी पूजा करते हुए समस्त पापों से प्रमुक्त हो जाया करता है। जो कोई उस देवमार्ग में आकर भगवान् बलाकेश्वर की पूजा किया करता है वह पञ्चायतन को प्राप्त करके रुद्रलोक में गमन किया करता है। जो भावित आत्मा वाले पुरुष उस देवमार्ग में मृत्युगत होते हैं उन नरों की उस रुद्रलोक से यहाँ फिर पुनः आवृत्ति कभी भी नहीं होती है अर्थात् फिर यहाँ आकर जन्म ग्रहण नहीं किया करते हैं। हे नरोत्तम इस देवमार्ग के माहात्म्य को भक्ति से श्रवण करके मनुष्य सभी पापों से मुक्त अवश्य ही हो जाया करता है—इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए ॥१५-१८॥

## १०८—जामदग्न्यतीर्थ माहात्म्यवर्णन

ततोगच्छेद्धराधीश तीर्थं परमशोभनम् ।
जमदग्निरिति ख्यातं यत्रसिद्धो जनार्द्दनः ॥१
कथं सिद्धो द्विजश्रेष्ठ वासुदेवो जगद्गुरुः ।
मानुषं रूपमास्थाय लोकानां हितकाम्यया ॥२
एतत्सर्वं यथान्यायं देवदेवस्यचक्रिणः ।
चरितं श्रोतुमिच्छामि कथ्यमानं त्वयाऽनघ ॥३
आसीत्पूर्वं महाराज हैहयाधिपतिर्महान् ।
कार्त्तवीर्य इति ख्यातो राजा बाहुसहस्रवान् ॥४
हस्त्यश्वरथसम्पन्नः सर्वशस्त्रभृतां वरः ।
वेदविद्याव्रतस्नातः सर्वभूताभयप्रदः ॥५
माहिष्मत्याः पतिः श्रीमान्राजा स्वक्षौहिणीपतिः ।
स कदाचिन्मृगान्हन्तुं निर्जगाम महाबलः ॥६
बहुभिर्द्दिवसैः प्राप्तो भृगुकच्छमनुत्तमम् ।
जमदग्निर्महातेजा यत्र तिष्ठति तापसः ॥७

श्रीमार्कण्डेय महर्षि ने कहा—हे धराधीश ! इसके उपरान्त उस परम शोभा से समुत्पन्न तीर्थ को गमन करे जहाँ पर जनार्दन सिद्ध हुए थे और जो जमदग्नि—इस नाम से विश्रुत है । युधिष्ठिर ने कहा—हे द्विजो मे परम श्रेष्ठ ! जगत् के गुरु वासुदेव ने कसे सिद्धि प्राप्त की थी और लोकों पर हित की कामना से मनुष्य का स्वरूप धारण किया था ॥१-२॥ देवों के भी देव के इस सम्पूर्ण चरित का भगवान् चक्रधारी के वृत्तान्त का न्याय पूर्वक वर्णन मैं श्रवण करना चाहता हूँ । हे अनघ ! आपके द्वारा यह कथ्यमान होना चाहिए अर्थात् आप ही इसे वर्णन कीजिए । श्रीमार्कण्डेयजी ने कहा—हे महाराज ! एक परम महान् हैहयाधिपति पहिले हुआ था । वह कार्त्तवीर्य्य—इस नाम से विख्यात था और वह राजा एक सहस्र बाहुओं वाला था । वह समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने वाला राजा था तथा हाथी, घोड़े और रथ आदि

से सुसम्पन्न था एवं समस्त शस्त्र धारियों के परम श्रेष्ठ और सब विद्या तथा व्रतों में स्नात था। यह श्रीमान् माहिष्मती पुरी का पति और अक्षौहिणी सेना का स्वामी था। वह एक बार किसी समय में महान् बलशाली मृगों को मारने के लिये निकल गया था बहुत दिनों में परम उत्तम भृगु कच्छ में वह प्राप्त हो गया था जहाँ पर तपस्वी जमदग्नि ऋषि महान् तेज से युक्त स्थित थे ॥३-७॥

रेणुकासहितः श्रीमान्सर्वभूताभयप्रदः ।
तस्य पुत्रोऽभवद्रामः साक्षान्नारायणः प्रभुः ॥८
सर्वक्षत्रगुरुर्युक्तो ब्रह्मविद्ब्राह्मणोत्तमः ।
तोषयन्परया भक्त्या पितरौ परमार्थवत् ॥९
तं तदा चार्जुनं दृष्ट्वा जमदग्निः प्रतापवान् ।
चरन्तं मृगयां गत्वा ह्यातिथ्येनाभ्यमन्त्रयत् ॥१०
तथेति चोक्त्वा स नृपः सभृत्यबलवाहनः ।
जगाम चाश्रमं पुण्यमृषेस्तस्य महात्मनः ॥११
तत्क्षणादेव सम्पन्नं श्रिया परमया युतम् ।
विस्मयं परमं तत्र दृष्ट्वा राजा जगाम ह ॥१२
गतमानस्तु सिद्धेन परमान्नेन भोजितः ।
सभृत्यबलवान्राजा ब्राह्मणेन यदृच्छया ।
किमेतदिति पप्रच्छ कारणं शक्तिमेव च ॥१३
कामधेनोः प्रभावं तं ज्ञात्वा प्राह ततो द्विजम् ।
दक्षिणां देहि मे विप्र कल्पयां धेनुमुत्तमाम् ॥१४

यह तपस्वी समस्त प्राणियों को अभय प्रदान करने वाले श्रीमान् रेणुका के सहित यहाँ पर तपस्या किया करते थे उनके पुत्र राम अर्थात् परशुराम हुए थे जो साक्षात् प्रभु नारायण ही थे। वे यह ब्रह्म के ज्ञाता उत्तम ब्राह्मण थे किन्तु सम्पूर्ण क्षत्रियों के गुणों से युक्त थे। परशुराम अपने माता-पिता के परम भक्त थे और परा मातृ-पितृ-भक्ति के द्वारा उन्हें पूर्ण रूप से सन्तुष्ट करते हुए परमार्थ का ज्ञान रखने वाले थे। उस समय में परम प्रतापी जमदग्नि मुनि ने यहाँ पर सहस्रार्जुन

राजा को समागत देख कर जो कि मृगया ( शिकार ) करते हुए वहाँ पर उपस्थित हुए थे जमदग्नि उनके पास गये और उनका अतिथि-सत्कार करने के लिये निमन्त्रित किया था। 'तथास्तु'—अर्थात् अच्छा आपका आतिथ्य हमको स्वीकार है—यह कहकर वह राजा अपने समस्त भृत्य—सैन्य और वाहनों के सहित उस परम पवित्र पुण्य रूप महात्मा ऋषि के आश्रम में पहुँच गये थे। उसी क्षण में सुसम्पन्न और परम श्री से समावृत उस आश्रम को देखकर वहाँ पर राजा को परमाधिक विस्मय हो गया था। वहाँ पर पहुँचते ही परमोत्तम सुसिद्ध अन्न के द्वारा राजा को उसके समस्त भृत्य और सेना के सहित ब्राह्मण ने इच्छा पूर्वक यथेष्ट भोजन करा दिया था। राजा ने यह समस्त विशाल वैभव देखकर उनसे इस सब अत्यधिक पूर्ण आतिथ्य करने का कारण पूछा था और ऐसी आतिथ्य के सम्पन्न कर देने की क्या शक्ति है—यह भी प्रश्न किया था। मुनि के कह देने पर कामधेनु के उस महान् प्रभाव को जानकर राजा ने उस द्विज से कहा—हे विप्र ! भोजन तो हमको करा दिया है अब कुछ दक्षिणा दो और वह दक्षिणा यह कल्मषों को दूर करने वाली इस उत्तम धेनु को हमको दे दो ॥८-१४॥

शतं शतसहस्राणामयुतं नियुतं परम् ।
भूपितानां च धेनूनां ददामि तवचार्बुदम् ॥१५
अयुतैःप्रयुतैर्नाहं शतकोटिभिरुत्तमाम् ।
कामधेनुर्ममांतात नदास्यप्रातिगम्यताम् ॥१६
एवमुक्तः सराजेन्द्रस्तेन विप्रेणभारत ।
क्रोधसरक्तनयन इदं वचनमब्रवीत् ॥१७
यस्येदृशः कामचारो मय्यपि द्विजपातन ।
अहं ते पश्यतस्तस्मान्नयामि सुरभिं गृहात् ॥१८
कः क्रीडति सरोषेण निर्भयोहिमहाहिना ।
मृत्युदष्टोऽन्तरेणाऽपिममधेनु नयेतयः ॥१९
एवमुक्त्वा महादण्डं ब्रह्मदण्डमिवाऽपरम् ।
गृहीत्वा परमक्रुद्धो जमदग्निरथाबहं ॥२०

यस्यास्ति शक्तिस्तेजो वा क्षत्रियस्य कुलाऽधमः ।
धेनुं नयतु मे सद्यः क्षीणायुः सपरिच्छदः ।।२१

राजा ने जमदग्नि से कहा—मैं आपको शत—सहस्र—अयुत और नियुत तथा अर्बुद भूषित धेनु देता हूं किन्तु यह कामधेनु मुझको चाहिए। जमदग्नि ने कहा—हे तात ! अयुत ( दस हजार )-नियुत और सौ करोड़ भी धेनुओं के बदले मे मैं इस उत्तम कामधेनु को नही देसकता हूँ आप यहाँ से वापिस चले जाइए। हे भारत ! उस विप्र के द्वारा जब राजेन्द्र सहस्रार्जुन इस प्रकार से कह दिया गया तो वह राजा क्रोध से रक्त नेत्रों वाला होकर मुनि से यह वचन बोला—हे द्विजपांसन ! अर्थात् द्विजों में महान् नीच ! जिस तेरा मेरे प्रति भी ऐसा काम चार अर्थात् मनचाहा बरताव है तो मैं अब देखते हुए ही तेरे घर से इस सुरभि को ले जाता हूँ। द्विज ने कहा—ऐसा कौन है जो निर्भय होकर क्रोध से युक्त महान् सर्प से क्रीड़ा करता है। जो इस मेरी कामधेनु को लेजावेगा अर्थात् लेजाने की इच्छा करेगा वह बीच मे ही मृत्यु के द्वारा दृष्ट हो जावेगा अर्थात् मर लेगा इस प्रकार से कहकर जमदग्नि ने परम क्रुद्ध होकर दूसरे ब्रह्मदण्ड की ही भाँति अपने महादण्ड को ग्रहण करके वह मुनि बोला—जिस क्षत्रिय का ऐसा तेज अथवा शक्ति है जो कुल में अधम मेरी इस धेनु को लेजावे वह सपरिकर तुरन्त ही क्षीण आयु वाला हो जावे ।।१५-२१।।

एतच्छ्रुत्वा वचः क्रूरं हैहयः शतशोवृतः ।
धावमानःक्षितितले ब्रह्मदण्डहतोऽपतत् ।।२२

हुङ्कृतेन ततो धेन्वाः खड्गपाशासिपाणयः ।
निर्गच्छन्तः प्रदृश्यन्ते कल्मपायाः सहस्रशः ।।२३

नासापुटाग्राद्रोमाग्रात्किराता मागधा गुहात् ।
रन्ध्रान्तरेषु चोत्पन्नाः शतशोऽथ सहस्रशः ।।२४

एवमन्योऽन्यमाहत्य हैहयष्टकणान्दहन् ।
विनाशं सह विप्रेण गता ह्यर्जुनतेजसा । २५

कार्त्तवीर्यो जयं लब्ध्वा सङ्ख्ये हत्वा द्विजोत्तमम् ।
जगाम स्वां पुरीं हृष्टः कृतान्तवशमोहित. ॥२६
ततस्त्वरान्वित प्राप्तपश्चाद्रामो गतेरिपौ ।
आक्रन्दमानां जननीं ददर्श पितुरन्तिके ॥२७
केनेदमात्मनाशाय ह्यज्ञानात्साहसं कृतम् ।
मम तात जिघांसुर्यो द्रष्टु मृत्युमिहेच्छति ॥२८

सैकड़ों जनों से परिवृत हैहय ने जमदग्नि के इस परम क्रूर वचन को सुना था और वह धावमान होता हुआ ब्रह्मदण्ड से हत होकर भूतल मे गिर गया था । इसके अनन्तर उस कल्मपा धेनु के हुंकार से सहस्रों ही खड्ग–पाश और असि ( तलवार ) हाथों मे लेने वाले निकलते हुए दिखलाई दे रहे थे । नासापुटों के अग्रभाग से—रोमो के अगले भाग से—गुह्य से और रन्ध्रो के मन्तरो में सैकड़ों और सहस्रो ही किरात और मागर उत्पन्न हो गये थे । इस प्रकार हैहय के दङ्गणो का वध करते हुए आपस मे एक दूसरे को मारकर सहस्रार्जुन के तेज से विप्र जमदग्नि के सहित सब विनाश को प्राप्त हो गये थे । राजा कार्त्तवीर्य उस युद्ध मे विजय प्राप्त करके और उस उत्तम द्विज का वध करके अपनी पुरी को चला गया था और कृतान्त वश से मोहित देखा गया था । इसके पश्चात् उस रिपु के चले जाने पर शीघ्रता से युक्त राम ( परशुराम ) वहाँ प्राप्त हो गये थे । उन्होंने अपने पिता के सन्निकट माता को रुदन करते हुए देखा था । परशुराम ने कहा—किस दुष्ट ने अज्ञान से आत्म नाश करने के लिये ऐसा दुस्साहस किया है ? मेरे पिताजी को मारने की इच्छा वाला यह यहीं पर अब स्वयं अपनी मृत्यु को देखने की इच्छा कर रहा है ॥२२-२८॥

ततःसा रामवाक्येन गतसत्त्वेवविह्वला ।
उदर करयुग्मेन ताडयन्तीत्युवाच तम् ॥२९
अर्जुनेन नृशंसेन क्षत्रियैरपरैं सह ।
ह्राऽऽगत्यपिता तेन निहतो बाहुशालिना ॥३०

तं पश्य निहतं तातं गतासुं गतचेतसम् ।
संस्कृत्य विधिवत्पुत्र तर्पयस्वयथातथम् ॥३१
एतछ्रुत्वासवचनं जननीमभिवाद्यताम् ।
प्रतिज्ञामकरोद्धाता शृणुष्वचनराधिप ॥३२
त्रिः सप्तकृत्वः पृथिवीं निः क्षत्रियकुलान्वयाम् ।
स्नात्वा च तेषामसृजा तर्पयिष्यामि ते पतिम् ॥३३
तस्यापि परशुना बाहून्कार्त्तवीर्यस्य दुर्मतेः ।
छित्वा पास्यामि रुधिरमिति सत्यं शृणुष्व मे ॥३४

इसके अनन्तर राम के इस वाक्य से गत सत्व की भाँति अत्यन्त विह्वल होती हुई उसकी माता दोनों हाथों से छाती पीटती हुई उससे यह वचन बोली—परम क्रूर सहस्रार्जुन ने दूसरे क्षत्रियों के सहित यहाँ आकर बाहुशाली उसने ही तेरे पिता को निहत किया है। हे बेटा ! अपने मृत पिता का दर्शन कर ले जो इस समय में गत प्राण और चेतना से रहित हैं। हे पुत्र ! अब इनका तुम विधिपूर्वक अन्त्येष्टि संस्कार कर डालो और ठीक २ रीति इनका तर्पण करो। हे नराधिप ! माता के यह वचन सुनकर उस अपनी जननी का अभिवादन करके उन्होंने जो उस समय में प्रतिज्ञा की थी उसका आप अब श्रवण करिये—क्षत्रिय कुल के अन्वय वाली इस पृथ्वी को इक्कीस बार क्षत्रिय रहित करके उन्हीं के रक्त से स्नान कर के ही अब मैं आपके पति का तर्पण करूँगा। मैं अपने इस फरसा से उस दुर्मति कार्त्तवीर्य की भुजाओं का छेदन करके ही उसका रुधिर पान करूँगा—यह मेरा वचन सर्वथा सत्य है उसे सुन लो। इस प्रकार से प्रतिज्ञा करके परम प्रतापी जामदग्न्य ने महान् क्रोध से आविष्ट होकर फिर अपने पिता जमदग्नि का संस्कार किया था ॥२६-३४॥

एवं प्रतिज्ञां कृत्वाऽसौ जामदग्न्यः प्रतापवान् ।
क्रोधेन महताऽऽविष्टः संस्कृत्य पितरं ततः ॥३५
स हिष्मतीं पुरीं रामो जगाम क्रोधमूर्च्छितः ।
छित्वा बाहुवनं तस्य हत्वा तं क्षत्रियाधमम् ॥३६

जगामक्षत्रियान्तात पृथिवीमवलोकयन् ।
सप्तद्वीपार्णवयुता सशैलवनकाननाम् ॥३७
पूर्वतः पश्चिमामाशा दक्षिणोत्तरतःकुरून् ।
स्यमन्तपञ्चके पञ्च चकार रुधिरह्रदान् ॥३८
सतेपुरुधिराम्भस्सुह्रदेषु क्रोधमूर्च्छितः ।
पितृन्सन्तर्पयामासरुधिरेणेतिन श्रुतम् ॥३९
अथर्चीकादेयोपेत्य पितरो ब्राह्मणर्षभम् ।
तं क्षमस्वेति जगदुस्ततः स विरराम ह ॥४०
तेषा समीपे यो देशो ह्रदाना रुधिराम्भसाम् ।
स (स्य) मन्तपञ्चकमिति पुण्यं तत्परिकीर्त्तितम् ॥४१
निर्वर्त्यकमणस्तस्मात्पितृन्प्रोवाचपाण्डव ।
रामः परमधर्मात्मायदिदं रुधिरं मया ॥४२
क्षिप्तं पञ्चसु तीर्थेषु तद्भूयात्तीर्थमुत्तमम् ।
तथेत्युक्त्वा तु ते सर्वे पितरोऽदृश्यता गताः ॥४३

क्रोध से एक दम मूर्च्छित होते हुए परशुराम माहिष्मती पुरी को चल दिए थे। और वहाँ पहुचकर उसकी जो सहस्र बाहुओ का वन था उसको काटकर उस अधम क्षत्रिय को मार गिराया था और फिर क्षत्रियो के अन्त कर देने के लिए सात द्वीपो और अर्णवो वाली—पर्वत और वन काननो से युक्त सम्पूर्ण पृथ्वी को देखते हुए वहाँ से चल दिये थे। पूर्व से पश्चिम दिशा तथा दक्षिण उत्तर कुरुओ को गये थे। सामन्तक पञ्चक मे पाँच रुधिर के ह्रद किये थे। उन रुधिर के जल वाले ह्रदो मे उन परशुराम ने क्रोध से मूर्च्छित होकर रुधिर से ही पितृगण का तर्पण किया था—ऐसा हमने सुना है। इसके अनन्तर अर्चीकादि पितरो ने उन ब्राह्मण श्रेष्ठ के समीप मे उपस्थित होकर उनसे कहा था—उसको क्षमा कर दीजिये। इसके पश्चात वह विरत हो गये थे। रुधिर रूपी जल वाले उन ह्रदो के समीप मे जो देश है वह स्यमन्तक पञ्चक—इस पुण्यमय नाम से परिकीर्तित किया जाता है। हे पाण्डव! उस कर्म से निवृत्त होकर परम धर्मात्मा राम ने पितरो से कहा था कि मैंने जो यह रुधिर

पाँच तीर्थों में अर्पित किया है वह उत्तम तीर्थ हो जावे—तथास्तु—अर्थात् ऐसा ही होगा—यह कह कर सब पितृगण अदृश्यता को प्राप्त हो गये थे ॥३६-४३॥

एवं रामस्य संसर्गाद्देवमार्गे युधिष्ठिर ।
सर्वपापक्षयकरो दर्शनात्स्पर्शनान्नृणाम् ॥४४
रेणुकाप्रत्ययार्थाय अद्यापि पितृदेवताः ।
दृश्यन्तेदेव मार्गस्थाः सर्वपापक्षयंकराः ॥४५
तत्र तीर्थे तु राजेन्द्र नर्मदोदधिसङ्गमे ।
स्नानं कृत्वा विधानेनमुच्यन्तेपातकैर्नराः ॥४६
कुशाग्रेणापि कौन्तेयनस्प्रष्टव्यो महोदधिः ।
अनेन तत्रमन्त्रेण स्नातव्यं नृपसत्तम ॥४७
नमस्ते विष्णुरूपाय नमस्तुभ्यमपांपते ।
सान्निध्यं कुरु देवेश सागरे लवणाम्भसि ॥४८

हे युधिष्ठिर ! इस प्रकार से देव मार्ग में राम का संसर्ग दर्शन से और स्पर्श करने से मनुष्यों के समस्त पापों के क्षय करने वाला होता है। रेणु का माता के प्रत्यय (विश्वास) के लिए उस समस्त पापों के क्षय करने वाले देव मार्ग में स्थित पितृ देवता गण अभी भी दिखाई दिया करते हैं। हे राजेन्द्र ! नर्मदा और सागर के संगम उस तीर्थ में विधान के साथ स्नान करके मनुष्य पातकों से मुक्त हो जाया करते हैं। हे कौन्तेय ! कुशा के अग्र भाग से भी महोदधि का स्पर्श नहीं करना चाहिये। हे नृप सत्तम ! वहाँ पर इस निम्नांकित मन्त्र के द्वारा स्नान करना चाहिये। हे अपांपते ! हे देवेश ! विष्णु के स्वरूपधारी आप की सेवा में प्रणाम अर्पित है—जलों के स्वामी की सेवा में नमस्कार है। लवणाम्भ सागर में आप सान्निध्य करिये ॥४४-४८॥

अग्निश्च तेजो मृडया च देहे रेतोधा विष्णुरमृतस्य नाभिः ।
एतद्ब्रुवन्पाण्डवसत्यवाक्यं ततोऽवगाहेत पति नदीनाम् ॥४९
पञ्चरत्नसमायुक्तं फलपुष्पाक्षतैर्युतम् ।
मन्त्रेणाऽनेन राजेन्द्र दद्यादर्घ्यं महोदधेः ॥५०

सर्व रत्ननिधानस्त्वं सर्व रत्नाकराकरः ।
सर्वामरप्रधानेश गृहाणार्घं नमोऽस्तु ते ॥५१
आजन्मजनितात्पापान्मामुद्धर महोदधे ।
याह्यचितोरत्ननिधे पर्वं तान्पार्वणोत्तम ॥५२
कोऽपरः सागराद्देवात्स्वग द्वारविपाटन ।
तत्र सागरपर्यन्त महातीर्थ मनुत्तमम् ॥५३
जामदग्न्येन रामेण तत्र देवः प्रतिष्ठितः ।
यत्र देवाः स गन्धर्वा मुनयः सिद्धचारणाः ॥५४
उपासते विरूपाक्षं जमदग्निमनुत्तमम् ।
रेणुकाचैव येदेवी पश्यन्ति भुवि मानवाः ॥५५
प्रियवासे शिवे लोके वसन्ति कालमीप्सितम् ।
तत्र स्नात्वानरो राजंस्तर्पयन्पितृदेवताः ॥५६
तारयेन्नरकाद्घोरात्कुलानां शतमुत्तरम् ।
स्नात्वा दत्वाऽत्र सहिताः श्रुत्वा वै भक्तिपूर्वकम् ॥५७

हे पाण्डव ! अग्नि—तेज और मृडया देह मे इसके अनन्तर अमृत की नाभि विष्णु हैं—यह सत्य वाक्य बोलता हुआ नदियों के पति मे फिर अवगाहन करना चाहिये । हे राजेन्द्र । पाचों रत्नों से युक्त फल-पुष्प और अक्षतो से समन्वित इस निम्न मन्त्र से महोदधि को अर्घ देना चाहिए ॥५०॥ हे समस्त अमरों में प्रधानों के भी ईश ! आप सम्पूर्ण रत्नों की खान है और सभी रत्नो के आकरो की आकर हैं । हमारे इस अर्घ को ग्रहण कीजिये आपकी सेवा मे आपके लिए हमारा प्रणाम अर्पित है । यह अर्घ देने का मन्त्र है । हे महोदधे ! मेरे जन्म से लेकर समुत्पन्न हुए पापो से मेरा उद्धार कर दो । हे पार्वणोत्तम ! हे रत्ननिधे ! आप समर्चित होकर पर्वतो को गमन कीजिए । यह विसर्जन का मन्त्र है । इस सागर देव से अधिक स्वर्ग के द्वार को विपाटन करने वाला दूसरा कौन हो सकता है ? वहाँ सागर तक अत्युत्तम महा तीर्थ है । जामदग्न्य श्री परशुराम ने वहाँ पर देव की प्रतिष्ठा की थी जहाँ पर देव गण—गन्धर्व—मुनि लोग—सिद्धगण और चारण सभी अत्युत्तम

जमदग्नि विरूपाक्ष भगवान की उपासना किया करते हैं। इस भूमि में जो मनुष्य रेणुका देवी का दर्शन किया करते हैं वे प्रियवास शिवलोक में अभीष्ट काल पर्यन्त निवास किया करते हैं। हे राजन्! उस तीर्थ में स्नान करके अपने पितृगण और देवों का तर्पण करते हुए मनुष्य घोर नरक में उत्तर में होने वाले सौ कुलों का उद्धार कर देता है। स्नान करके यहाँ पर दान करके और भक्ति पूर्वक सहित इस माहात्म्य का श्रवण करके भी अपना और अपने बहुत से कुल का तारण कर दिया करते हैं ॥५०-५७॥

---

## १०६—रेवाखण्डपुस्तकदानादिमाहात्म्यवर्णन

इतिवः कथितं विप्रारेवा माहात्म्यमुत्तमम् ।
यथोपदिष्टं पार्थाय मार्कंडेयेनवपुरा ॥१
तथा तीर्थं कदम्बाश्च तेषु तीर्थं विशेषतः ।
प्राधान्येन मया ख्याता यथासख्य यथाक्रमम् ॥२
एतत्पवित्रमतुलं ह्यतत्पापहरं परम् ।
नर्मदाचरितं पुण्य माहात्म्यं मुनिभाषितम् ॥३
सप्तकल्पानुगो विप्रो नर्मदाया मुनीश्वराः ।
मृकण्डतनयो धीमान्परमार्थविदुत्तमः ॥४
ससेव्य सर्वतीर्थानि नदीः सर्वाश्चवंपुरा ।
बहुकल्पास्मरा रेवामालक्ष्यशिवदेहजाम् ॥५
मेकलेति चशर्वोक्ता शरणं शवजा ययौ ।
अजरामभरादेवी दैत्यध्वकरीं पराम् ॥६
महाविभवसंयुक्ता भवघ्नी भवजाह्नवीम् ।
तस्यामाश्रय सत्रं म जातः सोऽप्यजरामरः ॥७

श्रीसूतजी ने कहा—हे विप्रगण! पुरातन समय में जिस प्रकार से महर्षि मार्कण्डेयजी ने पार्थ युधिष्ठिर को इसका उपदेश किया था वही मैंने आप लोगों को यह अत्युत्तम माहात्म्य वर्णन करके बतला दिया है। मैंने

बहुत-से तीर्थों का तथा उनमें भी विशिष्ट तीर्थों का प्रधान रूप से संख्या और क्रम के अनुसार वर्णन किया है । यह परम्परा ही पवित्र और अशुभ पापों के हरण करने वाला है मुनीश्वरो ! पुण्यमय नर्मदा का चरित एवं माहात्म्य है जिसको कि महामुनि ने कहा था । हे मुनीश्वरो ! चार वर्षों तक अनुगमन करने वाला मृकण्ड का पुत्र विप्र बहुत ही बुद्धिमान् और उत्तम धर्म का वेत्ता था । इसने पहिले समस्त तीर्थों का भली भाँति सेवन करके और समस्त नदियों का सेवन करके बहुत वर्षों तक स्मरण की जाने वाली और शिव प्रभु के देह से समुत्पन्न हुई रेवा नदी को देखकर भगवान् शर्व के द्वारा मेकला—इस नाम से कही गई और शर्व से ही समुत्पन्न हुई के कारण से वह धर्म गये थे । वह देवों तथा दानव—अमर—वरा—और दैत्यों के दर्शन करने वाली थी—महान् वैभव से समन्वित—संसार की बाधाओं का हनन करने वाली और भव की आह्लादी थी । उनमें ताटेय को आरूढ करके वह प्रेमी भी अजरामर हो जाया करता है ॥१-७॥

रेवा के दोनो तटों पर कदम—कदम पर हे सत्तमो ! साठ हजार और साठ करोड तीर्थ व्यवस्थित हैं । सरिता के दोनो ओर सहस्रो सतीर्थ हैं । हे मुनीश्वरो ! वे सब रेवा की तुलना प्राप्त नही होते हैं—ऐसा मैं मानता हूं । हे द्विजगण ! आप लोगो ने जो कुछ भी मुझसे पूछा है वह सब मैंने आपको बतला दिया है जो कि भगवान् महेश के मुख से श्रवण करके वायुदेव ने ऋषियो से कहा था । उसी भाँति मृकण्ड के पुत्र ने भी सम्पूर्ण नदी का अनुभव प्राप्त करके इस पावनी सतीर्था को पद से पाण्डु के पुत्र को कहा था । हे द्विजोत्तमो ! यह सभी संक्षेप से मैंने कह दिया है । यह नर्मदा का चरित परम पुण्यमय है और तीनो लोको मे परम दुर्लभ है । अन्य सहस्रो सरिताओ के जलो का सेवन करने से क्या लाभ है यदि रेवा का जल भली भाँति सेवन किया जावे जो कि पापो के नाश करने वाला है । मेकला के जल का ससेवन करने वाला शाश्वती मुक्ति की प्राप्ति किया करता है ।।८-१४।।

यथा यथा भजेन्मर्त्यो यद्यदिच्छति तीर्थगः ।
तत्तदाप्नोति नियतं श्रद्धयाऽश्रद्धयापि च ।।१५
इदं ब्रह्माहरिरिदमिदं साक्षात्परोहरः ।
इदं ब्रह्म निराकारं कैवल्यं नर्मदाजलम् ।।१६
तावद्गर्जन्ति तीर्थानि नद्योह्यफलप्रदा. ।
यावन्नस्मर्यते रेवासेवाहेवा कलौ नरैः ।।१७
भुवं लोके हितार्थाय शिवेन स्वशरीरतः ।
शक्तिः कापिसरिद्रूपा रेवयमवतारिता ।।१८
तावद्गर्जन्ति यज्ञाश्च वन क्षेत्रादयो भृशम् ।
यावन्नर्मदानाम कीर्तनं क्रियते कलौ ।।१९
गरिमा गण्यते तावत्तपोदानव्रतादिषु ।
नरैर्वा प्राप्यते यावद्भुविभगभवा धुनी ।।२०
ये वसन्त्युत्तरेकूले रुद्रस्यानुचरा हि ते ।
वसन्ति याम्यतीरे ये लोकं ते यान्ति वैष्णवम् ।।२१

जैसे—जैसे मनुष्य भजन करात है और तीर्थों में गमन करने वाला जो-जो भी चाहता है वही-वही नियत रूप से यह अवश्य ही प्राप्त कर लिया करता है चाहे यह श्रद्धा से करे अथवा अश्रद्धा से करे। यह नर्मदा का जल ही ब्रह्मा है—यही हरि है तथा यह जल ही परात्पर साक्षात् हर है—यही निराकार ब्रह्म है और यही कैवल्य है। तभी तक अन्य समस्त तीर्थ गर्जन किया करते हैं अर्थात् अपने द्वारा प्राप्त होने वाले पुण्य-फल की घोषणा करते हैं और नदियाँ भी सुन्दर फल देने वाली बना करती हैं जब तक इस कलियुग में नरों के द्वारा रेवा की सेवा से होने वाले पुण्य फल का स्मरण नहीं किया जाता है। यह निश्चय ही लोक में हित सम्पादन करने के लिये भगवान् शिव ने अपने ही शरीर से कोई सरिता के स्वरूप वाली यह रेवा शक्ति अवतारित की है। तभी तक वन क्षेत्रादि यज्ञ अत्यधिक गर्जना किया करते हैं जब तक इस कलियुग में नर्मदा के नाम का कीर्तन नहीं किया जाता है। तप—दान और व्रत आदि में तभी तक गौरव की गणना हुआ करती है जब तक भूमण्डल में मनुष्यों के द्वारा भर्ग से समुत्पन्न नदी की प्राप्ति नहीं की जाया करती है। जो उत्तर कूल में निवास किया करते हैं वे रुद्र के अनुचर होते हैं और जो याम्य तट पर निवास करते हैं वे वैष्णव लोक में गमन किया करते हैं ॥१५-२१॥

धन्यास्ते देशवर्यास्ते येषु देशेषु नर्मदा ।
नरकान्तकरीशश्वत्संस्थिताशर्वनिर्मिता ॥२२
कृतपुण्याश्च ते लोकाः शोकाय न भवन्ति ते ।
ये पिबन्ति जलं पुण्यं पार्वतीपतिसिन्धुजम् ॥२३
इदं पवित्रमतुलं रेवायाश्चरितं द्विजाः ।
शृणोति यः कीर्तयते मुच्यते सर्वपातकैः ॥२४
यत्फलं सर्ववेदेश्च सषडङ्गपदक्रमैः ।
श्रुतैश्च पठितैस्तस्मात्फलमष्टगुणं भवेत् ॥२५
ये पुनर्भावितात्मानः शास्त्रं शृण्वन्ति नित्यशः ।
पूजयन्ति च तच्छास्त्रं नामदं वस्त्रभूषणैः ॥२६

पुष्पैः फलैश्चन्दनाद्यैर्भोजनैर्विविधैरपि ।
शास्त्रेऽस्मिन्पूजिते देवा पूजिता गुरवस्तथा ॥२७
इहलोके परे चैव नात्र कार्या विचारणा ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन गन्धवस्त्रादिभूषणैः ॥२८
पूजयेत्परया भक्त्या वाचकं शास्त्रमेव च ।
वेदपाठैश्च यत्पुण्यमग्निहोत्रैश्च पालितैः ॥२९
तत्फलं समवाप्नोति नर्मदाचरिते शुभे ।
कुरुक्षेत्रे च यत्पुण्यं प्रभासे पुष्करे तथा ॥३०

वे श्रेष्ठ देश परम धन्य हैं जिन देशों में नर्मदा नदी बहती है। यह साक्षात् भगवान् शम्भु के द्वारा निर्मित नदी है जो निरन्तर ही नरकों का अन्त करदेने वाली है जो लोग इसका सदा आश्रय ग्रहण करते हैं। वे लोक महान् पुण्यों के करने वाले हैं और उन को शोक कभी भी नहीं होता है जो पार्वती देवी के पति के द्वारा विरचित इस नदी के पुण्य जल का पान करते हैं उनको कभी भी शोक का अवसर ही प्राप्त नहीं होता है ॥२३॥ हे द्विजगण ! यह रेवा का चरित अतुल पवित्र है। जो इस चरित का श्रवण करता है और जो इसका कीर्त्तन करता है अर्थात् पढता है वह सभी महा पातकों से छुटकारा पा जाया करता है। जो फल पद—क्रम घन—जटा—वल्ली आदि छै अङ्ग के सहित समस्त वेदों के पढ़ने एवं श्रवण करने का फल होता है उस फल से अठगुना फल इस नदी से हुआ करता है ॥२५॥ जो लोग भावित आत्मा वाले होते हैं और नित्य ही शास्त्र का श्रवण किया करते है। वस्त्र और भूषणों के द्वारा उस नर्मदा के शास्त्र का जो लोग पूजन किया करते हैं। पुष्प—फल—चन्दन आदि द्वारा तथा विविध भांति के पूजनों से इस शास्त्र के पूजन किये जाने पर समस्त देवता और गुरुवर्ग पूजित हो जाया करते है। इस लोक में और पर लोक में भी सब समर्चित होते हैं—इसमें कुछ भी विचारणा नहीं करनी चाहिए। इसलिये सभी प्रकार के प्रयत्नों से गन्ध—वस्त्र—भूषण आदि के द्वारा पराभक्ति से इस शास्त्र का और इसके वाचन करने वाले

का पूजन करना चाहिए । वेदो के पाठो से तथा पालित अग्नि होत्रो से जो पुण्य फल होता है वही पुण्य फल शुभ नर्मदा के चरित्र मे प्राप्त हो जाया करता है । कुरुक्षेत्र मे—प्रभासक्षेत्र मे तथा पुष्कर मे जो पुण्य होता है वही पुण्य फल परम शुभ नर्मदा के चरित के पठन, श्रवण और समर्चन से हो जाता करता है ।।२९-३०।।

रुद्रावर्ते गयायां च वाराणस्यां विशेषत ।
ग गाद्वारे प्रयागेच ग गासागरस गमे ।।३१
एवमादिषु तीर्थ षु यत्पुण्य जायते नृणाम् ।
नर्म दाचरितं श्रुत्वानरपुण्य सकलं लभेत् ।।३२
आदिमध्यावसानेषु नर्म दाचरितं शुभम् ।
यः शृणोति नरो भक्त्या शृणुध्व तत्फलं महत् ।।३३
समाप्य शिवसंस्थान देवकन्यासमावृतः ।
रुद्रस्यानुचरोभूत्वा शिवेनसहमोदते ।।३४
धर्माख्यानमिद पुण्य सर्वाख्यानेष्वनुत्तमम् ।
गृहेऽपिपठयतयस्यचतुर्वर्णस्यसत्तमा ।।३५
धन्य तस्यगृहेमन्ये गृहस्थ चापि तत्कुलम् ।
पुस्तकपूजयेद्यस्तु नर्म दाचरितस्य तु ।।३६
नर्मदा पूजिता तेन भगवाश्च महेश्वर ।
वाचके पूजितेतद्वद्वाश्च ऋषयोऽर्चिताः ।।३७

रुद्रावर्त मे, गया मे, विशेष करके वाराणसी मे, गङ्गा द्वार मे, प्रयाग मे, गङ्गा सागर के सङ्गम मे, इस तरह के बड़े २ तीर्थों मे मनुष्यो को जो भी पुण्य फल प्राप्त होता है वही पुण्य फल नर्मदा के चरित को श्रवण करके सम्पूर्ण रूप से प्राप्त हो जाया करता है । आदि, मध्य और अवसान में नर्मदा के शुभ चरित्र का जो भी कोई मनुष्य भक्ति से श्रवण किया करता है उसके महान् फल का श्रवण करो । शिव के संस्थान को ।प्त करके देव कन्याओ से समावृत्त होता हुआ भगवान् रुद्र देव के अनु- ्र होने का पद प्राप्त करके शिव के ही साथ आनन्द प्राप्त किया करता । धर्माख्यान परम पुण्यमय है और अन्य सभी आख्यानों मे सर्वोत्तम

माख्यान है। हे श्रेष्ठजनो ! जिसका पाठ चारों वर्णों के घर में भी किया जाता है। उसके घर को परम धन्य मानता हूँ और वह गृहस्थ तथा कुल भी अतीव धन्य है जो नर्मदा चरित की पुस्तक की पूजा किया करता है। जिसने नर्मदा नदी का पूजन कर लिया है उसने भगवान् महेश्वर का ही समभ्यर्चन कर लिया है। इस पुराण के वाचन करने वाले का जिसने पूजन किया है मानो उसने सभी देवों और ऋषियों का अर्चन कर लिया है ॥३१-३७॥

लेखयित्वा च सकलं रेवाचरितमुत्तमम् ।
भूषणं सर्वशास्त्राणांयोददातिद्विजन्मने ॥३८
नर्मदा सर्वतीर्थेषु स्नानदानेन यत्फलम् ।
तत्फलसमवाप्नोति सनरोनात्र संशयः ॥३९
एतत्पुराणं रुद्रोक्तं महापुण्यफलप्रदम् ।
स्वर्गदं पुत्रदं धन्यं यशस्यं कीर्त्तिवर्धनम् ॥४०
धर्म्यमायुष्यमतुलं दुःखदुःस्वप्ननाशनम् ।
पठतां शृण्वतां चापि तथ कामार्थसिद्धिदम् ॥४१
यत्प्रदत्तमिदं पुण्यं पुराणं वाच्यते द्विजैः ।
शिवलोके स्थितिस्तस्य पुराणाक्षरवत्सरो ॥४२
इति निगदितमेतन्नर्मदायाश्चरित्रं
पवनगदितमग्र्यं शर्ववक्त्राद्वाप्य ।
त्रिभुवनजनवन्द्य त्वेतदादौ मुनीनां
कुलपतिपुरतस्तत्सूतमुख्येन साधु ॥४३

इस सम्पूर्ण रेवा के उत्तम चरित को लिखवा कर इन समस्त शास्त्रों के भूषण स्वरूप को जो कोई किसी ब्राह्मण को दान दिया करता है उस को नर्मदा अन्य समस्त तीर्थों में स्नान और दान से जो फल प्राप्त होता है वही फल उस मनुष्य को दिया करती है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। यह पुराण भगवान् रुद्र के द्वारा ही कहा गया है और महान् पुण्य फल का प्रदान करने वाला है। यह स्वर्ग निवास, पुत्र देने वाला है, परम धन्य, यशस्य और कीर्ति के बढ़ाने वाला है। धर्म से युक्त, आयु प्रदान

करने वाला, अनुपम और दुःख तथा बुरे स्वप्नों के नाश करने वाला है। जो भी इसका पाठ किया करते हैं तथा इसका श्रवण करते हैं उनके समस्त कामों के प्रयोजन को सिद्धि प्रदान करने वाला है। जो यह दान किये हुए पुण्यमय पुराण को द्विजो के द्वारा बाँचा जाया करता है उनको शिवलोक मे स्थिति हुआ करती है। और वह पुराणाक्षर वत्सरी होता है। यह हमने नर्मदा चरित कह दिया है। यह शिव के मुख से प्राप्त करके वायु देव ने इस सर्वोत्तम को कहा है। यह त्रिभुवन के जनों का वन्दनीय है। आदि काल में कुलपति के आगे सूतजी ने साधु रूप से इस का वर्णन किया है ॥३८-४३॥

## ११०—सत्यनारायणविप्रसम्वादवर्णन

व्रतेन तपसा वाऽपि प्राप्यते वाञ्छितं फलम् ।
सर्वं तच्छ्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामुने ॥१
नारदेनैवमुक्तः स भगवान् कमलापतिः ।
सुरर्षयेयथाप्राहतच्छृणुध्वं समाहिताः ॥२
एकदा नारदोयोगीपरानुग्रहकाम्यया ।
पर्यटन् विविधाँल्लोकान्मर्त्यलोकमुपागतः ॥३
तत्र दृष्टा जनाः सर्वे नानादुःखसमन्विताः ।
नानायोनिसमुत्पन्नाः क्लिश्यन्ते पापकर्मभिः ॥४
केनोपायेन चैतेषांदुःखनाशोभवेद्ध्रुवम् ।
इतिसञ्चिन्त्यमनसाविष्णुलोकं गतस्तदा ॥५
तत्रनारायणं देवं शुक्लवर्णं चतुर्भुजम् ।
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥६
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं स्तोतुं समुपचक्रमे ।
नमस्ते वाङ्मनोऽतीतरूपायाऽनन्तशक्तये ।
आदिमध्यान्तहीनाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥७

ऋषियों ने कहा—हे महामुने ! जिस व्रत अथवा तप से मनुष्यों को मन-वाञ्छित फल की प्राप्ति होती है उसे सबको देवर्षि नारदजी के पूछे

हुए प्रश्नानुसार मैं श्रवण करना चाहता हूँ। उसे आप कहिए ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—श्रीनारदजी के द्वारा इस प्रकार से कहे गये भगवान् कमला पति ने उन देवर्षि से जिस प्रकार से जो भी कहा था वही आप लोग सब परम सावधान होकर श्रवण कीजिए। एक समय की बात है कि योगीराज देवर्षि श्रीनारदजी दूसरे जीवों पर अनुग्रह करने की इच्छा से अनेक लोकों में पर्यटन करते हुए मनुष्य लोक में आकर प्राप्त हो गये थे। वहाँ पर उनके द्वारा सभी मर्त्य लोक निवासी मनुष्य अनेक प्रकार के दुःखों से युक्त नाना प्रकार की योनियों में समुत्पन्न अपने किये हुए पाप पूर्ण कर्मों से क्लेश पाते हुए देखे गये थे ॥२४॥ देवर्षि नारदजी ने अपने मन में इन विचारे भूलोक वासी मनुष्यों की ऐसी बुरी दशा देख कर सोचा था कि ऐसा कौन सा उपाय हो सकता है जिसके करने से निश्चित रूप से इनके दुःखों का विनाश हो जावे। उसी समय में यही विचार करते हुए विष्णु लोक में पहुँच गये थे। वहा पर भगवान् नारायण देव का दर्शन किया था जो शुक्ल वर्ण वाले थे, और जिनकी चार भुजाएँ थी। नारायण का स्वरूप शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला से विभूषित था। उन देवों के देव प्रभु का दर्शन करके नारदजी ने अपना कथन आरम्भ किया था। नारदजी ने कहा—मन और वाणी से भी परे स्वरूप वाले, अनन्त शक्ति से सुसम्पन्न तथा आदि, मध्य और अन्त से रहित, बिना गुणों वाले और गुणों की आत्मा वाले प्रभो! आपके लिये नमस्कार है ॥५७॥

सर्वेषामादिभूताय भक्तानामार्तिनाशिने।
श्रुत्वास्तोत्रं ततोविष्णुर्नारदं प्रत्यभाषत ॥८
किमर्थमागतोऽसित्वं किन्तेमनसिवर्त्तते।
कथयस्वमहाभाग तत्सर्वं कथयामि ते ॥९
मर्त्यलोके जनाः सर्वे नानाक्लेशसमन्विताः।
नानायोनिसमुत्पन्ना पच्यन्ते पापकर्मभिः ॥१०
तत्सर्वं शमयेन्नाथ लघूपायेन तद्वद।
श्रोतुमिच्छामितत्सर्वं कृपाऽस्तियदि ते मयि ॥११

करने वाला, अनुपम और दुःख तथा बुरे स्वप्नों के नाश करने वाला है। जो भी इसका पाठ किया करते है तथा इसका श्रवण करते हैं उनके समस्त कामो के प्रयोजन को सिद्धि प्रदान करने वाला है। जो यह दान किये हुए पुण्यमय पुराण को द्विजो के द्वारा बाँचा जाया करता है उनको शिवलोक मे स्थिति हुग्रा करती है। श्रौर वह पुराणाक्षर वत्सरी होता है। यह हमने नर्मदा चरित कह दिया है। यह शिव के मुख से प्राप्त करके वायु देव ने इस सर्वोत्तम को कहा है। यह त्रिभुवन के जनों का वन्दनीय है। आदि काल में कुलपति के आगे सूतजी ने साधु रूप से इस का वर्णन किया है ॥३८-४३॥

## ११०—सत्यनारायणविप्रसम्वादवर्णन

व्रतेन तपसा वाऽपि प्राप्यते वाञ्छितं फलम्।
सर्वं तच्छ्रोतुमिच्छामि कथयस्व महामुने ॥१
नारदेनैवमुक्तःस भगवान् कमलापतिः।
सुरर्षयेयथाप्राहतच्छृणुध्वं समाहिताः ॥२
एकदा नारदोयोगीपरानुग्रहकाम्यया।
पर्यटन् विविधांल्लोकान्मर्त्यलोकमुपागतः ॥३
तत्र दृष्टा जनाः सर्व्वे नानादुःखसमन्विताः।
नानायोनिसमुत्पन्नाः क्लिश्यन्ते पापकर्मभिः ॥४
केनोपायेनचैतेषांदुःखनाशोभवेद्ध्रुवम्।
इतिसञ्चिन्त्यमनसाविष्णुलोकं गतस्तदा ॥५
तत्रनारायणं देवं शुक्लवर्णं चतुर्भुजम्।
शङ्खचक्रगदापद्मवनमालाविभूषितम् ॥६
दृष्ट्वा तं देवदेवेशं स्तोतुं समुपचक्रमे।
नमस्ते वाङ्मनोऽतीतरूपायाऽनन्तशक्तये।
आदिमध्यान्तहीनाय निर्गुणाय गुणात्मने ॥७

ऋषियों ने कहा—हे महामुने! जिस व्रत अथवा तप से मनुष्यों को मन-वाञ्छित फल की प्राप्ति होती है उसे सबको देवर्षि नारदजी के पूछे

हुए प्रश्नानुसार मैं श्रवण करना चाहता हूं । उसे आप कहिए ॥१॥ श्री सूतजी ने कहा—श्रीनारदजी के द्वारा इस प्रकार से कहे गये भगवान् कमला पति ने उन देवर्षि से जिस प्रकार से जो भी कहा था वही आप लोग अब परम सावधान होकर श्रवण कीजिए । एक समय की बात है कि योगीराज देवर्षि श्रीनारदजी दूसरे जीवों पर अनुग्रह करने की इच्छा से अनेक लोकों मे पर्यटन करते हुए मनुष्य लोक मे आकर प्राप्त हो गये थे । वहाँ पर उनके द्वारा सभी मर्त्य लोक निवासी मनुष्य अनेक प्रकार के दुःखों से युक्त नाना प्रकार की योनियों मे समुत्पन्न अपने किये हुए पाप पूर्ण कर्मों से क्लेश पाते हुए देखे गये थे ॥२ ४॥ देवर्षि नारदजी ने अपने मन मे इन विचारे भूलोक वासी मनुष्यो की ऐसी बुरी दशा देख कर सोचा था कि ऐसा कौन सा उपाय हो सकता है जिसके करने से निश्चित रूप से इनके दुःखों का विनाश हो जावे । उसी समय से वही विचार करते हुए विष्णु लोक मे पहुँच गये थे । वहां पर भगवान् नारायण देव का दर्शन किया था जो शुक्ल वर्ण वाले थे और जिनकी चार भुजाऐं थी । नारायण का स्वरूप शङ्ख, चक्र, गदा, पद्म और वनमाला से विभूषित था । उन देवो के देव प्रभु का दर्शन करके नारदजी ने स्तव का कथन आरम्भ किया था । नारदजी ने कहा—मन और वाणी से भी परे स्वरूप वाले, अनन्त शक्ति से सुसम्पन्न तथा आदि, मध्य और अन्त से रहित, बिना गुणों वाले और गुणों की आत्मा वाले प्रभो ! आपके लिये नमस्कार है ॥५ ७॥

सर्वेषामादिभूताय भक्तानामार्त्तिनाशिने ।
श्रुत्वास्तोत्रं ततोविष्णुर्नारदं प्रत्यभाषत ॥८
किमर्थमागतोऽसित्वं किन्तेमनसिवर्त्तते ?
कथयस्वमहाभाग तत्सर्वं कथयामि ते ॥९
मर्त्यंल्लोके जनाःसर्वे नानाक्लेशसमन्विताः ।
नानायोनिसमुत्पन्नाः पच्यन्ते पापकर्मभिः ॥१०
तत्सर्वं शमयेन्नाथ लघूपायेन तद्वद ।
श्रोतुमिच्छामितत्सर्वं कृपाऽस्तियदिते मयि ॥११

वृद्धब्राह्मणरूपेणपप्रच्छद्विजमादरात् ॥२३
किमर्थं भ्रमसे विप्र महीकृत्स्नां सुदुःखितः ।
तत्सर्वं श्रोतुमिच्छामि कथ्यतां यदि रोचते ॥२४
ब्राह्मणोऽतिदरिद्रोऽहं भिक्षार्थं भ्रमणं मम ।
उपायं यदि जानासि कृपया कथय प्रभो ॥२५

इसके अनन्तर स्तवन करके भगवान् श्री सत्य नारायण प्रभु का स्मरण करते हुए अपने घर की ओर गमन करे। ऐसी विधि से इस व्रत एवं पूजन के करने पर मनुष्यों की वाञ्छा की सिद्धि निश्चित रूप से हो जाया करती है। विशेष करके इस परम घोर कलियुग में भू तल में दुःखों के विनाश करने का अन्य कोई भी उपाय ही नहीं है। हे द्विज ! अब मैं भगवान् सत्य नारायण प्रभु की कथा बतलाता हूँ जिसके श्रवण करने से मनुष्य कृतकृत्य अर्थात् पूर्णकाम एवं सफल हो जाया करता है। कथा का यहीं से आरम्भ होता है--काशीपुर नामक ग्राम में कोई एक परम निर्धन विप्र था। वह बिचारा क्षुधा और तृषा से अत्यन्त व्याकुल होकर निरन्तर पृथ्वी पर भ्रमण किया करता था। इस प्रकार से अत्यन्त दुःखित उस ब्राह्मण को ब्राह्मणों पर विशेष प्यार करने वाले सत्यनारायण भगवान् ने देखकर स्वयं एक वृद्ध ब्राह्मण का स्वरूप धारण करके उसके समीप में समागत हुए और बहुत ही आदर के साथ उस ब्राह्मण से उन्होंने पूछा था—हे विप्र ! आप मुझे यह तो कृपा करके बतलाइये कि आप इस तरह से अत्यन्त दुःखित होते हुए किस प्रयोजन की सिद्धि के लिए सम्पूर्ण भूमि पर भ्रमण किया करते हैं ? मैं यही सब सुनने की इच्छा रखता हूँ। यदि आप ठीक समझते हो तो यह मुझे बतला दीजिये। ब्राह्मण ने कहा—मैं ब्राह्मण हूँ और बहुत ही अधिक दरिद्री हूँ। मेरा यह समस्त भ्रमण केवल भिक्षा की प्राप्ति के लिये होता है। यदि आप मेरे इस उदर भरण की पीड़ा के निवारण का कोई उपाय जानते हो तो हे प्रभो ! आप कृपाकर मुझे यह बतला दीजिये ॥२०-२५॥

सत्यनारायणोविष्णुर्वाञ्छितार्थफलप्रदः ।
तस्यत्वं द्विजशार्दूल कुरुष्वव्रतमुत्तमम् ।
यत्कृत्वा सर्व्व दुःखेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥२६
विधानञ्च व्रतस्याऽस्य विप्रायाऽऽभाष्य यत्नतः ।
सत्यनारायणो वृद्धस्तत्रैवाऽन्तरधीयत ॥२७
ततोऽसौमनसाविप्रश्चिन्तयामासईश्वरम् ।
व्रतं नारायणेनोक्तं विदित्वामन्दिरं ययौ ॥२८
ततोऽहं तत्करिष्यामि व्रतं मनसि चिन्तितम् ।
इति निश्चित्य विप्रोऽसौ रात्रौ निद्रां न लब्धवान् ॥२९
ततःप्रातःसमुत्थायसत्यनारायणव्रतम् ।
करिष्येऽहञ्चसङ्कल्प्यसिद्धार्थं मगमद्द्विज ॥३०
तस्मिन्नेवदिनेविप्रः प्रचुरं द्रव्यमाप्तवान् ।
तेनैवबन्धुभिः सार्द्धं सत्यस्यव्रतमाचरन् ॥३१
सर्व्वदुःखविनिर्मुक्तःसर्वसम्पत्समन्वितः ।
बभूव सद्विजश्रेष्ठोव्रतस्याऽस्यप्रसादतः ॥३२
ततः प्रभृति कालञ्च मासि मासि व्रतं कृतम् ॥३३
एवं नारायणादेतद्व्रतं ज्ञात्वाद्विजोत्तमः ।
सर्व्वपापविनिर्मुक्तोदुर्लभं मोक्षमाप्तवान् ॥३४
व्रतमेतद्यदाविप्र पृथिव्यां सञ्चरिष्यति ।
तदैव सर्वदुखं हि मानवानां विनश्यति ॥३५
एवं नारायणेनोक्तं नारदाय महात्मने ॥३६

उस वृद्ध ब्राह्मण वेष वाले प्रभु ने कहा—हे द्विजों में शार्दूल के समान ! भगवान् सत्यनारायण विष्णु सम्पूर्ण वांछित अर्थों के फलों के प्रदान करने वाले हैं। उन्हीं के परम उत्तम व्रत एवं अर्चन को आप करिये जिसके करने से मनुष्य इस संसार में सभी प्रकार के दुःखों से मुक्त हो जाया करता है। श्री भगवान् ने नारद जो से कहा—उस बुभुक्षित विप्र को इस सत्यनारायण प्रभु के व्रत का पूरा विधान यत्नपूर्वक कहकर वह वृद्ध ब्राह्मण के स्वरूप में उपस्थित सत्यनारायण प्रभु वहीं पर अन्तर्हित

हो गये थे। उनके वहाँ छिप जाने पर इसके पश्चात् उस विप्र ने मन मे ईश्वर का चिन्तन किया था कि यह व्रत तो स्वयं नारायण ने ही मुझे बतलाया है—यह समझकर वह मन्दिर में गया था। इसके अनन्तर उपने अपने मनमें विचार किया था कि मैं इस व्रत को करूंगा—ऐसा निश्चय करके उस ब्राह्मण ने रात्रि में निद्रा प्राप्त नहीं की थी अर्थात् व्रत करने के निश्चय करने पर इसी के चिन्तन करते रहने मे रात को नींद बिल्कुल नहीं आई थी। फिर सुबह होते ही हे द्विज! वह उठकर मन मे विचारने लगा कि मैं सत्य नारायणभगवान का व्रत अवश्य करूंगा ऐसा सकल्प करके वह सिद्धार्थ को प्राप्त हो गया था। भगवान् सत्य नारायण प्रभु की ऐसी कृपा हुई कि उसी दिन में उस विप्र ने प्रचुर दान प्राप्त कर लिया था। उसी द्रव्य से उसने अपने बन्धुओं के साथ मे मिल कर सत्य नारायण का व्रत किया था। इसके करने से वह सभी कष्टों से निर्मुक्त हो गया था और सब प्रकार की सम्पत्ति से युक्त हो गया था। वह द्विजो मे श्रेष्ठ इसी व्रत के प्रभाव से एवं प्रसाद से सर्व सुख सम्पन्न हो गया था। तभी से लेकर सर्वदा प्रत्येक मास मे उसने यह व्रत किया था। इस प्रकार से उस द्विज श्रेष्ठ ने इस सत्य नारायण के व्रत का ज्ञान साक्षात् भगवान् नारायण से ही प्राप्त किया था और वह इसे करके समस्त पूर्व कृत पापो से छुटकारा पाकर पूर्णतया विशुद्ध हो गया तथा उसने अन्त मे परम दुर्लभ मोक्ष के पद को भी प्राप्त कर लिया था। भगवान् श्री विष्णु ने देवर्षि नारद जी से कहा—हे द्विज! जिस समय मे यह व्रत पृथिवी मे संचार प्राप्त कर लेगा उसी समय मे भू मण्डल मे समस्त परम पीडित मानवों का दुःख पूर्ण रूप से विनष्ट हो जायगा। श्री सूतजी ने कहा—हे महर्षियो! इस रीति से महान् आत्मा वाले देवर्षि श्री नारद जी से भगवान् नारायण ने इस व्रत के विषय में कहा था। जो कि मैंने आप लोगों के सामने वर्णन कर दिया है ॥२६-३६॥

———